काशी मरणान्मुक्ति

3rd
edition in

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

25/2/2013

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

काशी मरणान्मुक्ति

अग्निशेखर और क्षमा कौल
द्वारा यह
पुस्तक सप्रेम भेंट

मनोज ठक्कर

रश्मि छाजेड़

J.M. College of Education
Raipur, Bantalab
Jammu.
Acc No. 4145
Dated 12-12-2023

शिव ॐ साई प्रकाशन

इन्दौर

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

शिव ॐ साई प्रकाशन

प्रथम संस्करण, सितम्बर 2010
द्वितीय संस्करण, जून 2011
तृतीय संस्करण, अक्टूबर 2011

© सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन
इस पुस्तक के किसी भी अंश की किसी भी रूप में प्रकाशक की लिखित अनुमति के बिना प्रतिकृति करना या किसी भी साधन- इलेक्ट्रॉनिक, मेकैनिकल या अन्य प्रकार, फोटोकॉपी, रिकॉर्डिंग या सूचना संचयन और पुनः प्राप्ति पद्धति द्वारा प्रसारित या प्रकाशित करना मना है।

मुद्रक : प्रिन्ट पैक प्रा.लि., इन्दौर

आवरण चित्र और चित्रण : श्री हरेन्द्र शाह

मूल्य : ₹ 360/-

ISBN 978-81-910927-2-1

www.kashimarnanmukti.com

प्रकाशक :
शिव ॐ साई प्रकाशन
95/3, वल्लभ नगर,
इन्दौर-452003

लेखकद्वय से पत्राचार के लिए उपरोक्त पते पर ही सम्पर्क करें।

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अपनी मातृशक्ति एवं पितृशक्ति परम श्रद्धेय
स्व. श्रीमती विमलाजी एवं स्व. श्री पुरषोत्तमजी ठक्कर
को श्रद्धांजलि स्वरूप

- मनोज ठक्कर

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अग्निशेखर और क्षमा कौल
द्वारा यह
पुस्तक सप्रेम भेंट

अपने माता-पिता श्रद्धेय श्रीमती शुभाजी, श्री रमेशजी छाजेड़
एवं गुरु माँ श्रीमती रिंकूजी ठक्कर
की प्रेरणा से

- रश्मि छाजेड़

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

भूमिका

परमात्मा तो गुरु बन सदैव ही मानव को शिष्यत्व प्रदान कर महामुक्ति मंत्र को उसके कानों में फूँकने को व्याकुल हैं, परंतु मानव की श्रद्धा ही उसके प्रति भौंथरी है इसलिए वह परम दिव्यता को चूक रहा है। परंतु किसी घड़ी कोई कबीर या महा, परमात्मा के प्रति पूर्ण श्रद्धा से भर उस परम दिव्यता को उपलब्ध हो ही जाता है।

कहानी एक ही है और नायक भी एक। किंतु एक ही नायक के ये दो रूप-एक जगत् में ख्यात तो दूसरा अनजाना अज्ञात। एक फूलों से उठती सुगंध, तो दूसरा चिता में जलते मुर्दों से उठती दुर्गंध। एक सूर्य से उजला दिन, तो दूसरा चंद्रविहीन अमावस्या की अँधेरी रात। एक विवाह के मंडप में सजी दुलहन की चुनरी का रचयिता, तो दूसरा जीर्ण-शीर्ण मल-मूत्र से भरी मृतकाया का दाहकर्ता। एक श्री विष्णुरूप रामानंद का शिष्य, तो दूसरा श्री शिवरूप गुरु का चेला।

रात्रि के गहन अंधकार में महाश्मशान मणिकर्णिका पर चिता में शव जलाते चांडाल 'महा' के अंतर में भी कितनी गहन श्रद्धा थी कि वह जलती चिता से सदैव यह संदेश पाता था- 'वह अग्नि ही है जो निशा में भी जागती रहती है। निश्चित ही अंधकार में भी कोई चेतन तत्त्व डोलता भी है और बोलता भी।' ''श्री अरविन्द'' ने इस चेतन तत्त्व को यों व्यक्त किया है-

कुछ डोलता था उस अगाध अंधकार में,
नामहीन गति-सा, विचारहत विचार-सा,
लक्ष्यहीन कुछ, अतुष्ट, आग्रही,
चाहता हुआ कि हो,
किन्तु किस प्रकार हो, न जानता।

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

महाश्मशान के अंधकारमय साम्राज्य में उसी चेतन तत्त्व का संबल ही था कि काशी को केन्द्र स्थल बना, कबीर एवं तुलसी की अँगुली थाम स्वयं की काया रूपी काशी में विचरता ये चांडाल महा, नायक से कब महानायक बन बैठा, यह तो हमें भी स्मरण नहीं। हम मात्र माध्यम ही थे, जीवन जैसे स्वयं नींद से जागा था और महा के साथ काशी के रहस्यमय घाटों पर भ्रमण करते लेखक के रूप में हमें भी जीवन, काशी से परिचित करवा रहा था।

पुराणों के रचयिता ऋषि स्वयं अपने मन, प्राण और काया के त्रिविध बंधनों से मुक्त हो उस परावाणी का स्तुतिगान उठाते हैं, जहाँ जन्म-जन्मांतर से निद्रामग्न मानव उसे सुन जाग उठता है। यह परमात्मा स्वरूप हमारे गुरु शिर्डी के साईबाबा की कृपा थी, साथ ही किसी पौराणिक ऋषि की अनुकंपा भी कि किन्हीं ऊँचे स्तरों पर स्थित पौराणिक सत्य लेखनी के माध्यम से इस पुस्तक में उतर रहे थे और हम मात्र दर्शक बन उसे देखते हुए लेखनी चला रहे थे।

सत्य कभी खोता नहीं, वह काल की स्मृति में सदैव गूँजता रहता है। सत्य की शाख पर उगा 'महा' रूपी कल्पना का यह पुष्प कब स्वयं सत्य हो उतर आया, यह हमें भी ज्ञात न हुआ। कथा एक गुरु एवं शिष्य की है, अतः दिव्यता का अंश महा, लेखनी के माध्यम से स्वतः उतरता एवं गुरु के पद-चिह्नों के सहारे चलता पुनः दिव्यता और अमरता के साथ संयुक्त होने के मार्ग पर प्रशस्त हो चला था और हम गुरु-शिष्य माध्यम बन महा के इस उतरने में उन पौराणिक रहस्यों से अवगत हो रहे थे, जो हमारी कल्पना से भी परे थे।

लेखनी स्वयं अपनी चाल में उन घड़ियों में यह दर्शा रही थी कि मानो इस ब्रह्मांड का कण-कण ही शिव का ज्योतिर्लिंग है। संसार के समस्त तीर्थस्थल उस शक्ति को संचारित करते हैं जिसे आत्मसात् कर निद्रामग्न मानवों को यह भान होता है कि संसार का सर्वोच्च तीर्थ तो स्वयं की काया ही है। काया एवं काशी में कोई अंतर नहीं, जो शिव के ओज से ही निर्मित दिव्यता उठाती है।

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

स्वयं की काया में स्थित हो साधना करता मानव जब स्वयं के सच्चिदानंद स्वरूप आत्मा से परिचित होता है, तो उसी घड़ी देह भान से वह मुक्त हो जाता है। यही मरण भी है एवं काशी मरणान्मुक्ति भी।

कथा में जितना कथ्य है, उससे कई गुना अधिक अकथ्य। जहाँ शिव पुराण इस कथा-काया की रीढ़ की हड्डी हैं वहीं अन्य पुराण इसके अंग-प्रत्यंग। स्व. श्री मुंशी प्रेमचंद की पत्रिका 'हंस' के कुछ लेखों से मिली जानकारियों ने भी इसकी सुंदरता को बढ़ाया है।

प्रणव, भक्ति एवं वैशाली की मुस्कराहटों एवं अंकिता, आलोक एवं शशांक के अथक परिश्रम के बिना यह पुस्तक इतनी जल्दी मूर्त रूप न लेती। हमारे मन सभी के प्रति धन्य भाव से भरे छलकने को आतुर हैं।

उस अनंत शिव की कृपा का एक सूक्ष्म अंश हम पर उतरता हमें उस कृतार्थ भाव से भर गया जिसका वर्णन शब्दों से परे हैं। एक भावगंगा शिव जटा से उतरती हृदय रूपी काशी के घाट कब पहुँची यह ज्ञात नहीं, जो ज्ञात है वह 'काशी मरणान्मुक्ति' के रूप में आपके हाथ में है। और पुनः आप पाठकों का इस पर अमूल्य प्रतिसाद और भावपूर्ण सराहना फिर उसी भावगंगा का रूप ले इतने कम अंतराल में हमारे हृदय में ऐसे आ उतरेगी यह भी कल्पना से परे है। प्रसाद ग्रहण करने या बाँटने में 'धन्यवाद' शब्द का प्रयोग नहीं होता, होता है तो मात्र कृतार्थ भाव और इसी भाव से भरे हम 'काशी मरणान्मुक्ति' रूपी इस भावगंगा को तृतीय संस्करण के रूप में आपके समक्ष ला रहे हैं और आशा करते हैं कि कोई भाव लहर आपके हृदय को भी ऐसे ही स्पंदित कर देगी जैसे कि हमारे।

मनोज ठक्कर

रश्मि छाजेड़

इन्दौर

अक्टूबर, 2011

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

काशी मरणान्मुक्ति

पूर्वार्द्ध

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अध्याय-१

महाश्मशान मणिकर्णिका पर अर्द्धरात्रि के इस पहर प्रकृति-पुरुष, जनम-मरण एवं सृष्टि-प्रलय की शाश्वत साम्यावस्था को आधार देते सर्वांतर्यामी काशी विश्वनाथ समाधि में लीन हैं। अर्द्धचंद्र, मुकुट का रूप धारण कर उनके मस्तक को सुशोभित करता अमृतवर्षा में मग्न है। उत्तमांग पर गंगा की धवल धारा सहस्रधार होकर झर रही है। ज्योतिर्मय शरीर पर धारण किया बाघंबर कोटि-कोटि सूर्यों का प्रकाश उठा रहा है। शरीर से लिपटी चिताभस्म परम की उज्ज्वलता को दर्शा रही है और भुजबंध के रूप में सुशोभित नाग अपने फनों पर देदीप्यमान मणियों को धारण किये परम दिव्यता उठाते जगमगा रहे हैं।

कालखंड के इस क्षण काशी विश्वनाथ महाश्मशान में रमण करते घाट की अंतिम सीढ़ी पर स्थित हो, अपनी दृष्टि को फाफामऊ क़स्बे के श्मशान की ओर डाल रहे हैं। उनके ललाट पर सुशोभित तृतीय नेत्र परम ज्योतिर्मय प्रकाश उठा रहा है और अब वे स्निग्ध स्मित लिए अमर अनाहत नाद निनादित कर रहे हैं-

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

''साकार, निराकार, सर्वव्यापी, सत्य एवं द्वैतरहित मैं शिव ही परब्रह्म कहलाता हूँ। परम-ज्योति स्वरूप मैं ही सबके हृदय में अंतर्यामी स्वरूप में स्थित होता जीव को शिव से एकाकार करने सर्वदा व्याकुल रहता हूँ।''

''संसार में प्रत्येक जन्म में प्राप्त पुत्र, मित्र, संबंधी; अर्थ, काम और धर्म; सभी अन्यान्य तेज से प्रकाशित जुगनू के सदृश चमकते हैं, परंतु मोक्ष को प्रकाशित करने वाला दिव्य तेज तो काशीवास से ही संभव है। समस्त जन्मों के पुण्य कर्म का परिणाम ही काशीवास रूपी फल को प्रदान करता है।''

अब भी वे मुस्कराते अमरनाद उठा रहे हैं-

''जीव जो बने, जैसा बने, योग से बने, तो सत्य और किसी भीषण संकट आने पर भी जो काशी से विलग न होने दे, वही महायोग है। यदि जीव का मरण काशी में होता है, तो वह अमृत अर्थात् मुक्त हो जाता है और यही काशी मरणान्मुक्ति है।''

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

यह काशी विश्वनाथ निर्मित योग ही था कि कालखंड के इस क्षण काशी के महाश्मशान मणिकर्णिका पर अपने भालस्थ भालचंद्र के द्वारा त्रिपथगा गंगा को खोजते, एक मानव शव को मुक्ति प्रदान करने के लिए बाबा विश्वनाथ शव के कान में तारकमंत्र को फूँकते, फाफामऊ क़स्बे के श्मशान पर दृष्टि डालते स्मित फैला रहे थे।

उधर कालखंड के उसी क्षण फाफामऊ क़स्बे में, अर्द्धरात्रि के इस पहर एक अबला माँ ने अपने नवजात शिशु को गंगा किनारे स्थित श्मशान में चिताग्नि के पास छोड़ दिया था।

कोहरे से घिरी इस रात्रि में बहती ठंडी वायु, काशी से इस नवजात शिशु को विश्वनियंता काशी विश्वनाथ का यह संदेश ला सुना रही थी-

''अरे जीव! तू बहुतेरे श्रेष्ठ तीर्थों में ग़ोता लगा चुका परंतु अब तक तुझे कभी शांति प्राप्त नहीं हुई। अब काशी आ और यहाँ मरण को प्राप्त कर तू मेरी असीम शक्ति से अमरत्व धारण करके शिवरूप हो जा।''

यह तो मरण को मंगल करते बाबा विश्वनाथ के आवाहन का परिणाम ही था कि जन्म-जन्मांतर से माया के इस अरण्य में भटके अपने अंश रूपी जीव को स्वयं के सान्निध्य में रखने के लिए, अष्टपहर रूपी आठ हाथों से बनी एवं पंचतत्त्वों के रंगो से रँगी इस शिशु-काया रूपी चुनरी को उसका ताना-बाना बुनकर, रूप धारण करने के साथ ही पंचतत्त्वों के आश्रय पर छोड़ दिया गया था।

ऊपर सुप्त व्योम, पास ही में कैलास की समस्त धवलिमा को धारण करती प्रवहमान गंगा का जल, पौष मास की इस कोहरे से आच्छादित मध्यरात्रि में बहती हिम सी शीतल वायु, नग्न धरा एवं पास प्रज्वलित चिताग्नि। उलूकों के घूत्कार एवं शिवाओं की चीत्कार से श्मशान भयावह हो चला था। नियति की दृढ़ साँकल में बँधी यह नवजात शिशु-काया श्मशान में चिताग्नि के पास पड़ी जीवन की प्रथम साँसें लेती, नीम के तेल में भूने जाते लहसुन के समान जलते शव से उठती दुर्गंध से परिचित हो रही थी।

आकाश, जल, वायु, पृथ्वी और अग्नि ही मानो अब प्रहरी बन

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

श्मशान के इर्द-गिर्द विचरते श्वानों और सियारों से इस शिशु-काया की रक्षा कर रहे थे, परंतु अज्ञात के इस क्षण अंधकार के साम्राज्य में कोई यह जानने वाला न था कि वास्तविक रूप में तो इस शिशु-काया से कुछ पग की दूरी पर कुंडली मार फन फैलाए बैठा एक काला नाग ही उसकी रक्षा कर रहा था।

शिशु-काया हरे वस्त्र में लिपटी थी, संभवत: वह उस अज्ञात माँ की किसी साड़ी का छोर था।

सर्वत्र अंधकार का साम्राज्य था और नवजात शिशु पलकें मूँदे निद्रामग्न था। दोषी कौन था? अवैध शिशु, जननी माँ या भाग्यविधाता? इन प्रश्नों के उत्तर तो कालखंड के इस क्षण मात्र काशी विश्वनाथ के पास ही थे।

विधाता की लेखनी से लिखे लेख में भले ही इस नवजात शिशु को श्रीहरि के सदृश स्वर्णिम सिंहासन पर आरूढ़ नहीं होना था, परंतु यह कैसा लेख था जो उसे श्मशान के द्वार तक ले आया था? यह रहस्य भी भाग्यविधाता और काशी विश्वनाथ के अतिरिक्त संपूर्ण ब्रह्मांड में यदि कोई भी जानता था, तो वे थे इस शिशु के भविष्य में होने वाले गुरु, कबीर और कुछ हद तक तुलसीदासजी! शायद इसलिए इस क्षण असीम कोमलता लिए यह शिशु-काया देदीप्यमान दिव्यता को उठा रही थी।

जहाँ श्मशान में पग धरते ही सभी मनुष्यों के मुख पर मलिनता छा जाती है, वहीं श्मशान में पड़ी इस शिशु-काया के मुखमंडल की दिव्यता भी भविष्य की कोख में छिपे किसी रहस्य को इंगित कर रही थी।

व्योम का विस्तार, अग्नि की दाहकता, धरा की सहिष्णुता, जल की समरसता और वायु की सर्वव्यापकता, सभी का सम्मिलित रूप ही इस नवजात शिशु-काया को दमका रहा था।

नियति की दृढ़ साँकल भले ही अभी इस शिशु-काया को इस श्मशान में ले आई थी, परंतु काल की यह भेंट ही इस शिशु को भविष्य में उसका अर्थ देती संबोधि के द्वार तक ले जाने वाली थी। कालजगत् की माया में विचरने वाले मानव भला काल-कालातीत बुद्ध का मूल्य क्या आँकेंगे? फिर जननी स्वयं इसका मूल्य आँकने में चूक गई तो भला क्या आश्चर्य?

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कालखंड में निर्मित समाज के भय से भले ही जननी इसे यहाँ छोड़ गई, परंतु जननी के मन में भी द्वंद्व छिड़ा होगा-

"हे परमात्मा! यह तेरा कैसा दान है? जो सँभाले न सँभले एवं त्यागते ही कलेजा फट जाए।" अंततः ममत्व ने लोक-लाज के समक्ष घुटने टेक दिए थे और उस अबला माँ ने जनने के साथ ही इस शिशु को श्मशान में छोड़ दिया था।

इस क्षण तो काशी विश्वनाथ एवं भावी गुरु ही जानते थे कि भविष्य में पंचतत्त्व के रंगों से रँगी नवजात शिशु रूपी इस चुनरी को प्राप्ति-अप्राप्ति के भीषण से परे लहराना था। अनोखी भी थी और अनूठी भी थी 'यह चुनरी।' अर्थोपार्जन की स्थूल कामना से बहुत ऊँचा था इसका लक्ष्य, धर्मध्वजा बन लहराने को भी नहीं बनी थी 'यह चुनरी।' भक्ति की भाव प्रणवता में डूब प्रेम रूपी प्रतिफल भी नहीं पाना था इसे। रुद्र ने तो चिताग्नि के द्वारा कामदेव को मानो प्रथम दिवस ही जलाकर भस्म कर दिया था, तो भला काम के रंग में क्या रँगेगी 'यह चुनरी।'

अर्थ, धर्म और काम के त्रिवर्ग से परे चिताभस्म में स्नान कर साक्षात् श्मशानारण्यवासी, महेश्वर शिव के रंग से रँगना था इसे। भविष्य में मृत्युंजय की साधना कर इस शिशु को स्वयं मृत्युंजय बनना था। काल के प्रत्येक क्षण जूझते इसे कालातीत से भी जूझकर महाकाल के पद पर सुशोभित होना था। यदि इस चुनरी पर कोई कलंक लगता है, तो यह कलंक मात्र चुनरी पर नहीं अपितु सखा रूपी कबीर और भावी गुरु पर भी लगेगा। जब कबीर और उसके भावी गुरु इस कालिमा से नहीं बच सकते, तो भला काशी विश्वनाथ क्या बचेंगे!

शिशु हृदय में अंतर्यामी स्वरूप काशी विश्वनाथ जब स्थित हो इस जीव को स्वयं से एकाकार करने को सर्वदा व्याकुल हों एवं काशीवास द्वारा मोक्ष को प्रकाशित करने वाले दिव्य तेज से जिस काया को दमकना हो, उस पर भला कलंक क्या लगेगा? चाहे आने वाले वर्षों में इस चुनरी को कितनी ही बार यह सुनना क्यों न पड़े-

'पर याद रख मैं तेरा गुरु नहीं।'

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अध्याय-२

महाश्मशान मणिकर्णिका पर रात्रि के इस पहर लोकोत्तरस्फुटालोक, महाकालभूत, योगाध्यक्ष काशी विश्वनाथ कोटिशत सूर्यों के समान प्रकाश उठाते तीनों लोकों को पवित्र करने वाली नदियों में सर्वाधिक पुण्यमयी गंगा के किनारे स्थिर हो, फाफामऊ क़स्बे के श्मशान की ओर दृष्टि उठाए स्निग्ध स्मित के साथ नवजात शिशु को यह संदेश प्रेषित कर रहे हैं-

"मुझ शिवसृजित ब्रह्मांड में मैंने ही इस पंचक्रोशी अविमुक्त क्षेत्र को स्वयं के अनंत कोटि सूर्यों के ओज से निर्मित किया है। जो जीव मेरे इस मुक्तिदायक क्षेत्र में निवास करता है, वह चाहे जैसे भी मरण को प्राप्त हो उसके लिए मुक्ति सुनिश्चित है। मरण के इस मंगल के लिए जीव से न तो ज्ञान की अपेक्षा है, न भक्ति की, न उसके लिए कर्म आवश्यक है, न दान, न उससे कभी संस्कृति की अपेक्षा है, न ही धर्म की; यहाँ मुक्ति के लिए नामकीर्तन, पूजन एवं उत्तम जाति की भी अपेक्षा नहीं।"

"एक दिव्य बोध ने ही ताना-बाना बुनकर तेरी इस काया को निर्मित किया है। ज्ञानबोध की दहलीज़ पर किसी दिव्य प्राण-शक्ति ने तेरी इस काया में स्व-बीज को बोया है। जब अंतर-साक्षी दृष्टि ही निज-स्वभाव हो, तो अज्ञान एवं मृत्यु के पाश तुझे क्या बाँधेंगे? तेरे जैसी काया ही काशीवास रूपी तपस्या में लीन हो काशी मरणान्मुक्ति को सार्थकता प्रदान करती है।"

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सृष्टि के गूढ़ रहस्यमय नियमों को अनुशासित करतीं यह श्मशान भूमि, जैसे आज अपने अँधेरे एवं भयानक हृदय से किसी ज्योतिर्मय प्रकाश को फैला रही थी। किसी दैवयोग से संचालित होती यह धरा, इस क्षण इस नवजात दैवीय शिशु-काया को अपने हृदय से चिपटाए मृत्युगान को छोड़ अमर गान में लीन हो गई थी।

धरा पर स्थित चिताग्नि में जलते शव के आतिथ्य को छोड़, अब संपूर्ण श्मशान भूमि मानों इस नवजात शिशु रूपी अतिथि की सेवा में आतुर हो स्वयं कृतार्थ भाव से भर उठी थी। मृत्यु, दुःख एवं निश्चेतन क्रीड़ा में सदा मग्न रहने वाली यह धरा, जैसे आज स्वयं जन्म पा इस नवजात शिशु के साथ जीवन की क्रीड़ा में मग्न हो चली थी।

श्मशान का आतिथ्य स्वीकार करती यह शिशु-काया जैसे काशी से आते निज भविष्य के संदेशों को सुनती योगनिद्रा में लीन दिव्य आलोक उठा रही थी। चिताग्नि के आलोक में ऐसा प्रतीत हो रहा था जैसे यह नवजात शिशु स्वयंभू, इस श्मशान की मिट्टी से एकरूप हो अवतरित हुआ है, जिस पर दृष्टि पड़ते ही अग्नि भी अपनी दाहकता मिटाती उसकी सेवा में उद्यत होती, उसे इस कोहरे से भरी भीषण रात्रि की शीत में उष्णता प्रदान कर रही है। इस शिशु के चेतना द्वार अभी बंद थे, परंतु प्रकृति मानो किसी दिव्य रहस्य की गूँज उठाती द्वार पर निरंतर दस्तक दे रही थी।

तिमिर गर्भ के इस रहस्यमय वातावरण की दिव्य रहस्यता में इस क्षण भी वह काला नाग फन फैलाए इस शिशु-काया की श्वानों एवं सियारों से रक्षा कर रहा था।

चिताग्नि अपने दिव्य आलोक से शिशु को भविष्य में अंधकार की शक्तियों के विरुद्ध, उसकी एक महान यात्रा की ओर इंगित कर रही थी। श्मशान की इस महान नीरवता में पंचतत्त्व अपने आतुर हृदयों को लिए उस रहस्यमय पथ को निर्मित कर रहे थे, जिसका गंतव्य काशी था।

अर्द्धरात्रि की इस घड़ी में श्मशान से कुछ दूरी पर स्थित एक पर्णकुटी की वाचाविहीन धरा का अंतर उथल-पुथल करता, उस पर लेटी एक स्त्री के अंतर में भी ऐसी उथल-पुथल मचा रहा था कि वह अपनी इंद्रियों की बाढ़ को

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

लाँघ, आत्मघात कर इस क्रूर संसार से मुक्ति पा जाए।

निरंतर अठारह वर्ष परिस्थितियों के चक्र से कुचलते, राघव एवं यशोदा की प्राण-शक्तियाँ अब क्षीण हो चली थीं। नियति के इस क्रूर नृत्य में नाचते, अब दोनों के थकित पगों में इतनी शक्ति नहीं बची थी कि वे अब इस लांछना को और सह सकें कि वे पुत्रविहीन हैं।

दैवयोग मान यशोदा ने अब तक जितने पत्थर पूजे थे, उनमें से कोई भी देव न कहलाया था। आत्मव्योम में अनंत श्रद्धा लेकर कितनी बार काशी विश्वनाथ के समक्ष भी यशोदा ने अपनी ख़ाली झोली फैलाई थी, परंतु लुका-छिपी का खेल खेलते उन्होंने भी उसे ख़ाली हाथ ही लौटाया था।

संघर्ष और दु:ख से भरे निज जीवन में उनका यह अनुभव प्रगाढ़ हो चला था कि किसी से भी वार्त्तालाप के अंत में नियति का कठोर नक़ली चेहरा, उनकी पुत्रहीनता को दृष्टि के समक्ष ले ही आता था। प्रकृति की भट्ठी अब उन्हें तपा नहीं रही थी अपितु गला रही थी।

काल क्षेत्र में किसी बैल के समान जुता राघव, अतिश्रमरत अपनी नाव से यात्रियों को प्रयागराज में संगम के स्थान पर ले जाता था, परंतु यात्रियों का पुण्य भी अब उसे धोखा देता निज बोध में पीड़ा देने लगा था। अब शाप रूपी मदिरा का सेवन जैसे उसके लिए वरदान हो गया था, जहाँ वह अपने निज का बोध खोता असंज्ञ बन, स्वयं को भूलने की मस्ती में मस्त रहता था।

धर्म की ज्योतिर्मय लौ पर से अब दोनों की दृष्टि विमुख हो चली थी एवं पुराने संस्कार अब शनै:-शनै: विलीन होने लगे थे। अनंत ईश्वर के असीम दर्पण में अब वे अपना ससीम प्रतिबिंब देखने से कतराने लगे थे।

परमात्मा के प्रति मन में रेखांकित नकार की सीमा को भेदते, पुत्र प्राप्ति के अंतिम प्रयास के रूप में जब आज उन्होंने हरिवंश पुराण का पारायण करवाया था, तो कलुष मानस के कलुषतर अभियोग से दोनों काँप उठे थे। ब्राह्मणों ने उन्हें अपुत्रक कहकर दान-दक्षिणा लेने से इनकार कर दिया था, जैसे ब्राह्मण उनसे कह गए थे कि मरण-यज्ञ की आहुति बनना ही मात्र उनकी नियति है, पुत्र प्राप्ति नहीं।

समय के इस क्षण दोनों ही नहीं जानते थे कि नियति की लेखनी एवं

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

काशी विश्वनाथ उतने क्रूर नहीं, जितने अपनी सीमितता में वे मान रहे थे। जैसे छुईमुई को छूते ही उसके पर्ण के बंद होने में भी कोई विराट् शक्ति कार्यशील है; वैसे ही किसी पथ के बंद हो जाने के भीतर भी वही विराट् शक्ति किसी नई यात्रा के पथ का द्वार खोलती है। कोई भी दैवयोग निष्फल नहीं होता है, तो अपने एकात्म श्री विष्णु के पारायण के फल के योग को काशी विश्वनाथ निष्फल कैसे करते?

अर्द्धरात्रि की इस निश्चेतना में राघव बड़बड़ा रहा था-

''मेरा वंश कभी आगे नहीं बढ़ेगा।''

मानो यह स्वयं की मृत्यु के प्रति राघव का मूक, मौन हस्ताक्षर था, जिसे पढ़ते ही यशोदा के अंतर का व्योम संकुचित हो उठा। प्राणवायु सिमट कर पति के बदले स्वयं को मृत्यु की कगार पर ले आई। नाड़ियों में बहता रक्त, जल में परिवर्तित हो अश्रु के रूप में बहने लगा। अंतस् की अग्नि आत्मघात के संकल्प में धधक उठी एवं पर्णकुटी की वाचाविहीन धरा का अंतर उथल-पुथल करता, उस पर लेटी यशोदा के अंतर में उथल-पुथल कर उसे आत्मघात के द्वार पर ले आया था।

स्वयं के प्रति खंडित श्रद्धा में अब उसकी काशी विश्वनाथ के प्रति श्रद्धा पूर्णरूपेण खंडित हो गई थी। मृत्यु के भयानक देव का सामना करने अब वह पति के पाँव छूती निडरता से पर्णकुटी के बाहर निकल आई थी। अपने मन के क्षय में अब वह काशी विश्वनाथ को धिक्कार रही थी।

इस भीषण घड़ी में भी जैसे काशी विश्वनाथ के प्रति क्रोध उसके अंतर को एक भव्य बल दे रहा था एवं काशी की दिशा में दृष्टि डालती, अपने इस अमानुषी एकाकीपन में भीषण क्रंदन करती, वह चीख़ उठी-

''सदैव काशीवास की कामना थी एवं काशी मरणान्मुक्ति की भी। परंतु तू झूठा, तेरा काशीवास झूठा एवं काशी मरणान्मुक्ति भी।''

संसार द्वारा स्वयं के तिरस्कार में अब वह काशी विश्वनाथ का तिरस्कार करती स्वयं के भीतर उठते अंधड़ से जैसे शिव के अधीन श्मशान को छिन्न-भिन्न कर, जल समाधि लेना चाहती थी। अपनी इस विक्षिप्तता में वह पुनः चीख़ उठी-

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

"अब तो मेरा मरा शरीर भी तेरे अधीन श्मशान पर नहीं जाएगा।"

काल के महामोर्चे के सम्मुख पग बढ़ाती स्वयं को घर्षिता, अपमानिता एवं कलंकिनी मान, जैसे ही वह श्मशान के निकट पहुँची और काशी विश्वनाथ के प्रति तिरस्कार के भाव से उसने अपनी दृष्टि श्मशान की ओर डाली, एक क्षण को जैसे नेत्र चिताग्नि के पास पड़े एक तेजपुंज पर टिक गए। इस तिमिराच्छन्न साम्राज्य में जैसे कोई प्रकाशपुंज उसे आकर्षित कर रहा था और इसी आकर्षण में खिँची, जैसे ही वह चिता के पास पहुँची उसकी दृष्टि हरे वस्त्र में लिपटे एक नवजात शिशु पर पड़ी। अज्ञात की कोई बिजली हृदय में कौंध उठी एवं हृदय में जीवन के प्रति जैसे अनंत संभावनाएँ एक साथ जन्म ले बैठीं।

कोई स्वर्गिक दिव्य केंद्र जैसे उसे आकर्षित कर रहा था। उसने दौड़कर शिशु को उठा अपने हृदय से लगा लिया। हृदय वात्सल्य के रंग से रँगा था, सो उसे ज्ञात न हुआ कि श्मशान में सर्वत्र फैली चंदन की सुगंध धीरे-धीरे लुप्त हो गई थी। दृष्टि यह भी नहीं देख पाई थी कि शिशु से कुछ पग दूरी पर बैठा एक काला नाग अपनी कुंडली खोल अँधेरे के साम्राज्य में सरकता, लुप्त हो गया था।

परम की गूढ़ सत्ता के पास का केंद्र यह शिशु जैसे कोई दिव्य ज्योति फैला रहा था। शिशु को हृदय से लगाते ही मानो अंतर में यह भाव जागा जैसे किसी दिव्य बोध ने ही ताना-बाना बुनकर इस काया को निर्मित किया है। शिशु का मुखमंडल दर्शा रहा था कि जैसे ज्ञान बोध की दहलीज़ पर किसी दिव्य प्राण-शक्ति ने ही स्व-बीज को इस काया में बोया है।

श्मशान में पड़े इस दिव्य शिशु की काया को पूर्णरूपेण निहारते यशोदा को प्रतीत हुआ कि इस शिशु की अंतर-साक्षी दृष्टि ही इसका निज-स्वभाव है, इसलिए मृत्यु के साम्राज्य में भी यह दिव्यता फैलाता मृत्यु के पाश से दूर है। अपने अंतर में भी यशोदा ने एक विचित्र परिवर्तन पाया था। शिशु को हृदय से चिपटाते ही क्षण भर में यशोदा की दृष्टि के समक्ष साक्षात् स्वयं का काशीवास एवं साथ ही साथ काशी मरणान्मुक्ति भी आ खड़ी हुई थी।

परंतु दूसरे ही क्षण जैसे मृत्यु के भयानक देवता ने उसे धकेल अपनी कालिमा युक्त कोठरी में डाल दिया था। शिशु पूर्णरूपेण शांत था एवं उसे रोता

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हुआ न पाकर यशोदा को प्रतीत हुआ जैसे मृत्यु अपनी भीषण गरज से इसे लील गई है। मन निर्बल होकर लड़खड़ा गया और जब कुछ न सूझा, तो उसने स्वयं के काँपते प्राणों के साथ चिता में से एक छोटी सी अधजली लकड़ी को उठा, स्वयं के कंपित कर से शिशु के दाहिने पग अंगुष्ठ पर छुआ भर दिया।

शिशु क्षण को कुनमुनाया एवं रोकर पुनः शांत हो गया। कहीं फफोला न पड़ जाए, इस भय से वह शीघ्र ही गंगा की ओर दौड़ी एवं अँजुली में जल भरकर उसने शिशु के पग अंगुष्ठ पर डाल दिया। दग्धता अधिक थी, सो अब जले के इस दाग़ को शिशु को जीवन भर ढोना था।

वहाँ मोक्षदायिनी काशी में अखिल ब्रह्मांडमय विराट् पुरुष, विश्वमूर्ति काशी विश्वनाथ इस श्मशान की ओर देखते स्निग्ध स्मित उठा रहे थे एवं यहाँ क्षण के इस जागरण में अदृश्य की कोई शक्ति, शिशु को भगवद्-संकल्प रूपी अग्नि एवं देवताओं की इष्ट देवी, देववल्लभा गंगा के जल से परिचित करवा गई थी।

माँ के हृदय का स्पंदन अब पुत्र के हृदय स्पंदन से समस्वरता स्थापित करने लगा था। यशोदा की गोद में प्रकृति के समस्त सौंदर्य को स्वयं में समाहित करता यह कान्हा, यशोदा के हृदय में काशीवास के भावों को स्पंदित करता, अभी इस रहस्य से अवगत न था कि भावी काशीवास में काशी विश्वनाथ को इस कान्हा से न तो ज्ञान की अपेक्षा थी, न ही भक्ति की। काशी विश्वनाथ ही जानते थे कि न तो यह जगत् के सामान्य कर्म में लिप्त होगा, न ही कर्ण सा दानी बनेगा। न तो यह स्वामी विवेकानंद के समान किसी धर्म के जगत् में विचरेगा एवं न ही यह जगद्गुरु आदि शंकराचार्य के सदृश किसी संस्कृति का प्रतिपालक बनेगा, न ही यह महाप्रभु श्री चैतन्य के सदृश नामकीर्तन एवं पूजन में लीन होगा।

जब इन महान आत्माओं के सदृश यह शिशु किसी कार्य में लीन न होगा, तो किस जाति में रहकर यह काशी मरणान्मुक्ति को प्राप्त होगा, यह रहस्य तो काल की इस घड़ी काशी विश्वनाथ ही जानते थे। साथ ही साथ वे यह भी जानते थे कि सांदीपनि ऋषि मिलने से पूर्व इस नवजात कान्हा को कितनी बार यह सुनना था-

'पर याद रख मैं तेरा गुरु नहीं।'

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अध्याय-३

महाश्मशान मणिकर्णिका पर अर्द्धरात्रि की इस बेला में हिरण्यवर्णो ज्योतिष्मान, महाज्योतिरनुत्तम, लोककर्ता काशी विश्वनाथ ग्रीवा में सर्पमयी माला धारण करते, माता की भाँति विश्व का पालन-पोषण करने वाली लोकधात्री गंगा के किनारे स्थिर हो संपूर्ण ब्रह्मांड के कण-कण को काशीवास का आवाहन दे रहे हैं-

''अनंतता के अँधेरे देवालय में मैंने स्वयं को प्राणप्रतिष्ठित कर अंतर में स्थित घोर नाद उठाती शक्ति के द्वारा स्वयं के हृदय से खींचकर, ज्योतिर्मय सूत से ब्रह्मांड रूपी वस्त्र को बुन उसे सजाया है। इस अखिल ब्रह्मांड का कण-कण मुझे अपनी इस काशी के सदृश प्रिय है।''

''करोड़ों योनियों के कर्मों को लय करने के पश्चात् ही कोई जीव इस काशीवास का सौभाग्य प्राप्त करता है। काशी की इस उत्तरवाहिनी गंगा में स्नान ही व्रत, दान, यम और नियम का पालन है एवं काशीवास ही तपस्या है।''

''काशीवास रूपी तपस्या के फलित होते ही मरण को प्राप्त जीव के समस्त कर्मों के संस्कार, मेरी ही आज्ञा से चिताग्नि में भस्म हो जाते हैं एवं मैं शिव उसे ब्रह्मज्ञान रूपी तारकमंत्र का उपदेश दे, मुक्त करता हूँ।''

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मृत्यु के इस भीषण साम्राज्य में आज काशी विश्वनाथ ने यशोदा को वह भेंट प्रदान की थी कि मानो किसी शव को पुनर्जीवित करने के लिए कोई देव उसे साँसों की भेंट कर दे। आज लुका-छिपी का खेल छोड़ इस श्मशान में काशी विश्वनाथ ने उस पर मानो अपनी अनुकंपा एवं अनुग्रह के समस्त वरदानों की वृष्टि की थी।

आत्मघात की भावना से भरा हृदय मानो गोद में पड़े ईश्वरांश के स्पंदन से पुन: नए प्राणों को भर नाच उठा था। शवों को लीलता मृत्युमय स्थल श्मशान भी जीवन के भव्य एवं दिव्यद्वार खोल सकता है, यह अनुभव आज यशोदा को प्रथम बार हो रहा था।

इन महिमामयी घड़ियों में यशोदा का अंतर्जगत् दिव्य पवित्रता से भर काशी विश्वनाथ का वंदन कर रहा था। प्रकृति की दृढ़ साँकलों से बँधी उसकी आत्मा मानो परम स्वतंत्रता को उपलब्ध हो गोद में स्थित इस ईश्वरीय सुनहली शिशु-काया को निहारती मंत्रमुग्ध हो रही थी।

नियम-विधान रहित इस अनुपम भेंट को पा क्षण भर को यशोदा भूल गई थी कि वह इस शिशु की जननी नहीं। इस क्षण सहृदयता के संग यशोदा के करुणादीप्त मुखमंडल पर संपूर्ण धरा का वात्सल्य भाव उमड़ आया था। काशी विश्वनाथ एवं श्मशान के प्रति इस क्षण कृतार्थ भाव से भरी वह बेचारी यह भी नहीं जानती थी कि जिसे जग संहारक एवं संहार स्थल मानता है, वे दोनों बेचारे तो माया से ग्रसित दु:खी जीव को मरण के पार खड़ी आनंदमयी मुक्ति देने के लिए सदैव ही व्याकुल रहते हैं। सच है, मरण से बढ़कर कोई मंगल नहीं, पर यह कौन मानता है?

काल एवं विधि के इस खेल में यह शिशु-काया किसकी थी? काल की इन घड़ियों में यह रहस्य भी रहस्यमयी काशी के सदृश ही था। क्या किसी पूर्वजन्म के योगी की काया थी या फिर किसी यति की? क्यों वह रहस्यमय काला नाग इस शिशु-काया की श्वानों एवं सियारों से रक्षा कर रहा था? इन सब रहस्यों के उत्तर में तो काल भी इस क्षण श्मशान की नीरवता के समान स्तब्ध एवं मौन था।

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

यशोदा की गोद जैसे किसी देवालय रूपी सृष्टि में परिवर्तित हो गई थी, जहाँ आद्यशक्ति साक्षात् इस ईश्वरांश को यशोदा की गोद में धरते मातृशक्ति में परिवर्तित हो गई थी। शिशु के स्पर्श मात्र ने ही जैसे यशोदा की काशी विश्वनाथ के प्रति खंडित श्रद्धा को पुन: अखंडित कर दिया था।

काल की इन घड़ियों में काशी विश्वनाथ के प्रति खंडित श्रद्धा के प्रत्येक खंड को पुन: जोड़ उसे अखंडित रूप देते, यशोदा के नेत्रों में अश्रु भर आए थे एवं काशीवास के स्वप्न से ओतप्रोत अब वह काशी विश्वनाथ से क्षमायाचना कर रही थी। देव अपनी सर्वोच्चता में उसे जो कुछ प्रदान कर सकते थे, इस घड़ी वह उसकी गोद में था।

जो अंधशक्ति उसे आत्मघात के मार्ग पर धकेल रही थी, वही अब स्वर्णिम शक्ति का रूप ले नवजीवन का गान सुना रही थी। जीवन की इस चरमानंद प्राप्ति में उसकी भंगुर मूर्ति कायाकल्प को प्राप्त कर,किसी नवनिर्मित देवी की मूर्ति के सदृश दमक रही थी।

अंतर की कालरात्रि की कालिमा को जैसे आदित्य ने हर लिया था एवं एक स्वर्गिक सुख को अपनी छाती से लगा, वह अपनी पर्णकुटी में आ पहुँची थी। हर्षातिरेक एवं आतुर हृदय के साथ उसने राघव को जगा, ईश्वर द्वारा प्रदत्त इस स्नेह-सिक्त भेंट के संदर्भ में सारी घटना कह सुनाई।

शिशु पर दृष्टि पड़ते ही राघव का हृदय भी परिपूर्ण हो गया था। उसकी भी दृष्टि में ऐसे भाव थे, जैसे जन्म-जन्मांतर की क्षुधा से पीड़ित किसी भिखारी के द्वार पर भाग्य का देव अपने स्वर्णिम रथ पर सवार, किसी अनमोल रत्न को छप्पन भोग से सजी स्वर्णिम थाल के साथ लाया हो। परंतु ईश्वर के इस चमत्कार रूपी शिशु दान को क्या बाह्य संसार समझ पाएगा? प्रश्न उठते ही राघव का मुखमंडल क्षण को मुरझा गया।

प्रकाशयुक्त मन:शक्ति की गति एवं वेग से भरी यशोदा याचक दृष्टि से राघव को तकने लगी। विचारों की वाणी में अंत:प्रेरित शब्द दोनों की दृष्टि में भावों का रूप ले प्रकट हो रहे थे एवं विषमताओं से ग्रसित, युक्ति को न पा वे पलायन में ही मुक्ति को पाते, मात्र दो पोटली लिए अपने पग नाव की ओर

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बढ़ा चले थे।

अवरोहण के मार्ग पर मन क्षण को इसलिए फिसल रहा था क्योंकि अंतर से अब भी ये स्वर उठ रहे थे कि जिस अनमोल रत्न को वे अपने आँचल में छिपा ले जा रहे हैं, वह पराया था। रात्रि के गहन अंधकार में जब कोई उसे स्वयं श्मशान में छोड़ गया तो फिर वह किसी का अपना कैसा?

यशोदा अब उसे अपना सर्वस्व मानती शांति के उस अमृत कुंड में डुबकी लगा रही थी, जहाँ आत्मा के प्रकाश में नहाता हृदय मात्र यह स्वर उठा रहा था कि करोड़ों योनियों के कर्मों का आज जैसे लय हो गया है, इसलिए काशी विश्वनाथ उन्हें काशीवास का सौभाग्य प्रदान कर रहे हैं। यह शिशु ही ईश्वर का अंश बन, उन्हें जीवन में उत्तरवाहिनी गंगा में स्नान एवं काशीवास रूपी तपस्या का अवसर प्रदान करवा रहा है।

काशी से उठता कोई दिव्य प्रकाश ही आत्मकिरण बनता उनके काशी के वास के लिए पथ को दर्शा रहा है। अब तीनों प्राण नाव पर सवार गंगा में सरकते काशी की ओर प्रयाण कर रहे थे। प्रातः की लालिमा दिव्यकृपा सी उतरती उनके विचारों की अपूर्वता में भविष्य के नवजीवन युक्त सौंदर्य को दर्शा रही थी।

हृदय के सारे संशय अब छिन्न-भिन्न हो चले थे एवं गंगा की विशालता राघव और यशोदा को उन ऊँचाइयों पर आरूढ़ कर रही थी, जहाँ से भूतकाल का कोई भी दृश्य दृष्टिगोचर नहीं हो रहा था। यदि दृष्टि के समक्ष कुछ था, तो मात्र प्रेम से परिपूर्ण स्वर्गिक भविष्य।

शिवप्रिया गंगा का जल आज मंगल गान उठाता उनकी काशी यात्रा के उत्साह को बढ़ा रहा था। अंतः की अग्नि अब शिवस्तुति का संकल्प उठा रही थी। काशी की धरा का कण-कण उनके शरीर के कण-कण को बल देता काशीवास रूपी तपस्या के लिए शक्ति बढ़ा रहा था। वायु मंगलोच्चारण उठाती उनसे काशीवास का संकल्प करवा रही थी एवं व्योम उनकी समस्त योनियों के कर्मों को धूम्र के समान स्वयं में आत्मसात् करता, उत्तरवाहिनी गंगा में स्नान के सौभाग्य-द्वार को खोल रहा था।

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

नियति का विधान कैसे किसी खँडहर को भव्य राजप्रासाद का रूप दे देता है, यह आज राघव और यशोदा के अतिरिक्त उनसे अच्छा कौन समझ सकता था? आज दोनों को प्रतीत हो रहा था कि प्रकृति कभी किसी को नहीं छलती, रात्रि के घोर अंधकार के पश्चात् आदित्य का आलोक अवश्यंभावी है। ग्रीष्म की दग्ध धरा ही वृष्टि का कारण है।

संसार-दु:ख से दु:खी जीवों के समस्त तापों का निवारण करने वाली दीनसन्तापशमनी गंगा के पास भी आज जैसे यशोदा के इस संताप निवारण की कोई युक्ति नहीं थी कि माँ होकर भी उसका पुत्र स्तनपान से वंचित है। इस मनस्ताप में अश्रु बहाती यशोदा शिशु को रुई के फाहों से दुग्धपान करवा रही थी।

मार्ग में विश्राम के पश्चात् आज पंचम दिवस की प्रात: वे काशी की ओर प्रयाण कर गए थे। रामनगर को पार करने के पश्चात् अब शिव का ओज साक्षात् दृष्टि के समक्ष आ खड़ा था। किसी शक्ति की प्रेरणा से स्वत: यशोदा के अंतर से 'ॐ'कार रूपी प्रणव मंत्र का जाप प्रारंभ हो गया था। साक्षात् शिव का ओज वेगवान् गति से हृदय में आ समाया था। सर्वत्र जैसे शांति का साम्राज्य छा गया था।

अस्सी घाट पर नाव लगाकर राघव और यशोदा के मौन भाव से उठती सुशांत लहरें अब उन्हें घाट की सीढ़ियाँ चढ़ाते पंच मंदिर में ले आई थीं। काया की नाशवान् मिट्टी अमरता का अनुभव करती परमसुखदाता शिव के लिंग के पूजन में लीन हो चली थी। विचारों में शिव की महिमा को सर्वोच्चता दे अब वे नन्हे शिशु के साथ शिव के ओज से ओजस्वी घाट पर स्थित वट वृक्ष की छाँव में बैठे, स्वयं के भावी जीवन यापन के ध्यान में केंद्रित हो चले थे। शिशु से एकात्म भाव को साधती यशोदा, दयाधारा गंगा को निहार रही थी एवं सतही सुख-दु:ख के राग के आवेश में घिरा राघव पंच मंदिर के शिखर को तक रहा था।

निष्फल काल की चाल में थका, दूर घाट की सीढ़ी पर बैठा एक वृद्ध मुसलमान स्वयं की जीवन रूपी अंत:सलिला को खोजता, क्षण को दानशीला

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

गंगा को निहारता तो दूसरे ही क्षण उसकी दृष्टि राघव एवं यशोदा पर टिक जाती थी। मानवता के उदय एवं अस्त से चिर-परिचित, वह उनकी व्यथा को उनकी दृष्टि में पढ़ गया था एवं अब वह उनके प्रति हृदय में सहस्रदल कमल की तरह प्रस्फुटित स्नेह का भाव लिए उनके समक्ष आ खड़ा हुआ था। दृष्टि में स्नेह की उष्णता भर नन्हे शिशु को निहारता वह कह उठा-

"परदेसी हो, शायद आश्रय की तलाश में हो?"

मौन में डूबा राघव अभी कुछ कह पाता उसके पूर्व ही इकतारे का वादन करते एवं भजन गाते एक नेत्रहीन भिक्षु के भजन के स्वर उनके कर्णपटल पर गूँज उठे-

"बाबा जोगी एक अकेला, जाके तीर्थ व्रत न मेला,
बाबा जोगी एक अकेला।"

मानो परम की इस घड़ी में वह नेत्रहीन भिक्षु, नन्हे शिशु को कबीर रूपी सृष्टि मंदिर के उस द्वार पर ले जाना चाहता था जहाँ परम के जागरण के स्वर अहर्निश गुंजायमान हैं।

किसी मीठे अनुभव का स्पर्श पा, 'हाँ' कहते यशोदा एवं राघव उस मुसलमान वृद्ध के साथ जाने को उठे ही थे कि एक नन्हे बालक ने उस नेत्रहीन भिक्षु का हाथ पकड़, उससे विनती की-

"कृपया आप मुझे भी गाना सिखाइये।"

स्वरों का अनुमान लगा अपने अंधे नेत्रों को उस दिशा में फेर, बालक के सिर पर हाथ फेरते उस भिक्षु ने अत्यंत ही मृदु स्वर में कहा-

"चेतना के परम जागरण में ही हृदय, संगीत को उठाता है। जागरण से उठते संगीत का ज्ञान इतना सहज नहीं। सुर, कंठ से नहीं हृदय से उठते हैं और उन्हें उठाने के लिए हृदय में बहती सुर-गंगा में स्नान रूपी व्रत, दान, यम और नियम को साधना पड़ता है। साथ ही सुरपुरी में वास कर काशीवास रूपी तपस्या में लीन भी होना पड़ता है। यह साधना तो कोई गुरु ही दे सकते हैं। उनके मिलने से पूर्व मैं सुरों का जो ज्ञान तुझे दे सकता हूँ, दे दूँगा-

'पर याद रख मैं तेरा गुरु नहीं।' "

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अध्याय-४

काशी में विश्वनाथ मंदिर के गर्भगृह में स्थित अपने ज्योतिर्लिंग से सहस्रों-सहस्र दिव्य ज्योतियाँ उठाते अमृत शाश्वत, विश्वगोप्ता, अक्षयगुण काशी विश्वनाथ अपने शाश्वत सनातन स्वरों की गूँज से अखिल ब्रह्मांड को गुंजायमान कर रहे हैं-

''जन्म-जन्मांतरों के पुण्यकर्म ही जीव को इस काशी के द्वार लाते हैं। इस काशीपुरी से उठते आलोक से तो स्वयं मैं विश्वाधार परमात्मा प्रकाशित होता हूँ। मेरे ही दिव्य ओज से प्रदीप्तमान यह काशी अपने आलोक से मुझ स्वयं को प्रकाशित करती है, इस रहस्य से परदा तो सत्यरूपेण काशीवास रूपी तपस्या से ही उठता है।''

''तेरे जन्म-जन्मांतर के पुण्य कर्म ही तुझे आज काशी के द्वार लाए हैं और मेरे ही अनुग्रह से तू सत्यरूपेण काशीवास की तपस्या में लीन हो, अद्वैत के रहस्य का परदा उठाने के लिए अग्रसर होगा।''

''परम मोक्ष को प्रकाशित करती काशी वह सागर है जहाँ कर्म, ज्ञान, भक्ति एवं योग रूपी गंगा, यमुना, सरस्वती और रेवा आ समाती हैं।''

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सारा संसार मानो यशोदा और राघव के लिए क्षण भर में परिवर्तित हो गया था। मंत्रमुग्ध हो अब वे नवजात शिशु को ले अस्सी घाट की सीढ़ियाँ चढ़ते, काशी की आड़ी-तिरछी गलियों में अपने पग उस वृद्ध मुसलमान के साथ आगे बढ़ा रहे थे।

मनुष्य में कोई गूढ़ देवता निवास करता है यह यशोदा जानती थी, आज वह साक्षात् उसका दर्शन इस वृद्ध मुसलमान में कर रही थी। काशी की गलियों में विचरते यशोदा को प्रतीत हो रहा था कि किसी गूढ़ रहस्य से उसका पूर्णरूपेण संवाद और सद्भाव स्थापित हो रहा है। उस वृद्ध की आँखें एक अभूतपूर्व उल्लास से चमक रही थीं।

राघव ने गलियों में चलते सभी व्यक्तियों की आँखों में इस वृद्ध व्यक्ति के प्रति गहरे आदर और असीम श्रद्धा के भाव पढ़ लिए थे, सो उसके मन में उठती अनेक प्रकार की आशंकाएँ शांत हो गई थीं और अभय होता, वह अब अपने पग उस वृद्ध मुसलमान के मकान की ओर बढ़ा रहा था।

मार्ग में ही यशोदा और राघव दोनों जान चले थे कि इस तेजोमय मानवीय मूर्ति का नाम 'इस्माइल चाचा' है। उनका निवास स्थान अस्सी घाट पर ही स्थित था। आगे की ओर दो कक्ष, मध्य में आँगन एवं सामने की ओर रसोई घर। आँगन से होती हुई एक घुमावदार सीढ़ी, छत को जाती थी जहाँ से गंगा नदी और गंगा पार का पूरा दृश्य स्पष्ट देखा जा सकता था।

दिव्य अमर-प्रेम की मधुमय बाढ़ उस वृद्ध की दृष्टि से शाश्वत प्रवाहित हो रही थी। अनुभव मानो उनकी जीवन-शक्ति को पूर्ण बल प्रदान कर रहा था। शब्दों में सच्ची आत्माभिव्यक्ति के स्वर गुंजायमान हो रहे थे। छोटे से मकान में मानो उन्होंने कोई विशाल लोक स्थापित किया था। दृष्टि में न तो कोई संघर्ष, न परस्पर होड़ और न ही कोई राग द्वेष, केवल प्रेम। जीवन के इस नाट्याभिनय में उन्होंने जो कुछ पाया था उसका संतोष दृष्टि तथा स्वरों में साफ़ झलकता था। यशोदा की गोद में नन्हे शिशु पर वात्सल्य भरी दृष्टि डालते, वे बोल उठे-

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

''इस मकान से जुड़े पीछे के कक्ष में तुम लोग ठहर जाओ। मुसलमान हूँ सो कभी-कभार गोश्त ले आता हूँ, सो वहाँ यह तुम्हारे आड़े नहीं आएगा।''

सरल समय था सो धर्म कर्म से ऊपर होता था। यशोदा और राघव की आत्माओं की सुर-ताल युक्त दिव्यता, इस क्षण मानो इस वृद्ध में परमात्मा का दर्शन पाती मौन हो चली थी। वैतरणी पार करने का श्रम और संतोष दोनों की आँखों में साफ़ झलक रहा था। अज्ञात की किसी शक्ति से बल प्राप्त कर, जीवन के इस रणक्षेत्र में राघव अब जीवन यापन के लक्ष्य को भेदने का संधान करने तैयार हो चला था। उसके इस पुरुषार्थ के भाव को पढ़ते ही चाचा कह उठे-

''जिस अल्लाह ने रहने को छत दे दी, वह दो वक्त की रोटी भी दे देगा। मेरी बड़ी नाव को चला, रामनगर से लकड़ियाँ लाकर उन्हें मणिकर्णिका महाश्मशान पहुँचा देना, जो मिलेगा आपस में बाँट लेंगे।''

सहृदयता और उदाराशयता चाचा के प्रत्येक शब्द में प्रकट हो रही थी। मानो भाग्यलक्ष्मी स्वयं स्वर्णथाल सजाए द्वार पर दस्तक दे रही है, सोचते ही शिशु का ललाट चूमते यशोदा की आँखों से अश्रुधार बह चली। आँखों में अश्रु भरे कृतज्ञता के भाव से राघव भी चाचा के चरणों में नतमस्तक हो गया था।

जिस अनवरत धारा का कोई उद्गम नहीं और न ही कोई अंत, उस संगीत सरिता में शहनाई को साधन बना, चाचा डुबकियाँ लगाते थे। संगीत ईश्वरीय है और चाचा इसी विशेष अनुभूति के माध्यम से स्वयं को अल्लाह की राह पर चलाते, पाँच वक्त की नमाज़ और पाँच वक्त के रियाज़ में कभी नहीं चूकते थे। राग-रागिनियों के विविध स्वरों का संयोजन कर चाचा जिस तरह का रस परोसते थे, वह सभी काशीवासियों को परम तृप्ति का अलौकिक अनुभव देता था।

दादा को अँग्रेज़ सरकार से मिली नवाबी को अकर्मण्य अब्बा ने ठिकाने लगा दिया था, परंतु तंगहाली को चाचा ने कभी शहनाई वादन की साधना के

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

आड़े नहीं आने दिया था। संगीत के स्वरों में तल्लीन हो काशी विश्वनाथ का सान्निध्य एवं संगत ही चाचा का पारिश्रमिक था।

लय, आलापों से सजे सात स्वरों को वे काशी विश्वनाथ का ही प्रसाद मानते थे। उनकी शहनाई से उठते स्वर वर्षा की बूँदों के समान बरसते किसी भी दग्ध शरीर को असीम शीतलता प्रदान करते थे। इसलिए प्रत्येक काशीवासी चाचा के प्रति अगाध श्रद्धा का भाव अपने हृदय में रखता था। सुरों का यह सम्राट, रहन-सहन एवं व्यवहार में किसी फ़क़ीर से कम दिखाई नहीं पड़ता था। ख़ाकी-हरे रंग का पैबंद लगा हुआ ऊनी वस्त्र, सर पर ऊनी टोपा, नीचे पुरानी सी सफेद लुंगी एवं पाँव में चमड़े की फटी चप्पलें।

साधना का तीव्र आलोक, साधक को अष्ट-सिद्धि और नव-निधि का दाता बना देता है, परंतु जब जीवन-मंत्र स्वर उठाता महामंत्र बन ब्रह्मांड में गूँजने लगे, तो इस परिपूर्णता को उपलब्ध फ़क़ीर को सांसारिक माया क्या बाँध पाएगी? इसी फ़क़ीरी की ओर पग बढ़ाते संगीत की साधना में लीन चाचा, मात्र एक भाव को जीते थे-

"एकहि साधे सब सधै, सब साधे सब जाय।"

दूसरे दिन मुँह अँधेरे राघव और यशोदा, नन्हे शिशु को ले मणिकर्णिका घाट आए थे। धारणा शक्ति से संपन्न विष्णु एवं शिवप्रिया गंगा में डुबकी लगाते ही यशोदा को प्रतीत हो रहा था कि समग्र विश्व को धारण करने वाली माँ गंगा आज उसे एवं उसके परिवार को आश्रय देती, धारण कर रही है।

अब वे काशी विश्वनाथ के मंदिर में आ पहुँचे थे। मंगला आरती हो चुकी थी एवं दर्शन के लिए पट खोल दिए गए थे। अत्यधिक कोहरे और शीत के कारण लोग न के बराबर थे, सो सभी पुरुषार्थ को ढूँढ़ने वाले ढूँढीराज गणेश के पूजन के पश्चात् अब वे बाबा विश्वनाथ के ज्योतिर्लिंग के दर्शन के लिए मंदिर के गर्भगृह में प्रविष्ट हो गए थे। यशोदा के हृदयमंदिर में गहन भाव जन्म लेता, उसे भाव-विभोर कर रहा था।

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

चौकोर योनि में स्थित विश्वनाथ के लिंग पर दृष्टि पड़ते ही यशोदा को प्रतीत हुआ जैसे उसके प्राण, विश्व प्राण में जा समाए हों। पुजारी ने कब उसकी गोद से शिशु को अपने हाथ में ले लिया, यह उसे ज्ञात न हुआ। शिशु को अपने करों में ले पुजारी ने उसके ललाट पर भस्म त्रिपुंड खींच दिया और यशोदा की दृष्टि पड़ी कि अब पुजारी, शिशु को ज्योतिर्लिंग से छुआ रहा है। मानो ज्योतिर्लिंग से एक दिव्य रश्मि ने उठकर शिशु को आच्छादित कर दिया एवं यशोदा सिर से पाँव तक यह सोच काँप उठी कि बाबा विश्वनाथ इस शिशु को उससे वापस माँग रहे हैं। घबराकर उसने शिशु को अपने हाथों में वापस ले लिया था।

अब वे घाट-घाट चलते पंचगंगा की ओर पग बढ़ा रहे थे। मार्ग में मणिकर्णिका महाश्मशान पर दृष्टि पड़ते ही यशोदा को यह प्रतीत हुआ जैसे कोई गूढ़ रहस्य अपने आप को उघाड़ता, चिताग्नि के माध्यम से उसे कोई संदेश देना चाहता हो। एक रहस्यमय हाथ जैसे उसकी गोद से शिशु को खींच रहा है और अवाक्, स्तब्ध वह कुछ नहीं कर पा रही है। अपने भ्रम को अमान्य कर अब वह बिंदुमाधव के मंदिर पर आ अपने पुत्र के मंगल की कामना में प्रार्थना करती, लीन हो गई थी।

सामने की गली में पग बढ़ाते उसे प्रतीत हुआ कि एक लंबा नाग सर्र-सर्र करता उनके पीछे चल रहा है, परंतु पीछे दृष्टि डालने पर अँधेरे में वहाँ उसे कुछ भी दिखाई नहीं दिया। मस्जिद के पास वाली बायीं गली में नवजात शिशु ऐसे मचल रहा था, जैसे किसी सुगंध से पागल होता कस्तूरी मृग मचलता है। यशोदा को प्रतीत हो रहा था कि सर्वत्र चंदन की सुगंध व्याप्त है परंतु अब वह इन सब घटनाओं को अपना भ्रम मानती, राघव के साथ आड़ी-तिरछी गलियों से होती कालभैरव के मंदिर के समक्ष आ पहुँची थी।

कालभैरव की मूर्ति शिव केअघोर स्वरूप को व्यक्त करती है। विश्व के रक्षक और भयंकर स्वरूप के कारण ही शिव को भैरव कहा जाता है।

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कालभैरव की मूर्ति के सामने यशोदा और राघव, दोनों साथ बोल पड़े-

"हमारी उपस्थिति दर्ज करो।"

शिशु के शांत चेहरे से मानो एक प्रकाश फूट रहा था। ऐसा लग रहा था जैसे चिताभस्मप्रेमी, त्रिपुंडधारी काशी विश्वनाथ स्वयं इस नवजात शिशु का रूप ले अवतरित हुए हैं।

मंदिर में स्थित परिक्रमा पथ से सटे हुए चबूतरे पर एक ब्राह्मण तीन किशोर ब्राह्मणों को रुद्रसूक्त का उच्चारण सिखा रहा था कि उसी समय एक और किशोर आ उस ब्राह्मण के समक्ष हाथ जोड़, विनती करने लगा-

"काशीवास की इच्छा से आया हूँ। कृपया मुझे अपना शिष्य स्वीकार करें।"

तब वह वृद्ध ब्राह्मण मुस्कराकर बोला-

"जन्म-जन्मांतरों के पुण्यकर्मों के कारण तू इस काशी में आया है, परंतु यह काशीवास इतना सरल नहीं जितना तू समझता है। शिव से काशी या काशी से शिव प्रकाशित होते हैं, यह तो कोई बिरला ही जान पाता है। सत्यरूपेण काशीवास की तपस्या तो कुछ और ही है, इस तपस्या के मार्ग पर तो कोई सद्गुरु ही तुझे प्रशस्त कर सकता है। मैं तुझे वेदों एवं पुराणों का पाठ सिखा सकता हूँ, परंतु उनके रहस्य का ज्ञाता तो मैं भी नहीं। यह सीखना चाहता है तो सीख ले-

'पर याद रख मैं तेरा गुरु नहीं।' "

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अध्याय-५

आज महाश्मशान मणिकर्णिका पर अनादिमध्यनिधन, अन्तर्हितात्मा, सर्वपापहरोहर काशी विश्वनाथ का नाद संपूर्ण ब्रह्मांड में निनादित हो रहा है-

''इस अखिल ब्रह्मांड के सृजन की अभिलाषा में मैंने ही स्वयं के सहस्र कोटि सूर्यों के सदृश ओज से पंचक्रोशी का निर्माण कर उसे तप के लिए श्री विष्णु को प्रदत्त किया एवं जब उनकी तपस्या के परिश्रम से निकली सहस्र जलधाराओं में यह पंचक्रोशी विलीन होने लगी, तो मैंने ही इसे स्वयं के त्रिशूल पर धारण कर लिया। ब्रह्मांड सृजन के पश्चात् कर्मपाश में बँधे जीवों को मुक्ति देने मैंने ही इस पंचक्रोशी को जगत् में स्थापित किया है।''

''प्रलयकाल में भी कल्याणदायिनी, ज्ञानदात्री और मोक्ष को प्रकाशित करने वाली यह काशी कभी नष्ट नहीं होती, जहाँ स्वयं मैं परमात्मा द्वारा स्थापित 'अविमुक्तेश्वर' ज्योतिर्लिंग में प्राणप्रतिष्ठित हूँ। यह काशी मुझे अत्यंत प्रिय है, जिससे मैं विलग नहीं रहता और सदा ही यहाँ रमण करता हूँ।''

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

जब शिशु के ललाट का प्रभामंडल किसी देवमूर्ति के जागरण की ओर इंगित करता था, तो फिर यह शिशु-काया उस धरा से कैसे वंचित रह सकती थी, जिस धरा का कण-कण देवालय का रूप धरता शिव के दर्शन देता हो। कैसी विचित्र धरा है यह! जहाँ काशी विश्वनाथ स्वसृजित काशी में स्वयं बँधे औरों को मुक्ति देते हैं।

अभिवृद्धि को प्राप्त काया मानो किसी भी चरण-चाप की भनक में शिव के आगमन का आभास पाती हो। अब यह तीन माह का शिशु स्वयं की दृष्टि में किसी रहस्य को झलकाता यह संदेश देता था कि काशी ही वह धरा है, जहाँ मृत्यु का भेदन कर अमृत स्वत: प्राप्त होता है।

इसी अमृत को दर्शाने पार्श्वनाथ एवं सुपार्श्वनाथ जैसे तीर्थंकर इस धरा पर अवतरित हुए थे, तो बुद्ध ने भी इन्हीं रजकणों में अमृत के द्वार खोलने वाले प्रथम ज्ञान का उपदेश दिया था। शिव के सान्निध्य में जहाँ छहों ऋतुएँ उनका स्पर्श पा नृत्य में लीन रहती हों, ऐसी धरा पर उस अज्ञात स्पर्श का अनुभव कर भाव-विभोर तुलसी, 'रामचरितमानस' रूपी गंगा की धार कैसे न बहाते? जिसके अतुल वैभव में स्वर्णिम मुक्ति सर्वत्र प्रभा फैलाती है, ऐसी काशी में भला कबीर एवं रैदास निर्गुण के भजनों से कैसे वंचित रहते? शिव की चरण धूलि में लिपटी यह काशी रूपी वीणा, शिव का ही स्पर्श पा वह स्वर्गिक राग उठाती है जिसमें स्वत: ही आस्था, पवित्रता, ज्ञान एवं धर्म समाहित हो उठते हैं।

शिशु की धवल कांति सभी के नेत्रों से हृदय में प्रविष्ट होकर उनके संपूर्ण कलुष को धवलित कर देती थी, यह इस्माइल को उसे प्रथम बार गोद में लेने पर ही ज्ञात हो गया था।

चेतन तत्त्व को समेटे प्राण अब शिशु-काया को बढ़ाने लगे थे एवं दैवत्व के शिल्पी ने जिस कृति को गढ़ा था, यशोदा ने उसका नामकरण करवाया था- 'महामृणंगम'। यशोदा और राघव के लिए तो इस 'महा' ने मानो उनके सुप्त हृदय के अंधकार में लुप्त उस देवालय के द्वार को खोल दिया था,

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

जिससे निर्गमित आलोक ने न मात्र मन अपितु प्राणों को भी आलोकित कर दिया था। गौर वर्ण, वल्कल केश राशि लिए यह शिशु विस्फारित नेत्रों से दीये की लौ को एकटक ऐसे देखता, जैसे अग्नि से उसके पूर्वजन्म या इस जन्म का कोई गहरा संबंध हो।

महा को गोद में लेते ही जैसे यशोदा का हृदय आनंद-गान में लीन हो जाता एवं तन-मन अमृत कणों की वर्षा में भीग जाते थे। राघव तो मानो उसे अपना वीर्यांश ही समझता था। महा की गंभीरता पर दृष्टि पड़ते ही जैसे उसके साथ यशोदा के संवादी स्वर टूट जाते थे एवं मानस समुद्र में विक्षोभ उठाती वह यह सोचने पर विवश हो जाती कि स्वार्थपूर्ति के सुख में उसने किसी और के शिशु को अपनाकर स्वयं की सत्य भक्ति से अन्याय तो नहीं किया? स्वयं का संपूर्ण हृदय महा को अर्पित करने के पश्चात् भी, यह दूसरे शिशुओं के सदृश आचरण क्यों नहीं करता?

इन शंका-कुशंकाओं से घिरी यशोदा व्यथित अवश्य हो जाती थी, परंतु महा का शिव सा सुंदर मुखमंडल ही अब उसके लिए स्वयं का सर्वोच्च सत्य हो चला था। अंतत: वह इस परिणाम पर पहुँचती कि जननी ने स्वयं उसे त्यागा था एवं नीरव श्मशान में चिताग्नि के पास पड़े इस अनावृत सुंदर प्राण रूपी सत्य की भेंट उसे स्वयं श्मशानाधिपति काशी विश्वनाथ ने दी थी, अत: उसने उसे काशी विश्वनाथ का प्रसाद मानकर ही ग्रहण किया था।

ईश्वर के वरदान स्वरूप महा को पाकर भले ही मरणासन्न राघव को नए प्राण मिले थे, परंतु स्वयं के एकाकी जीवन की सखी, मदिरा का त्याग वह नहीं कर पा रहा था। बंदीगृह में दृढ़ साँकल से बँधे पग लिए बंदी के समक्ष स्वयं ईश्वर मुक्ति का संदेश ले प्रकट हुआ था, परंतु दुर्भाग्य कि बंदी को पग में बँधी दृढ़ साँकल से ही प्रेम हो गया था एवं अब वह उसे नहीं छोड़ना चाहता था। देर रात्रि स्वयं की कोठरी लौटना एवं यदा-कदा संपूर्ण रात्रि ही न लौटना, अब राघव के लिए आम हो चला था।

यशोदा के महा के प्रति स्नेहोद्वेलित हृदय पर राघव का मदिरा सेवन

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

किसी शल्यपात से कम न था और यह भी सत्य था कि कालचक्र के इस फेरे में, राघव के प्राण सदैव ही यशोदा एवं महा में अटके रहते थे। अपनी इस पाशविक वृत्ति में भी वह हृदय में यशोदा एवं महा के लिए अगाध मानवीय प्रेम से भरा रहता था।

काल भी कैसा दृश्य मंदिर है? जिसमें पग धरते ही घड़ियाँ कब दृष्टि के समक्ष आती लुप्त हो जाती हैं, ज्ञात नहीं होता एवं इन घड़ियों के बीतते अब महा दस मास का हो चला था। शिशु की प्रारंभिक क्रीड़ा में जहाँ मधुर लोरियाँ उसे स्पंदित करती हैं, वहाँ महा को घंटानाद या जलते दीये की लौ आलोड़ित करती थी।

एक सांकेतिक इंद्रजाल अब शनैः-शनैः यशोदा को यह भान कराने लगा था कि निश्चित ही यह शिशु किसी पूर्वजन्म का महान संत है। क्योंकि जब कभी यशोदा महा को शांत खड़ा देखती तो उसे प्रतीत होता, जैसे कोई साधक शुद्ध चित्तवृत्ति लिए निःस्वार्थ होकर अंतर के आध्यात्मिक हृदय में स्थित हो खड़ा है। काल के उपादान से तैयार हुए इस आवरणपट को अब पंचतत्त्व पूर्णरूपेण आभा प्रदान कर रहे थे।

स्वयं के अन्वेषण में इस्माइल यह जान चला था कि महा का उसके जीवन में प्राकट्य अब उसके हृदय पर संपूर्ण आधिपत्य करता, उसकी काया रूपी मिट्टी पर भी सर्वोच्च अधिकार स्थापित कर चला है। अब तक विचलित उसकी आत्मा, महा को देखते ही स्थिर होने लगी थी। महा का उसकी कोठरी में रहना इस्माइल के लिए ऐसा हो चला था, जैसे देवालयों की इस नगरी काशी में सुर देवता उसके वहाँ प्राणप्रतिष्ठित हो चले हों।

कबीर के प्रति अगाध श्रद्धा रखने वाला इस्माइल यह जानता था कि भेद का कारण बाहरी वेश का परदा मात्र है, भीतर से सब जीव एक ही हैं। महा के मुखमंडल पर कबीर की झलक पाता, मात्र इस्माइल ही जानता था कि काल की इस ताल ने उसका परिचय उन सुरों से करवाया है जिनसे आज तक वह अनभिज्ञ था।

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अब महा, इस्माइल के लिए सुरों का वह पुरोहित एवं आवाहक हो चला था, जिसके समक्ष रहते ही अब इस्माइल के तप्त-सुप्त मन के लिए संगीत के स्वर अमृतवर्षा के सदृश हो चले थे। महा को साथ रख जब वह छत पर बैठ दृष्टि के समक्ष बहती गंगा को निहारता शहनाई से राग मारू या राग आसावरी में कबीर के भजन को छेड़ता, तो उसे प्रतीत होता मानो वह किसी परम ऐश्वर्यमयी नगरी में विचर रहा है, जहाँ सर्वत्र आलोक ही आलोक है। स्वयं की अंतर्दृष्टि से इस्माइल यह जान चला था कि यह नन्हा तो उस रंग से रँगा है, जिससे सारे रंग जन्म लेते हैं।

आज सांध्यकाल में यशोदा, महा को साथ लेकर दशाश्वमेध घाट पर गंगा आरती के लिए आई थी। सर्वोच्च वैश्विक गरिमा को धारण करते चंद्रमा की किरणों द्वारा पूजित इस तारापतिकरार्चिता गंगा के प्रति हृदय में अगाध श्रद्धा लिए यशोदा जानती थी कि इस तपोमयी गंगा के दर्शन मात्र से ही कपट, अज्ञान इत्यादि का नाश हो जाता है। जैसे सूर्य उदयकाल में तीव्र अंधकार का नाश करके आभा फैला देता है, वैसे ही इस गंगा आरती के दर्शन मात्र से जीवन के समस्त अंधकार का नाश हो जाता है एवं जीवन प्रकाशमय हो उठता है।

आकाश से उतरी परमगंगा, शिव जटाओं के माध्यम से धरा पर बहती इस घड़ी दशाश्वमेध घाट पर खड़े सभी के नेत्रों में चाँदनी की भाँति आह्लाद उत्पन्न कर रही थी। घाट की सीढ़ियों पर पाँच ब्राह्मण करों में चाँदी के बड़े दीये लिए गंगाजी की आरती उतार रहे थे। आठों दिशाएँ नगाड़ों, घंटों एवं शंखों से उठते नादों से निनादित हो रही थी। उच्च स्वरों में गंगा की आरती के गान में समस्त तारामंडित आकाश, पृथ्वी, प्रकृति, पदार्थ, अपदार्थ सभी त्रिपथगा गंगा के रंग में रँगे दिखाई पड़ रहे थे। आरती के गान में मग्न ब्राह्मण ऐसे प्रतीत हो रहे थे, मानो शिवत्व प्राप्त नर अपने हाथों में दीपकों को उठाए स्वर्गलोक से उतरी ऋचाओं को गाते स्वयं गंगा के प्रवाह में प्रवहमान हैं। सैकड़ों दीये वट वृक्ष के पत्रों के दोनों पर सवार डोलते-डोलते गंगा की लहरों में आगे बढ़ रहे थे।

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अष्टकोणीय चबूतरे पर महा को पार्श्व में साथ ले खड़ी यशोदा इस घड़ी परम से उतरती इन ऋचाओं के गान के सत्य की दिव्यता में आत्मविभोर हो, जैसे आत्म साक्षात्कार के द्वार पर आ खड़ी थी। इस घड़ी उसके लिए पुरुष-प्रकृति का द्वैत एकरूप हो चला था। भगवत् प्रेम के लिए लोलुप सी प्रतीत होने वाली लटभा गंगा का कण मात्र उसके हृदय में उतरता उसे एक भावात्मक राग से रँग गया था।

इसी भाव में उसने महा पर दृष्टि डाली तो एकाएक काया की चारदीवारी में परम का विस्तार लुप्त होता उसे भयभीत कर गया एवं वह काँप उठी। वह देख रही थी कि घड़ी को महा अपने पग अंगुष्ठ के दाग़ को देखता तो दूसरी घड़ी उसकी दृष्टि दूर महाश्मशान मणिकर्णिका पर स्थित हो जाती थी।

इस घड़ी यशोदा की दृष्टि के समक्ष फाफामऊ क़स्बे के श्मशान की वह रात्रि आ खड़ी थी। स्वयं के मन में डर का मकड़ा, जाल बुनता उसके प्राण हरने लगा एवं वह महा को गोद में उठाए घाट-घाट होते हुए अस्सी घाट स्थित अपनी कोठरी की ओर पग बढ़ा चली थी। नष्ट होती शक्ति ने जैसे उस घड़ी दम तोड़ दिया था, जब हरिश्चंद्र घाट पर जलती चिताओं को देख महा खिलखिला उठा था। काँपते मन से अब वह अपनी कोठरी आ पहुँची थी। राघव आज रात्रि रामनगर से नहीं लौटने वाला था एवं इस्माइल चाचा भी आज किसी जलसे में शहनाई वादन के लिए गए थे। सर्वत्र अंधकार के राज्य में जैसे मृत्यु अपने काले पंख फैलाए विचर रही थी एवं यशोदा अब अत्यधिक भयग्रस्त हो चली थी।

फटते हुए हृदय से उसने आले पर रखे दीपक को प्रज्वलित किया एवं दलिये का घोल बना उसे महा को पिलाकर, स्वयं भी कौर-दो-कौर भोजन ग्रहण कर महा को साथ ले लेट गई थी। मन ही मन अब भी वह काँप रही थी। धड़कते हृदय एवं गहरी साँसों के बीच वह कब निद्रामग्न हो गई थी उसे ज्ञात न हुआ।

अर्द्धरात्रि में जब यशोदा की आँख खुली तो प्रतीत हुआ कि जीवन-

. CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मृत्यु के अंतराल में जो भयावह दृश्य, दृष्टि के समक्ष आ सकता था, इस क्षण वह आ खड़ा हुआ था। भीषण भय के दाँतेदार किनारों से क्षत-विक्षत होता हृदय उसे मूर्च्छा के द्वार ले आया था। महा के जीवन का अंत मानो राह तक रहा था एवं वह मूर्च्छित हो गई थी।

मूर्च्छा से पूर्व की घड़ी में वह मात्र यह देख पाई थी कि कोठरी के जिस कोने में आले पर दीपक रखा हुआ था, उसी कोने में नन्हा महा निद्रामग्न था। कोठरी में सर्वत्र चंदन की सुगंध व्याप्त थी एवं एक काला नाग इस नन्हे शिशु के सिर पर फन फैलाए डोल रहा था। यह देख वह मूर्च्छित हो गई थी एवं जब मूर्च्छा टूटी तो उसने पाया कि अब पूर्णरूपेण नग्न महा उसके पास ही लेटा है और उसके ललाट, कंठ, छाती एवं भुजाओं पर चिताभस्म के त्रिपुंड खिँचे हुए थे। एक अतिघोर भयानक सन्नाटा सर्वत्र छाया हुआ था एवं कोई रहस्यता अपने चरम पर थी। स्वयं के टूटे हुए अंतर्सूत्रों को पुन: जोड़ती यशोदा अब भी काँपती सोच रही थी-

''प्रलयकाल में भी कल्याणदायिनी, ज्ञानदात्री एवं मोक्ष को प्रकाशित करने वाली यह काशी कभी नष्ट नहीं होती, जहाँ परमात्मा द्वारा स्थापित 'अविमुक्तेश्वर' ज्योतिर्लिंग में काशी विश्वनाथ जब स्वयं प्राणप्रतिष्ठित हों, तब अवश्य ही वह काला नाग भी उन्हीं का कोई संदेश मुझ तक लाया था। तभी तो प्रथम दिवस ही आज के सदृश विश्वनाथ मंदिर के भीतर पुजारी ने इसे गोद में ले ज्योतिर्लिंग से स्पर्श करवाकर, इसके ललाट पर ऐसे ही भस्म का त्रिपुंड बनाया था। अवश्य ही यह जीव, शिव है।''

परंतु माँ का हृदय अभी इस ज्ञान से वंचित था कि जिस जीव को वह शिव मान रही है उसका शिव से एकाकार तो दूर था, अपितु इस दस मास में वह कम से कम दस बार यह सुन चुका था-

'पर याद रख मैं तेरा गुरु नहीं।'

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

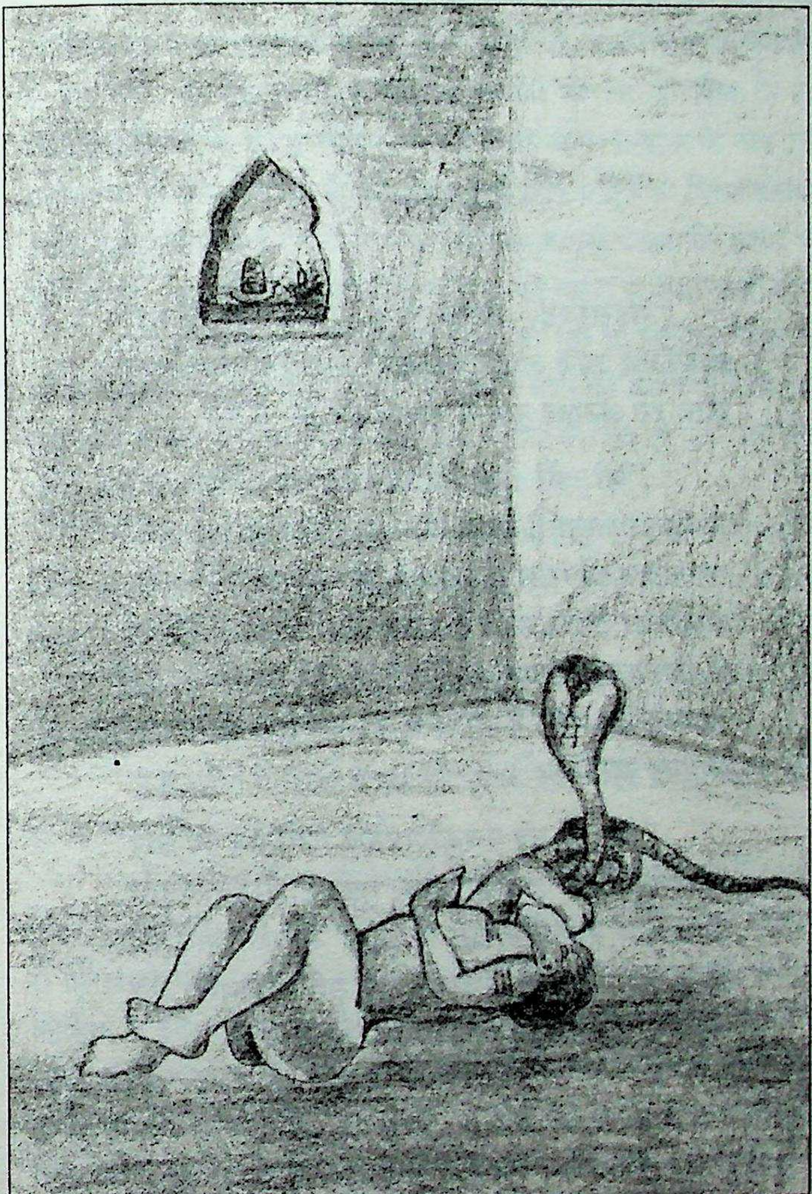

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अध्याय-६

सहस्रजित्, विश्वात्मन, विश्वेश्वर काशी विश्वनाथ आज अपनी पंचक्रोशी काशी की प्रदक्षिणा करते हुए अनाहत नाद से गुंजायमान हो रहे हैं-

''जो मेरे इस पंचक्रोशात्मक लिंग की प्रदक्षिणा करता है उसके जन्म-जन्मांतर के पाप उसी समय दग्ध हो भस्म हो जाते हैं। जिसके हृदय में सदैव काशी का चिंतन होता है उसके ऊपर संसार रूपी सर्प के विष का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। दो अक्षरों का मंत्र 'काशी' वह मणि है जो जीव को गर्भवास की यंत्रणा से मुक्त करती है।''

''मेरा ही यह पंचक्रोशात्मक लिंग वह गूढ़ ज्ञान है जिसका भान होते ही जीव, मुझ काशी विश्वनाथ के पद पर प्राणप्रतिष्ठित हो अमर अनाहत नाद को उठाते मुझ शिव से एकाकार हो सृष्टि, स्थिति और संहार के कार्य में मग्न हो डोलने लगता है।''

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

यशोदा के प्राण रसों से उठती एक भाव लहर सदा ही उसे काशी की प्रदक्षिणा हेतु पंचक्रोशी यात्रा के लिए प्रेरित करती थी, मानो वह जन्म-जन्मांतर से इस यात्रा के लिए व्याकुल हो। वह जानती थी कि जो शिव के इस पंचक्रोशात्मक लिंग की प्रदक्षिणा करता है उसके जन्म-जन्मांतर के पाप उसी समय दग्ध हो भस्म हो जाते हैं। जिसके हृदय में सदैव काशी का चिंतन होता है उसके ऊपर संसार रूपी सर्प के विष का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। दो अक्षरों का मंत्र 'काशी' वह मणि है जो जीव को गर्भवास की यंत्रणा से मुक्त करती है।

हृदय में अकथनीय उत्साह की बाढ़ आ रही थी इसलिए राघव को आग्रह कर इस फाल्गुन मास में उसने पंचक्रोशी यात्रा का निर्णय ले लिया था। महा अब दो वर्ष से ऊपर का हो चला था। यशोदा के लिए तो मानो यह यात्रा अपने आत्मस्वरूप की पूर्णता का जयघोष करने वाली थी।

वह जानती थी कि परब्रह्म शिव और साक्षात् परमेश्वर श्री विष्णु के मध्य अभिन्नता वर्णनातीत है। जैसे श्री शिव हैं, वैसे ही श्री विष्णु और जैसे श्री विष्णु हैं,वैसे ही श्री शिव।

शिव की तपस्या से जब अंतर्यामी, कमललोचन श्री विष्णु प्रसन्न हुए, तब वरदान में श्री शिव ने माँगा-

"हे जनार्दन! मेरे हृदय में सदा ही आपके प्रति भक्ति बनी रहे और आप ही के प्रसाद से मैं मुक्तिदाता होऊँ।"

यशोदा को ज्ञात था कि श्रीहरि से यही वरदान पाकर बाबा विश्वनाथ काशी मरणान्मुक्ति को सार्थक करते हैं। आक की डोड़ियों और धतूरे के पुष्पों से प्रसन्न हो मोक्ष साम्राज्य-लक्ष्मी तो केवल बाबा विश्वनाथ ही दे जाते हैं। कौड़ियों के बदले मुक्ति का सौदा भला इस आशुतोष औढरदानी के अतिरिक्त और कौन कर सकता है? साथ ही यशोदा यह भी जानती थी कि जहाँ शिव, विष्णु की तपस्या करते हैं, वहीं श्रीहरि भी शिव की भक्ति में लीन हो उनमें रमना कभी नहीं भूलते। फाल्गुन मास में श्रीहरि स्वयं काशी की प्रदक्षिणा के लिए पंचक्रोशी यात्रा करते हैं।

यशोदा और राघव के लिए तो महा, काशी विश्वनाथ का प्रसाद और

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

श्रीहरि के हरिवंश पुराण के पारायण और यज्ञ का ही फल था। सो दोनों महा को साथ ले इस यात्रा की उत्सुकता में रोमांचित हो रहे थे।

यात्रा से पूर्व राघव और यशोदा ने व्रत रख प्रतिज्ञा ली-

"मानसिक, वाचिक, कायिक, ज्ञात और अज्ञात पापों की शुद्धि के लिए पंचक्रोशात्मक ज्योतिर्लिंग स्वरूप विश्वनाथ, अन्नपूर्णा, लक्ष्मीनारायण, ढुँढिराजादि छप्पन विनायक, द्वादश आदित्य, नृसिंह, केशव, राम, कृष्ण, कूर्म, मत्स्यादि अवतारों से युक्त विष्णु, अनेक शिव और गौरी इत्यादि समस्त देवताओं से परिपूर्ण इस क्षेत्र की प्रदक्षिणा हम करते हैं।"

प्रातःकाल दश्वाश्वमेध घाट पर गंगा-स्नान के पश्चात् ज्ञानवापी के मुक्तिमंडप पर आ यात्रा का संकल्प लेते समय, माँ के ममत्व और बाबा विश्वनाथ के प्रति अगाध श्रद्धा के भावों के सम्मिश्रण से यशोदा का मुखमंडल किसी योगिनी सा दमक रहा था। जब विश्वनाथ मंदिर के गर्भगृह में पुजारी ने महा को समीप बुला उसके ललाट पर भस्म का त्रिपुंड खींचा, तब महा मानो एकात्म भाव लिए बाबा विश्वनाथ के ज्योतिर्लिंग को तक रहा था।

मणिकर्णिका घाट पर स्नान करते समय जब यह त्रिपुंडधारी महा जलती चिताओं को देखकर मुस्करा रहा था, तो यशोदा को प्रतीत हो रहा था मानो स्वयं बाबा विश्वनाथ इस नन्हे बालक के रूप में जलते शवों को मुक्ति देते मुस्करा रहे हैं।

मणिकर्णिकेश्वर की पूजा के पश्चात् यात्रा आरंभ हुई। ललिता घाट, मीर घाट, इत्यादि घाटों पर देवी-देवताओं को पूजते यशोदा को प्रतीत हो रहा था मानो वह अंतर में स्थित उन घाटों पर विचर रही है, जहाँ काशीपति स्वयं उसे घाटों के उस पार खड़ी मुक्ति का मार्ग दर्शा रहे हैं।

अस्सी संगम पर संगमेश्वर के दर्शन करते समय यशोदा के प्राण अनंत को छूते उसे दर्शा रहे थे कि वही तो शिव की शक्ति शैवी है, जो इस नन्हे काशीपति का लालन-पालन कर रही है।

लोलार्क कुंड की एक सीढ़ी पर महा ऐसे काँप रहा था, जैसे मनुष्य हृदयमंदिर में स्थित ईश्वर के भाव में डूब काँपता है। निश्चित ही महा कोई

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

महात्मा है, सोचते यशोदा की दृष्टि के सामने उस रात्रि का दृश्य आ गया जब दस मास के सोए हुए महा के सिर पर एक काला नाग फन फैलाए डोल रहा था। परंतु लोलार्क कुंड पर इस नन्हे महा का काँपना यशोदा की समझ के बाहर था।

रात्रि विश्राम के लिए सारे यात्री कंदवा गाँव में रुक गए थे। इस्माइल चाचा भी यात्रियों का जोश बढ़ाने साथ चलते शहनाई बजाते थे। पुण्य कमाने का यह उनका अपना रास्ता था।

प्रात: कनवापोखर में स्नान कर जब यशोदा मोक्षेश्वर के दर्शन कर रही थी, तो उसे प्रतीत हुआ जैसे संपूर्ण ब्रह्मांड की शक्ति उसमें आ समाई थी। शुभ-अशुभ के खेल से ऊपर होती वह महा पर अपनी करुणा की अमृतवर्षा करने लगी थी। यात्रा का मार्ग फैले मैदानों में से गुज़रता वह सुंदर पथ था जो खेतों और चारागाहों में कहीं-कहीं पगडंडी बन जाता था। इस प्रदक्षिणा में कोई भी यात्री तिल भर भूमि या किसी भी देवी-देवता के दर्शन को नहीं छोड़ना चाहता था।

राम, कृष्ण, शिव के दर्शन कर रात्रि जागरण को आज सभी यहाँ रुके थे। जलती मशालों के प्रकाश में रामलीला चल रही थी। अश्रु बहाती सीता, श्रीराम से कह रही थी-

''मैंने मन में समझकर देख लिया है कि पति-वियोग के समान संसार में कोई दु:ख नहीं है।''

संवाद ख़त्म होते ही यशोदा की दृष्टि राघव पर चली गई और क्षण को मन किसी अनिष्ट के डर से काँप गया। यह नियति का ही विधान था कि राघव को जैसे पूर्वाभास हो चला था कि अब वह वर्ष भर से अधिक नहीं जीयेगा, शायद इसलिए इस यात्रा में उसने मदिरा को छुआ तक नहीं था।

रामलीला को देखते नन्हे महा की आँखों से अश्रुधार बह चली थी, 'पति-वियोग' शब्द का ज्ञान जैसे उसे उम्र की इस अवस्था में ही हो गया था। बूढ़ा इस्माइल, महा के इन अश्रुओं में उसके हृदय का भाव पढ़ रहा था और यशोदा भी जैसे किसी अमंगल के डर से रो पड़ी थी।

प्रात: सारे यात्री पूर्ववत् सभी देवी-देवताओं को पूज अंत में वरणा

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

किनारे रामेश्वरम् पहुँचे। इस यात्रा में यशोदा को जीवन में प्रथम बार जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति अवस्थाओं का स्पष्ट भान हो रहा था। अंतर में स्वयमेव 'ॐ'कार गूँज उठता था और जब-जब ऐसा होता वह महा को ज़ोर से भींच लेती या फिर कभी राघव का हाथ पकड़ लेती थी।

अगाध प्रेम कितना मूक होता है यह इस दंपति की आँखों में बूढ़ा इस्माइल स्पष्ट पढ़ रहा था। रामेश्वरम् महादेव के समक्ष यशोदा अपने लाल और सुहाग की रक्षा के लिए कातर प्रार्थना करती मग्न हो गई थी। रात्रि विश्राम के समय महा को गोद में थपकी देकर सुलाती यशोदा, इस्माइल चाचा से कह रही थी-

''वाह रे मित्रता! शिव, विष्णु की तपस्या कर मुक्तिदाता बनते हैं और विष्णु रूपी राम, शिवोपासना से पूर्व जल तक ग्रहण नहीं करते।''

किसी का ध्यान नहीं था, परंतु यह सुनकर नन्हा महा मंद-मंद मुस्करा रहा था।

भोर सवेरे सारे यात्री वरणा के उस पार असंख्यात लिंगों का पूजन कर रहे थे। कैसा अद्‌भुत और सुंदर दृश्य था! यशोदा मानो अपना इंद्रियगम्य अस्तित्व खो चली थी। आज से पूर्व जीवन उसे इतना परिपूर्ण कभी प्रतीत नहीं हुआ था। आत्मा की सत्ता मानो संपूर्ण बाह्य सत्ता से पृथक् हो किसी अगम्य, अज्ञात के राज्य में विचर रही थी। प्रत्येक स्थान पर दर्शन करते आज सभी वृषभध्वजेश्वर के दर्शन कर कपिलधारा गाँव में रुक गए थे।

यात्रा के अंतिम दिवस सभी गंगा और वरणा के संगम पर आ पहुँचे थे। फूटहीकोट के कोण पर स्थित आदिकेशव मंदिर में यशोदा और राघव, महा को लेकर जैसे ही गर्भगृह में प्रविष्ट हुए, तो काले पत्थर से बनी केशवादित्य श्रीहरि की मूर्ति को महा हाथ जोड़े ऐसे निहार रहा था, जैसे वर्तमान के प्रति वह पूर्ण सचेतन हो भविष्य के किसी साधना पथ को निहार रहा हो।

समय के इस क्षण वह बेचारा क्या जानता था कि इन्हीं भगवान् श्रीहरि के अंशावतार रामानंद के शिष्य कबीर को, उसे जीवन का पाठ सिखाने का दायित्व श्रीहरि द्वारा दिया जाना है।

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पंचगंगा घाट पर इस्माइल चाचा को स्पष्ट दिखाई दे रहा था कि औरंगज़ेब की मस्जिद के सामने स्थित बिंदुमाधव मंदिर के बाहर महा की दृष्टि किसी अज्ञात, अदृश्य को तकती अश्रुओं से छलक आई थी। ब्रह्मनाल से होते हुए सारे यात्री यात्रा के अंतिम पड़ाव मणिकर्णिका पर आ पहुँचे थे। महा को स्नान करवाने के पश्चात् अब यशोदा और राघव उसे इस्माइल चाचा को सौंप स्नान करने चल दिये थे।

नग्न महा अपने नन्हे पग बढ़ाता जलती चिताओं की ओर बढ़ चला था और उत्सुकतावश इस्माइल भी उसके पीछे हो लिया था। सामने से एक तेजोमय वृद्ध महात्मा, महा के सामने आ उकड़ूँ बैठ गए और महा की आँखों में झाँकते हुए उन्होंने पूछा-

''कहाँ से आए हो?''

इस्माइल ने देखा कि महा ने आँखों ही आँखों में कुछ उत्तर दिया। महात्मा ने फिर प्रश्न किया-

''यहाँ खुश हो?''

महा ने स्वीकृति में सिर हिला दिया। अब महात्मा चिता की ओर अँगुली बताते हुए महा के कान में फुसफुसाने लगे। वे क्या कह रहे थे, इस्माइल को सुनाई नहीं पड़ रहा था। महा की दृष्टि जलती चिताओं को तक रही थी और महात्मा उसके कान में फुसफुसाकर कह रहे थे-

''इसी चिताग्नि की तपन में तपकर तू भी पंचक्रोशात्मक लिंग के गूढ़ ज्ञान के मार्ग पर प्रशस्त होगा। अमर अनाहत नाद का ज्ञान तो तुझे तेरे गुरु ही करवाएँगे। उस ज्ञान में तू यह भी जान लेगा कि शिव, विष्णु की आत्मा हैं और विष्णु, शिव के प्राण। परंतु यह तब होगा जब चिताग्नि में शव के समान तू भी कबीर के इन शब्दों की अग्नि में जलकर भस्म होगा-

'पर याद रख मैं तेरा गुरु नहीं।' ''

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अध्याय-७

आज महाश्मशान मणिकर्णिका पर परावरमुनीश्वर, दैनिकनृत्यकर्ता, पंचयज्ञसमुत्पत्ति काशी विश्वनाथ महान तेज से संपन्न माया से अपने यथार्थस्वरूप को कुछ छिपाते अमर अनाहत नाद निनादित कर रहे हैं-

''मैं ही नित्य प्रकाश के रूप में स्वयं द्वारा प्रकाशित अखिल ब्रह्मांड का प्रकाशक हूँ। मैं ही इस ब्रह्मांड का साक्षी हूँ, साथ ही निर्मल आकृति वाला सबका आत्मा हूँ। मैं ही प्रज्ञानधन स्वरूप हूँ एवं सर्वजीव मुझमें ही प्रतिष्ठित हैं। जीव कर्म द्वारा, संतान द्वारा अथवा किसी भी अन्य साधन द्वारा नहीं, अपितु ब्रह्मानुभव के द्वारा ही मुझ ब्रह्म को उपलब्ध होता है।''

''काशी में वास करने वाला पापी पुरुष भी मरने के पश्चात् रुद्र-पिशाच हो, सहस्र वर्षों की यातना भोगता अंततः ब्रह्मविद्या प्राप्त करने का अधिकारी हो जाता है एवं मुझ शिव से तारकमंत्र के रूप में तत्त्वज्ञान को पा मुक्त हो जाता है।''

अब चिताभस्म को अपने श्री विग्रह पर मलते कालयोगी काशी विश्वनाथ अस्सी घाट की ओर दृष्टि डाल स्निग्ध स्मित उठाते अमर अनाहत स्वर उठा रहे हैं-

''जैसे घड़े का प्रकाशक सूर्य, घड़े के नाश हो जाने पर नष्ट नहीं होता, वैसे ही देह का प्रकाशक साक्षी आत्मा, देह के नाश में नाश को प्राप्त नहीं होता।''

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मदिरा प्रेम के अंध मार्ग पर पग बढ़ाते, स्वयं के तन एवं मन की लड़खड़ाहट में राघव अब यह मान चला था कि उसकी निज सत्ता अब्र कूड़े एवं कचरे के अतिरिक्त कुछ भी नहीं। दिन-ब-दिन जीर्ण-जर्जर होती काया उसे यह भान दे रही थी कि स्वकण के इस पुतले को मदिरा द्रवित करती अब रज में मिलाने को आतुर हो चली है।

निज भाग्यरेखा रचने में असमर्थ एवं अयोग्य सिद्ध होते वह जान गया था कि अब उसके भाग्य की लेखनी मदिरा के करों में स्थित हो गई है। मदिरा के प्याले में उसका प्रतिबिंब मात्र दलदल के किसी दुर्गंध उठाते कीट के सदृश हो चला है एवं समाज द्वारा परित्यक्त इस पापी को मात्र मृत्यु ही शरण दे सकती है।

विधि का काला घातक मंडल सर्वत्र कालिमा बिखेरने लगा था एवं मदिरा में मदोन्मत्त होते जीवन के गलियारों की इस भूलभुलैया में, वह धार के विपरीत नाव को खेता प्रतिदिवस रामनगर जा एवं वहाँ से लकड़ियों को लाद महाश्मशान मणिकर्णिका पर ख़ाली कर देता था।

दिवस में दो-तीन खेप लगाना उसके लिए आम था, परंतु उसका अथक परिश्रम कुछ ऐसा था, जैसे कोई फटे हुए आकाश में वस्त्र के चिंदों का पैबंद लगा रहा हो। मदिरा रूपी दानवी न केवल उसका पारिश्रमिक अपितु उसे भी लीलने लगी थी।

जीवन के समस्त रंगों के इस बिखराव में काल की कगार की ओर पग बढ़ाते, सारे ही रूप कालिमा से ग्रसित हो रहे थे एवं पृथ्वीपट पर मृत्यु की गोद में नींद आने से पूर्व अब उसके थकित हृदय एवं तन को यदि कोई घड़ी भर भी संबल प्रदान करता, तो वह था मात्र भूतनाथ।

मानव की जीवन-वेदी पर स्वयं की बलि देते मूर्च्छाओं से भरे मन को यदि कोई घड़ी को भी जाग्रत् करता, तो वह था महाश्मशान पर डोम के मातहत कार्य करने वाला उसका अभिन्न सखा भूतनाथ।

महा एवं काशी विश्वनाथ के संग मधुर भावों एवं विचारों रूपी व्योम के तारों को कलुषित करने के लिए मानो अब इस मदिरा रूपी दानवी ने अपना

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

शीश उठा लिया था एवं इन तारों को ग्रसित होता देख यशोदा के हृदय में हाहाकार मच रहा था। निराशाग्रस्त हृदय के भीतर अब यशोदा के लिए मात्र काशी विश्वनाथ की आस ही शेष थी। जीवन की इस रेढ़न में अब तो दैनंदिन आवश्यकताओं का नागपाश भी जकड़ने लगा था एवं यशोदा काशी विश्वनाथ के मंदिर के समक्ष फूल-मालाएँ बेचने लगी थी।

स्वयं के दु:खों की जन्मदा मदिरा को न मान, राघव अब स्वयं को ही इन दु:खों का जन्मदाता मानने लगा था। स्वयं के अस्तित्व की निर्जन एवं रूखी चोटी पर स्थिर हो, नित दिन वह स्वयं के परिवार को विनाश की ओर पग बढ़ाता देख रहा था।

काल एवं मृत्यु की यह विजय वह स्वयं तो आत्मसात् कर सकता था, परंतु उनका यशोदा एवं महा के प्रति पग बढ़ाना उसे क़तई गवारा न था। स्वयं के मानस सागर पर अब नित मृत्यु की लहरों को शीश उठाता देख, वह यह सोचकर काँप जाता था कि ये लहरें कहीं उसकी प्राणप्रिय यशोदा एवं वीर्यांश महा को न लील जाएँ। निर्मोही काल के काले पृष्ठ पर वह यशोदा एवं महा के नाम का अंकन नहीं देख सकता था।

मन की समस्त पीड़ाएँ भूतनाथ उसके मुखमंडल पर स्पष्ट पढ़ कर भी स्वयं को नितांत असहाय पाता था। अब वह यह जान चला था कि संस्कृति के इस अपावन कलुष में राघव मदिरा का त्याग क़तई नहीं कर सकता था।

मृत्यु की ऊँची उठती तरंगें अब राघव को आत्मघात के द्वार तक ले आई थीं, परंतु अपनी इन अंतिम घड़ियों में भी वह यह सोचकर काँप उठता कि उसके बाद यशोदा किसका अवलंबन ले जीवन के इस दुरूह मार्ग पर स्वयं को प्रशस्त करेगी? स्वयं के जीवन में नियति ने अपने कर से आत्मघात का जो पासा फेंका है, क्या वह घोर पाप नहीं?

इस पाप के प्रतिफल में उसे स्वयं का नरक में होता निमज्जन स्वीकृत था, परंतु वह अपने परिवार को अब इस स्थिति में और नहीं देख सकता था। पलायन के इस अंधमार्ग पर रह-रह कर उसके मस्तिष्क में एक ही विचार उठता कि उसकी मृत्यु में ही परिवार का मंगल छिपा है।

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

स्वयं पर मृत्यु की छाया ही यशोदा एवं महा के लिए भाग्योदय का संदेश लाएगी, यह सोच उसने अब आत्मघात का निर्णय ले लिया था। सारी स्मृतियों की अग्नि में झुलसता अब वह मृत्यु की गोद में स्वयं की भावी शांति को देख रहा था।

विधि ने आज जैसे उसकी मृत्यु की अंतिम मुहर लगा दी थी एवं कालप्रवाह के इस सकल तूफ़ान में समस्त पापों को पी जाने वाली चमिताशेषदुष्कृता गंगा के दूसरे पार बलुआ मैदान में, वह महा को स्वयं के साथ लेकर आ लेटा था। महा को हृदय से लगाते ही जैसे नरक की कालिमा में एक स्वर्गिक घड़ी उसके समक्ष आ खड़ी थी। आँखों से अश्रुधार बह चली थी, जन्म-जन्मांतर की क्षुधा जैसे इस घड़ी शांत हो गई थी। अनाथवत्सला गंगा की तेज़, मटमैली लहरें दोनों के पाँवों को धो रही थीं।

निजात्मवध के इस संकल्प में उसने बाज़ार से दो मिट्टी के घड़े एवं एक दीर्घ रस्सी को क्रय कर नाव में रख लिया था।

जीवन की इस कलुषित घड़ी में आज रात्रि, प्रेम-अग्नि में झुलस स्वयं को भुलाकर उसने यशोदा को अपने आलिंगन में ऐसे भींचा था कि अब तक रुद्ध अश्रुधार नयनों से तीव्रता से बह चली थी। उसके आलिंगन में बद्ध यशोदा के हृदय के शून्य में किसी अनिष्ट की रूपरेखा स्पष्ट खिँच गई थी। अंतर-धड़कन किसी घोर अमंगल के संदेश से धड़कने लगी थी एवं वह भी रो पड़ी थी।

रात्रि की गहनता में अब निद्रादेवी की शरण लेती यशोदा धड़कते हृदय के साथ निद्रामग्न हो चली थी। जीवन की श्रृंखलाओं को काटती मृत्यु के चरण-चापों की ध्वनि अब राघव को स्पष्ट सुनाई देने लगी थी।

दीये की मद्धिम लौ में टकटकी बाँध अपनी प्रियतमा एवं पुत्र से अंतिम विदा लेने, भारी मन से राघव ने दोनों के ललाट पर कोमल चुंबनों की छाप छोड़ दी थी। आँखों में अश्रु लिए अब वह मृत्युलोक की यात्रा करने अपनी कोठरी से बाहर आ पहुँचा था।

महा एवं यशोदा के प्रति अत्यधिक प्रेम और स्वयं के प्रति हीन भावना

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

का परस्पर द्वंद्व, अब मृत्यु की चरण-चापों में विलीन हो गया था। इन चरण-चापों ने काल का घोर डंका बजा राघव की स्वयं के प्रति हीनता को विजयी घोषित कर दिया था। जीवन की शृंखलाओं को काटती मृत्यु की इन चापों में राघव, यशोदा एवं महा का भावी मंगल स्पष्ट देख रहा था।

मृत्यु की काली स्याही से लिखित अक्षरों में मानो संपूर्ण संसार आज असार जान पड़ता था। यम के दूतों के कोलाहल में प्रेम के मंगल गीत कैसे लुप्त हो जाते हैं एवं जीवन स्वयं कैसे मृत्यु की भेंट चढ़ जाता है, सोचता राघव दशाश्वमेध घाट की ओर पग बढ़ा रहा था।

काल जैसे स्वयं का काला परदा आत्मा एवं हृदय पर डाल उसे भी कलुषित कर देता है एवं अज्ञान के पाश में बँधा पशु स्वयं मृत्यु की बलिवेदी पर आ खड़ा होता है, वैसे ही राघव दशाश्वमेध घाट की सीढ़ियों पर आ, फूलों के ढेरों एवं भिखारियों के घेरे के मध्य मार्ग निर्मित करता घाट की सीढ़ियाँ उतर रहा था।

आकाश के नक्षत्र उस ब्रह्म मुहूर्त की ओर इंगित कर रहे थे, जिसमें हिन्दू उपासक अपनी डूबती आत्माओं को तारने, भयंकर पापों का विनाश करने वाली घोराघौघविध्वसंकारिणी गंगा में डुबकी लगा रहे थे। महिमामयी गंगा अब भी अधिसुप्त थी। पवित्र जल के प्रति आस्थावान व्यक्तियों के द्वारा दोनों पर प्रज्वलित सैकड़ों नन्हे दीये गंगा पर तैर रहे थे।

अंतर में सुप्त देव घड़ी को जाग राघव को उसके इस दानवाधीन आत्मघात रूपी घोर पाप के प्रति सचेत कर रहा था एवं सतत मृत्यु के पश्चात् उसके रुद्र-पिशाच का स्वरूप दृष्टि के समक्ष ला खड़ा कर रहा था। परंतु स्वजनों के हित के विपरीत अब राघव को इस रुद्र-पिशाच का स्वरूप भी स्वीकृत था एवं सहस्र वर्षों की पिशाच यातना भी।

पत्नी एवं पुत्र के प्रति असीम प्रेम के समक्ष राघव के लिए इस घड़ी पिशाच यातना तुच्छ थी। स्वयं के जीते परिवार के अनिष्ट भावी एवं स्वयं की मृत्यु के पश्चात् पिशाचता में, राघव ने रुद्र-पिशाचता को पूर्णरूपेण आत्मसात् कर लिया था, मात्र इसी कामना में कि उसकी रुद्र-पिशाचता अवश्य ही यशोदा

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

एवं महा के भावी का तो मंगल करेगी।

मृत्यु के देव के प्रति दृष्टिपात करते राघव का शरीर काँप रहा था। स्वयं के इस पराजय बोध में भी वह यशोदा के प्रति स्वयं के मूक प्रेम को दर्शा रहा था। शरीर स्वेद कणों से भीग गया था एवं कंपित कर से नाव को खोलता अब वह पंचक्रोशी यात्रा में हुए स्वयं की मृत्यु के पूर्वाभास से साक्षात्कार करने नाव में जा बैठा था।

यशोदा एवं महा के प्रति स्वयं की भावनाओं के अनंत कणों को गंगा पर बिखेरता अपनी सत्ता के मध्य संपूर्ण रिक्तता ले, वह अब नाव को खेता गंगा के मध्य आ पहुँचा था।

व्यथित हृदयावेग शक्ति के इस अवसान काल में मात्र एक ही प्रश्न उठा रहा था कि उसके पश्चात् इस अखिल विश्व में यशोदा एवं महा का क्या होगा, उन्हें ऐसे किस तरह निराधार छोड़ दूँ?

परंतु अब मृत्यु जगत् का क़ैदी बनता, वह मात्र इस्माइल चाचा एवं भूतनाथ की आस पर इस घोर कृत्य को करने आतुर हो चला था।

निज क्रूर कर्म में अज्ञान के कोड़ों को सहता वह साथ लाई मदिरा को एक ही साँस में गटक गया था। स्वयं की डरावनी मृत्यु के मध्य वह अब साथ लाई रस्सी के दोनों छोर से मिट्टी के घड़ों के मुख को कसकर बाँध रहा था।

भीषण अर्थहीनता की तुच्छता के समक्ष प्राणों का मोह पूर्णरूपेण खंडित हो गया था एवं यशोदा और महा को स्मरण करता अब वह अपने कर में एक घड़े को उठा, उससे बँधी रस्सी को अजगरपाश के सदृश अपनी काया के इर्द-गिर्द लपेटने लगा। क्रिया के पूर्ण होते ही पंगु के सदृश पग बढ़ाता वह नाव के छोर पर आ खड़ा हो गया था।

मृत्यु की मौन विपुल कालिमा अब उसकी दृष्टि के समक्ष गहरा गई थी एवं भीषण भय से कंपित विचारों के इस विवर्त में घड़ी भर भी दृष्टि से यशोदा का मुखमंडल ओझल नहीं हो रहा था। अब वह फूट-फूट कर रोने लगा था।

इस घड़ी मात्र एक विचार शेष था कि काशी में वास करने वाला पापी पुरुष भी मरने के पश्चात् रुद्र-पिशाच हो सहस्र वर्षों की यातना भोगता है, परंतु

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

आत्मघात के इस घोर पाप के पश्चात् भी शायद सबको मुक्ति देने वाली अमृतस्वरूपा अमृता, यह गंगा उसे मुक्त कर दे।

यही सोचता अब वह यशोदा एवं महा को काशी विश्वनाथ के आश्रय पर छोड़ता अश्रु बहाता ''जय बाबा विश्वनाथ'' का वज्रघोष कर गंगा में कूद गया था।

राघव के जल में प्रविष्ट होते ही घड़े भी जल में प्रविष्ट हो चले थे एवं मृत्यु का देव उन घड़ों में द्रुत गति से जल भरने लगा था। जलमग्न घड़ों के भार ने अब राघव को गंगा से उबरने नहीं दिया था।

जब तक समस्त हलचल का ज्ञान घाट पर खड़े लोगों को होता, तब तक राघव मृत्यु की गोद में चिरनिद्रामग्न हो गया था। यथास्थिति से अवगत होते ही एक साथ कई मल्लाह जल में कूद पड़े थे एवं उन्होंने राघव के शव को बाहर निकाल लिया था।

यशोदा के सौभाग्य का कुमकुम तिलक अब शेष न था। एक आर्त क्रंदन एवं वेदना के साथ वह राघव के शव से लिपटकर रो रही थी। पंचक्रोशी यात्रा की रामलीला में सीताजी द्वारा कहे शब्द साक्षात् समक्ष आ स्थिर हो गए थे-

''मैंने मन में समझकर देख लिया है कि पति-वियोग के समान संसार में कोई दु:ख नहीं है।''

इस दारुण दु:ख की घड़ी उसे यह सांत्वना देने वाला भी कोई न था-

''जैसे घड़े का प्रकाशक सूर्य, घड़े के नाश हो जाने पर नष्ट नहीं होता, वैसे ही देह का प्रकाशक साक्षी आत्मा, देह के नाश से नाश को प्राप्त नहीं होता।''

मरणवज्र से आहत राघव का शव आज महाश्मशान मणिकर्णिका पर बबूल काष्ठ की चिता पर सजा था। जल से फूला शीश एवं पग चिता से बाहर निकले थे।

मानों किसी अद्भुत प्रारब्धराशि का फल था कि ऐसी अभिशाप भूमि पर भी तीन वर्षीय महा आह्लादित उत्सुक नयनों से इस धरा को निहारता विचर रहा था। उसके शीर्ष का मुंडन हो चुका था एवं चिता को मुखाग्नि देने के पश्चात्

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

चिताग्नि से उठती लपटों को वह उल्लासित नयनों से देख रहा था। इस्माइल चाचा, भूतनाथ एवं साथ आए शवयात्रियों की दृष्टि चिताग्नि पर टिकी थी। किसी का ध्यान महा की ओर न था एवं अब वे सारे जो दृश्य देख रहे थे, वह उनकी कल्पना से परे था।

मृत्यु के इस भीषण क्षेत्र में महा पूर्ण नग्न अवस्था में निकट बुझी चिता की भस्म में लोट रहा था। जैसे भाग्य स्वयं कोई द्वार खोलता उससे चिताभस्म में क्रीड़ा करवा रहा था, जबकि दूसरी चिता पर उसके पालक पिता का शव जल रहा था।

स्वदेवत्व का रूप धरते महा के इस अपूर्व सौंदर्य एवं आनंदोल्लास पर दृष्टि पड़ते ही श्रद्धा से भूतनाथ की आँखों से अश्रुधार बह चली थी। आज उसे प्रतीत हो रहा था कि सत्य है, काशी में काशी विश्वनाथ शव के कर्ण में तारकमंत्र फूँक मुक्ति प्रदान करते हैं। इस घड़ी भूतनाथ साक्षात् अभयंकर, अविनाशी शिव के दर्शन, चिताभस्म में क्रीड़ा करते इस नन्हे बाल के रूप में कर रहा था।

भूतनाथ यह सोच रहा था कि कालचक्र का कोई भी नियम इस बाल देव को नहीं बाँध सकता। चिताभस्म से प्रणय जिसका स्वर्ग हो, वह साक्षात् महेश्वर के अतिरिक्त और कौन हो सकता है? परंतु भूतनाथ क्या जानता था कि जिस बाह्याकृति की रेखा में उसे महेश्वर के दर्शन हो रहे हैं, उसे तो इन शब्दों की अग्नि में अभी कितना झुलसना था-

'पर याद रख मैं तेरा गुरु नहीं।'

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अध्याय-८

आज महाश्मशान मणिकर्णिका पर भस्मोद्धूलितविग्रह, नियतकल्याण सर्वावासी, स्वधृत काशी विश्वनाथ शव के कान में तारकमंत्र फूँककर अब विष्णु सहस्रनाम के आत्मिक जाप में लीन हो, आदिकेशव मंदिर को देखते स्निग्ध स्मित के साथ श्री विष्णु से स्वयं के शाश्वत एकात्म गान को उठा रहे हैं-

"हे सर्वव्यापी परमात्मा श्री विष्णु! समस्त देवताओं को अपने प्रकाश से प्रकाशित करते आप सर्वव्यापी परमात्मा ही ब्रह्मांड को विस्तार दे, उसे स्थिर करते हैं।"

"हे श्री नारायण! यद्यपि शरीर से हम दो प्रतीत होते हैं, किंतु हमारी आत्माएँ एकात्म हो सदैव साथ विचरती हैं। जो कैलास है, वही वैकुंठ भी एवं जो वैकुंठ है वही कैलास भी। आपकी पूजा में लीन जीव स्वतः ही मेरी पूजा में लीन हो जाता है।"

"हे कमललोचन श्रीहरि! आप सर्वंतर्यामी ही अपने अनुग्रह से समस्त जीवों को सुख प्रदान करते सत्य के मार्ग पर प्रशस्त करते हैं।"

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पति की आत्महत्या के भयप्रद स्पर्श को सहकर, अब यशोदा अपनी शेष शक्ति को सहेजते स्वपतन से बच रही थी। अंधकार की आँखों में उसने इस सत्य को देख लिया था कि पति-वियोग के समान इस संसार में कोई दु:ख नहीं होता। इस दारुण दु:ख में उसका वह दिव्य बोध लुप्त हो गया था जो उसने पंचक्रोशी यात्रा में अर्जित किया था।

पति की मृत्यु की घोर यंत्रणा के भीतर वह अब अपनी विधि के दान महा को, निज उर से चिपकाए विश्रांत हो चली थी। पीड़ा के इस दावानल में वह ताड़ित होकर निराश निरीह पशु की भाँति उस मार्ग को खोज रही थी, जिस पर चलकर वह अपने पुत्र के मंगल के ध्येय की यात्रा कर सके।

पति-बिछोह के लँगड़ाते अतीत को अंतर के तारों से खींच वह निज काया के खोल में लौटने का प्रयत्न कर रही थी। निज अंतर के क्षुद्रावशेष में अब मात्र मातृशक्ति ही बची थी जो उसे जीने को बाध्य कर रही थी। पति-बिछोह से दुखिया बनकर रहने की धारणा को अब यह मातृशक्ति भंग करने लगी थी और वह महा के हृदय की धड़कन को सहसा पूर्णरूपेण स्वयं के हृदय की धड़कन से जोड़, जीने का सामर्थ्य प्राप्त कर रही थी।

दुरूह यात्रा के स्वलक्ष्य पर अब वह बिना लड़खड़ाए चलना चाहती थी ताकि अपने पुत्र का मंगल कर सके। परंतु स्वयं के भीतर का नंगा स्वार्थ उसके जीवन को भीतिग्रस्त बना रहा था कि वह महा को इस सत्य से अवगत कराए या नहीं कि वह उसका पुत्र नहीं है। स्वयं के भीतर की इस मलिनता को साफ़ धोकर, अब वह निष्कलंक होना चाहती थी, परंतु कैसे? यह उसे नहीं सूझ रहा था।

पति की आत्महत्या जैसे उसे एक अथाह तलहीन निद्रा में ले आई थी, जहाँ उसने स्वयं के मन द्वारा रँगे सारे सुखों का त्याग कर दिया था। परंतु अब शनै:-शनै: वह महा के मुखमंडल पर दृष्टि डालती जागने को उद्यत हो रही थी। शिवरात्रि क़ा व्रत अब हृदय के अंधकार में ज्योतिर्मय किरण को उतारता, निराशाग्रस्त हृदय के भीतर पुन: आशा का संचरण करने लगा था।

उसकी नाड़ी और नसों के लिए पति की मृत्यु अति ही दुस्सह्य थी।

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हृदय स्पंदन लगभग बंद हो चुका था, परंतु अब महा के साथ बीतते ये क्षण शिराओं के लघु-लघु स्पंदन बनते हृदय को पुन: स्पंदित करने लगे थे।

भोर के तारे के प्रकाश में अब वह पुन: अपने भंगुर जीवन की कालिमा में पथ खोजती आगे प्रशस्त हो रही थी। परंतु यह कालिमा उसे घेर तब स्तब्ध कर देती और वह निश्चेष्ट रह जाती, जब वह देखती कि इस नन्हे महा में उसकी उम्र के बच्चों का एक भी लक्षण नहीं।

विचारों के मानस समुद्र में प्रश्न का शेषनाग फन फैला उठता कि महा स्वयं का ख़ून नहीं है, शायद इसलिए भावनात्मक तारतम्य का अभाव है। यशोदा के श्वास सूत्र तब उखड़ने लगते जब वह भविष्य के बृहत् उदर में इस अनिष्ट को देखती कि महा को उसके सत्य से अवगत कराने पर, महा उसकी मातृशक्ति पर स्वार्थ का लांछन लगाता उसे पतन की अँधेरी खाई में धकेल रहा है।

हृदय के रक्त को अश्रु में बहाकर जिस चार वर्षीय महा के जीवन की क्यारी को वह सींच रही है कहीं वह उसके सत्य से मुरझा न जाए, सोचकर ही यशोदा के प्राण काँप उठते थे।

अमृतमय जल की धारा को बहाने वाली छुरितामृतधारौघा गंगा में नित्य स्नान कर अपने मस्तिष्क को शांत करके वह नित्य ही बाबा विश्वनाथ के मंदिर में आ इस प्रार्थना में लीन हो जाती कि शुभ्र, शाश्वत सीपी में महा रूपी यह मुक्ता इस सत्य से कलंकित न होकर, उसे भी कलंकित न करे।

"हे प्रभो! मुझे इतना सामर्थ्य प्रदान कर कि मैं इसे इसके सत्य से अवगत कर सकूँ।"

आज भी स्वयं के इंद्रिय बोध को त्याग कर वह अपने हृदय में काशी विश्वनाथ को ऐसे स्पंदित कर रही थी, जैसे काशी विश्वनाथ के ज्योतिर्लिंग से एक ज्योतिर्मय किरण उसके हृदय में बैठ आसीन हो गई हो। शिवकिरण जैसे अंतरस्थ साक्षी को जाग्रत् कर गई हो एवं अंतर में कोई स्वर गूँजा हो-

"हे श्री नारायण! यद्यपि हम शरीर से दो प्रतीत होते हैं, किंतु हमारी आत्मा एकात्म हो सदैव साथ विचरती है। जो कैलास है, वही वैकुंठ भी एवं

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

जो वैकुंठ है, वही कैलास भी। आपकी पूजा में लीन जीव स्वत: मेरी पूजा में लीन हो जाता है।''

स्वयं के भीतर छिपी पूर्ण रूपांतरण की एक कुंजी जैसे प्राप्त हुई हो और सत्य के इस जागरण में जैसे स्वर उठा हो कि मुझे श्री नारायण का एकादशी व्रत करना चाहिए।

प्राण-शक्ति अब स्वत: श्री विष्णु की भक्ति में लीन हो गई एवं सत्य की यात्रा का आरंभ, अब जैसे फाल्गुन मास की दशमी के जागरण के साथ हो चला था।

आदिकेशव के मंदिर पर स्थित देदीप्यमान नारायण की मूर्ति के पूजन के साथ एकादशी को आँवले के वृक्ष की पूजा के पश्चात् कलश स्थापना कर यशोदा ने व्रत रखा। रात्रि के जागरण के पश्चात् जब वह द्वादशी के दिवस आँवले के वृक्ष की परिक्रमा कर रही थी, तो उसे प्रतीत हुआ कि उसके साथ परिक्रमा करते महा की आत्मा का पहिया भूतकाल में परिक्रमा करता ऐसे उसकी दृष्टि के समक्ष पूर्वजन्म की स्मृतियों को ला खड़ा कर रहा है, जैसे किसी जन्म में महा ने इससे पूर्व भी इसी तरह आँवले के वृक्ष की परिक्रमा की हो।

द्वादशी की इस रात्रि में यशोदा और महा दोनों को शय्या पर लेटते ही नींद आ गई एवं जैसे कोई रहस्य आज अपना परदा उघाड़ना चाहता था कि यशोदा एक स्वप्न में उतर चली। अभियुक्त होकर वह देख रही थी कि सत्य के प्रकाश को आलोकित करता एक राजा हर्षमग्न हो अपना संपूर्ण अयोध्या का राजपाट एक ऋषि के चरणों में समर्पित कर रहा है। ऋषि के दक्षिणा माँगने पर सत्य-प्रेम से मजबूर उस राजा ने अपनी भार्या और पुत्र को काशी आ, एक ब्राह्मण के हाथ बेच दिया और स्वयं ने चांडाल का दासत्व स्वीकार कर लिया।

स्वप्न के निज गुह्यात्मक भाव में दृश्य परिवर्तित हुआ और यशोदा ने देखा कि पीड़ा को झेलता सत्य उद्धारक चांडाल बना वह राजा, अर्द्धरात्रि की बेला में अपने मरे पुत्र का दाह संस्कार इसलिए नहीं कर रहा था क्योंकि उसकी पत्नी के पास श्मशान का निर्ख़* एवं कफ़न देने के लिए कुछ भी न था।

इस भंगुर जीवन में सत्य कैसी परीक्षा ले रहा था? जहाँ मृत्यु के भीषण

*निर्ख़ - कर

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हुंकार ने गरज-गरज कर उसके पुत्र के प्राणों को लील लिया था और वह उसका दाह संस्कार भी इसलिए नहीं कर पा रहा था कि उसने अपने स्वामी चांडाल को यह वचन दिया था कि बिना निर्ख़ लिए वह किसी शव को नहीं जलने देगा।

स्वप्न में ही सत्य जैसे यशोदा की अंतर-धड़कनों को अपने प्रभाव से धड़का रहा था। स्वप्न में ही सत्य का अभेद्य, गुह्य एवं अवाक् अलख यशोदा की आत्मा के तारों को तरंगित कर रहा था कि पुनः दृष्टि परिधि के मध्य परिवर्तित दृश्य ने भविष्य की कोख से उठा, यशोदा के लिए एक दारुण एवं भयावह सत्य को दृष्टि के समक्ष ला खड़ा किया था।

उसने देखा कि महाश्मशान मणिकर्णिका पर सतत जाज्वलित चिताओं के मध्य एक तेरह वर्षीय बालक मानो जलते शवों के साथ क्रीड़ा करता चिताभस्म को अपनी काया पर मल रहा है। दृष्टि के समक्ष झलके इस दृश्य ने स्वप्न में ही यशोदा को सिर से पाँव तक सिहरा दिया था और लगभग चीख़ते वह जाग उठी थी, वह बालक और कोई नहीं उसका पुत्र महा था।

श्रमसीकरों से यशोदा की संपूर्ण काया भीग गई थी और वह अब भी काँप रही थी।

काल अपनी चाल से महा को संपूर्ण मानव जाति से अलग कर उस तिरस्कृत जाति में ला खड़ा करना चाहता था जिसके दारुण श्रम से मानवीय समाज का कोई लेना-देना नहीं, अपितु खोखला समाज उस चांडाल की छाया से भी स्वयं को दूर रख भागता है।

राजा हरिश्चंद्र को स्वप्न में देखकर यशोदा के अंतर में सत्य की अग्नि ज्वाला धधक उठी थी, परंतु महा के उस स्वरूप का साक्षात्कार उसके स्वयं के भाग्य के देव को सुला रहा था।

हृदय में पड़े दर्द के इस छाले पर मरहम लगाने यशोदा विष्णु सहस्रनाम के जाप में लीन हो गई, परंतु भावाविभूत उसे यह ज्ञात न था कि श्री विष्णु के प्रत्येक नाम के बाद ''ॐ नमः शिवाय'' का प्रणव मंत्र उसके कंठ से स्वतः फूट रहा था।

जाप के इस क्षण जैसे हृदयमंदिर में स्थित ईश्वर गान उठाता, उसे यह

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कह गया-

"हे कमललोचन श्रीहरि! आप ही सर्वांतर्यामी हो अपने अनुग्रह से समस्त जीवों को सुख प्रदान करते, सत्य के मार्ग पर प्रशस्त करते हैं।"

अंतर की भंगुर शक्तियाँ मानो एक हो मातृशक्ति का रूप धर आद्यशक्ति की आभा को झलकाने लगीं और यही शक्ति अंतर में गूँजती यह स्वर उठाने लगी-

"मैं शिव ही श्री विष्णु हूँ एवं श्री विष्णु ही मैं शिव।"

काल की अनंत शृंखला अब यशोदा को खींच भूतकाल में ले आई और दृष्टिपटल के समक्ष फाफामऊ क़स्बे के श्मशान की वह रात्रि आ खड़ी हुई, जब उसे महा मिला था। अब काल शृंखला की इसी अनंतता ने यशोदा को महा के भविष्य की कोख में ला धकेला और उसके समक्ष पुनः महा का चांडाल स्वरूप आ खड़ा हुआ।

एक सनातन रंग दृष्टि के समक्ष उतर आया और यशोदा का व्याकुल हृदय अब जैसे असीम शांति को पा गया कि जब फाफामऊ क़स्बे के श्मशान में इस महा का मंगल ही लिखा था एवं मेरा भी, तो अवश्य ही महाश्मशान मणिकर्णिका पर भी बाबा विश्वनाथ भविष्य में इसे चांडाल बना इसका मंगल ही चाहते हैं एवं इसके मंगल में ही तो मेरा मंगल है।

अंतर से यह स्वर उठते ही यशोदा के हाथ स्वतः आले पर रखी शंकर की पिंडी की ओर जुड़ गए। अब दृष्टि महा पर चली गई तो उसने देखा कि एक स्निग्ध स्मित महा के मुख पर फैला हुआ था।

सत्य ही तो था कि योगी, यति, ध्यानी, ज्ञानी या फिर चांडाल चाहे जो हो, बाबा विश्वनाथ सभी का मंगल करते हैं और उनकी इस लीला में भले ही भविष्य की कोख में छिपे इन शब्दों को महा स्वयं के लिए अमंगलदायी समझे, परंतु ये शब्द तो महा के लिए महामंगलदायी हैं-

'पर याद रख मैं तेरा गुरु नहीं।'

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अध्याय-९

आज महाश्मशान मणिकर्णिका पर चन्द्रसंजीवनशास्ता, श्रीवत्सलशिवारम्भ, अणिमाधिगुणाधार काशी विश्वनाथ नरमुंड की माला धारण किये स्वयं के स्वर्णिम श्रीविग्रह पर चिताभस्म को मलते प्रेत-पिशाचों के साथ क्रीड़ा में मग्न हो, अमर अनाहत नाद निनादित कर रहे हैं-

''मैं प्रणव स्वरूप परमात्मा ही आकाश के समान निर्लेप, विशुद्ध एवं साक्षी द्रष्टा मात्र हूँ। मैं ही शुद्ध सात्त्विक, सर्वस्वरूप एवं अद्वयस्वरूप एकाक्षर ब्रह्म के रूप में स्थित होता सर्वव्यापक हूँ।''

''ब्रह्म 'तत्', इंद्रियहीन शिष्य 'त्वं' तथा 'असी' दोनों का एकता बोध है। कार्यकारण उपाधि द्वारा ही 'त्वं' एवं 'तत्त्व' में भेद है। जीव कार्यरूप उपाधि है एवं मैं ब्रह्म कारणरूप। इन उपाधियों को त्याग देने पर जो ज्ञानस्वरूप ब्रह्म है, वह मैं ही हूँ। 'तत्त्वमसि' का अर्थ उघाड़ता मैं सर्वव्यापक, अज्ञानविशिष्ट जीव चैतन्य को ज्ञान का उपदेश दे स्वयं के शिव चैतन्य से एकाकार कर लेता हूँ।''

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

इस स्वप्नमयी संसृति में मानो अब यशोदा का जीवन जाग्रत् हो रहा था। काशी विश्वनाथ एवं श्रीहरि की भक्ति में लीन यशोदा के लिए जीवन अब वह अमरगान हो चला था जिसके समक्ष मृत्यु सिसकी भरती नृत्य करने लगी थी। परंतु माँ का हृदय था सो स्वप्न में देखे महा के चांडाल रूप की स्मृति आते ही घड़ी को सिहर उठता था। वह जानती थी कि इस निर्मम जगती में शव, श्मशान, चिताग्नि, चिताभस्म या प्रेत-पिशाच, सभी अमंगलकारी वस्तुओं के मध्य स्थित रहने वाले काशी विश्वनाथ सदैव स्वयं के भक्तों के दग्ध हृदयों की ज्वाला पर स्वयं की मंगलमयी किरणें बिखेरते शांत करते हैं एवं अपने भक्तों के जीवन में सदैव मंगल प्रभात का संदेश ही लाते हैं। अत: वे उसका एवं उसके पुत्र का अमंगल नहीं कर सकते।

गंगा के विस्तृत पाट से जुड़े घाटों पर जहाँ विशुद्ध वायु में पलने वाले बालको के प्राण अद्भुत कल्पना से भरे किसी कटी पतंग को पाने की पुलक में पुलकित हो उठते अथवा नंग-धड़ंग गंगा में कूदते स्नान की मस्ती में मदमस्त हो उठते, वहाँ इस हँसी-ठिठोली से कोसों दूर मानो किसी रहस्यमयी गुफा के रहस्य को खोजता महा, हरिश्चंद्र घाट पर बैठा दृष्टि के समक्ष चिताग्नि में जलते शवों को तंकता रहता था। बाल्यावस्था की किसी भी क्रीड़ा से मानो अज्ञात कई बार वह अर्द्धरात्रि में उठकर बैठ, स्वयं के पग अंगुष्ठ के दाग़ को तकता माँ से पूछ बैठता-

''क्या हम भी भस्म हो जाएँगे?''

इसं घड़ी जैसे ज्वालामुखी के जगत् में सतत अकेली दग्ध होती संपूर्ण विश्व वेदना को झेलती किंकर्तव्यविमूढ़ स्तब्ध यशोदा के पास कोई उत्तर न होता था।

पति की आत्महत्या के तीन वर्ष पश्चात् भी जैसे उसकी छाया यशोदा के साथ विचर रही थी। स्वयं की इस शून्यजात एकाकी पीड़ा में यात्रा करते किसी भी घड़ी पति की मृत काया के खुले चितवन, उसकी दृष्टि के समक्ष घूम उसे कँपा देते थे। परंतु महा का स्नेहद्रवित हृदय, इस्माइल चाचा का पितृतुल्य

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

प्रेम एवं काशी विश्वनाथ के प्रति आराधना अब उसके जीवन में पुनः जीवंत रंगों को भरने लगे थे। नियति नटी के इस नाट्य में पाए स्वयं के इस पितृ-पात्र से इस्माइल ने घड़ी को भी अन्याय नहीं किया था। महा को तो अब वह प्रपुत्र मानता स्वयं के संग अधिकाधिक रखने लगा था।

स्वयं के संसार को तिरोहित कर भूतनाथ जीवन की इस वेदी पर भले ही चांडाल बन शवों को जलाता था, परंतु महा की मृदु पलकों से स्वयं के प्रति झलकते अगाध प्रेम से वह स्वयं को तिरोहित नहीं कर पाया था। निर्मम काल के काले पट पर खड़े रहकर प्रतिदिन शवों की राह देखने वाला, स्वयं की कामना में महा की कमनीय मूर्ति के दर्शन की राह तकता रहता था। स्वयं की इस कामना की अति पर वह यदा-कदा घड़ी दो घड़ी के लिए अब महा की कोठरी तक ऐसे चला आता था, जैसे कोई मार्गविहीन किसी पथप्रदर्शक को खोजता उस स्थान पर चला जाए जिस स्थल पर पथप्रदर्शक जैसे उसी की राह में बैठा हो।

महा अब उसके हृदय को ऐसे रँग गया था कि यह रंग लाख छुड़ाने पर भी नहीं छूट पाता था। चिर दग्ध दुःखी धरा सा हृदय अब महा के घड़ी के दर्शन में भी उस वर्षा का अनुभव पाता था, जो धरा की दग्धता को बरसकर अमृत से आप्लावित कर देती है। काल की इस यात्रा में यशोदा को यह स्पष्ट था कि इस्माइल चाचा के पश्चात् भूतनाथ ही उनका सर्वोच्च हितैषी है, परंतु जीवन में कुछ रेखाएँ ऐसी होती हैं जिनमें स्वयं की आकृति उलझ जाती है।

स्वप्न में महा के चांडाल रूप एवं लोक-लाज के डर से कोठरी के द्वार पर घड़ी दो घड़ी बैठते भूतनाथ एवं उसके प्रति महा का आकर्षण अब ऐसी रेखाएँ हो चली थीं, जिनमें स्वयं को उलझा हुआ पाकर यशोदा, भूतनाथ से कतराती अवश्य थी परंतु स्वयं के इन भावों को वह कभी दर्शाती नहीं थी।

भूतनाथ भी स्वयं को चांडाल जान कभी महा को स्पर्श नहीं करता था। जीवन के प्रति खोखली आस्था को ले घड़ी को वह उनकी कोठरी पर आता एवं महा को देख प्राणों को पुनः संचारित कर लौट जाता था।

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अनिष्ट भावी भले यशोदा के ललाट पर चिंता की सलवटें दे जाता था, परंतु अंतर-घट में काशी विश्वनाथ को प्राणप्रतिष्ठित करती अब वह महाचेतना के उस द्वार पर दस्तक देने लगी थी, जहाँ काशी विश्वनाथ के प्रति आदर, पूजा एवं श्रद्धा का सम्मिश्रण अब उसे यह भाव देने लगा था कि जब संपूर्ण काशी महाश्मशान है एवं समस्त देवी-देवता देवालय में प्राणप्रतिष्ठित हो शिव का सान्निध्य प्राप्त करना चाहते हैं, तो क्या देवालय और क्या श्मशान!

माया की शक्ति से प्रतिबिंबित यशोदा का मन घड़ी को आत्म आलिंगन में अखिल ब्रह्मांड को एक पाता, तो दूसरी ही घड़ी वक्ष में धड़क रहे हृदय का स्पंदन उसे स्वयं की परिभाषा से वंचित कर निराशा से भर देता। आज निराशा की इसी घड़ी में उसने वह दृश्य देखा था जो अकल्पनीय था। विश्वनाथ मंदिर पर फूल-मालाओं को बेच जब वह घाट-घाट होती अपनी कोठरी की ओर लौट रही थी, तो सांध्य की इस बेला में भाग्य ने बरबस वह आघात दिया था कि उसका रोम-रोम सिहर उठा था।

पूर्णरूपेण नग्न महा, हरिश्चंद्र घाट पर बुझी चिता की भस्म को शरीर पर मलता, शव की हड्डियों से क्रीड़ा कर रहा था। अब वह दूसरी चिता की अग्नि को देख मुस्करा रहा था एवं इसके पश्चात् इसी अवस्था में वह गंगा में छलाँग लगा बैठा था।

दृष्टि में यह आते ही मानो किसी पैशाचिक विशालता ने यशोदा के हृदय को अपने क्रूर पाशों में जकड़ लिया था एवं जीवन के समस्त इंद्रधनुषीय रंग श्याम वर्ण होते, अंधकार की कालिमा में खो गए थे। भावी अनिष्ट मानों आज ही काल परिवर्तन करता वर्तमान में उसकी दृष्टि के समक्ष आ खड़ा था। आज उसे उस रात्रि का पुनः स्मरण हो आया जब दस मास के निद्रामग्न महा पर एक काला नाग फन फैलाए डोल रहा था।

साँस का रुक जाना भी इसके अतिरिक्त और क्या है? यह भाव लिए आज मार्गशीर्ष की कृष्ण अष्टमी पर यशोदा, महा को स्वयं के साथ ले कालभैरव के मंदिर में यह सोचकर आई थी कि मानों किसी प्रेत की छाया ने

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

महा को आ घेरा है। निज उर की वेदना को उसने फुसफुसाकर कालभैरव की मूर्ति के समक्ष खड़े पुजारी को कह सुनाया था।

पुत्र के मंगल की उत्कंठा में दृष्टि के समक्ष विराजित कालभैरव को अब यशोदा ने इस भाव से स्वयं के उर-सिंहासन पर आसीन कर दिया था कि सभी प्रेत बाधाओं को हरने वाले ये काशी के कोतवाल, यहाँ यम से ऊपर अधिकार रखते हैं। ये एवं बाबा विश्वनाथ अवश्य ही महा का मंगल करेंगे। पुजारी अब घोर स्वर उठाता मंत्रोच्चार कर रहा था, साथ ही साथ वह महा के सिर पर मयूर पंख हिलाता यदा-कदा महा के मुखमंडल पर फूँक भी मार रहा था। अंत में उसने महा को कालभैरव की मूर्ति के समक्ष झुकाकर, उसकी पीठ पर थाप देते गले में काला गंडा डाल दिया था। उसे आज मानो काल स्वयं के उलूखल में कूट-पीस रहा था एवं स्वयं के एकाकीपन में एक रहस्यता लिए उसने संपूर्ण वृत्तांत इस्माइल चाचा को कह सुनाया था, साथ ही वह सिसक उठी थी। उसे सांत्वना देते चाचा ने मात्र इतना कहा था-

''अल्लाह से बँधने वाले को तू कैसे बाँधेगी बेटी? तारों से भरे अपार गगन को पृथ्वी नहीं बाँध सकती। यह तो बिरली आत्मा है, हो सके तो ज्ञान के लिए इसे किसी विद्यालय में भेज।''

मानो साक्षात् सरस्वती इस काशी में वीणा के तारों को ध्वनित कर ज्ञान का गान सुनाती हैं, जिसके कर्णपटल पर पड़ते ही जैसे आदि शंकराचार्य कह उठते हैं-

''ब्रह्म सत्य जगत् मिथ्या।''

जहाँ काशी विश्वनाथ स्वयं जीव को अपने आलिंगन में लेते उसके कर्म बंधनों को तोड़ उसे मुक्त कर देते हैं, वहाँ महाप्रभु चैतन्य भगवत्-प्रेम की पावन धरा को कैसे प्लावित न करें? जिस धरा के रजकण का स्पर्श मात्र ही प्राण को द्रवित कर कोमल कर दे, उसी धरा पर तुलसी स्वयं के प्राणों को द्रवित कर 'रामचरितमानस' की ज्ञान गंगा बहाते हैं। जिस काशी का व्योम अनंत प्राणों से भरा हो, वहाँ कोई वल्लभाचार्य क्यों जन्म ग्रहण न करे? ऐसी ही धरा के उत्कट

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

प्रेम में कबीर एवं रैदास, स्वयं को खोते इस ज्ञान को प्राप्त करते हैं-

"प्रेम गली अति साँकरी तामें दो न समाए।"

जहाँ शक्ति भी शिव के साथ नित्य साक्षात् विचरती हैं, वहाँ उन शक्ति का परम उपासक कड़ी से कड़ी कच्ची मदिरा पीकर वह परावाणी उठाता है, जैसे कोई वैदिक ऋषि अवतरित होते साक्षात् शक्ति को आवाहन दे रहे हैं।

ज्ञान की इस वैश्विक गरिमा को धारण करती काशी में आज यशोदा, महा को एक विद्यालय में छोड़ गई थी। परंतु जिसके निज जीवन के शासन की लगाम किसी ऐसे अनंत शासक के हाथ हो, जो यह अमर अनाहत नाद उठाता हो-

"मैं प्रणव स्वरूप परमात्मा ही आकाश के समान निर्लेप, विशुद्ध एवं साक्षी द्रष्टा मात्र हूँ। मैं ही शुद्ध सात्त्विक, सर्वस्वरूप एवं अद्वयस्वरूप एकाक्षर ब्रह्म के रूप में स्थित होता सर्वव्यापक हूँ।"

वह इस धरा पर ऐसे सुप्त मानव से ज्ञान की अपेक्षा करों पर बेंतों की मार के अतिरिक्त क्या पाएगा?

दैव़योग की क्रीड़ा ही थी कि हाथों पर बेंतों के निशान देख यशोदा ने निर्णय ले लिया था कि अब महा, विद्यालय नहीं जाएगा एवं इसी योग के चलते किसी अज्ञात आकर्षण से खिंचा महा आज अंतिम दिवस विद्यालय चला आया था। माँ सरस्वती अपने किसी भी वास को कलंकित नहीं करती। अपने इस वास में जैसे वह महा को काल की इन घड़ियों में ऐसी भेंट देना चाहती थी, जिसका रहस्य तो महा पर माँ सरस्वती द्वारा प्रदत्त संपूर्ण ज्ञान के पश्चात् ही होना था।

जैसे कोई देवमूर्ति देवालय को भव्यता प्रदान करती है, उसी के सदृश आज एक ऋषि आत्मा, आचार्य का रूप धर विद्यालय में स्थित बरगद के वृक्ष की छाँव में बैठी, विद्यालय को भव्यता प्रदान कर रही थी।

एक तरुण उनके चरणों में बैठा उनकी ओजपूर्ण वाणी के प्रवाह में

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बहता, स्वयं को खो चला था। आज से पूर्व महा ने इन आचार्य को नहीं देखा था। सो महा भी उनके समीप जाकर बैठ गया। वाणी के अंतराल में उनकी मौन मंद मुस्कान भी दिव्यता बिखेर रही थी। उनके नयनों में निर्निमेष झाँकते तरुण ने भाव-विभोर हो प्रश्न किया-

"तत्त्वमसि का गूढ़ अर्थ क्या है?"

सदैव जागरण से भरे नेत्रों को महा पर गड़ाए वे आचार्य बोल उठे-

"सर्वशक्तिमान्, सर्वव्यापक, धर्मयुक्त, मायाविशिष्ट, चैतन्यशिव ही 'तत्' का पर्याय है एवं अल्पशक्तिमान्, अल्पज्ञ, परिच्छिन्नादि, अज्ञानविशिष्ट, चैतन्यजीव 'त्वं' को अभिलक्षित करता है एवं 'असी' दोनों की एकता को इंगित करता है।"

इस दिव्य रस का पान कर तरुण की आँखों से अश्रुधार बह रही थी एवं आचार्य के कंठ-स्वरों में साक्षात् कोई ऋषि आत्मा उतरती बोल रही थी-

"ब्रह्म रूपी शिव 'तत्', इंद्रियहीन शिष्य 'त्वं' तथा 'असी' दोनों का एकता बोध है। कार्यकारण उपाधि द्वारा ही 'त्वं' एवं 'तत्त्व' में भेद है। जीव कार्यरूप उपाधि है एवं शिव ब्रह्म कारणरूप। इन उपाधियों को त्याग देने पर ही जो ज्ञानस्वरूप ब्रह्म हैं, वे परब्रह्म शिव ही हैं। 'तत्त्वमसि' का अर्थ उघाड़ते सर्वव्यापक शिव ही, अज्ञानविशिष्ट जीवचैतन्य को उपदेश दे स्वयं के शिवचैतन्य से एकाकार कर लेते हैं।"

तरुण की संपूर्ण सत्ता से एक कातर प्रार्थना प्रतिध्वनित होती महा के कर्णपटल पर गूँज रही थी-

"आप श्री के मुख से ही सुना था कि नारायण ही नर के कर्णधार हैं एवं जब मैं आपमें नारायण स्वरूप को पा, आपसे अपनी मुक्ति का मार्ग को पाने की प्रार्थना करता हूँ, तो आप सदैव ही यह कह देते हैं-

'पर याद रख मैं तेरा गुरु नहीं।' "

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

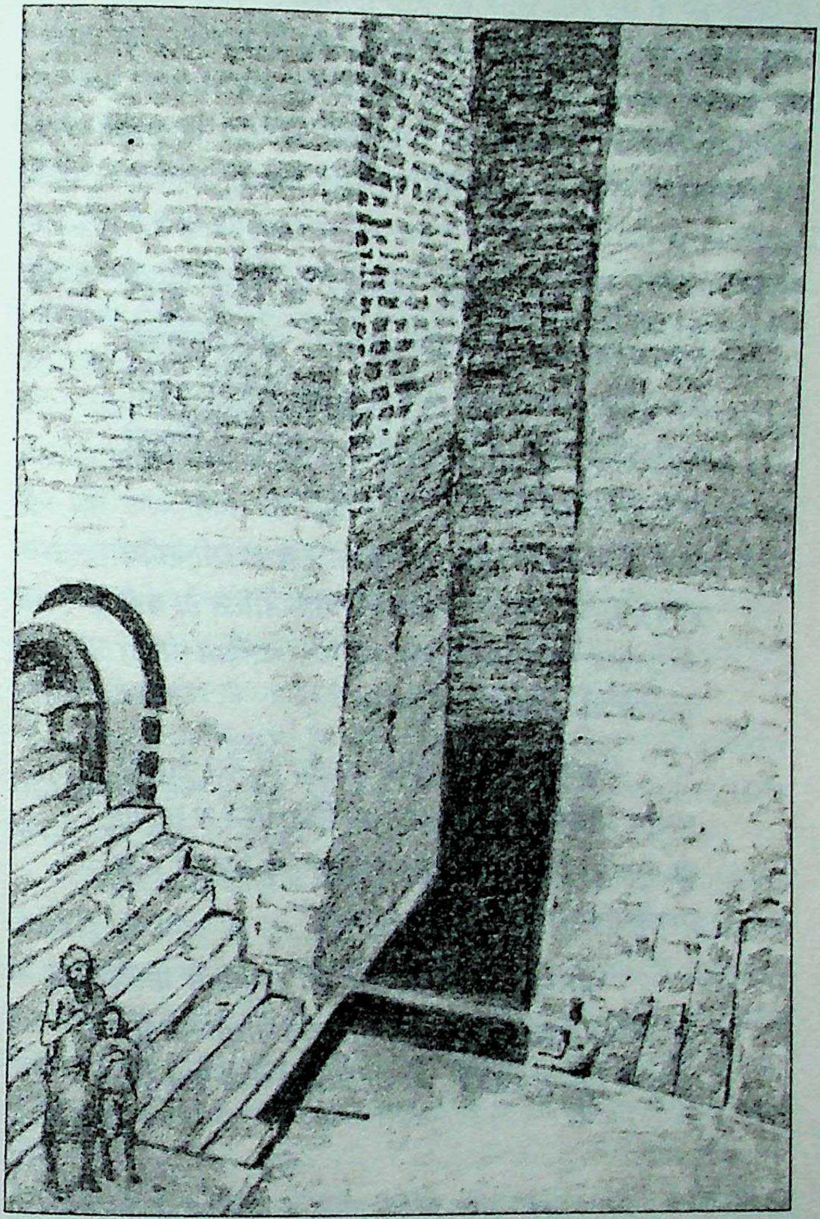

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अध्याय-१०

आज काशी की गलियों में रमण करते सर्वरूपश्चराचर, देवदेवात्मसम्भव, चण्डिकाप्रिय काशी विश्वनाथ ब्रह्मांड रूपी भवन का निर्माण करते, स्वयं की प्रभा से अखिल ब्रह्मांड में आलोक फैलाते अमर अनाहत नाद निनादित कर रहे हैं-

''यह देदीप्यमान अविमुक्त क्षेत्र काशी सदैव ही मुझ शिव के अमर अनाहत नाद से निनादित है। यहाँ की प्रत्येक गली राजमार्ग का रूप धर स्वर्णिम आभा फैलाती मेरे स्वागत में आतुर है।''

''कालखंड की किन्हीं घड़ियों में मेरा ललाट भी इस अविमुक्त महाश्मशान की चिताभस्म से वंचित हो गया था एवं इस काशीपुरी को त्याग कर मेरे परम प्राणों की पुलक भी मंद हो गई थी।''

''संसार के सर्वश्रेष्ठ धर्म का अनुष्ठान करके भी समस्त देवताओं को तृप्त कर, यदि कोई जीव मुझ शिव से विमुख होता है, तो यह उसका परम दोष है।''

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

शहनाई वादन की उपासना करते एवं उससे उठते सुरों के पद-चिह्नों से अंकित पथ पर यात्रा करते इस्माइल की एकमात्र तृष्णा थी- 'किसी गहरी मुक्ति की साँस।'. महा के जीवन में आने से पूर्व भले ही सुरों की तल्लीनता में वह आत्म-विस्मृत हो जाता था, परंतु इतना उसे अवश्य ज्ञात हो चला था कि इस पथ पर चलते वह मुक्ति की उस साँस से वंचित है, जो अंतर की स्वतंत्रता का निज बोध देती है। वह इतना अवश्य जानता था कि स्वयं के कर-पद उस महान सूत्रधार अल्लाह के इंगित पथ पर नृत्य करते हैं, परंतु फिर भी इस महत्तर रंगमंच पर उसका परिचय उस साँस से नहीं हुआ था, जो सुरों को दिव्यता प्रदान कर उसे स्व का अर्थ दे दे।

निज स्वतंत्रता की इस गहराई का पान करने, उसने कुरान के अतिरिक्त स्वयं के ब्राह्मण मित्रों से वेदों और पुराणों का ज्ञान भी अर्जित किया था। आए दिन वह उनके साथ बैठा कुरान, वेद, पुराण आदि के महान समुद्रों की विशालता में ग़ोता लगा किसी मोती को पाने की अभिलाषा में आतुर रहता था, परंतु जैसे अल्लाह ने उसे इस नेमत से वंचित रखा था। उसे किसी के प्रति बैर न था, फिर भी इंद्रियों के समक्ष आनंद का वह स्वर्ण-द्वार नहीं आया था, जिसमें प्रविष्ट होते ही वह स्वयं को सदा के लिए विस्मृत कर दे।

वह तो मान बैठा था कि अल्लाह के महान राज्य में स्वयं की व्यक्तिगत सत्ता के लीन होने से पूर्व, वह कभी उस मुक्ति की साँस को नहीं ले पाएगा जिसके लिए प्राण व्याकुल थे।

परंतु उसके जीवन में महा के पग धरते ही जैसे ऊर्जा के एक द्रुतगामी बवंडर ने उन साँसों को ला खड़ा कर दिया था, जिनके लिए प्राण अकुला रहे थे। कालखंड में नमाज़ और रियाज़ में बिताई प्रत्येक घड़ी की भेंट अल्लाह ने उसकी झोली में डाल दी थी। उम्र के साढ़े पाँच दशक में इससे पूर्व इस्माइल आनंद के इस स्वर्णिम द्वार पर कभी नहीं आया था, मानो अल्लाह के साथ लिखित अनुबंध में महा को सहयात्री बनाने पर ही उसे इस द्वार में प्रवेश करना था।

स्वयं के धर्म की ज्योतिर्मय लौ पर दृष्टि गड़ाए इस्माइल ने किसी भी धर्म से उठते प्रकाश को कभी नहीं नकारा था। प्रकृति की शरण में सुर मानो

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
सरस्वती को प्रसन्न कर उसे वेदों और पुराणों के ज्ञान से भी अवगत करा गए थे एवं महा पर दृष्टि पड़ते ही अंतर्दृष्टि यह जता गई थी कि कोई महान आत्मा स्वयं के सम्मोहित नयनों से उसे सम्मोहित कर रही है। स्वयं के मुख से वेदों और पुराणों की कथाओं के श्रवण के हर्षोल्लास में इस्माइल, महा की दृष्टि में यह भाव स्पष्ट पढ़ लेता था कि पुराणों की ये कथाएँ महा के लिए मात्र श्रवण न होकर, एक दिव्य दर्शन भी हैं।

माघ की इस संध्या में व्योम मेघों से आच्छादित था। तीर के सदृश छेदता समीर काया को कँपा रहा था एवं लोलार्क कुंड की सीधी खड़ी सीढ़ी पर महा, इस्माइल चाचा के मुख से झरते स्वरों के श्रवण में मग्न किसी दिव्य दर्शन को पा रहा था। जैसे कोई दैवीय वाणी इस्माइल के मुख से उतर रही थी-

''नागों का भुजबंध धारण कर स्वर्णिम दिव्यता उठाते काशी विश्वनाथ, सदा काशी में रमण करते हैं। गली-कूचों के भीतर अथवा गंदे नालों में या श्मशान अथवा चांडाल गृह में भी अनायास मरण को प्राप्त करने वाली काया को सदैव ये शिव मुक्ति प्रदान करते हैं। शिवप्रिया के सदृश यह आनंदकानन काशी भी शिव को प्रिय है। 'काशी' के दो अक्षरों को सुनने वाला कभी गर्भवास की कथा नहीं सुनता।''

लोलार्क कुंड का सम्मोहन सदैव ही महा के लिए एक रहस्य था। इस स्थान पर जैसे कोई आवरण फटता था एवं कुछ अदृश्य प्रकट होता महा को चमत्कृत कर देता था। यह प्राकट्य महा को किसी रोमांच की गहनतम गहराई में ला खड़ा करता था, परंतु क्या? यह इस घड़ी महा के लिए अज्ञात था।

अंतर्दर्शन के आनंद में महा सर्वज्ञ ज्योति से दमकती इस्माइल चाचा की दृष्टि में काशी विश्वनाथ के प्रति एक अनोखी ही श्रद्धा देखता था, भले ही अल्लाह का यह उपासक कभी काशी विश्वनाथ के मंदिर में न गया था।

इस्माइल चाचा की वाणी जैसे किसी शक्ति का अनुसरण करती उसकी आत्मा को स्पर्श कर रही थी एवं चाचा कह रहे थे-

''विधिविहित मार्ग पर काल की किसी घड़ी मानव स्वयं की उन्नत आध्यात्मिकता का बहिष्कार करता है एवं ऐसी ही घड़ियों में त्रिकाल में कभी भी नष्ट न होने वाले महाभूत स्वरूप काशी विश्वनाथ को भी स्वसृजित काल

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

के खंड में, इस काशी से विलग होना पड़ा था।''

अतिहर्षदायक एवं सुमधुरता युक्त श्रवण में महा घड़ी को अवाक् रह गया एवं मात्र इतना पूछ पाया, ''क्यों?''

''माया की शक्ति से प्रतिबिंबित सम्राट दिवोदास ने मानव को शाश्वत के प्रकाश का प्रतिपालक मान, घोर तप से ब्रह्माजी को प्रसन्न किया एवं वरदान में अपनी यह मंशा जताई-

''यह पृथ्वीलोक मात्र मनुष्यों का आश्रय स्थल रहे, अतः देवगण देवलोक में एवं नागगण नागलोक में स्थित हो जाएँ।''

ब्रह्मा जी के ''तथास्तु'' कहने के साथ ही काशीपति विश्वनाथ को भी काशी से विलग होना पड़ा था।''

स्वविशालता से सजग महा पुनः प्रश्न कर बैठा-

''फिर काशी विश्वनाथ पुनः काशी में कैसे पधारे?''

''दिव्य स्वभाव को धारण कर सम्राट दिवोदास ने धर्म की सर्वोच्चता में ऐसे साम्राज्य का निर्माण किया, जहाँ साक्षात् सरस्वती सम्राट के कर्णपटल पर साम्राज्य संचालन का मंत्र फूँक गई थीं। संपूर्ण साम्राज्य यज्ञ-धूम से निरंतर धूमायित रहता था। वेदों के मंत्रोच्चार प्रत्येक कर्णपटल को दिव्यता के गान से गुंजारित करते थे। पुत्र, पितृ चरण में, तो पत्नी, पति चरणों में स्वर्गिक सुख को पा, धर्म से विमुख न होते थे'', इस्माइल चाचा ने कहा।

कालहीन एवं प्रकाशमय इस कथा के प्रकाश में वक्ता एवं श्रोता दोनों ही किसी चेतन के साम्राज्य में विचरण करते स्वचेतना से लुप्त हो गए थे एवं दोनों को ज्ञात न हुआ कि एक वृद्ध भिक्षुक, कंठ की तृष्णा में जल ग्रहण करने सीढ़ियाँ उतर रहा था। वाणी की इस शक्ति के समक्ष अपनी तृष्णा से विस्मृत, वह भी उनके निकट ही स्थित होता बैठ गया था।

विराट् का यह सार-संक्षिप्त वर्णन उसके हृदय को भी आलोड़ित करने लगा था। वाणी के समस्त माधुर्य को आत्मसात् करता वह आश्चर्यचकित था कि कैसे काशी विश्वनाथ की लीला के विस्तार में एक मुसलमान भी सौंदर्यमयी अलंकृत भाषा में इस पौराणिक सत्य का महिमागान कर रहा है।

''स्वनिर्मित विश्व प्रतिमा में सर्वोच्चप्रिय काशी से विलग हो, नीलकंठ

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

के हृदय में भी तरंगें व्याकुलता उठाने लगी थी। समस्त व्यवधानों को साम्राज्य के समक्ष स्थिर करने के बावजूद इंद्र, साम्राज्य को धर्मविमुख करने में असफल हो गए थे।

वहाँ शिव का हृदय जैसे तांडव मचाता काशी में पग धरने को व्याकुल हो रहा था। अब शिव की प्रार्थना पर चौंसठ योगिनियाँ, आनंदमयी प्रेम के गीतों को प्रस्फुटित करती काशी में कोई छिद्र* खोजने अवतरित हुईं। परंतु इस धर्मश्रेष्ठ काशी में पग धरते ही नवगान के स्रोत उनके हृदय में फूट पड़े एवं सारे प्रयत्नों के पश्चात् भी जब उन्हें कोई छिद्र न मिला, तो स्वयं का संपूर्ण हृदय काशी को समर्पित करते वे भी चौंसठ योगिनी घाट के निकट स्थित हो गईं।

''अब आदित्य, शिव की प्रार्थना पर काशी में छिद्र ढूँढ़ने पधारे। परंतु जब सर्वत्र काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या एवं अहंकार का अभाव हो, तो आदित्य भी कैसे दोष ढूँढ़ पाते? उन्हें प्रतीत हुआ कि काशीवास से उत्पन्न पुण्यमय तेज के समक्ष उनका तेज भी मंद है, सो वे भी स्वयं के समस्त रूपों के साथ यहीं बस गए एवं यह लोलार्क भी उन्हीं का स्थान है।'' कैसी ओजपूर्ण वाणी झर रही थी इस्माइल चाचा के कंठ से!

महा के हृदय में जैसे प्रभात का कुहासा छँट रहा था। कोई रहस्य की परत उघड़ रही थी कि एकाएक मेघों ने अपना मुँह खोल दिया एवं वर्षा की बूँदें उन्हें भिगाने लगीं। अंधकार भी उतर आया था, सो इस्माइल ने खड़े होकर महा से कहा-

''तू कोठरी पहुँच जा, मैं बाज़ार होकर आता हूँ। कल भोर सवेरे अस्सी घाट पर मेरी प्रतीक्षा करना, नमाज़ के पश्चात् मैं तुझे वहीं मिलूँगा एवं इस कथा का उत्तरार्द्ध कल तुझे नाव की सैर के साथ सुना दूँगा।''

कोई स्वप्न था या यथार्थ! इस भाव से वह भिक्षु अब भी आश्चर्यचकित इस्माइल को तक रहा था।

इस भासमान जगत् के अंतराल में जब इसे सृजित करते उमापति शिव स्वयं उमा के साथ इस काशी में रमण करते हों एवं इसी धरणी पर जहाँ विश्वेश्वर स्वयं, काशी एवं सबको तारने वाली प्रणवरूपा गंगा जब साक्षात् स्थित हों, तो मुक्ति सुनिश्चित ही है।

---

*छिद्र - दोष

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

शीत की इस रात्रि में रज़ाई में काशी विश्वनाथ की इस दिव्यता से महा का हृदय किसी धौंकनी के सदृश धड़क रहा था। पुष्प बिना सुगंध के जैसा होता है, शायद वैसा ही काशी के साथ काशी विश्वनाथ के बिना हुआ होगा। श्री के बग़ैर श्रीमंत कैसा? सोचते उत्सुकतावश संपूर्ण रात्रि महा ने आँखों ही आँखों में बिता दी थी। रह-रह कर मन में प्रश्न कौंध उठता कि फिर काशी विश्वनाथ पुन: काशी कैसे पधारे?

थोड़ी घड़ियों की वृष्टि ने कोहरे और शीत को अत्यधिक बढ़ा दिया था। जैसे जीवन का कोई गूढ़ रहस्य काशी विश्वनाथ, इस्माइल चाचा के मुख के माध्यमं से महा के समक्ष काल की इन घड़ियों में सरल शब्दों में दर्शाना चाहते थे। अस्तित्व लोप की इस दशा में कब ब्रह्म मुहूर्त होने को आया, यह उसे ज्ञात न हुआ था।

माँ नित्य कर्मों से निवृत्त हो फूल-मालाएँ बना रही थी और महा भी अब उठकर घड़े से कटोरे में जल भर, मुँह धोने के लिए कोठरी के बाहर आ खड़ा था। जैसे ही उसने जल के छींटे अपने मुख पर मारे, वह शीत से कँपकँपाने लगा था। यशोदा ने अब उसे कंबल ओढ़ा दिया था।

वह जानती थी कि आज महा को इस्माइल चाचा के साथ नाव की सैर पर जाना है। आले पर रखी शंकर की पिंडी की ओर हाथ जोड़ एवं एक फटी शाल ओढ़े, यशोदा फूलों की टोकरी को साथ लिए अब महा के साथ अँधेरी सँकरी गलियों में चल रही थी। सर्वत्र कोहरे का साम्राज्य फैला हुआ था। धरा पर नंगे पाँव रखते ही महा के दाँत शीत से किटकिटा उठे थे। अँधेरी गलियों में दाएँ-बाएँ मुड़कर, अंतत: वे अस्सी घाट आ पहुँचे थे।

स्वयं के भावों और विचारों में यशोदा ने वह मंगल मंदिर स्थापित कर दिया था कि वह महा के श्मशान के प्रति आकर्षण में भी मंगल का ही दर्शन करती थी। अब उसके हृदय की रात्रि के तम में दैवीय प्रभा उदित हो चली थी एवं जीवन के समस्त कार्यकलापों को दैवयोग मान काशी विश्वनाथ के चरणों में समर्पित करती, अब वह स्वयं के भविष्य के प्रति भयविमुख हो चली थी। सो महा को अस्सी घाट की सीढ़ी पर बैठाकर चाचा की प्रतीक्षा करने को कह, उसने घाट-घाट ही अपने पग दशाश्वमेध घाट की ओर बढ़ा दिए थे।

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कुछ पग बढ़ाते ही वह कुहासे में खो गई थी एवं महा इस भीषण कोहरे में उत्तरवाहिनी गंगा को तकने का प्रयत्न कर रहा था, परंतु दृष्टि के समक्ष सर्वत्र कोहरे के अतिरिक्त कुछ भी न था। फ़जर की नमाज़ के पश्चात् इस्माइल भी अब अस्सी घाट आ पहुँचा था। ऊनी टोपा, कंबल एवं ऊनी वस्त्र उतारकर, अब इस्माइल हाथ में शहनाई लिए इस नीरवता में घाट की सीढ़ियाँ उतरने लगा था।

महा के मुखमंडल की दीप्ति को स्वयं के हृदय की मशाल बना, आनंद-विभोर अब वह खलबुद्धिविनाशिनी गंगा के इस रहस्य को जान गया था कि यह खलतापूर्ण बुद्धि का नाश करती, सबको शांति प्रदान करती है। ग्रीष्म हो या शीत, प्रत्येक दिवस इस्माइल यों ही गंगा में उतर गले तक गहरे पानी में स्थिर हो, शहनाई का रियाज़ करता था। वर्षों की साधना के फलस्वरूप, पग स्वत: उसे उस स्थान पर ले जाते जहाँ वह रियाज़ करता था।

कुछ सीढ़ियाँ उतरते ही इस्माइल चाचा भी महा की दृष्टि के समक्ष कुहासे में ओझल हो गए थे। कुछ घड़ी पश्चात् जल में उनके आगे बढ़ने का स्वर नीरवता में गूँज उठा एवं उसकी अगली ही घड़ी एक सुमधुर रागिनी महा के कर्णपटल पर गूँजने लगी। गहन रहस्य से भरे घाट कोहरे में अत्यधिक रहस्यमय हो चले थे। शहनाई से उठते सुमधुर स्वर, पार्श्वभूमि में मंदिरों से उठते घंटनाद एवं कोहरे में छिपी उत्तरवाहिनी गंगा, सब का सम्मिश्रण मानो आज महा को किसी रहस्यमय गुह्य ज्ञान के द्वार पर ले आया था। महा को प्रतीत हो रहा था मानो हृदय से कुछ निकलकर स्वच्छंद भाव से विचरना चाहता है।

स्वयं की आत्मा का महा की आत्मा के प्रति अनुराग लिए इस्माइल, स्नान के पश्चात् अब नाव पर महा के साथ सवार था। अंतरतम भावनाओं की अभिव्यक्ति इस्माइल की दृष्टि में स्पष्ट झलक रही थी। तीव्रतम भावोद्रेक में महा प्रश्न पूछ बैठा-

"आगे क्या हुआ चाचा?"

पतवार चलाते जूरी की दृष्टि भी इस्माइल चाचा पर टिक गई थी। इस्माइल किसी दिव्यता से भर मुखरित हो उठा-

"स्वयं की जटा में सहस्रार निर्मल मंदाकिनी को धारण करते नीलकंठ,

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

स्वयं के हृदयदेश में व्याकुल हो उठे थे। दृष्टि में सहस्र आशाएँ लिए अब वे ब्रह्माजी के पास आकर निवेदन कर उठे।

उनकी मनोव्यथा से अवगत हो अब ब्रह्माजी, ब्राह्मण का वेश लिए काशी में सम्राट के समक्ष उपस्थित हुए, परंतु जैसे कोई भगवत् शिशु इस काशी की गोद में लेटा स्वयं परमानंद में विश्राम कर रहा हो एवं औरों को भी स्वयं की आभा से भाव-विभोर करता, दिव्यता प्रदान कर रहा हो एवं अर्थ, काम और धर्म से ऊपर मोक्ष को अभिलक्षित करता, सभी को काशीवास के लिए बाध्य कर रहा हो, वैसे ही आकर्षण से बँधे ब्रह्माजी भी कर में जल एवं अक्षत ले स्वस्ति वाचन करते सम्राट का यशोगान कर रहे थे एवं उनके भी हृदय में काशीवास की भावना जाग्रत् हो रही थी।''

चौंसठ योगिनी घाट को पीछे छोड़ती नाव अब दशाश्वमेध घाट की ओर प्रशस्त हो रही थी। महा के हृदयाकाश के शून्य में मानो समस्त जग की आतुरता आ समाई थी एवं अधीर हो वह प्रश्न पूछ बैठा-

''फिर क्या हुआ चाचा?''

''अनंतता के संग समस्वरित होते ब्रह्माजी भी पुलकित हो उठे एवं सम्राट की सहायता से मंगलदायक दस अश्वमेध महायज्ञों द्वारा परमात्मा का भजन करते, वे भी दशाश्वमेधेश्वर लिंग की स्थापना कर काशी में ही स्थित हो गए।''

नाव अब दशाश्वमेध घाट पर लग चुकी थी, वातावरण इस घड़ी भी आदित्य दर्शन से वंचित था। अष्टकोणीय चबूतरों पर स्वयं की छतरियाँ लगाए समस्त पंडे, यजमानों की पूजा करवाते मग्न थे।

किसी अनंत विराट पुकार में महा आंदोलित होता एक पवित्र क्रांतदर्शन में लीन हो चला था। दृष्टि के समक्ष मानो सहस्र ब्राह्मण विशाल यज्ञ कुंडों में हविष्य अर्पित करते मंत्रोच्चार में लीन थे एवं संपूर्ण वातावरण जैसे घंटनाद एवं तुमुल शंखनाद से कंपायमान था। द्रुत संचारित आवेश से समस्त वस्त्रों को उतार, महा ने नग्न अवस्था में दौड़कर गंगा में छलाँग लगा दी थी।

कुछ घड़ियों पश्चात् अब पुनः नाव पर सवार वे आगे की ओर बढ़ रहे थे। इस भौम दृश्य के पीछे गोपित दृश्य को निहारते महा का मुखमंडल अब भी

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
दशाश्वमेध घाट की ओर था। मर्त्य कर्ण जिन मंत्रों का उच्चारण नहीं सुन सकता, ऐसे मंत्रोच्चारण सुनता महा भाव-विभोर हो गया था। अर्द्धचंद्राकार तट को कुहासे के मध्य से झाँकता भास्कर, अब आलोकित करने लगा था।

नाव अब मणिकर्णिका महाश्मशान के समक्ष बह रही थी। बबूल काष्ठ की चिता पर सजे शव को अभी कुछ घड़ी पूर्व ही मुखाग्नि दी गई थी एवं अन्य चिताएँ भी जाज्वल्यमान लपटें उठाती भभक रही थीं। जैसे ही महा की दृष्टि उन पर पड़ी मानो कोई शक्ति का संचरण हुआ था। स्वयं की अंतर्वासिनी मृत्यु में परम जीवन की शाश्वतता का अनुभव अब उसके भाव को प्रगाढ़ कर चला था एवं वह इसमें डूबा नाव के छोर पर ऐसे आ खड़ा था, जैसे क्षण में ही वह नदी में गिर जाएगा।

उसकी इस मनोदशा को मात्र इस्माइल ही समझ रहा था, परंतु भय से ग्रस्त जूरी पतवार छोड़ उसकी ओर तेज़ी से पग बढ़ाने लगा था। सहसा इस्माइल ने उसका कर थाम उसे रोक लिया था।

महा के मूक अगाध हृदयसागर में उठते-गिरते भावों में, कभी मृत्यु के पीछे गोपित जीवन, तो कभी जीवन से जुड़ी मृत्यु आकार लेती निराकार में समा रही थी एवं दोनों के पीछे किसी अज्ञात के शाश्वत प्रकाश को देखते एक स्निग्ध स्मित उसके मुखमंडल पर फैल गया था, जैसे किसी दिव्यता ने महा को आ घेरा था। महाश्मशान में चिताग्नि के पास स्थिर भूतनाथ की दृष्टि इस दृश्य पर पड़ते ही वह अपना मानसिक संतुलन खो बैठा था एवं मृत्यु को अंतिम परिणति पर पहुँचाने वाला यह कठोर हृदय चांडाल, बालको की तरह भावुक हो महा के जीवन की रक्षा करने के लिए नदी में कूद, तेज़ी से तैरता नाव के समीप आ पहुँचा था।

परंतु इस्माइल ने अपने नेत्रों के इशारे से उसे भी रोक लिया था एवं वह भी अब नाव का पार्श्व पकड़, नाव के साथ आगे बढ़ रहा था। शांत, सौम्य भाव में खड़े महा के केश हवा में लहरा रहे थे एवं उसकी इस दिव्यता को देख भूतनाथ की अश्रुधारा अत्यधिक तीव्र हो चली थी।

एकाएक वातावरण में राग ललित की सुमधुर स्वर लहरियाँ गुंजारित हो उठीं। भूतनाथ और जूरी आश्चर्य से देख रहे थे कि जलती चिताओं को मुख

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पर स्मित लिए तकते महा को देख, अश्रु बहाता इस्माइल शहनाई वादन करता भाव-विभोर हो चला था। पतवार जूरी के करों से छूट गई थी एवं नाव स्वत: गंगा के प्रवाह के साथ बह रही थी।

महा की दमकती भावमयी मूर्ति एवं शहनाई से उठते दिव्य सुर, जैसे उस शून्य की ओर इंगित कर रहे थे, जहाँ से सृष्टि का सृजन होता है। दृष्टि के समक्ष जीवन का मृत्यु रूपी छायामय प्रतिबिंब मुक्त होते ही इंद्रिय ज्ञान ने महा को जकड़ लिया एवं सामान्य होते हुए वह इस्माइल चाचा की ओर देख, पूछ बैठा-

"काशी विश्वनाथ पुन: काशी कैसे पधारे?"

उसके इस प्रश्न ने मानो इस्माइल, भूतनाथ एवं जूरी को आश्चर्यचकित कर दिया था, क्योंकि यह प्रश्न पूछने से पूर्व की घड़ी में ही तो दिव्यता उठाते महा बोला था-

"काशी विश्वनाथ तो यहीं हैं, यह काशी उनसे विहीन नहीं रह सकती।"

अभी तीनों अवाक् ही थे कि महा की दृष्टि नाव के साथ तैरते भूतू चाचा पर चली गई, जैसे किसी प्रेम ने उसे आलोड़ित कर दिया हो एवं वह "चाचा!" कहता, भूतनाथ की ओर तेज़ी से बढ़ने को उद्यत हुआ ही था कि नाव को छोड़ भूतनाथ ने जल में एक गहरी डुबकी मारी एवं वह पुन: मणिकर्णिका महाश्मशान की ओर लौट गया।

स्वयं के निर्दोष नेत्रों में जैसे ढेर सारे प्रश्न उभर आए एवं शंकाग्रस्त हो, व्याकुल होकर वह पूछने लगा-

"भूतू चाचा कब आए? आपकी आँखों में अश्रु क्यों हैं?"

इस घड़ी उसकी दृष्टि इस्माइल चाचा पर थी एवं अब उसने अपनी दृष्टि घुमाकर भूतू चाचा पर केंद्रित कर दी, जो तैरते हुए वापस महाश्मशान की ओर बढ़ रहे थे। कोई नहीं जान पाया था कि इस घड़ी पीछे की ओर मुँह फेरता जूरी भी रो रहा था। अभी महा कोई प्रश्न करता उससे पूर्व ही स्वयं के अश्रु पोंछ इस्माइल बोल उठा था-

"अब भ्रमित एवं अस्थिर काशी विश्वनाथ और अधिक प्रतीक्षा नहीं

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
कर पा रहे थे। ब्रह्मांड के रचयिता स्वसृजित काशी के मोह से व्याकुल, स्वयं के पुत्र गणेशजी के पास आ पहुँचे। अंतर की गूँगी पीड़ा दृष्टि से स्पष्ट झलक रही थी एवं पिता की व्यथा को समझते ही पुत्र गणाधीश ज्योतिषी का रूप धरकर स्वयं काशी आ पधारे।''

''अब धर्म की सर्वोच्चता में भी जैसे किसी गुह्य ध्येय से वंचित सम्राट दिवोदास, किसी अदृष्ट के स्फुरण से वैराग्य की ओर पग बढ़ा चुके थे। जीवन में आए इस अनायास मोड़ में, जैसे बीज स्वयं में विराट वृक्ष की संपूर्ण संभावना की चाहना में व्याकुल हो रहा था एवं काल से चिर मुक्ति की चाहना में व्याकुल हो, वे ज्योतिषी बने गजानन से स्वयं की मुक्ति की राह पूछ बैठे। तब श्री गणेश ने उत्तर दिया-

''जिस अमरानंद की चाहना में आप व्याकुल हैं, उस आनंद पर पड़े आवरण को उठाने की युक्ति आज से अठारह दिवस पश्चात् एक ब्राह्मण उत्तर दिशा से आ आपको बतलाएँगे।''

सम्राट के समक्ष उपस्थित होने से पूर्व, समस्त पुरुषार्थों को ढूँढ़ चुके ढुँढिराज गणाधीश ने भी स्वयं को काशी में प्राणप्रतिष्ठित कर लिया था।

''स्वयं की बोझिल असमर्थता में अब काशी विश्वनाथ ने वैकुंठ आ, स्वयं के काशीवास की कामना की व्यग्रता को श्री विष्णु को कह सुनाया। स्वयं से एकात्म एवं अभिन्न श्री शिव की व्याकुलता को आत्मसात् करते, इस महाकार्य के समापन का निश्चित उद्देश्य ले श्री विष्णु, लक्ष्मीजी के साथ गरुड़ पर सवार हो, काशी आ पधारे। गंगा तथा वरणा के संगम पर स्वयं के कर-पाद धो उसे पादोदक तीर्थ का रूप देकर, अब श्री विष्णु ने स्वयं के कर से स्वयं की प्रस्तरमयी मूर्ति को निर्मित कर, पूजन सहित उसकी प्राणप्रतिष्ठा की। यहीं आदिकेशव पर संपूर्ण ब्रह्मांड को स्थित करते श्रीहरि, स्वयं से एकात्म श्री शिव की संहार लीला को देखते मग्न स्मित उठाते हैं।''

नाव अब आदिकेशव घाट पर जा लगी थी। महा की आत्मा मानो आज एक नवीन स्वरूप को पा उज्ज्वल हो उठी थी। भीतर से जैसे कोई स्वर उठा था कि जगत् असत् है, केवल तत्त्व-जगत् ही सत् है। अंतर में स्वर उठते ही श्रीहरि की दिव्य प्रतिमा को नाव में बैठे-बैठे ही मानसिक प्रणाम कर महा, इस्माइल

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

चाचा पर दृष्टि डालता प्रश्न कर बैठा-

"यह तत्त्व क्या है एवं सत् क्या है?"

जैसे कोई बिजली कौंधी हो, वैसे महा के इस प्रश्न से इस्माइल सिहर उठा था। परंतु अगली ही घड़ी महा ने पुनः प्रश्न किया-

"फिर श्रीहरि ने क्या किया चाचा?"

"स्वयं की एकांतिक चरम सत्य की सत्ता सिद्ध करते श्रीहरि धर्मक्षेत्र में जा बिराजे थे एवं पुण्यकीर्ति ब्राह्मण का रूप धर, प्रकृति का सर्वोच्च सार ग्रहणशील उपदेश देते उन्होंने अपने शिष्य विनयकीर्ति रूपी गरुड़ को कहा था-

"तत्त्व को विचार कर परमानंद मोक्ष को साध लेना ही सत् है," इस्माइल ने प्रत्युत्तर में कहा।

कैसा विचित्र द्वंद्व था! कालातीत के उतरते तत्त्व एवं सत् को पूछने वाला, काल की इस घड़ी तत्त्व एवं सत् जैसे शब्दों से भी अनभिज्ञ था एवं काल की इस घड़ी में तत्त्व एवं सत् के शब्दों में उत्तर देने वाला, कालातीत के तत्त्व एवं सत् से पूर्णरूपेण वंचित था। उनके इस संवाद को सुनता श्रोता, सोया हुआ मात्र धर्म को लेकर सोच रहा था एवं स्वप्न में ही एक मुसलमान के प्रति इस श्रद्धा से भरा था कि वह हिन्दू पुराणों पर कितने अधिकार से वाणी उठाता है।

इनको सृजित करता परमात्मा स्वयं की सृजित माया में भी अपना हस्ताक्षर करना नहीं भूलता, इसलिए तो उस परम की हस्ताक्षरयुक्त धरा पर कभी श्री विष्णु अपने शिष्य गरुड़ को काल की घड़ियों में कालातीत के परम गुह्य रहस्य का ज्ञान देते हैं एवं माया में उसी क्षेत्र का नाम परिवर्तित होता सारनाथ हो जाता है, जहाँ फिर संबोधि को प्राप्त कोई बुद्ध स्वयं के शिष्यों के समक्ष, काल की अन्य घड़ियों में उसी कालातीत रहस्य से शब्द परिवर्तित करता, आर्य सत्य के रूप में परदा उघाड़ता है। नाव अब उलटे प्रवाह में पुनः अस्सी की ओर चल दी एवं महा ने प्रश्न पूछा-

"फिर चाचा?"

"सम्राट जिस कर्म को आदर्श मानकर जी रहा था, वह भी विधि के विधान के समक्ष स्वयं के सामने कितना तुच्छ प्रकट हो रहा था, सोचते ही सम्राट के प्राण व्याकुलता से भर उठे थे एवं व्यग्रता के साथ अठारह दिवस

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बिताने के पश्चात् जब श्रीहरि पुण्यकीर्ति के रूप में उसके समक्ष पधारे, तो उनके चरणों में अपना मस्तक टिका सम्राट बोल उठा-

"धर्म को कर्म समझकर जो कर सकता था, किया, परंतु अब मुझे गर्भवास की यातना पुन: नहीं भोगना। अत: कृपा कर, मेरे गुरु बन मेरी मुक्ति का मार्ग प्रशस्त कीजिए।"

तब श्रीहरि मुख पर स्मित लाते बोल उठे-

"ये देदीप्यमान अविमुक्त क्षेत्र काशी सदैव ही श्री शिव के अमर अनाहत नाद से निनादित होता था, जहाँ की प्रत्येक गली राजमार्ग का रूप धर स्वर्णिम आभा फैलाती श्री शिव के स्वागत में आतुर रहती थी, अब भी है एवं सदैव रहेगी। तू मुमुक्षु, स्वयं के ही मुक्तिदाता के ललाट को इस अविमुक्त महाश्मशान की चिताभस्म से वंचित कर बैठा। यही भस्म तो संपूर्ण ब्रह्मांड का सारतत्त्व बन, शिव के वश में रह उनके मस्तक पर शोभित रहती है। तेरा यही अपराध तुझे तेरी मुक्ति से दूर कर बैठा। अत: उनके उत्तम शिवलिंग की प्राणप्रतिष्ठा कर उन्हें फिर काशी का आमंत्रण दे। वही तुझे काशी मरणान्मुक्ति देंगे।" "

बोलता इस्माइल, महा की ओर देखने लगा एवं पुन: बोल उठा-

"दिवोदासेश्वर लिंग की प्राणप्रतिष्ठा कर सम्राट ने मुक्ति पा ली। काशी विश्वनाथ पुन: काशी में परम आनंद को उपलब्ध हो रमण करने लगे एवं उनके एकात्म श्रीहरि अपने मित्र के सान्निध्य में रहने के लिए, पंचगंगा घाट पर बिंदुमाधव के रूप में प्राणप्रतिष्ठित हो गए।"

जूरी अब नाव को पंचगंगा घाट पर लगा चुका था। एक उच्च अवस्था को प्राप्त महा के मुखमंडल के पीछे छिपी किसी महात्मा की छवि को निहारता इस्माइल, ज़ोहर की नमाज़ के लिए पंचगंगा घाट की सीढ़ियाँ चढ़ रहा था। आदित्य अब सिर पर आ धरा को उष्ण कर रहा था एवं जूरी खाद्य सामग्री लेने चल पड़ा था।

यह मुक्ति क्या है? तो क्या मरण ही मुक्ति है? चिता पर जलते सारे शव मुक्त हो जाते हैं? यदि मरण ही मुक्ति है, तो क्या केवल काशी में ही? काशी विश्वनाथ का मुक्ति से क्या संबंध है? जैसे सारे प्रश्न महा को अपने पाश में

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

जकड़ रहे थे एवं इन गूढ़ रहस्यों की गुत्थी सुलझाते, न जाने क्या हुआ और मन स्वयमेव रिक्त हो गया। इस घड़ी महा ने अपने संपूर्ण वस्त्र उतार फेंके एवं गंगा किनारे दग्ध बालू पर नग्न जा लेटा। इस क्षण उसे ज्ञात न था कि उसी के सदृश एक महात्मा भीषण ग्रीष्म में, घंटों नग्नावस्था में इसी बालू पर लेटा करते थे।

कुछ घड़ी पश्चात् पंचगंगा घाट की सीढ़ियों पर उसे खड़ाऊँ की खट-खट के स्वर सुनाई दिए। मन पुनः जाग्रत् हो उठा एवं वह पुनः स्वयं से प्रश्न करने लगा-

''यह किसके खड़ाऊँ की खट-खट है? मैं नग्न क्यों हूँ?''

प्रश्न उठते ही मन पुनः रिक्त हो गया एवं शून्यता में खोया वह घाट की दग्ध पथरीली सीढ़ी पर जा लेटा, अब भी वह नग्न था।

नमाज़ अदा कर घाट की सीढ़ियाँ उतरता इस्माइल यह दृश्य देखकर विक्षिप्त सा हो उठा था। यदि घड़ी भर भी उसका ध्यान नीचे की ओर सीढ़ी पर न होता, तो निश्चित ही पग नग्न महा पर जा पड़ता। जीवन की इस यात्रा में इतनी नमाज़ों के बाद, जैसे अल्लाह ने उसकी यह नमाज़ क़बूल की थी एवं दृष्टि के समक्ष एक महान चमत्कारिक घड़ी आ खड़ी थी। साक्षात् कबीर मानो स्वयं के गुरु रामानंद से बीजमंत्र लेने लेटे थे। जूरी भी लौट आया और वह भी आश्चर्यचकित हो इस दृश्य को देख रहा था।

मन के सीमित अंतराल में जैसे कोई पीर आत्मा आ समाई थी एवं अंतरात्मा का स्पंदन लहरा गया था। इस्माइल, जूरी के साथ महा के नीचे वाली सीढ़ी पर बैठ गया था। दोनों की दृष्टि कभी आश्चर्य से और कभी आनंद से उद्भासित हो रही थी। अर्द्धस्तिमित नयन खोले महा मानो किसी समाधि से जागा था एवं जैसे खुमारी की अवस्था में प्रश्न कर रहा था-

''यदि जीव, शिव से विमुख हो तो क्या होता है?''

भावों की तरंग में इस्माइल भी ऐसे बोल उठा, जैसे उसे ज्ञात न था कि वह क्या बोल रहा है-

''संसार के सर्वश्रेष्ठ धर्म का अनुष्ठान करके भी संपूर्ण देवताओं को तृप्त कर, यदि कोई जीव, शिव से विमुख होता है तो यह उसका परम दोष है।''

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अभी इस्माइल के शब्द पूरे होते, उससे पूर्व ही महा ने उसी अवस्था में प्रश्न किया-

"ये गुरु क्या है?"

सुनते ही जैसे किसी सुदूर नभ से कोई अलौकिक पीर, इस्माइल में उतर आया हो, दृष्टि में खुमारी उतर आई हो एवं इस्माइल की वाणी अपना रूप बदल रही हो, वैसे इस्माइल गा उठा-

"पार बेड़ा लगा हुआ जाने, जो मुहम्मद को नाखुदा जाने,
इस समंदर के घाट हैं लाखों, पार उतरे सो रास्ता जाने।"

महा की दृष्टि आदित्य के आलोक से चमचमाती स्वर्णिम गंगा पर थी एवं इस्माइल अब भी गा रहा था,

"जिसने पी ली शराब मुरशिद की,
वह हक़ीक़त का जायज़ा जाने।"

जूरी आश्चर्यचकित एक के पश्चात् एक आकस्मिक घटनाओं को तक रहा था। अभी तक जो मुसलमान पुराणों की भाषा बोल रहा था, उसके स्वरों में उर्दू का इस तरह उतरना भी उसके लिए एक रहस्य हो चला था। उसे प्रतीत हो रहा था कि इन स्वरों में भी कोई और उतरता बोल रहा है। स्वरों की गूँज भी मानो चाचा के स्वरों की गूँज नहीं।

हवा में लहराती श्वेत धवल दाढ़ी एवं श्वेत धवल केशों को देखकर, महा ने जैसे ही स्वयं के भाव में इस्माइल चाचा का कर स्वयं के कर से थामा एवं जैसे ही वह उस पर चुंबन लेने जा रहा था कि इस्माइल ने स्वयं का कर एक झटके से पीछे कर लिया एवं पुनः उन्हीं परिवर्तित स्वरों में बोल उठा-

"किसके हाथ पर दस्तबोसी कर रहा है? यह हाथ वह नहीं जिससे तुझे इश्क़ है, तेरे चेहरे का नूर कुछ और है। अल्लाह की निगाह तुझ पर इनायत हुई है।"

अचानक जूरी को पुनः झटका लगा। अब इस्माइल के स्वर पुनः सामान्य हो चले थे एवं इन्हीं स्वरों में इस्माइल बोल रहा था-

"ये चदरिया तो कबीर के सदृश ज्यों की त्यों धर देने के लिए बनी है। गुरु बनाना चाहता है सो तो ठीक है,

'पर याद रख मैं तेरा गुरु नहीं।' "

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अध्याय-११

आज महाश्मशान मणिकर्णिका पर अनेककृत, निर्लेपो निष्प्रपंचात्मा, योगविद्योगी, काशी विश्वनाथ शवरूप धारण कर महाशक्ति के चरण-तल में निपतित रहते, अमर अनाहत नाद उठा रहे हैं-

''माँ भगवती अपने ही भाव में विभोर, क्रीड़ासुक्त अनंत जगत् की सृष्टि कर उसके विनाश में मग्न हैं।''

''माँ काली में सब रूपों का अवसान होने से वे कृष्णवर्णा हैं अर्थात् जहाँ सब वर्ण अस्तमित हो जाते हैं, वही काला है। मैं शिव शव का रूप धारण कर उनकी अपूर्व सृष्टि और संहार की लीला को देखकर विमुग्ध हो रहा हूँ। यह काला रूप ही तो जगत् का आदि रूप है।''

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

माँ काली के आश्रित कालचक्र का पहिया जस का तस घूम रहा था। महा का विद्यालय जाना अपने आप ही बंद हो गया था। यशोदा अब मंगल-अमंगल से ऊपर उठती जा रही थी। कई बार उसके मन में विचार उठता कि काली छाया ही सही, चांडाल भी तो ईश्वर का स्वरूप मानव ही तो है, जो काशी विश्वनाथ के संहार कार्य को शव जलाते हुए पूर्णता प्रदान करता है। इस जगत् में यदि कोई वास्तविक सत्य है, तो वह मात्र मृत्यु है।

शायद बाबा विश्वनाथ, महा को मृत्यु के निकट ले जाकर राजा हरिश्चंद्र के समान सत्य धर्म का पालन करना सिखाना चाहते हैं। यदि भविष्य में महा, चांडाल भी बनता है तो शायद यह महाश्मशान काशी उसी रूप में उसकी प्राण-शक्ति को संचारित कर महा की पूर्ण महिमा का स्थापन करना चाहती है।

अब भविष्य के अनिश्चित मार्ग पर भ्रमण करने में यशोदा को भय नहीं लगता था। अब वह जान चली थी कि प्रकाश एवं अंधकार, जीवन एवं मृत्यु, सभी का खेल विधाता के हाथ में है। यदि महा, मृत्यु के अंधकारमय साम्राज्य का वरण करता है, तो निश्चित ही उसमें उसकी अंतरात्मा की दिव्यता छिपी होगी। इसी अंधकार के साम्राज्य में विचरते कभी उसकी आत्मा भी चिताग्नि के समान आलोक उठाती स्वयं के उद्धार के मार्ग पर प्रशस्त होगी।

यशोदा के जीवन का यह ज्ञानजन्य रस, उसे कभी तो जीवन की आत्यंतिक ऊँचाई पर ला बिठाता और वह बहिर्मुख हो अनंत के अज्ञात में विचरती, तो कभी माँ का हृदय फिर उसे वहाँ से खींचकर लघु चेतना के संकीर्ण घेरे में ला पटकता एवं वह अपने पुत्र के लिए व्यथित हो जाती थी। यह द्वंद्व यशोदा के लिए आम हो चला था।

प्रकृति ने ही माँ के हृदय को इस तरह निर्मित किया है कि कोई भी माँ अपनी आत्मा के शिखर पर पहुँचकर भी अपने पुत्र के लिए चिंतित होना नहीं छोड़ती। वैराग्य के चरम पर भी माँ के हृदय की तह में सूक्ष्म रूप से वात्सल्य छिपा ही रहता है।

यों तो आत्मा इस भौतिक संसार में अकेले ही विचरती है परंतु जब

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मस्तिष्क सृष्टि के रहस्यों की खोज छोड़कर शांत होता है, तो क्षण की नीरवता में किसी के साथ नेत्र टकराने पर प्रतीत होता है, जैसे एक ही क्षण में दोनों की आत्मा का प्रत्येक अंश अपनी आंतरिक ज्योतियों को मिश्रित कर, एकात्म का भाव दे देता है। यही भाव इस्माइल, महा के प्रति रखता था। किसी निस्तब्धता में महा और इस्माइल, एक दूसरे के हृदय और आत्मा के स्वरों को एक कर काशी की गलियों एवं घाटों पर जहाँ-तहाँ घूमते रहते थे।

इस्माइल चाचा, महा को शहनाई वादन सिखाना चाहते थे, परंतु महा की दृष्टि की दिव्यता के समक्ष उन्हें अपना यह विचार तुच्छ प्रतीत होता था। चिताभस्म के प्रेमी का भला शादी के अवसर पर मंगल गान उठाती शहनाई के सुरों से क्या वास्ता? इस्माइल के लिए तो मात्र यही काफ़ी था कि महा उसकी शहनाई से उठते स्वरों को एकाग्र हो भावमय दशा में सुनता था। महा के समक्ष रहते इस्माइल को शहनाई वादन करते समय सदैव किसी अज्ञेय की अनुभूति होती थी।

जीवों को संसार-समुद्र के पार ले जानेवाली सब नदियों की स्वामिनी एवं परब्रह्म स्वरूप, अमृतमय जल को बहाने वाली गंगा में स्नान, महा के जीवन में किसी अधिक प्रकाशमय सत्य को मूर्तिमान् करने लगता था। आज भी वह दशाश्वमेध घाट पर गंगा में माँ के साथ स्नान करते महसूस कर रहा था कि जैसे इसका जल किसी अमृत के समान सुखद प्रतीत हो रहा है।

स्नान के पश्चात् घाट पर ही स्थित शीतला माता के मंदिर में महा की दृष्टि एक मूर्ति पर चली गई, जिसमें माँ काली के पग के नीचे शिव, सर्प के साथ, शव के समान भूमि पर पड़े हैं। महा के मन में प्रश्न उठा-

"ये उग्ररूपिणी देवी कौन हैं?"

परंतु उसने माँ से नहीं पूछा। यशोदा अब फूल-मालाएँ बेचने के लिए विश्वनाथ गली में चली गई थी और महा अपनी कोठरी की ओर वापस लौट रहा था। माँ काली का वह दिव्य, उग्र रूप बार-बार दृष्टि के समक्ष घूम रहा था और अचानक वह पगों को घुमाकर मणिकर्णिका महाश्मशान की ओर बढ़ चला।

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कोई पूर्व जन्म का बंधन ही था कि वह बार-बार अपने पग महाश्मशान की ओर बढ़ा देता था। घाट की सीढ़ियाँ उतर उसने एक बुझी चिता की भस्म से अपने ललाट पर त्रिपुंड खींचा ही था कि अचानक भूतनाथ की दृष्टि महा पर पड़ गई। सुध-बुध खोने वाली घबराहट में अपनी पथराई दृष्टि से वह महा को एकटक निहार रहा था।

कैसी स्थिति सामने आ गई थी? इसका सामना वह किस तरह और कैसे करे? भूतनाथ यह सोच ही रहा था कि महा की दृष्टि भूतनाथ पर पड़ी और "भूतू चाचा" कहता, वह तेज़ी से दौड़ भूतनाथ से लिपट गया था।

मन और इंद्रियों के अनेक आभासों के पार मानो कोई ईश्वरांश उससे आ लिपटा हो और जन्म-जन्मांतर की दग्ध धरा पर मानो इस क्षण अमृत की वर्षा हो रही हो। इस भाव से वशीभूत, भूतनाथ की आँखों से अश्रुधार बहने लगी थी। प्रेम का यह अमर क्षण भूतनाथ के लिए सहस्र वर्षों से अधिक था।

"भाभी क्या सोचेंगी?"

यह विचार उठते ही भूतनाथ सिहर उठा और उसने महा को वापस लौट जाने को कहा। इस क्षण भूतनाथ के अंत:करण के सारे तूफ़ान शांत हो गए थे और उसकी मूक स्वतंत्र आत्मा प्रेममयी दृष्टि से महा को वापस सीढ़ियाँ चढ़ते देख रही थी।

अब कोई अनजानी शक्ति आकर्षित करती महा को पंचगंगा घाट ले आई थी, उसी शक्ति के आवेश में वह पंचगंगा घाट पर गंगा में कूद गया, स्नान के पश्चात् फिर उसी शक्ति से महा के पग स्वत: ही मत्स्योदरी स्थित त्रिलोचन महादेव मंदिर की ओर बढ़ने लगे थे। मानो किसी अज्ञात लोक की कोई तीव्र शक्ति उसे वहाँ खींच रही थी।

मंदिर का प्रांगण यज्ञ-धूम से धूमायित हो रहा था। होमकालीन श्रमसीकरों को पोंछते एक महात्मा, "स्वाहा-स्वाहा" करते अपने शिष्यों के साथ यज्ञ में हविष्य की आहुति अर्पित कर रहे थे। महा की दृष्टि यज्ञ की अग्नि पर केंद्रित थी और फिर दृष्टि उठकर माँ काली की मूर्ति पर चली गई। वयोवृद्ध महात्मा की दृष्टि महा के ललाट पर स्थित थी और वे एकटक उसे निहार रहे

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

थे।

यज्ञ अब संपूर्ण हो चुका था। महात्मा अब खड़े हो महा के निकट आ स्थिर हो, बोल उठे-

''तेरे मन में भाव है कि ये उग्ररूपिणी देवी कौन हैं? तो ध्यान से श्रवण कर, माँ भगवती स्वयं चित्तशक्ति में समाहित प्राण-शक्ति रूपी शव के आसन पर स्थित हैं। आदित्य, शशि एवं अनल रूपी त्रिनेत्र से ये त्रिकाल को देखती हैं। सतोगुण रूपी उज्ज्वल दंतपंक्ति के मध्य ये रजोगुण-तमोगुण रूपी जिह्वा को दबाए पचास मातृका के अक्षरों रूपी नरमुंड की माला धारण करती हैं। इन माँ कालिका के कालगर्भ में ही सारे भूत पदार्थ जन्म लेते, लय होते हैं। काल के ऊपर प्रतिष्ठित यह नित्यसिद्धा महाशक्ति माँ काली हैं और अद्वैत में काल की शक्ति, इन माँ की पराशक्ति में लय को प्राप्त होती है।''

''इनका श्याम वर्ण ही तो जगत् का आदि रूप है। इन्हीं माँ काली में सब रूपों का अवसान हो जाता है एवं सब वर्ण अस्तमित हो जाते हैं। शिव स्वयं शव का रूप धारण कर, इन महाशक्ति के चरणतल में निपतित रहते उनकी अपूर्व सृष्टि एवं संहार की लीला को देख विमुग्ध होते हैं।''

अब महात्मा का ध्यान महा के ललाट पर चला गया। वे स्निग्ध स्मित लिए बोल उठे-

''नित्य ललाट पर चिताभस्म से त्रिपुंड लगाता है। रुद्राग्नि का उत्तम वीर्य ही भस्म है, चिताभस्म से त्रिपुंड लगाने एवं इसी भस्म के स्नान से तेरा शरीर देदीप्यमान एवं विशुद्ध हो रहा है। भस्म में नित्य स्नान करने वाला साक्षात् महेश्वर देव कहलाता है।''

''हे शिवप्रिय! शिव की भक्ति ही तुझे शक्ति का ज्ञान देगी, जहाँ तू शिव की तीनों शक्तियाँ- इच्छा, ज्ञान एवं क्रिया को जाग्रत् कर साक्षात् महेश्वर का स्वरूप धारण करेगा। शिव को साध, शक्ति को साधना तेरा पथ नहीं। चिताग्नि के मध्य मरण को जानना तेरे ललाट पर साफ़ लिखा है एवं यह भी साफ़ लिखा है कि चाहे कैसा भी ज्ञानोपदेश हो, अंत में तू सदैव यही सुनेगा-

'पर याद रख मैं तेरा गुरु नहीं।' ''

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अध्याय-१२

आज महाश्मशान मणिकर्णिका पर सहस्रमूर्द्धा, महागर्त, भिषगनुत्तम काशी विश्वनाथ परम आद्यशक्ति की उपासना में लीन, मंगल गान गुंजारित कर रहे हैं-

"हे परम आद्यशक्ति! आप और मैं सदा एक ही हैं, हममें भेद नहीं है। आप ही सृष्टि को रचने में प्रकृष्ट हो प्रकृति को जन्म देती हैं।"

"जैसे प्रदीप्त अग्नि में से सहस्रों स्फुलिंग अग्नि के समरूप हो निकलते हैं, वैसे ही सृष्टि के समय अविनाशी ब्रह्म-शक्ति से तद्रूप अनंत भाव प्रकट होते हैं।"

"जिस प्रकार मकड़ी से जड़ जाले की उत्पत्ति होती है, वैसे ही नित्य प्रबुद्ध मुझ परब्रह्म से प्रकृति की उत्पत्ति होती है।"

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कर्मों का कर्षण करने वाली काशी, पौराणिक नगरी काशी, पंच सहस्र वर्षों से कुछ अधिक उम्र की नवयौवना काशी, बाबा विश्वनाथ के त्रिशूल पर स्थित धर्म एवं आस्था का केंद्र काशी, शिव के विकराल तांडव से धरित्री का महानाश होने पर भी अमर अखंड काशी, महानिद्रा में सोए हुए जीवों को ज्ञान एवं मोक्ष देने वाली काशी, विश्वेश्वर और उत्तरवाहिनी गंगा के समान ही रहस्यमयी काशी, जीवात्मा की परमात्मा के लिए विनम्र प्रतिनिधि काशी, महेश्वर के मस्तक पर सुशोभित अर्द्धचंद्राकार को धरती पर प्रतिबिंबित करती काशी, संपूर्ण जगत् के प्रति मैत्री भावना रखती काशी।

स्वर्ण और रत्नों के तेज सी प्रकाशित इस काशी को विभिन्न कालों में विभिन्न नामों से जाना गया जैसे कि- काशी, वाराणसी, बनारस, अविमुक्त, आनंदकानन, महाश्मशान, रुद्रवास, काशीका, तपस्थली, मुक्तिभूमि, श्री शिवपुरी, मोक्षदायिनी, इत्यादि। जैसी जिसकी आस्था, वैसा ही नाम धारण करती काशी, शिव के बारह ज्योतिर्लिंग के समान बारह नाम धारण कर ज्योति फैलाती काशी।

इस ज्योतिर्मय काशी के आकर्षण से भला कौन अछूता रह सकता है। गूढ़ शक्तियों का रहस्य केंद्र बनी इस काशी में भिन्न वर्ण, भाषा या जाति का कोई भी मनुष्य अगर पग धरता है, तो काशीवास की पुलक में वह यहीं का होकर रह जाता है। एक अज्ञात का आकर्षण मानव को यहाँ बसा देता है। विस्मरण की इस बेला में स्वयं से अपनी ही पहचान को थामता, जाति और समुदाय के आधार पर गंगा किनारे स्थित घाटों के पास गलियों में बसता मानव, बंगाली टोला या लाहौरी टोला इत्यादि को बसा बैठता है। क्या हिंदू, क्या मुसलमान, सभी का तो बसेरा है यह काशी।

परम ऐश्वर्यमयी, अनादि-अनंत काशी विश्वनाथ का महिमा गान करते प्रत्येक काशीवासी में विचित्र मुखर भाव का भारीपन होता है। वातावरण के भारीपन को हल्का करने के लिए चुहलपन की कला कोई काशीवासी से सीखे। भाँग के उपासक, भाँग की मदमस्ती में भले किसी का अच्छा करें न करें, बुरा तो क़तई ऩहीं करते। मानो स्वयं सृष्टि के विधाता हों, ऐसे अर्द्धस्तिमित नयनों

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

से मदमस्ती को छलका कर जब इक्काबाज़ी की दौड़ में सम्मिलित होते हैं, तो इक्काबाज़ इस दौड़ में अपने प्राणों की परवाह तक नहीं करता। हृदय के सुर-ताल युक्त संगीत में, नाव की दौड़ में अपनी जान की बाज़ी लगाना यहाँ आम है। चाहे कबूतरबाज़ी हो या फिर पतंगबाज़ी, भाँग की मस्ती में ढुलकते काशीवासी उसका पूर्ण आनंद लेते हैं।

होली के पर्व पर एक सनातन रंग से रँगता मुसलमान भी रंगों के संसार में ऐसे विचरता है, मानो स्वयं की जात को दूर कहीं छोड़ आया हो। हिंदू-मुसलमान की यह एकता काशी में देखते ही बनती है। इन काशीवासियों के मनोविनोद का चरम तब मुखरित हो उठता है, जब झुंड के झुंड पुरुष दिव्य निपटान के लिए 'बहरी अलंग' अर्थात् गंगा के पार जा, खुले में ठिठोली करते अपने उदर को हल्का करते हैं।

जीवन की इस रँगरेली में नज़ाकत ऐसी कि सिर पर केशों का भार भी क्यों! सिर घुटाए एवं उसे तेल से चमकाते ये आनंदी जीव, आँखों में सुरमा लगाए एवं मुँह में पान और सुरती को घोलते, चौराहों पर चाय की चुसकियाँ लेते छोटी-मोटी नहीं वरन् वैश्विक समस्याओं पर ऐसे चर्चा करते हैं, मानो संपूर्ण विश्व इन्हीं चर्चाओं के बल पर चल रहा हो।

जीवन के रंगमंच पर बड़ा होता महा अब इस्माइल चाचा के साथ ऐसी ही स्थूल काशी को देखता दृष्टि में वह भाव ले आता, जैसे प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होती इस स्थूल काशी के पीछे वह रहस्यमयी पौराणिक काशी छिपी हुई है, जहाँ ईश्वरीय शक्ति का साक्षात्कार स्वयमेव हो जाता है। बिखरी माटी का लोंदा, इस काशीवास रूपी तपस्या की अग्नि में पक कर तैयार हो रहा था। महा, इस्माइल चाचा की अँगुली थाम चलता था तो उसके पैर नाचने से लगते थे। इस क्षण प्राण उस रहस्यमयी काशी को खोजते विचरते थे जो सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर सामने ही खड़ी थी, परंतु आठ वर्षीय महा के पास अभी वह सूक्ष्म दृष्टि कहाँ थी? इस्माइल के मन में तो सदैव ही महा के साथ विचरते असंख्य भावों की तरंगें उठती थीं।

राघव की मृत्यु के बाद कालखंड की इस यात्रा में अज्ञात के भय की

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

रस्सी से बँधा यशोदा का मन, धीरे-धीरे गठानें खोलता मुक्त होने लगा था। स्वभाव में परिवर्तन करना उसके लिए कठिन हो रहा था, परंतु अब वह जान चली थी कि जगत् में नियमन, ज्ञान, अज्ञान और बंध में भी ब्रह्मकारण हैं। स्वप्न में दिखे महा के चांडाल रूप को अब वह सत्यांश मान आत्मसात् करने लगी थी। बाबा विश्वनाथ इसे चांडाल बना कर भी इसका मंगल ही करेंगे, इस आस्था से अब यशोदा, महा को कहीं भी आने जाने से न रोकती थी।

महा के साथ घूमते इस्माइल को अब यह स्पष्ट ज्ञात हो चला था कि महा सांसारिक प्रपंचों से अत्यधिक ऊपर विचरता है। सांसारिक शुभ और अशुभ महा को तनिक भी क्षुब्ध नहीं करते थे। तुलसी घाट और हरिश्चंद्र घाट पर विचरते महा की शक्ति की स्फूर्ति मानो अनंत गुना बढ़ जाती थी। केदार घाट पर स्थित मंदिर में काशी का सबसे बड़ा घंट है, जिसके नाद को सुनते ही इस बाल्यावस्था में स्थित महा की दृष्टि काल की अंतिम अनंतता आकाश को स्पर्श करती, अपने पूर्वजन्म के राज्य में विचरने लगती थी। समउम्र बालको के स्वभाव का एक भी गुण महा में अभिलक्षित नहीं होता था।

प्रतिवर्ष तिल के बराबर वजन से बढ़ने वाले तिलभांडेश्वर महादेव के दर्शन के समय, विगत जन्म की स्मृतियाँ मानो तिल-तिल करके महा के समक्ष आ खड़ी होती थीं। मुसलमान होकर भी महा को देखते इस्माइल को कहीं-कहीं पूर्वजन्म में आस्था होने लगी थी।

चौसठ योगिनी घाट पर स्थित दरवाज़े से लगी सीढ़ी पर जब वे बैठते थे, तो वहाँ का दृश्य महा की आत्मा को पार्थिवता से उठा परमात्मा की ओर गमन करने के लिए बाध्य कर देता था। दरवाज़े से नीचे की ओर फैलती घाट की सीढ़ियाँ, आगे त्रिपथगा गंगाजी का विस्तृत पाट, जिनके जल पर आदित्य की किरणें अठखेलियाँ करतीं स्वर्णिम आभा को बिखेरती हैं। दूसरे किनारे पर फैला बलुआ विस्तार, पृष्ठ में आम और बबूल के वृक्षों से आच्छादित अरण्य और अंत में धरित्री को चूमता व्योम। इस दृश्य को देखकर महा को प्रतीत होता था कि मानवीय दृष्टि परम के विस्तार को बाँधने में कितनी अक्षम है। मानो संपूर्ण काशी आनंद का उद्गम है और आनंद ही उसका लक्ष्य भी। जैसे मन

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

और इंद्रियों के अनेक आभास नित्य काशी के किसी नवीन सत्य को प्रकट करते हों।

काशी मात्र काशी मरणान्मुक्ति के रंग को ही नहीं दर्शाती, यहाँ तो इंद्रधनुष के संपूर्ण रंग अपनी-अपनी आभा में निखरते हैं। फिर चाहे वह काशी की प्रात: का रंग हो या घाटों का। सारनाथ इस रंग में रँगा बुद्ध की वाणी को जगत् में प्रसारित करता है और काशी विश्वनाथ संपूर्ण रंगों को आत्मसात् कर अपने दिव्य प्रकाश से काशी को देदीप्यमान बनाते हैं। और तो और राँड़, साँड़, सीढ़ी और संन्यासी भी अपने रंग बिखेरते काशी को सौंदर्य प्रदान करते हैं। तभी तो कहा जाता है-

"राँड़, साँड़, सीढ़ी, संन्यासी
इनसे बचिए तो घूमिए काशी,
काशी के वासी बड़े विश्वासी
हँसते-हँसते दे देते हैं फाँसी।"

यही भाव काशी की ठगी प्रथा में भी रंग भरता है और विधाता मानो काशी को इतने रंग देकर भी संतुष्ट नहीं होता, इसलिए रेशमी बनारसी साड़ी में वह सारे ही रंग लाकर समा देता है।

महा का इस्माइल चाचा के साथ घूमना निरुद्देश्य नहीं होता था, अपितु मानो काशी में विचरते वह सतत किसी उद्देश्य की तलाश में था। उसका करुणादीप्त मुखमंडल बरबस ही मदनपुरा के सारे जुलाहों को अपनी ओर खींच लेता था। उसकी काया की मिट्टी के आकर्षण की महिमा इन जुलाहों के लिए बालक कबीर से कम न होती थी। उसका आगमन इन जुलाहों के लिए अंधकार में दीपशिखा के समान होता था। ये बेचारे ग़रीब बुनकर कितने विवश थे, यह उनके अतिरिक्त कोई नहीं समझ सकता था। अवहेलना और गिरस* के दुर्वचनों के आश्रय में जीवन भर रेशमी साड़ी बुनते ये बुनकर, एक साड़ी भी अपनी अर्द्धांगिनी को नहीं दे पाते थे। बनारसी साड़ी में रंगों को भरते इन जुलाहों का जीवन कितना रंगहीन था, यह तो वे स्वयं ही जानते थे। तीरीदार और माकोदार ढरकी से कलाबत्तू एवं धागा निकाल कर सुंदर रेशमी साड़ी का ताना-बाना

---

*गिरस - सेठ

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बुनने वाले बुनकर, स्वयं के जीवन का ताना-बाना नहीं बुन पाते थे।

ईंट की कच्ची दीवारों वाले अँधेरे दरबों में जीते ये जुलाहे, बानी पर बिनकर स्वयं की कला से उस साड़ी को निर्मित करते हैं जो काशी को संपूर्ण विश्व में एक अलग पहचान देती है। परंतु इन्हीं बुनकरों की स्वयं की कोई पहचान नहीं। मदनपुरा या छित्तनपुरा, पठानीटोला, नरकटिया की गड्डी, दुल्ली गड्डी, बकरिया कुंड या फिर पीतर कुंडा, कहीं कोई फ़र्क़ नहीं।

जाड़े की धूप में छत पर फैले कतान और अँधेरी कोठरी में गड़े करघे की खटाखट-खटाखुट। ताग भर और फल्ली पर फूँ देते इन बुनकरों का जीवन कब पेट के रास्ते में ही सिमट जाएगा और क़ब्रिस्तान में कब उनकी लाश पर लोग मिट्टी देने चले आएँगे, ये वे भी नहीं जानते। गली में बानी सुलझाते इन जुलाहों का जीवन कब उलझ जाता है, इसका उन्हें भी होश नहीं। सुनहरी कामदार साड़ियों में कब उनके लहू का लाल सुर्ख़ रंग आ मिल साड़ी की सुंदरता को बढ़ा जाता है या फिर धौनी-मौनी, टेकुआ और सिरकी कब जान ले लेते हैं, कोई नहीं जानता।

आज भी महा अज्ञात अवस्था में किसी उच्च चेतना की यात्रा करता इस्माइल के साथ लतीफ़ के यहाँ आया था। करघे पर उसकी कारीगरी में महा, लतीफ़ का एक अतृप्त अधीर वेग देख रहा था। विचारों में खोए-खोए ही वह पाँव नीचे चला रहा था और उसके हाथ ऊपर चल रहे थे। उसके नयनों में विचित्र सूनापन और उदासी स्पष्ट झलक रही थी। महा पर दृष्टि पड़ते ही क्षण को उसकी आँखों में बिजली की रेखा कौंध गई थी और प्रसन्नता से खड़े हो उसने महा को गले लगा लिया था। बाल्यावस्था के इस भोलेपन में लतीफ़ को महा, कबीर की प्रतिच्छाया सा दिख रहा था।

इस्माइल ने उसकी दृष्टि का सूनापन पढ़ लिया था, सो उसने लतीफ़ से पूछा-

"क्यों क्या हुआ है?"

कैसे गिरस जोंक बनकर सब जुलाहों का ख़ून चूसते हैं, लतीफ़ की इस व्यथा को सुन इस्माइल की आँखें भी भर आई थीं। एक कुशल बुनकर की तरह

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अब लतीफ़ के हाथ करघे पर चल रहे थे और आश्चर्यजनक रूप से महा, लतीफ़ की इस कारीगरी को एकटक निहारता हर्ष रोमांचित हो रहा था।

लतीफ़ का पूरा शरीर लयबद्ध हो कार्य में मग्न था। ढरकी मानो भाँग की मदमस्ती में नृत्य कर रही थी। लाल साड़ी पर फूल उकेरना महा के लिए सृष्टि के आवरण में छिपे किसी रहस्य से कम न था।

''चाय पियोगे मेरे नन्हे कबीर?''

लतीफ़ ने अपनी रिक्त सूखी पुतलियों को महा की ओर घुमाकर पूछा।

साड़ी पर उकेरे लाल फूल के सौंदर्य में खोया महा, 'कबीर' नाम सुनते ही जैसे चौंक उठा था। दूसरे ही क्षण नकारात्मक सिर हिलाता वह फिर करघे के संचालन को देखने में मग्न हो गया था।

'कबीर' शब्द मानो आदित्य बनता उसके हृदय में अतिशय आनंद का आलोक भर गया था। अंतर का सद्भाव जैसे जाग गया था और हृदय जैसे फिर किसी रहस्यमयी गुफा में प्रविष्ट हो चला था।

कालखंड के इस क्षण महा ने अपने लिए जो शब्द सुना था, वह शब्द मानो इतिहास के पृष्ठों में से निकलकर अंतर की गहराई में आ समाया था। इस क्षण महा नहीं जानता था कि किसी अँधेरे दरबे के तिमिर में जुलाहा दंपती नीरू और नीमा, कभी वर्तमान के जगत् की दृष्टि की परिधि में न आते, यदि लहरतारा पर उन्हें नवजात 'कबीर' न मिला होता। श्री रामानंद का यह शिष्य कबीर, जुलाहा बन राम रूपी आश्रय की सरकंडी और खूँटी से वस्त्र बुनते-बुनते चाँद तारों की भाषा को जान चला था।

यह काशी विश्वनाथ द्वारा निर्मित योग ही था कि फाफामऊ क़स्बे के श्मशान की चिता के पास मिले नवजात शिशु रूपी महा को करघे की भाषा से अवगत कराने, कबीर स्वयं उसे यहाँ इस अँधेरे दरबे में ले आए थे। प्रकाश का मूल स्त्रोत तो कहीं अँधेरे में ही छिपा है। महा के जीवन में करघा अब आ ही चुका था। भविष्य में कबीर इसी करघे पर महा के लिए जीवन ज्ञान का वह वस्त्र बुनने वाले थे, जिसे ओढ़कर अंत में उसे भी कबीर के समान अपनी चदरिया को ज्यों का त्यों धरना था।

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

विधाता ने ढाई अक्षर प्रेम को गलाकर अब महा के हृदय में डाल दिया था। कबीर तो स्वप्न में आने से पूर्व यहाँ करघा दिखाकर महा की अंतरात्मा में रहने वाली उस शुभ वृत्ति को जगाना चाहते थे, जिस वृत्ति में महा भी यह ज्ञान प्राप्त कर सके कि जिस प्रकार मकड़ी से जड़ जाले की उत्पत्ति होती है, वैसे ही नित्य प्रबुद्ध परब्रह्म से प्रकृति की उत्पत्ति होती है।

संपूर्ण ब्रह्मांड ही उस परब्रह्म का वह करघा है, जहाँ दिग्दिगंत तक ताना तैयार होते वस्त्र बुने जाते हैं और वस्त्र रूपी जीवों का सृजन होता है। चंद्र रूपी इड़ा और आदित्य रूपी पिंगला से निर्मित पाए के बीच दीपशिखा रूपी सुषुम्ना का माँजा तैयार होता है और जीवन के समस्त धागों को एक सूत्र में बाँध, मन अमर अनाहत के नाद में लीन होता है। सूत को माँझकर कबीर ने उससे ढरकी को भर दिया, अर्थात् अनाहत नाद में लीन वायु को कुंडलिनी जागरण के लिए सुषुम्ना में भर दिया। इस प्रक्रिया से कोई भी अछूता नहीं रहता।

'क' वर्ण से निर्मित काशीवास तो महा को उपलब्ध हो ही गया था। 'क' से काशी, 'क' से करघा और अब 'क' से ही कबीर, अर्थात् महा के लिए ब्रह्मांड रूपी भाषा ज्ञान का प्रथम वर्ण 'क'।

जब ज्ञान भाषा को सीखने के लिए महा ने प्रथम चरण धर ही दिया है, तो अब कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता कि इसी 'क' से बना शब्द कबीर उससे भविष्य में यह बार-बार कहे-

'पर याद रख मैं तेरा गुरु नहीं।'

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अध्याय-१३

महाश्मशान मणिकर्णिका पर परमानंद में खड़े सर्वप्रमाणसंवादी, दाता, त्रिलोचन बाबा विश्वनाथ अपनी ज्योतिर्मयी दृष्टि पंचगंगा घाट पर गड़ाए श्री विष्णु का स्मरण करते, अनाहत नाद निनादित कर रहे हैं-

''श्री गोविंद, परमानंद, श्रीहरि, कमललोचन, मुकुंद, मधुसूदन आदि सहस्रनामों वाले हे श्री विष्णु! आपके सहस्रनामों को जपना एक सामान्य मनुष्य के लिए संभव नहीं। अत: इन सहस्रनामों के बराबर एक नाम ''श्रीराम'' ही मनुष्य को कलिकाल में तारता, मुक्ति प्रदान करता है।''

''आप स्रष्टा, सृष्टि से अलग होकर भी उसके प्रत्येक कण में अपने को अभिन्न किये, समाए हुए हैं। मेरा प्रिय यह नन्हा बालक किसी भाव के क्षण में आत्मानुभव का स्वाद चख, जीवन का मर्म समझना चाहता है, सो कृपया उसे जीवन के मर्म का ज्ञान दीजिए।''

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

फाफामऊ क़स्बे में यशोदा सदैव सोचती थी कि इस मर्त्य-मूक संसार में वह क्यों आई है? परंतु अब नियति का लेख कुछ-कुछ समझ में आने से वह जान चली थी कि स्वयं के अज्ञान में वह उसका सीमित दृष्टिकोण था। काशीवास एवं महा का साथ होना उसके लिए आत्म-विजय का आनंदोत्सव हो चला था। दृष्टि अब ससीम से असीम की ओर जाती किसी स्वर्णिम मार्ग के द्वार को खोलने लगी थी।

प्रकृति का आध्यात्मिक अर्थ अब कुछ हद तक उसे समझ में आने लगा था। पति की आत्महत्या एवं स्वप्न में पुत्र का चांडाल रूप देखना कई बार उसके हृदय की गहराई में एक रहस्यमय झंझावात उठाते थे। माँ का हृदय था सो क्षण को पुत्र के मंगल के लिए काँपना स्वाभाविक था, परंतु शीघ्र ही यशोदा अपने संभ्रम में से बाहर निकल स्वयं को सँभाल लेती थी। कभी किसी क्षण अविश्वासी मन भारी हो जाता और वह काँप उठती, तो दूसरे ही क्षण उसका हृदय भविष्य में जो हो, जैसा हो, उसे मानने के लिए तैयार हो जाता। अंतर में सारे वैर-विरोध शांत होने लगे थे एवं दुःख, कष्ट एवं संघर्ष कम होने लगे थे। अंतर के लुप्त होते कोलाहल में वह जान चली थी कि महा की आत्मा अवश्य ही किसी संत की आत्मा है।

अर्द्धरात्रि के इस समय दक्षिण समीर मंद गति से बह रहा था। कोठरी के आले पर रखे दीये की लौ मंद हो चली थी। महा, यशोदा के पास गहन निद्रा में लीन था परंतु नींद यशोदा की आँखों से मानो कोसों दूर थी। महा से जुड़े गूढ़ प्रश्नों की गुत्थियाँ सुलझाते, पलकें मूँदे, वह यों ही लेटी थी कि अचानक किसी चांडाल के प्रेत-छाया रूपी अंधकार ने उसे आ घेरा था। अविश्वासी मन पुनः भारी हो चला और वह सोचने लगी कि क्या यह नन्हा, चांडाल के प्रति लोगों का तिरस्कार झेल पाएगा? कहीं तो इसकी सहनशीलता जवाब दे ही जाएगी?

सोचते ही यशोदा के प्राण पुनः काँप उठे और मन में प्रश्न उठा कि क्या वह माँ का उत्तरदायित्व ठीक से निभा रही है? स्थिति, वातावरण और काल, किसी का भी तो ज्ञान नहीं इसे। इसको तो मात्र चिताभस्म ही प्रिय है। चाहो न चाहो, इस नन्हे के पाँव उसे श्मशान तक ले ही जाते हैं। अब यशोदा की आँखों

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

से अश्रुधार बहने लगी थी और उसने महा के मस्तक को चूमते उसे अपने आलिंगन में भर लिया था।

महा का स्पर्श पाते ही उसकी आत्मा और प्रकृति का संतुलन पुन: सधने लगा और महा के स्पर्श से उसे प्रतीत हुआ, जैसे किसी ईश्वरांश ने उसकी चेतना को स्पर्श किया और हृदय किसी ईश्वरीय वाणी से कंपित होता शांति से संबंध स्थापित करने लगा था-

''निश्चित ही यह कोई महान आत्मा है।''

यह सोचते ही उसका हृदय भविष्य में जो हो, जैसा हो, उसे मानने पुन: तैयार हो गया और वह शांति से निद्रामग्न हो गई थी।

प्रात:काल में अब भी समय था। सर्वत्र अंधकार छाया हुआ था। जीवन-यज्ञ में नमाज़ और शहनाई के रियाज़ का हविष्य अर्पित करता इस्माइल अपनी कोठरी में जाग गया था। फ़जर की नमाज़ में अभी समय था। महा के आने के पश्चात् उसका घर कितना पवित्र हो चला था, सोचते ही इस्माइल खटिया से उठ बैठा।

महा के आने से पूर्व वह अपनी आत्मकेंद्रित दुनिया में ही विचरता था, परंतु अब महा के मुखमंडल पर कबीर की झलक पा उसकी सुर साधना कितनी निखर गई थी, सोचते ही उसकी आँखों में अश्रु भर आए। महा के प्रति उसका प्रेम अंत:करण की तह से उठता हुआ आता था।

महा के उसके जीवन में आने से पूर्व प्राण मानो कारागार में क़ैद, क़ैदी के समान तड़पते थे परंतु अब मानो मुक्त गगन में उड़ चले हों। क्या कबीर पुन: लौट आए हैं? प्रश्न उठते ही इस्माइल की दृष्टि ऐसे चमक उठती जैसे आदित्य की किरणों के पड़ने से देवालय का स्वर्णिम कलश चमक उठता है। स्वयं की अर्थहीन अपूर्ण कृति को गढ़ने वाले इस्माइल के जीवन में महा कोई पूर्णता लेकर आया था। शहनाई से उठते सुर अब उसे स्वयं का अर्थ देने लगे थे। भव्य और मधुर स्वरों में मानो उसका ''मैं'' विलीन हो गया था और अंत:निवासी ईश्वर से उठते सुर, अब शहनाई के माध्यम से स्वरलहरी बन गुंजारित हो उठते थे। अंतर की दिव्यदृष्टि से देखने पर इस्माइल को यह ज्ञात हो चला था कि अवश्य ही महा में कबीर की पात्रता है।

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

उधर महाश्मशान मणिकर्णिका पर चिता के सामने खड़े भूतनाथ की स्थिति कुछ और ही थी। किसी निर्मम राक्षस की अरूप और अनाम छाया को आत्मसात् करता, वह चिता से शव के बाहर निकले नरमुंड को बाँस के टुकड़े के द्वारा निर्ममता से ठोंक-ठोंक कर चिता में समर्पित कर रहा था। मृत्यु के छायामय पंखों के अंधकार से भी कहीं अधिक अंधकार के साम्राज्य में स्वयं के भूत, वर्तमान एवं भविष्य को घोल रहा था, परंतु फिर भी स्वयं की पिशाच यातना वह कम नहीं कर पा रहा था।

कालखंड का एक कटु सत्य नित्य विष बन उसके कंठ में उतर जाता और छटपटाते मानो उसे यों प्रतीत होता कि किसी जीवित प्रेत की तरह, वह स्वयं के काया रूपी शव को ढो रहा है। उसके उस विष को भला इस जगत् में उसके अतिरिक्त कौन जानता था? वह विष उसे नित्य मारता और गाँजे की पिनक में शव बनता वह, यहाँ महाश्मशान में मुर्दों को जलाता फिरता था।

उस दिन महा का उससे यों लिपटना, उसके लिए किसी दिव्यता के अंश के लिपटने से कम न था। उसकी प्रेत रूपी काया ने मानो प्रथम बार अंतरात्मा के दिव्य तत्त्व का अनुभव किया था। महा का आलिंगन उसके लिए प्राणरस की वर्षा से कुछ कम न था। न जाने कितने वर्षों के पश्चात् उस क्षण उसे अनुभव हुआ था कि वह भी हाड़-मांस का जीवित पुतला, मानव है।

"महा ही मुझे मुक्ति देगा।"

बड़बड़ाता भूतनाथ, शव के बाहर निकले पैरों को ठोंक-ठोंक कर चिताग्नि में समर्पित करने लगा।

ब्रह्म मुहूर्त की मंगल बेला चल रही थी और यशोदा के आलिंगन में निद्रामग्न महा एक स्वप्न में उतर चला था। प्रातः होने में अभी कुछ समय शेष था। पंचगंगा घाट की एक सीढ़ी पर बैठा वह दृष्टि के समक्ष पक्षियों के समुदाय से निषेवित, अपने स्वरूपभूत आनंद को प्रकाशित करने वाली बहती त्रिपथगा गंगा को निहार रहा था। दस सहस्र चंद्रमाओं के समान मनोरम मुख वाली गंगा की दिव्यता उसे स्वयं की ओर आकर्षित कर रही थी। परंतु यह क्या! जैसे कोई ईश्वरीय कृत्य घटा हो और परमात्मा स्वयं का स्वरूप उजागर कर, स्नान करते गंगा के भीतर से निकल रहे हों।

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कोई दैवीय शरीर संपूर्ण ब्रह्मांड की दिव्यता उठाता अब पंचगंगा घाट की सीढ़ियाँ चढ़ रहा है। आज उस वृद्ध काया की दिव्यता के समक्ष गंगा की दिव्यता भी तुच्छ प्रतीत हो रही थी। ऐसा प्रतीत हो रहा था जैसे उस दैवीय शरीर पर बिखरे जल-कण उस वृद्ध की सेवा में आतुर हो रहे हों। इस दिव्य आत्मा के स्नान से आज गंगा भी पवित्र हो कृतार्थ भाव से भर उनके चरणों में लोट रही है। कैसा अपूर्व सौंदर्य था और कैसा दुर्लभ दर्शन! जैसे संपूर्ण सृष्टि अपना सौंदर्य समेटे इन महात्मा में आ समाई हो या फिर कोई देवता मूर्तरूप ले, अलौकिक प्रकाश से नहाता निखर उठा हो। श्वेत धवल लंबे केश, श्वेत धवल दाढ़ी, शरीर पर मात्र श्वेत धोती। आत्मशक्ति से प्रकाशित यह वृद्ध किसी वट वृक्ष के समान स्वयं छाया देने महा की ओर पग बढ़ा रहे थे।

भावुकता, करुणा एवं मानवता का त्रिपुंड मस्तक पर धारण कर, वह दिव्य पुरुष अब महा के समक्ष आ खड़े थे। दृष्टि में सखा-भाव लिए महा के सिर पर स्नेह से हाथ फेरते वे सहज बोल उठे-

"यह संसार तो नश्वर है, मन अपनी अंधी आँखों से विषयों को टटोलता मृत्यु के द्वार पर ला खड़ा करता है। हृदय के समस्त भाव अपनी अनंतता समेटे जब राम को जानते हैं, तो मृत्यु नहीं होती। सब मरते हैं,परंतु संत की मृत्यु नहीं होती। संत जीते हैं एवं राम-रसायन पीते हैं, अत्यधिक पीते हैं। मन से मन का संगम कर कोई नहीं मरता। हम भक्तों की मृत्यु नहीं होती। स्वरूप के द्वार पर खड़े तुम यह जानने के लिए जन्मे हो कि स्रष्टा, सृष्टि से अलग होकर भी उसके प्रत्येक कण में अपने को अभिन्न किए, समाए हुए है। मुझे तुम्हें जीवन का पाठ पढ़ाने की आज्ञा मिली है, अतः इतना आज जान लो कि कलिकाल में एक नाम 'राम' ही तारता, मुक्त करता है। जीवन का ज्ञान तो मैं तुम्हें दे दूँगा पर..."

महा की आँखें खुल गई थीं। अलसाई अवस्था में मानो ईश्वरत्व अँगड़ाई लेता कर्णपटल पर उस दिव्य पुरुष के शब्द गुंजारित कर रहा था और हृदय की गहराई में प्राण मदमस्त हो डोल उठे थे। खुमारी को उपलब्ध महा का शरीर काँप रहा था। बाहर से अज़ान के शब्द कानों में गूँजते ही महा को उन महात्मा के अंतिम शब्द याद आ गए-

'पर याद रख मैं तेरा गुरु नहीं।'

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

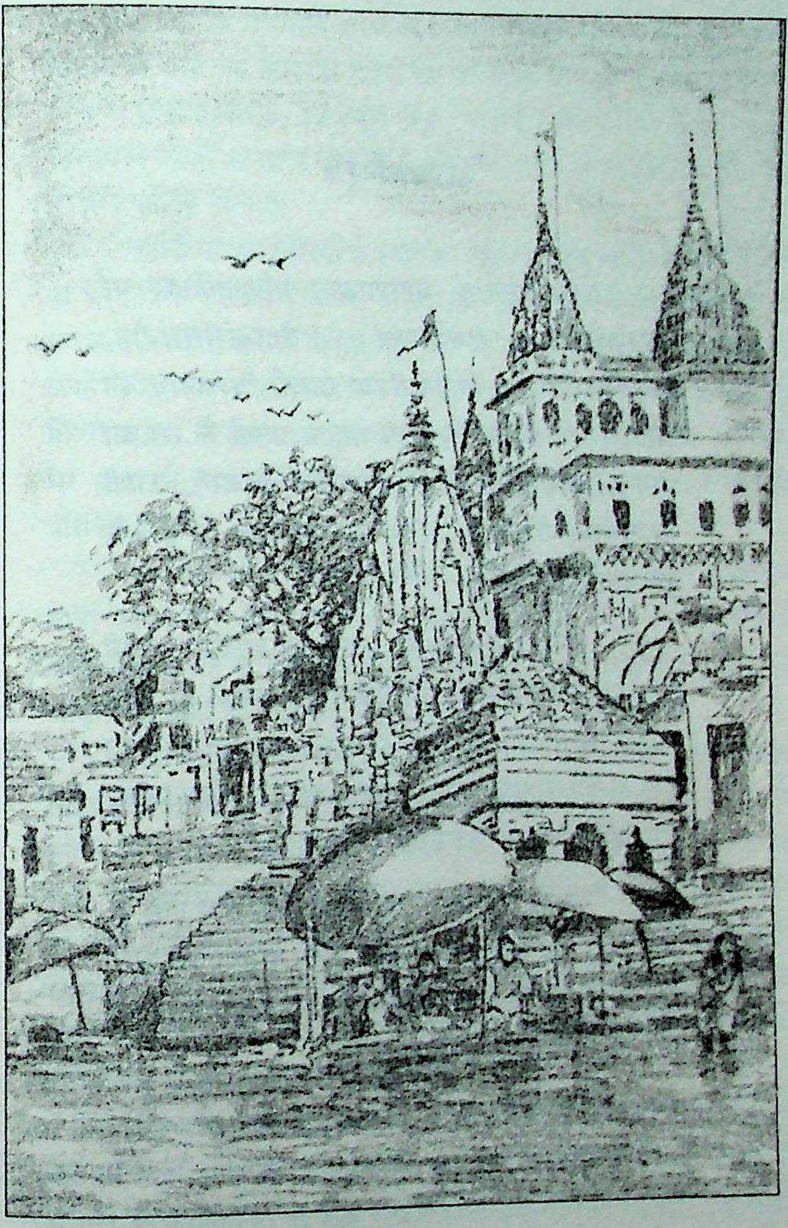

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अध्याय-१४

संध्याकाल में महाश्मशान मणिकर्णिका पर विराजमान समाधिस्थ वेदान्तसारसंदोह, त्रिवर्गस्वर्गसाधन, अर्द्धनारीश्वर काशी विश्वनाथ की समाधि भंग हो गई है। परम मादक प्राणों के रस का पान कर अब वे काशी की गलियों में विचरते, काशी विश्वनाथ मंदिर की ओर अपने पग बढ़ा रहे हैं और मुस्कराते बोल रहे हैं-

''भूमि, जल, अग्नि, वायु एवं आकाश, सभी तो स्वयं का अस्तित्व खो मुझमें आ समाते हैं। जीव केवल कर्मों को लेकर ही परलोक सिधारता है परंतु इस काशी महाश्मशान में मरने वाला प्रत्येक जीव, मुझ ब्रह्म शिव को ही प्राप्त होता है।''

''मैं ही घोर नाद उठाता बिंदु को जन्म देता हूँ, फिर इसी नाद बिंदु से सृष्टि का सृजन करता, उसे आगे बढ़ाता हूँ और प्रलयकाल में मैं तांडव करता इसी घोर नाद से सृष्टि को लील जाता हूँ।''

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

जिसके गर्भ में मात्र मुक्ति छिपी हो, ऐसी काशी की गलियों में इस्माइल, महा के रहस्यमय भावों को पढ़ता उसके लघु प्राणों में भविष्य के देवत्व की छवि को निहारता रहता था। ईश्वरीय कृपा के कण मानो इस नन्हे जीव पर साक्षात् बरसते, इस स्थूल काशी पर पड़े आवरणों को हटाते उस सूक्ष्म रहस्यमयी काशी का दर्शन करा रहे थे, जिसका दर्शन जन्म-जन्मांतर की तपस्या के बाद फलित होता है।

काशी की इन गलियों में स्वयं को खोजता महा अतिसाधारण से स्थान पर भी ठिठक कर रुक जाता था और प्रकृति के विस्तार में कालधारा का तीव्र प्रवाह उसे उलटी धार में बहाता, पूर्वजन्म के द्वार पर ला खड़ा करता था। ऐसे क्षणों में महा का आलोक से भरा मुखमंडल बाल सुलभ सारल्य के स्थान पर किसी अज्ञात के रहस्य को झलकाने लगता था एवं अविश्वसनीय अचरज से भर इस्माइल, महा को ऐसे तकने लगता था जैसे महा इस स्थान से चिर-परिचित हो।

ऐसे क्षणों में इस्माइल को प्रतीत होता जैसे महा जन्म-मृत्यु के बीच की यात्रा का यात्री न होकर, इस मर्त्य सत्ता से सुदूर किसी अनंत का यात्री है। वास्तविक काशी के धड़कते हुए अंतर के साथ स्वयं के अंतर का संबंध सूत्र जोड़ना ही मानो इस महा की आत्मा का दीक्षा संस्कार है।

महा को सदैव इस अवस्था में देखते इस्माइल मन ही मन जान गया था कि प्रकृति के मर्त्य तत्त्वों से ढली यह काया, अमर्त्य के राज्य को चुनौती देने को जन्मी है। काशी की आड़ी-तिरछी गलियों में ध्यान-निमग्न और विसुध सा महा, बरबस कभी घूमता उस स्थान की ओर पग बढ़ा देता जो उम्र के इस पड़ाव पर अब तक इस्माइल की दृष्टि से भी वंचित था। कभी-कभी तो किन्हीं रहस्यमय भावों में घिरा महा, इस्माइल के लिए पूर्णरूपेण अनजाना एवं अपरिचित हो जाता, जहाँ यह महा अपने इस स्वरूप को खोता उस स्थान से सम्मिश्रित हो धीर-गंभीर हो जाता था।

अज्ञानांध विश्व में जब एक श्वान भी श्री शिव की पिंडी पर मूत्र विसर्जन कर इस काशी में मुक्ति पा सकता है, तो दिव्य भविष्य की कामना में वेद पाठ में मग्न हो ज्योतिर्लिंग पर शुद्ध गंगाजल को अर्पण करने वाला, कालचक्र में

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कैसे बँध सकता है? जीवन की समस्त बाह्य जकड़नों से छूटकर, फाल्गुन चतुर्दशी की रात्रि में हर काशीवासी भाँग लेकर जैसे जन्मों-जन्म की खुमारी को प्राप्त करता पूर्ण रात्रि काशी विश्वनाथ के ज्योतिर्लिंग पर ऐसे अखंड जलधारा का प्रवाह करता है, जैसे आज की रात्रि ही उसे मुक्ति मिल जाएगी।

सर्वप्रकाशक ज्योतिर्लिंग ज्योति उठाता, मानो महाशिवरात्रि पर प्रत्येक जीव के लिए मुक्ति का संदेश लाता है। श्रद्धा भरे अपने नेत्रों को उस ज्योतिर्मय लिंग पर गड़ाए प्रत्येक काशीवासी आज मानो उस स्वर्णिम हाथ की प्रतीक्षा में मग्न है, जो उसे अपने साथ खींचकर मुक्ति के द्वार पर ले जाएगा।

जीवन के इस अंतविहीन खेल में महा, इस्माइल के लिए एक अस्पष्ट किंतु विशाल समाधि का संदेश लेकर आया था। महा के हृदय से स्वयं का हृदय जोड़ते ही इस्माइल जान गया था कि जीवन के धुँधले गहन गर्त से उठाकर, महा उसे सुसंगीत से उठने वाले दिव्य चमत्कारिक सुरों के द्वार पर ले आया था। जहाँ इस्माइल का रोम-रोम पुलकित होता शहनाई से वे सुर उठाने लगा था, जो उसे आत्म-ऊर्ध्वारोहण की ओर ले जा रहे थे। अब शहनाई से उठता प्रत्येक सुर उसे नियति के किसी गुह्य अर्थ से परिचित करवाता 'स्व' का अर्थ देने लगा था और 'स्व' के अर्थ की साधना ही परमार्थ के मार्ग का द्वार खोलती है।

आज अतुल वैभव से भरी महाशिवरात्रि की रात्रि में अपने संपूर्ण हृदय को शिव के चरणों में अर्पित करती यशोदा, रात्रि जागरण करते हुए फूल-मालाएँ बेच रही थी और किसी दिव्य रस का पान कर निशि के तारों को देखता महा, इस्माइल चाचा के साथ श्मशान विनायक के देवालय के समीप से गुज़र रहा था।

निज प्रकृति की सुशोध करता महा किसी पूर्व गंध को पा जैसे एक भीषण ऊर्जा से आविष्ट हो गया था। कोई प्रचंड शक्ति उसे विक्षिप्त कर रही थी और महा के पग जस के तस उस स्थान पर स्थिर हो गए थे। इस्माइल देख रहा था कि अनंत के विस्तार को तकती दृष्टि को ले महा के अधर सूखने लगे थे और विक्षिप्त होता वह स्वयं के शरीर के साथ हृदय एवं बुद्धि का समन्वय तोड़ चला था। वर्तमान के प्रति स्मृतिलोप की इस अवस्था में, जैसे कोई पूर्वजन्म की स्मृति दृष्टि के समक्ष आ खड़ी थी और उसके रहस्य को जानने

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

महा की दृष्टि यहाँ-वहाँ घूम रही थी।

यह लोक मान्यता है कि सत्य के उद्धारक राजा हरिश्चंद्र ने हरिश्चंद्र घाट पर स्थित श्मशान में निज स्वतंत्रता खो, क्षुद्र चांडाल का दासत्व स्वीकार कर शवों को जलाते हुए चिताग्नि के प्रकाश के समान सत्य के प्रकाश को फैलाया था। परंतु इस महाश्मशान काशी का प्राचीन श्मशान जमघाट था, जो संकठाघाट से सटा हुआ था।

रात्रि के इस महागर्त के भीतर, जैसे कोई दिव्यता महा को स्पर्श कर गई थी या फिर कोई प्राचीन प्रेत महा की काया में प्रविष्ट हो गया था, यह इस्माइल को समझ नहीं आ रहा था। निज अनिष्ट पूर्वज्ञान की तमसील लहरों में डूबती महा की दृष्टि क्षण को कालिमा से भर जाती, तो दूसरे ही क्षण भीतर का देव जागकर प्रकाश फैलाता दृष्टि को दिव्यता प्रदान कर जाता था। इस दिव्यता के साक्षात्कार में आज इस्माइल स्वयं को अभागा मान रहा था क्योंकि इस दिव्य दृष्टि से अभिमोहित होकर ही तो वह शहनाई से उठते अपूर्व दिव्य सुरों से साक्षात्कार करता था। अभाग्यवश आज वह स्वयं के साथ शहनाई नहीं लाया था।

अब महा की दृष्टि पूर्णरूपेण दिव्य हो चली थी एवं उसमें झाँकता इस्माइल भूतकाल की महा के साथ बिताई घड़ियों की स्मृतियों में खो गया था। महा के आवेश भाव को देखकर इस्माइल उन दिवसों को याद कर रहा था, जब उमंग से भरा वह कभी सोनारपुरा की तिमुहानी सड़क से, तो कभी अस्सी घाट से तुलसी घाट होते हुए महा के साथ हरिश्चंद्र घाट पर आ बैठता था। उन घड़ियों में कोई परम ज्योतिर्मय गुह्यता महा के हृदय में शक्ति का रूप धर आ समाती थी। स्वयं में परिव्याप्त परम चेतना को उपलब्ध महा जलती चिताओं को तकता ऐसे मुस्कराता था, जैसे वह साक्षात् मुस्कराते काशी विश्वनाथ को देख रहा है, जो परम का स्मित लेकर शव के कान में तारकमंत्र फूँकते हैं। काशी विश्वनाथ के यज्ञ भवन में होते शवदाह रूपी यज्ञ को देखते, महा का मुखमंडल जन्म और मृत्यु से नितांत अपरिचित प्रदीप्त हो उठता। उसके इस प्रदीप्त मुखमंडल पर दृष्टि पड़ते ही जैसे इस्माइल का अंतर्वासी देवत्व उसकी आत्मा को आलोड़ित कर देता एवं शहनाई स्वतः ही मुँह से जा लगती थी। अब तक आवेशी अग्रहणीय तरंगों को ग्रहण करता इस्माइल, अश्रु बहाता उन सुरों को

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

उठाने लगता जिनका साक्षात्कार आज से पूर्व उसे भी नहीं हुआ था। शरीर की शिराओं में रक्त कणों का वेग तीव्र हो जाता था एवं मन और बुद्धि शून्य होकर आत्मा में जा समाते थे एवं इस्माइल के लिए काबे का द्वार खुल जाता था।

कितनी दुर्लभ घड़ियाँ थीं वे जब इस्माइल की जीवन यात्रा एक अनंत के उत्सव में परिवर्तित हो जाती थी, परंतु आज इस महाशिवरात्रि पर वह इस घड़ी से चूक गया था। इस महानिशा में किसी अनाभिव्यक्त से समस्वरता स्थापित करता महा का मुखमंडल, ज्ञान गरिमा की दिव्यता में दमक रहा था। मर्त्यता के इस राज्य में जैसे अमर का गान उठाता, कुछ पग बढ़ाता वह लगभग चीख़ उठा था-

"देखो चाचा, देखो, सामने चिता जल रही है।"

कालचक्र ने इस घड़ी जैसे कोई आघात कर इस्माइल को स्तब्ध कर दिया था। पूर्वजन्म के प्रति संशयशाली मन अब काँप उठा था क्योंकि उसे ज्ञात था कि चौक बाज़ार स्थित श्मशान विनायक देवालय से चार फ़रलांग सीधी रेखा में ही जमघाट तक प्राचीन श्मशान का विस्तार था। काल के उस खंड में विश्वेश्वरगंज, चौखम्बा, बूला नाला इत्यादि निर्जन स्थान थे, जहाँ झाड़-झंखाड़ एवं गंदलाए जल के अतिरिक्त कुछ न था एवं श्मशान के समीप ही ज्ञानवापी की सीढ़ी के समक्ष काशी विश्वनाथ का मंदिर था।

किसी अपूर्व संशय की किरण से छिन्न-भिन्न होता इस्माइल, युग-युगांतर की यात्रा को महा की दृष्टि में किसी सतत घूमते चक्र की भाँति देख रहा था और स्वयं को प्रकृति की सीमा में बँधा पा, वह आश्चर्यचकित था कि महा को यह कैसे ज्ञात है कि पूर्व के किसी काल में इस स्थान पर श्मशान हुआ करता था? महा के प्रति उसके रहस्यमय हृदय का रहस्य और अधिक गहरा गया था।

पागल सी एक अवस्था से काल की इस घड़ी महा सामान्य अवस्था को प्राप्त हुआ ही था कि आठ-दस पग बढ़ाते, वह पुनः विक्षिप्त सा चीख़ उठा-

"देखो चाचा, वह अघोरी निशा के इस गहन अंधकार में शव पर स्थित साधना में लीन है।"

बोलते महा के स्वरों का आरोह-अवरोह कुछ विचित्र था एवं काया

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कंपित हो रही थी। काल की ये घड़ियाँ जैसे एक के पश्चात् एक आघात कर रही थी और विह्वल अवस्था को प्राप्त इस्माइल की संपूर्ण शक्ति तिरोहित हो चली थी। आँखें फाड़कर महा पर दृष्टि डालता, वह सोच रहा था कि महा को 'अघोर' एवं 'अघोरी' जैसे शब्दों का ज्ञान कैसे है? भय के कारण उसकी काया में एक अद्भुत जड़िमा आ गई थी और महा अँगुली का इशारा करता यथावत् बोला-

"उस अघोरी के समक्ष एक तरुण विनती करता कह रहा है- मुझे दीक्षित कीजिए।"

अपने नेत्रों एवं श्रोत्रों पर अविश्वास करता इस्माइल अस्तित्व के इस रहस्य से काँपता उस ओर देखने लगा, जहाँ महा ने इंगित किया था। उसने देखा कि एक फटेहाल भिखारी विक्षिप्त सा व्योम की ओर दृष्टि गड़ाए स्थिर था। मुँह से लार टपक रही थी एवं हाथ-पाँव मैल की कालिमा से सने थे। दृष्टि की कोर गीज से सनी थी एवं केश रूखे-सूखे मिट्टी से सने थे, जैसे कई दिवसों से स्नान न किया हो। स्वनेत्रों के समक्ष जैसे रहस्य और गहराते जा रहे थे एवं इस्माइल काँप रहा था। लड़खड़ाती सी वाणी में महा जस का तस बोल रहा था-

"देखो चाचा, अब वह तरुण अघोरी के चरणों पर अपना मस्तक रख दीक्षा के लिए गिड़गिड़ा रहा है एवं अघोरी अपनी लाल क्रुद्ध आँखों से उसे घूरता, अब उसकी पीठ पर लातें मार रहा है।"

इस्माइल ने देखा कि कहीं से एक तरुण आया और भिखारी के चरणों को स्पर्श करता वह आगे बढ़ गया और भिखारी व्योम को तकता अनर्गल बकने लगा था। अब महा की लड़खड़ाती वाणी क्रोध के स्वरों में परिवर्तित होती, इस्माइल के कर्णपटल पर गूँजने लगी-

"भाग मूर्ख, यहाँ से भाग, यह तेरा मार्ग नहीं है। शक्ति से वंचित शव, शिव नहीं हो सकता। नाद से बिंदु एवं बिंदु में नाद, इसके पश्चात् इसी नाद बिंदु से सृष्टि का सृजन तू क्या समझेगा? यह अघोर तंत्र तेरा पथ नहीं, तेरा मार्ग तो कुछ और ही है, अभी तेरा समय नहीं पका है। निश्चित ही भविष्य के किसी जन्म में तुझे तेरा पथ मिल जाएगा और उसे दर्शाने वाला गुरु भी। लाख जतन कर या दर-दर भटक, इस जन्म में तो हर द्वार पर तू मात्र यही सुनेगा-

'पर याद रख मैं तेरा गुरु नहीं।' "

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अध्याय-१५

आज विश्वेश्वर मंदिर के गर्भगृह में परम की ज्योति उठाते भूतेश्वर, गौराधीश, महाश्मशानाधिपति काशी विश्वनाथ सर्वदेवमय श्री विष्णु सहस्रनाम के जाप में लीन, ब्रह्मांड के कण-कण को आंदोलित कर रहे हैं। अपने दिव्य आलोक से संपूर्ण काशी को आलोकित करते, अब वे गौरी सहित रामनगर की ओर प्रशस्त हो चले। श्रीराम का चिंतन करते अनाहत नाद उठाते वे बोल रहे हैं-

''हे इंद्रियातीत! जन्म, अस्तित्व आदि भाव विकार रहित परमात्मन् श्रीराम! इस चित्र-विचित्र जगत् का आप ही ने निर्माण किया है और इसमें स्वयं आपने ही आत्मरूप से प्रवेश भी किया है। आपकी और मेरी आत्मा अभिन्न हैं।''

''मुमूर्षोर्मणिकर्ण्यां तु अर्धोदकनिवासिनः।
अहं ददामि ते मन्त्रं तारकं ब्रह्मदायकम्।।''

''परम ज्योतिर्मय 'श्रीराम' नाम ही तो तारकमंत्र बन काशी में मरने वालों को मुक्ति देता है। समस्त ब्रह्मांड ही आप 'श्रीराम' की लीला मात्र का रंगमंच है और आपकी इसी रामलीला का रसपान करता मैं परम तृप्ति को प्राप्त होता हूँ।''

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

महा सदा माँ के मातृत्व से आप्लावित होता रहता था। उसे क्षणिक भी उदास देख यशोदा मातृत्व का वह सुधा-लेप लगाती थी कि वह प्रफुल्लित हो उठता था। इस सत्य को यशोदा ने अपने आलोकित मन के अंदर ग्रहण कर लिया था कि श्मशान के प्रति महा का आकर्षण किसी दिव्य स्फुरण तथा दिव्य स्त्रोत से आया है। अज्ञात की भविष्यवाणी का देवता उसे इंगित कर रहा था कि महा रूपी ब्रह्मस्वरूप काया को श्मशान अधिक स्थिरता से क़ायम रख सकता है। अब वह स्वप्न में देखे महा के चांडाल रूप को एवं मन के अविश्वास को ऐसे नीचे धकेल रही थी, जैसे बाबा विश्वनाथ इस अकल्याण को कल्याण की ओर मोड़ रहे हैं।

काशीवास एवं काशी मरणान्मुक्ति, अब यशोदा के लिए मात्र शब्द न रहकर महान आध्यात्मिक और गुह्य ज्ञान से युक्त जीवन तत्त्व बन चले थे। अब वह जान चली थी कि लौकिक अर्थ को दर्शाती काशी के भीतर कोई महान गुह्य अर्थ छिपा हुआ है। अब वह नन्हे महा को आए दिन कहती रहती-

"तू अपने आपको जान।"

अब जब महा अपने पग श्मशान की ओर बढ़ाता तो यशोदा को प्रतीत होता, जैसे जलती चिताओं की मर्त्य सत्ता के भीतर कोई अमर्त्य का देव, महा को आवाहन दे रहा है। तभी तो जन्म के प्रथम दिवस ही वह इस मर्त्य सत्ता के मध्य ही चिताग्नि सा आलोकित हो, जीवन की कुछ प्रथम साँसें ले रहा था।

अब यशोदा की अंत:प्रेरणा की शक्ति इस निश्चय पर पहुँच चुकी थी कि जब महा स्थिति-सत्य को समझने लायक हो जाएगा, तब वह अवश्य ही महा से जुड़ा सत्य एवं अँगूठे पर दाग़ का रहस्य उसे बता देगी, क्योंकि इस उम्र में भी महा सदैव उससे इस दाग़ के बारे में पूछता रहता था और वह उसे टाल जाती थी।

इस्माइल चाचा के साथ काशी की गलियों में और घाटों पर विचरते हुए यह नन्हा जीव, यह समझने लगा था कि जिस काशी में वह विचर रहा है वह

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

वास्तविक काशी नहीं। वास्तविक रहस्यमयी काशी तो एक घने पर्दे से ढँकी हुई है और अनेक रहस्यमयी सत्य का आश्रय स्थल बन उसने उन्हें अपने गर्भ में छिपा रखा है। इस्माइल चाचा भी उससे सदैव कहा करते थे-

"इस काशी की एक महान गंभीरतर आत्मा और आंतरतर सत्ता है, जो बाह्य दृष्टिगत भौतिक काशी के ऊपरी तल के पीछे छिपी है।"

इस्माइल चाचा को तब अत्यधिक आश्चर्य हुआ था, जब उस सायंकाल हरिश्चंद्र घाट पर जलती चिताओं को देखता महा, उन चिताओं के पीछे के एक गुह्य, अर्थयुक्त, रहस्यमयी ज्ञान पर से परदा उठा मानो किसी भावमय दशा में बोल उठा था-

"काशी मरणान्मुक्ति तो एक ऐसी स्थिति है जो किसी अज्ञात गुफा में छिपी बैठी है और किसी-किसी के लिए वह वहाँ से निकल, स्वप्रकाश में अभिव्यक्त हो उठती है।"

इस क्षण इस्माइल अवाक् महा की वाणी को सुन रहा था और उसे स्पष्ट ज्ञात हो गया था कि यह स्वर महा का नहीं, अपितु गुह्य ज्ञान को प्रकाशित करने को व्याकुल विचरती किसी ऋषि आत्मा का है, क्योंकि न तो महा इन शब्दों से परिचित था और न ही वाणी का स्वर महा का था।

अब इस्माइल इस निश्चय पर पहुँच चुका था कि निश्चित ही महा कोई बिरली आत्मा है, जिसकी चेतना को कोई महान संत एवं अन्य ऋषि आत्माएँ जगा रहे हैं, क्योंकि किसी संत का महा के स्वप्न में आना इस्माइल जान चुका था, महा ने स्वयं उसे बताया था।

क्या वे संत कबीर थे! सोचकर इस्माइल भाव-विभोर हो गया था। संत का स्वप्न में आना एवं हरिश्चंद्र घाट पर महा के साथ घटी घटना को इस्माइल ने यशोदा को कह सुनाया था। माँ का हृदय था सो क्षण दो क्षण महा के यों श्मशान में विचरने से सिहर उठता था और अपने पुत्र के बालोचित व्यवहार को देखने को तरस उठता था। परंतु यशोदा का यह व्यवहार भी अब क्षणिक हो

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

चला था।

काशी में इन दिनों भिन्न-भिन्न स्थानों पर रामलीला का मंचन चल रहा था, लीलां बड़ी ही मनोहर होती थी। भावावेश और उन्मत्त भाव से प्रत्येक काशीवासी थिरक उठता था। भाव-गद्गद होकर यशोदा भी महा को लेकर कभी रामनगर जाती, तो कभी किसी और स्थान पर। समस्त काशीवासी भाँग की मस्ती में अन्य कार्यों से स्वयं को हटाकर, रामलीला के आयोजन में लगे रहते थे। महा अत्यंत ही प्रसन्न था और उसकी प्रसन्नता यशोदा को भी प्रसन्नता दे रही थी। श्रीराम की यशस्वी गाथा को सरल अवधी में लिख महात्मा तुलसीदास ने श्रीराम की महिमा को जन-जन तक पहुँचाया था।

रामलीला नाट्यशैली की एक कच्ची, दरदरी मगर सतरंगी विधा है, जो जन-जन में लोकप्रिय थी। महा देख रहा था कि रावण की लंका एक बड़े मैदान के मध्य काग़ज़ के पुष्ठों एवं मिट्टी से क़िलेनुमा बनाई गई थी, किले पर सुनहरी पन्नियाँ चिपका दी गई थीं, जिससे वह सोने की लंका सी दिख पड़ती थी। मुखौटों से विविध पात्रों के रूप सदृश साकार हो रहे थे। मुख पर वर्णानुसार रंग लेपन, वेष-भूषा, आभूषण, आयुध एवं शृंगार के द्वारा सभी कलाकार रामकथा के वास्तविक पात्र बन सामने आ खड़े हुए थे।

दृष्टि के समक्ष इतने परिवर्तनों में भी एक प्रकार की अपरिवर्तनशील अवस्था में विचरता महा, इस रामलीला में भी प्रकृति के किसी रहस्य को खोजता अपने विचारों को प्रकाशित कर रहा था और विचारों का यही प्रकाश महा के मुखमंडल पर आनंद का रूप धर प्रकाशित हो रहा था। रामलीला की इस विविध रंगी डाल पर बैठ महा की आत्मा पक्षी का रूप धर, अपनी दृष्टि को अप्राप्य आनंद की अभीप्सा में इधर-उधर डोलाती रहती थी।

सुंदरदास के बगीचे से इसरगंगी तालाब की ओर जब राम, सीता और लखन वनवास के लिए प्रस्थान कर रहे थे, तब महा के कर्णपटल पर दशरथ विलाप ''हे राम!'' का शब्द गूँजता यह ज्ञान करा रहा था, जैसे आत्मा से

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

परमात्मा बिछुड़ता कहीं दूर जा रहा है और दशरथ के प्राण परमात्मा की विमुखता से अब माया के कारावास में बंदी हो विलाप कर रहे हैं। अब चाहे रावण-जटायु युद्ध हो, शिला से अहिल्या की मुक्ति, हनुमान का लंका प्रवेश, राम-सुग्रीव की मित्रता या लंका दहन, महा को प्रतीत होता था मानो सारे पात्र स्वयं के भीतर ही स्थित हो अहंकार, मन, बुद्धि, आत्मा, परमात्मा इत्यादि का रहस्य खोल रहे हैं।

पूर्वजन्म के संस्कारों के कारण रहस्य तो दृष्टि के समक्ष अपना परदा उघाड़ रहे थे, परंतु उम्र की इस अवस्था में उसे इन शब्दों का भी ज्ञान न था। कैसी विचित्र स्थिति थी? कभी किसी अनंत का द्वार खुलता, तो तभी मानसिक चेतना अल्प निद्रा में समा उसे वापस वहीं ले आती। कुछ हो रहा है यह निश्चित है, परंतु क्या? न तो ज्ञान है और न ही इसके लिए शब्द।

आज जब चित्रकूट से नाटी इमली की ओर रथ पे सवार राम, लखन और सीता अयोध्या की ओर लौट रहे थे, संपूर्ण मार्ग पुष्पों से पट गया था। राम चरण में स्थित हनुमान पर जब उसने पुष्प फेंके थे, तो आशीष में उठते हनुमान के हाथ को देख वह भावमग्न हो गया था। उसने देखा कि हनुमान के स्थान पर स्वर्णमंडित दिव्यता उठाता एक तेजोमय वृद्ध ब्राह्मण हाथ में लेखनी लिए, लेखन कार्य में मग्न सरस वाणी उठा रहा था-

"अवधपुरी सम प्रिय नहिं सोऊ।
यह प्रसंग जानई कोउ कोऊ।।"

क्षण को प्रतीत हुआ कि अवधपुरी भी काशीपुरी की तरह ही रहस्यमयी हो किसी गुह्य अर्थ को दर्शा रही है, तभी तो उसे भी कोई बिरला ही जान पाता है।

भरत और राम का मिलाप देखकर उसे यों प्रतीत हुआ, जैसे यही तो वह मिलाप है जिसकी खोज में वह जन्म-जन्मांतर से भटक रहा है। "यह भरत-मिलाप मेरे साथ कब होगा?" रात्रि में यह सोचते-सोचते वह निद्रामग्न हो गया।

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

स्वप्न में उसने देखा कि सायंकाल में पंचगंगा घाट की एक सीढ़ी पर बैठा वह देख रहा था कि स्वर्ग, भूतल और पाताल तीनों लोकों को अपनी धारा से आक्रांत करने वाली क्रान्तलोकत्रया त्रिपथगा गंगा यहाँ अंधकार का नाश करने वाले शिव की शक्ति बन, शांत रूप से बह रही है। उस पर कई दीपक जुगनुओं सी चमक उठाते तैर रहे हैं। अब स्वप्न में आने वाली वही दिव्य तेजोमयी आत्मा, अपना स्वर्णिम प्रकाश उठाती उसके निकट आ बिराजी है। स्नेह स्निग्ध स्मित लिए अब वे वृद्ध महात्मा, महा के सिर पर हाथ फेर बोले-

''बुद्धि की चंचलता दारुण दुःख की जननी है। तन-मन को नित्य ही कामदेव बाण से आहत करते ज्ञान रत्न को चुरा लेते हैं।''

महा को प्रतीत हो रहा था जैसे अपनी ही लीला में, स्वर्ण मृग की चाहना में श्रीराम स्वयं चंचल हो दुःख को जन्म दे बैठे एवं उनके मन को आहत कर सीता रूपी ज्ञान रत्न को रावण रूपी कामदेव चुरा बैठा। कबीर पुनः बोल उठे-

''सनक, सनंदन, सुखदेव, योगी, जंगम, यति सभी तो अवसरों को हार बैठते हैं। यहाँ तक कि कभी तो ब्रह्मा, विष्णु और महेश भी अवसर चूक जाते हैं। संत का संग ही जीवन का मर्म है एवं कल्याण ही साधना। संसार रूपी रामलीला को पार करने के लिए राम में रमण करना ही श्रेयस्कर है। रूपांतरित करने वाले राम समय आने पर सब रूपांतरित कर देते हैं।''

''मैं कबीर ज्ञान के इस पाठ में समझा रहा हूँ कि अपने भीतर के निर्गुण राम को मन में समझ कर, उस पर विचार करके ही तू जीवन को जान पाएगा। निर्गुण राम की लीला ही तो जीवन का मर्म है और निर्गुण राम का वास्तविक ज्ञान तो तुझे तेरा गुरु ही देगा। भले ही जीवन के मर्म को समझने में मैं तेरी सहायता करूँ-

'पर याद रख मैं तेरा गुरु नहीं।' ''

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अध्याय-१६

आज कपाल मोचन पर खड़े सर्वसत्त्वावलम्बन, श्रुतिमान्, अमृतरूप काशी विश्वनाथ वासुकिनाग को अपने कर में कंगन के समान धारण करते घोर नाद निनादित कर रहे हैं-

''मैं परब्रह्म तीनों गुणों से रहित शिव ही ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश आदि नामों से सबका लक्ष्य हूँ। इस महाश्मशान को भी आनंदवन समझता मैं, यहाँ अमृत आनंद कल्लोल क्रीड़ा में मग्न, सबको तारक ब्रह्म का उपदेश देता हूँ।''

''जीव के लिए यह शरीर आदि मोह के जाल एवं रज्जु में साँप के समान कल्पना ही माया है एवं माया से ग्रसित जीव का मन अंकुश छोड़ पाप कर्म में लीन हो जाता है।''

''मुझ ज्योतिर्मय रुद्र स्वरूप, हे कालभैरव! आपसे काल भी डरता है। अत: इस काशीपुरी पर यम के ऊपर आपका अधिकार है, जहाँ आप पाप में रत जीव को श्मशान स्तंभ से बाँध, पिशाच यातना देते मुक्ति के द्वार पर ले जाते हैं एवं आप भी इस काशी में मुझ शिव के सद्दृश ही पूजनीय हैं।''

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

भूतकाल की छाया पर लटकी एक अर्द्धज्योति कभी इस्माइल के मन को प्रकाशित करती थी, तो कभी अपनी लौ को मंद कर वह मन को घने अंधकार के राज्य में ले जाती थी। कैसा अपरिवर्तित विधान था जिसे इस्माइल चाहकर भी परिवर्तित नहीं कर सकता था। यों तो काशी के सारे गुरु मन की निश्छलता में आत्मा में गहराई लिए इस्माइल के साथ विचरते थे, परंतु निज संबंध के इस दृढ़ धागे में जैसे उसका मुसलमान होना एक हल्की गठान थी। सबके साथ अंतरंगता में भी कहीं कुछ छूट ही जाता था एवं उस क्षण इस्माइल स्वयं को नितांत अकेला पाता था। कालनिर्मित समाज की यह चौखट स्वयं के मूल्य निर्धारण में उसके इस प्रश्न का उत्तर उसे कभी नहीं दे पाती थी कि जब प्रकृति की प्राणवायु सभी की देह को एक जैसा पोषित करती है, तो हिन्दू-मुसलमान के मध्य फिर यह भेद क्यों? बैर क्यों? न जाने स्वयं के निर्वाण की सांध्य बेला की किस घड़ी में कबीर कह गए थे-

"हम न मरहिं, मरिहै संसारा।"

ग्रीष्म की इस दग्ध रात्रि में खटिया पर लेटा इस्माइल करवट बदलता कबीर के इन अग्नि के समान प्रज्वलित होते शब्दों से दग्ध हो रहा था। किस महान एकांत से उठकर कबीर ने ये शब्द गुनगुनाए थे, जैसे बोधिवृक्ष के नीचे बैठे निर्वाण को उपलब्ध बुद्ध ने अपनी दृष्टि खोल संसार में घूमते जीवित शवों को देखा हो।

अपने सुसीमित मानव प्राणों से युक्त उसके ब्राह्मण मित्रों का उसे न छूना अंतर को कसमसा देता था, जबकि उन्हीं ब्राह्मण मित्रों से अमृत तरंग उठाते उस मुक्ति के संदेश को उसने आत्मग्राह्य किया था कि वस्तुतः तो जीव को मानव-काया का उपलब्ध होना ही सौभाग्य है। उस पर यदि गुरुप्रसाद रूपी वर्षा के अमृतकण बरस जाएँ और इतना होने पर भी यदि मनुष्य हृदयमंदिर में स्थित ईश्वर के दर्शन से वंचित हो मुक्त न हो, तो यह आत्मघात ही है। जब प्रत्येक मानव-काया के हृदय के भीतर ईश्वर का निवास है, तो फिर मानव होकर मानव को न छूना क्या आत्मघात नहीं? शायद इसलिए कबीर कहते थे-

"हम न मरहिं, मरिहै संसारा।"

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अपने बुझे से विदीर्ण अंतर को ले इस्माइल उठ बैठा और शहनाई को मुँह से लगा राग शिवरंजनी छेड़ बैठा था। काशी विश्वनाथ जैसे जन्म-जन्मांतर की प्रार्थना को सफल करते उन सुरों में उतर आए हों एवं हृदय में छिपी अनंत दृष्टि के समक्ष उतरते ही अंतर के सारे संघर्षों को लील गए हो। संपूर्ण रात्रि जैसे पल भर में बीत गई थी।

फ़जर की नमाज़ के बाद गंगा में स्थिर हो रियाज़ करते जब पुनः प्राण व्याकुल होने लगे, तो द्वार पर कबीर रूपी दिव्य पुष्प 'महा' खिला हुआ खड़ा था। इस्माइल को प्रतीत हुआ, जैसे कबीर स्वयं महा का रूप ले उसके दुःख एवं घावों को भरने इस क्षण द्वार पर खड़े हैं। सारे व्यथित जुलाहों को भी यह नन्हा कबीर कितनी विशाल शांति प्रदान करता था। इस्माइल के संतप्त मन में महा को देखते ही जैसे अमृतवर्षा के कण बरस पड़े एवं मन तृप्त हो चला था।

महा के लिए तो इस्माइल चाचा सुगंधित रहस्यों से भरी काशी में वेद-पुराणों के ज्ञाता, किसी पौराणिक ऋषि के समान थे जो अपनी कथा-दर-कथा से महा के लिए काशी पर जन्मे रहस्यों की परतों को परत-दर-परत उघाड़ते थे। कभी उनकी वाणी में कोई पौराणिक ऋषि गूँजता, तो कभी कोई नवीन इतिहासकार।

जीवन की इच्छाओं के नानाविध कोलाहलों से कोसों दूर नौ वर्षीय महा, आज भी काशी के प्रति आश्चर्यचकित एवं उल्लासित भाव से इस्माइल चाचा के साथ कपाल मोचन पर ऐसे विचर रहा था, जैसे संपूर्ण काशी के रहस्यों को ज्ञात करने के लिए कोई जिज्ञासु काशी में विचरता, काशी के स्थान-स्थान और कण-कण से वार्त्तालाप करने में मग्न हो। एक रहस्यमय दिव्यता का अभीप्सु महा, अपनी अभीप्सा में इस्माइल चाचा से पूछ बैठा-

"यह कालभैरव कौन हैं?"

जैसे पुनः किसी ऋषि वाणी को धरा पर उतारते इस्माइल ने उत्तर दिया था-

"देवात्मा भी कभी श्रांत एवं क्लांत हो अज्ञान के सुदृढ़ पाश में बँध,

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अहंकार उठाती है। अपनी सर्वश्रेष्ठता को लेकर, निज स्वरूप को खो ब्रह्मा और विष्णु भी इस अर्थहीन विवाद में पड़ गए कि परम तत्त्व एवं ब्रह्मांड को धारण करने वाला, उनमें से सर्वश्रेष्ठ कौन है? महर्षियों ने श्री विष्णु को उनकी अंतर्सत्ता क़ा भान करा शांत कर दिया। परंतु स्वयं के अहंकार की शक्ति से भरे ब्रह्मा, जब शिव निंदा में लीन थे तब भीषण भैरव महाकाल का एक गहनतर निनाद गूँजा एवं सृष्टि काँप उठी। शिव ने भैरव का रूप धारण कर ब्रह्मा के उस पाँचवे मुख को अपने वामहस्त के नखों से नोच लिया, जिससे शिव निंदा हुई थी। ब्रह्मा का यह सिर अब भैरव के वामहस्त से चिपक गया। ब्रह्महत्या के पाप से मुक्ति हेतु त्रैलोक्य भ्रमण करते जब भैरव इस काशीपुरी में प्रविष्ट हुए तो ब्रह्मा का कपाल, भैरव के वामहस्त से त्रिपथगा गंगा के किनारे इस स्थान पर छूट गया एवं भैरव ब्रह्महत्या से मुक्त हो गए। तब शिव ने उन्हें वरदान दिया-

'मुझ ज्योतिर्मय रुद्रस्वरूप, हे कालभैरव! आपसे काल भी डरेगा एवं काशीपुरी में यम के ऊपर आपका अधिकार होगा, जहाँ आप पाप में रत जीव को श्मशान स्तंभ से बाँध, पिशाच यातना देते मुक्ति के द्वार पर ले जाएँगे एवं आप भी इस काशी में मुझ शिव के सदृश ही पूजनीय होंगे।''

जैसे किसी महाचेतना के द्वार पर खड़े हो अज्ञात की कामना भरे हृदय से महा ने प्रश्न किया-

''यह श्मशान स्तंभ कहाँ है?''

मुखमंडल पर सतत बदलते भावों में इस्माइल की बेचैनी स्पष्ट झलक रही थी। मंहा के इस प्रश्न ने जैसे उसकी क्लांत तंद्रा को किसी विद्युत् गर्जन से तोड़ दिया था और दूषित हृदय ले वह बोल उठा-

''नीचे से ऊपर तक सुंदरतम मूर्तियों से ढँका यह चालीस फुट ऊँचा स्तंभ, 'लाट भैरो' कहा जाता था।''

इस्माइल की इस कथनी में जैसे महा को काल के किसी आघात के स्वर सुनाई दे रहे थे। काल की इन घड़ियों में यह बालक पुनः प्रश्न कर बैठा-

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

''परंतु अब यह कहाँ है?''

हृदय क्षेत्र में जैसे कोई ख़लल मचा हो एवं सभ्यता का चँवर ओढ़े मानव के तन से चँवर खिसक गया हो और शब्द घृणा से भर उठे हों, इस्माइल ऐसे ही शब्दों में बोल उठा-

''उसे तो हिन्दू-मुसलमान के दंगे खा गए बेटा।''

कँपकँपाते स्वरों के साथ इस्माइल के नेत्रों में अब अश्रुबिंदु भी छलक आए थे। दिन-रात जिस अग्नि में झुलसता था, वह लपलपाती पीड़ा बन इस्माइल के स्वरों में गूँज रही थी-

''विश्वनाथ मंदिर के पास वाले रिक्त स्थान में हिन्दू मंदिर बनवा रहे थे एवं दंगों में मुसलमानों ने उसे तोड़ दिया। विषाद एवं बदले की भावना में हिन्दुओं ने भी कई मुसलमानों को काट फेंका एवं इस बदले में मुसलमानों ने हमला कर लाट को तोड़ डाला था।''

इस्माइल के स्वरों में उसके अंतर की दरिद्रता स्पष्ट झलक रही थी कि वह इतना धनी नहीं कि कोई ऐसा संसार निर्मित कर सके, जहाँ वह इस महाभयंकर धर्म के दावानल को शांत कर प्रकृति की उस सहजता एवं सरलता को पुनः स्थापित करे, जहाँ प्रत्येक जीव अपनी निज स्वतंत्रता में स्वयं को पूर्ण शांति में विकसित कर सके।

ग्रीष्म की इस तपन भरी रात्रि में माँ के पास लेटे महा के कर्णपटल पर अब भी इस्माइल चाचा के श्रांत एवं क्लांत स्वर गूँज रहे थे। क्या होता है धर्म? प्रकृति की सहजता एवं सरलता क्या है? प्रश्नों को सोचते जैसे ही महा पलकें मूँदता, दृष्टि के समक्ष सर्वत्र लहू का लाल सुर्ख़ रंग आ घूमता। उसे प्रतीत होता जैसे निर्मल गंगा भी कटी गायों के रक्त से लाल सुर्ख़ होती बह रही है। भीतर की इस उथल-पुथल में कब वह निद्रामग्न हो गया उसे ज्ञात न हुआ था एवं अब वह पुनः स्वप्न में कबीर को देख रहा था।

भोर अँधेरे श्वेत वस्त्र धारण किए कबीर उसकी अँगुली थामे विश्वनाथ

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मंदिर के निकट वाली मस्जिद की दीवार के सहारे स्थिर हो, उससे कह रहे थे-

"देवत्व का कृत्रिम वस्त्र ओढ़े मानव का मन यदि कालिमा से भरा हो, तो देवालय में मूर्ति के समक्ष ललाट को रगड़ने अथवा नमाज़ में सिर को झुकाने से क्या लाभ? गंदलाए मन को लिए गंगाजल में स्नान, काया को पवित्र नहीं करता। भीतर की निजहीनता में स्वयं के धर्म को सर्वोपरि दर्शा कर, यदि मानव एक-दूसरे का रक्त बहाता है एवं स्वयं को दीन बताता है, तो ऐसे मानव के लिए नमाज़ पढ़ना, वुजू करना या काबे जाने का कोई महत्त्व नहीं। पापी हृदय से किया एकादशी का व्रत या मंदिर में प्रार्थना, सभी व्यर्थ है। घट-घट में बसने वाला ईश्वर मात्र मंदिरों और मस्जिदों में ही नहीं बसता।"

"यदि परमात्मा के इस अभियान में तुझे उससे साक्षात्कार करना है, तो स्वयं के घट के भीतर झाँकना ही पड़ेगा, राम-रहीम वहीं खड़े मुस्करा रहे हैं। यह कबीर तो अल्लाह एवं राम दोनों का पुत्र है, वही कबीर के पीर भी हैं एवं गुरु भी।"

ईश्वर प्रदत्त कोई शक्ति जैसे महा में संचारित हो रही थी। सर्वत्र फैले प्रकाश में आनंदमय महा के कर्णपटल पर मस्जिद से आते अज़ान के स्वर एवं मंदिर से उठते घंटानाद निनादित हो रहे थे कि कबीर पुनः बोल उठे-

"अपने बाह्य कर्ण को बंद कर ले। तुझे अज़ानों के स्वर एवं आरतियों के गान से क्या लेना देना? स्वयं के नितांत एकाकीपन में आत्मभाव को साध तुझे तेरे स्वयं के भीतर का अनाहत नाद सुनना है।"

एकाएक पंचमंदिर से उठते घंटनादों से महा की आँखें खुल गईं एवं स्वप्न टूट गया। परंतु मंदिर के प्रत्येक घंटनाद के साथ महा के कर्णपटल पर कबीर के ये शब्द अब भी गूँज रहे थे-

"भीतर की दिव्यता में कोई महान और विराट प्रक्रिया ही तुझे इस अनाहत नाद को सुनवा सकती है, जो सद्गुरु के बिना संभव नहीं-

'पर याद रख मैं तेरा गुरु नहीं।' "

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अध्याय-१७

परम समाधि के द्वारा अमृत का आस्वादन कर अब श्मशानारण्यवासी, समाधिवेद्य, वेदान्तज्ञाता काशी विश्वनाथ महाश्मशान मणिकर्णिका पर विचरते, तेज की असंख्य चिंगारियों से युक्त प्रकाश को उठा रहे हैं। अब ये महायोगी समस्त वेदों का रहस्य उघाड़ते, सामने बहती त्रिपथगा गंगा की ओर दृष्टि डालते अमरघोष उठा रहे हैं-

''इच्छा, ज्ञान एवं क्रिया रूपी तीनों शक्तियों से संपन्न इस त्रिपथगा गंगा के गर्भ में, मेरे तेज का रूप धर अग्नि मेरे ही वीर्य से सुरक्षित है। इस जगद्धात्री, परब्रह्मस्वरूपिणी गंगा को मैं अखिल ब्रह्मांड की रक्षा करने के लिए अपनी लीला में इसे अपने मस्तक पर धारण करता हूँ। काल के जिस क्षण, इस ओंकाररूपिणी, उदिताम्बरमार्गा, धर्माधर्मगुणच्छेत्री एवं परब्रह्मप्रकाशिनी गंगा का ज्ञान होता है, काल के उसी क्षण जीव, काशी में प्रवहमान उत्तरवाहिनी गंगा के रहस्य को जानता मुझ शिव से एकाकार हो जाता है।''

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

इस त्रिपथगा गंगा में न जाने कैसी अद्‌भुत शक्ति थी कि महा प्रति दिवस उसे निहारने घाट पर खिंचा चला आता था। चित्रलिखित सा जहाँ का तहाँ बैठा वह घंटों गंगा को निहारता रहता था। गंगा के जल का उसके प्रति आत्मिक स्नेह उसे स्पष्ट झलकने लगा था। गंगा के समक्ष बैठा वह अपने हृदय के आँगन में स्वयं के समस्त भावों की पोटली खोल उनका ढेर लगा देता था, परंतु इस ढेर के भीतर भी गंगा उसे सदैव रहस्यमयी ही प्रतीत होती थी।

अब उसके लिए गंगा-स्नान का प्रत्येक क्षण वह ओस का कण बन चला था, जो हृदय को स्वयं का प्रभात दे जाता था। परंतु प्रभात के इस आलोक में भी गंगा की किसी दिव्यता से तो वह अब भी वंचित था, इसका भान होते ही उसका चित्त उद्विग्न हो जाता था, तथापि गंगा-स्नान में प्राण सदैव पुलकित रहते थे। विविध समय गंगा के विविध रूपों का विविध कोणों से दर्शन, अब उसके स्वयं के लिए जीवन की अनिवार्यता हो चली थी।

उम्र के इन दस वर्षों में जब भी वह गंगा में डुबकी लगाता, तो सदैव यह अनाथवत्सला उसे माँ का प्रतिरूप ही प्रतीत होती थी। गगन का कोना-कोना गुंजारित होता मानो उसे गंगा की दिव्य महिमा का गान सुना रहा था, परंतु कर्णपटल में अभी वह सामर्थ्य नहीं था कि वह उसका श्रवण कर पाता और गंगा दृष्टि के समक्ष इस सृष्टि-मंडल की समस्त शोभा बिखेरती प्रवाहित होती रहती थी।

हरिश्चंद्र घाट पर बैठ जब-जब उसकी दृष्टि स्वयं के दाहिने पग अंगुष्ठ पर पड़ती, तो जले का दाग़ देख हृदय व्याकुल हो उठता और दृष्टि के समक्ष जलती चिता उसकी इस व्याकुलता को वैराग्य की ओर धकेलने लगती थी। दृष्टि के समक्ष जलते शव अपनी मुक्ति-महिमा के चिह्न महा के हृदय पर छोड़ते उसे प्रश्नों के उस अनंत जाल में ला फँसाते, जिनके उत्तर पाना अब उसके लिए असंभव हो चला था। चिताग्नि से उसका क्या नाता है? श्मशान उसे इतना आकर्षित क्यों करता है? मरण क्या है? कबीर किस जीवन-वाणी को मुखरित करते हैं? पग अंगुष्ठ पर यह दाग़ कैसा? हृदय की संपूर्ण रस राशि इन प्रश्नों के प्रचंड ताप से सूखती जा रही थी। माँ और इस्माइल चाचा, सदैव इन प्रश्नों के उत्तर टाल जाते थे।

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

"अब पूछूँ भी तो किससे? क्यों दो वर्ष पूर्व उन महात्मा ने कहा था कि चिताग्नि के मध्य ही तुझे मरण का ज्ञान होगा, यह तेरे ललाट पर स्पष्ट लिखा है?"

सोचते महा भीतर एक घुटन महसूस कर रहा था। असंबद्ध प्रश्नों की इस लड़ी में म्लान मुखमंडल तब लालिमा से भर उठता था, जब दृष्टि चिताग्नि से आगे प्रवहमान गंगा पर चली जाती। गंगा की एक गहन अर्थवत्ता को खोजते प्राण पुन: पुष्प की भाँति खिल उठते थे और वह गंगा में स्नान को उतर जाता था।

सखा रूपी गंगाजल, सारे टूटे-बिखरे सूत्रों को जोड़ता पुन: अंतर में शक्ति की बाढ़ ले आता था। कबीर स्वप्न में आ, आत्मा-परमात्मा के मार्ग की ओर इंगित करते थे। गंगा में डुबकी लगाता अब वह उस मार्ग का इस जल से संबंध समझ रहा था। परस्पर जोड़ने का शक्ति संधान जल में ही तो है! जल भी मानो अब कबीरवाणी को मुखरित करता, उससे कहता था-

"जोड़, अपनी आत्मा के तारों को परमात्मा से जोड़, यह संधान ही तेरी मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करेगा।" जल का स्पर्श अब उसके हृदय को भी स्पर्श करता, मुखरित हो उठता-

"संपूर्ण ब्रह्मांड का कण-कण मुझसे ही संगठित है। अत: मुझे माध्यम का रूप दे अपनी आत्मा का संगठन परमात्मा से कर, यही तेरे स्वयं का अर्थ है।"

गंगासुत सा अस्तित्वबोध लिए किसी अदृश्य शक्ति से खिंचता महा, आज ब्रह्ममुहूर्त में दशाश्वमेध घाट पर स्थित अष्टकोणीय चबूतरे पर खड़ा दुग्ध और जल के मिश्रण का अर्घ गंगा को समर्पित कर रहा था। चंद्रकिरणें अब भी अर्द्धचंद्राकार घाटों को प्रकाशित कर रही थीं। अर्घ समर्पित करने के पश्चात् जैसे ही महा की दृष्टि दशाश्वमेध की सीढ़ियों पर पड़ी, उसे दर्शन हुआ कि स्वयं के प्रति भविष्यवाणी करने वाले महात्मा, गंगा-स्नान करने के पश्चात् घाट की सीढ़ियाँ चढ़ रहे हैं। उनके श्वेत-धवल केशों और अंगवस्त्र से गंगाजल की बूँदें घाट की सीढ़ियों पर गिर रही हैं। इस दृश्यमान् सौंदर्य से सम्मोहित होता महा, द्रुत गति से महात्मा की ओर दौड़ा। देवालय के गर्भगृह में स्थित देव की मूर्ति के सदृश देदीप्यमान महात्मा को साष्टांग नमन कर जैसे ही महा खड़ा

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हुआ, उस पर कृपा भरी दृष्टि डाल महात्मा बोले-

"ज्ञानवान् भव।"

महात्मा का मुखमंडल त्रिदेव द्वारा पूजित महादेव सा दमक रहा था और उनका रोम-रोम करुणा भाव से छलक रहा था। महा को प्रतीत हो रहा था कि मानो यही महात्मा उसे उसके प्रश्नसर्पों से मुक्ति देने वाले, उसके गुरु हैं। भावपूर्ण और सम्मोहित होता, वह प्रश्न कर उठा-

"क्या आप ही मेरे गुरु हैं?"

महा के प्रति पूर्ववत् भाव लिए महात्मा के मुखमंडल पर स्मित गहरा गया और वे बोल उठे-

"कोई दैवीय प्रतिभा लिए तुमने जन्म धारण किया है, तथापि यह प्रतिभा अभी अपनी सुप्त अवस्था में है। अभी तुम दिवस और रात्रि, सुख और दुःख, जय और पराजय, इत्यादि द्वंद्व में भटक रहे हो। परंतु ज्ञान प्राप्त करते ही तुम द्वंद्वातीत हो जाओगे। प्रश्नों से स्वयं को बाँधने का यत्न ही तुम्हें व्यथित कर रहा है।"

महात्मा के स्वर महा के हृदय में आनंद की अमृतवर्षा कर रहे थे। समस्त प्रश्न मानो शून्य हो आकाश के विस्तार में लीन हो गए थे। परंतु पुनः मानो प्रश्न ने कुंडली ख़ोल अपना फन फैलाया और महा पुनः प्रश्न कर बैठा-

"क्या आप ही मेरे गुरु हैं?"

महात्मा का कृपाभाव यथावत् था और मानो कोई देववाणी उतर रही हो, उसी भाव में मग्न वे पुनः बोल उठे-

"नित्य गंगा-स्नान करते हो, तो इस प्राचीन निधि का आज तुम स्थूल परिचय भी पा लो। देवलोक से अवतरित यह 'प्राणदा', प्राणों का दान करती है। भूलोक वासियों को जीवनदान देती यह 'प्राणेशी', कभी किसी को पराया नहीं मानती, इसलिए यह गंगा 'अपरा' कहलाती है।"

हवा के तेज़ झोंके अब महा के शरीर को स्पर्श कर रहे थे और मन में गंगा का हर रूप गुत्थमगुत्था हो रहा था। आँखें अब इस गुत्थी रूपी भ्रम को स्पष्ट झलकाने लगी थीं और यह दृष्टि में आते ही महात्मा हँसकर बोल उठे-

"सारे भ्रमात्मक ज्ञान का निवारण करने वाली इस 'भ्रान्तिज्ञानप्रशमनी'

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

में नित्य स्नान करने के बाद, तुम्हारी दृष्टि में इतनी सारी भ्रांतियाँ शोभा नहीं देतीं। इस 'तिमिरचन्द्रिका' में तो एक बार डुबकी लगाने से ही अज्ञान का तिमिर लुप्त हो जाता है। शोक, मोह, जरा, मृत्यु, क्षुधा एवं पिपासा रूपी ऊर्मियों को हरती, यह शंकरप्रिया 'ऊर्मिला' कहलाती है। तो फिर तुम इसमें नित्य स्नान करते हुए भी गुरु पाने के मोह में पिपासु बन, क्यों शोकग्रस्त हो रहे हो?''

महा को लग रहा था कि जैसे इन महात्मा को गंगा के सारे रूप कंठस्थ हों। क्यों ये महात्मा उसे गंगा के इन रूपों के परिचय की दिशा में प्रेरित कर रहे थे? यह महा को अब भी समझ में नहीं आ रहा था, हालाँकि अब तक गंगा के इन रूपों से वह सर्वथा अनभिज्ञ था। विस्मित, हतप्रभ वह महात्मा को तके जा रहा था और महात्मा बोल रहे थे-

''जागृत, स्वप्न और सुषुप्त अवस्था से परे यह 'तुर्या', 'तारिणी' और 'मोक्षदायिनी' बन, जीवन को भवसागर के पार लगाती है। कई संन्यासी इस 'दीक्षावती' से दीक्षा लेकर जीवों को उद्धार के मार्ग पर प्रशस्त करते हैं।''

महात्मा की यह आत्मिक वाणी सुनकर महा की आँखों से अश्रुधार बह चली और वह मात्र इतना पूछ पाया-

''चिताग्नि के मध्य मरण को जानने से आपका क्या तात्पर्य था?''

महात्मा ने करुणा से महा के सिर पर हाथ फेरा और अत्यधिक कोमल स्वर में कहा-

''यह 'भाग्यवद्दृष्टिगोचरी' अर्थात् भाग्यवानों को प्रत्यक्ष दर्शन देने वाली, किसी दिन तुझे भी तेरे इस प्रश्न का उत्तर दे देगी। तेरा ललाट पढ़ा था, सो कह दिया था। इस गंगा के 'ओंकाररूपिणी', 'उदिताम्बरमार्गा', 'धर्माधर्मगुणच्छेत्री' एवं 'परब्रह्मप्रकाशिनी' रूपों का ज्ञान तो तुझे तेरे गुरु ही देंगे। उस ज्ञान प्राप्ति के क्षण ही तू जीव, काशी में प्रवहमान 'उत्तरवाहिनी' गंगा के रहस्य को जानकर शिव से एकाकार के मार्ग पर प्रशस्त होगा।

इस 'कर्मबन्धविभेदिनी' गंगा में स्नान से और चिताग्नि के मध्य रहकर तेरे सारे शुभाशुभ कर्मजनित बंधन नष्ट हो जाएँगे। यह साधना अभी तुझे अकेले ही करनी है इसलिए मैं भी तुझसे वही कहूँगा, जो कबीर तुझसे कहते हैं-

'पर याद रख मैं तेरा गुरु नहीं।' ''

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अध्याय-१८

महाश्मशान मणिकर्णिका पर प्रलयकालीन अग्नि के समान हलाहल विष का पान कर नीलकण्ठ, रुद्राक्षमालाधारी, अविकारी काशी विश्वनाथ दिगंबर अवस्था में अपने श्री विग्रह को चिताभस्म से विभूषित कर गगनमंडल में अनाहत नाद उठाते, मानो आमंत्रण दे रहे हैं-

''अमरत्व का ज्ञान करते देह को स्वयं काल के चरणों में समर्पित करता जीव काल से ग्रसित नहीं होता, अपितु काल को ग्रसता हुआ मुझ महाकाल के पद पर प्राणप्रतिष्ठित हो स्वसृजित सृष्टि की संहार लीला में मग्न हो जाता है।''

''क्षणभंगुरता में काल की एक ठोकर घट को तोड़ देती है, परंतु कोई बिरला ही जानता है कि काल मारक नहीं, तारक है। घट की क्षणभंगुरता का ज्ञान पाकर ही तू संस्कारों और सौंदर्य की स्मृति से जुड़े द्वैत के पार उस अद्वैत की ओर पग बढ़ाएगा जिसके रंग से रँगा घट दमकता है और जिसका रंग उतरते ही घट, शव कहलाता है।''

''आ, अब मेरे इस महाश्मशान में आ और मरण का पाठ सीख। इसी जीवन और मृत्यु के द्वंद्व के परे तो अद्वैत बसता है। यही वह मणिकर्णिका महाश्मशान रूपी घाट है जिसके पार उतर तुझे भी अद्वैत के आनंद में रमना है।''

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अनंत अज्ञात का कोई सूक्ष्म ज्ञात हिस्सा अब यशोदा की आँखों के सामने उतरने लगा था। मन ही मन यशोदा जान चली थी कि कबीर से जीवन की कला सीखने वाला महा, मृत्यु के राज्य को भी जीतने हरिश्चंद्र घाट पर बैठा कभी जलती चिताओं को देख मुस्कराता है, तो कभी चिता की भस्म को अपने शरीर पर मलता फिरता है। अब वह महा के चेहरे पर दमकता वह रंग देखने लगी थी जो उसके बाह्य रूप की सतह के रंग के पीछे छिपा था। अब उसे अंदेशा हो गया था कि महा किसी भी समय राजा हरिश्चंद्र के समान चांडाल बन, काशी विश्वनाथ के सान्निध्य में उनकी सेवा करता शवों को जलाएगा।

माँ का हृदय था सो क्षण भर के लिए व्यथित हो जाता कि वह अपने पुत्र का स्वप्न में देखा चांडाल रूप सत्य में कैसे देख पाएगी? परंतु काशीवास के इन तेरह वर्षों में यशोदा के भीतर बाबा विश्वनाथ और श्रीहरि भगवान् विष्णु के प्रति अगाध श्रद्धा ने उसे यह गहरा भाव दे दिया था कि काशी में बाबा विश्वनाथ एक चींटी को भी मुक्ति प्रदान करते हैं तथा उसका तक अमंगल नहीं करते हैं। फिर महा तो उनके अभिन्न सखा श्रीहरि के हरिवंश पुराण के पारायण का फल था, तो फिर बाबा विश्वनाथ उसका अमंगल तो स्वयं के स्वप्न में भी नहीं कर सकते। बाबा विश्वनाथ का ही प्रसाद है, शायद इसलिए इस महाश्मशानाधिपति शिव की भूमि पर महा का प्रथम परिचय जलते शव से ही हुआ था, सो अब बाबा विश्वनाथ उसे अपने सान्निध्य में बुला रहे हैं, तो कैसा डरना?

इस नन्हे काशीपति के लालन-पालन का सौभाग्य प्राप्त होना भी उसके लिए तो बाबा विश्वनाथ की कृपा ही थी। बाबा विश्वनाथ के प्रति सद्यः ऋणी होकर अब यशोदा कृतार्थ भाव से भर शांत हो चली थी। यों भी पंचक्रोशी यात्रा के बाद एकादशी का व्रत करके यशोदा अंतःभवन में स्थित ईश्वर से एकात्म भाव प्राप्त करती, एक योगिनी के समान निर्लिप्त जीवन जीने का निश्चय ले चुकी थी।

मन में कभी प्रश्न उठता कि यदि महा स्वप्न में दिखे चांडाल का कर्म

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

करता है, तो फिर वह विश्वनाथ मंदिर और आदिकेशव मंदिर में दर्शन के लिए कैसे जाएगी? तब आले पर रखी शंकर की पिंडी को देख मन में विचार उठता कि यदि ऐसा होता है, तो फिर उस समय के बाद इसी शंकर की पिंडी में बसे शिव ही मेरे लिए काशी विश्वनाथ भी होंगे और श्रीहरि भी।

नदी जिस तरह सागर के लिए लालायित होती है वही ललक बूढ़ा इस्माइल, महा में श्मशान के लिए पाता था। कहीं वह भी यह मानने लगा था कि अवश्य ही श्मशान और चिता से महा का कोई तो संबंध है। श्मशान में महा का जीना कोई दंड नहीं वरन् वह तो उसके लिए वरदान है, यह जानता इस्माइल भी अब महा और श्मशान को एक ही मानने लगा था। शहनाई से उठते सुरों से स्वयं का संबंध और चिताग्नि से उठती लपटों से महा का संबंध, ये अब उसके लिए एक थे।

महा का मन तो मानो अब श्मशान में ही रमता था। हरिश्चंद्र घाट पर घंटों बैठ जलते शवों को देख वह सोचने लगता कि यदि शरीर का अंत मात्र भस्म होना है, तो कबीर जीवन का पाठ सिखाते किस अमर अनाहत नाद की बात करते हैं? यह अद्वैत क्या है? किस राम-रसायन को पीने वाला कभी नहीं मरता? सोचते-सोचते, सदा सोच का अंत उसके दाहिने पाँव के अँगूठे पर जले के दाग़ पर होता था। दाग़ पर दृष्टि पड़ते ही वह किसी शून्य के जगत् में विचरने लगता और जब वह इस जगत् के बाहर क़दम रखता, प्रश्न फिर अपनी कुंडली खोल फन फैलाता कि यह दाग़ कैसे लगा? कई बार यशोदा से उसने यह प्रश्न पूछा था पर यशोदा सदैव इस प्रश्न को टाल जाती थी।

जब-जब वह महाश्मशान मणिकर्णिका पर आ भूतू चाचा से मिलता, तो उसे स्पष्ट ध्यान आता कि उसे देखते ही भूतू चाचा मानो खुली आँखों से कोई स्वप्न देखने लगते थे। वह यह भी जान चला था कि भूतू चाचा चिताग्नि में घृत का हविष्य नहीं डालते वरन् वे तो अपने जीवन का हविष्य चिताग्नि में समर्पित करते, जैसे किसी पाप का प्रायश्चित्त कर रहे थे। कैसा पाप? मन करता कि वह भूतू चाचा से पूछे, परंतु कुछ सोचकर रुक जाता था। भूतू चाचा का

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

उसके प्रति अगाध प्रेम वह सदा ही उनकी दृष्टि में पढ़ लेता था।

आज रात्रि प्रथम बार उसने माँ से एक असत्य कहा था-

"एक आना चाहिए, कचौड़ी खाना है।"

सुनते ही माँ का हृदय खिल उठा था क्योंकि जीवन में प्रथम बार माँ ने अपने इस पुत्र के मुख से उसके समउम्र बालको सी माँग सुनी थी, परंतु यशोदा ने उसकी दृष्टि में इस असत्य को पढ़ लिया था। फिर भी हर्ष के आवेग में अपनी साड़ी के पल्लू में बँधी गठान खोल यशोदा ने उसे दो आने निकालकर देते हुए कहा-

"कुछ और भी खा लेना और कल के लिए भी कुछ ले आना।"

अपनी कोठरी से निकलकर महा गली-गली पार करता दाल मंडी की ओर बढ़ चला। माँ के लिए कुछ फल ख़रीद, कचौड़ी गली पार करता वह तेज़ी से आगे बढ़ गया और उस गली में मुड़ गया जिसके अंतिम सिरे पर महाश्मशान मणिकर्णिका स्थित है। कुछ शवयात्री अर्थी उठाए "राम नाम सत्य है" कहते गली में आगे बढ़ रहे थे। क्षण को महा रुक एक कोने में खड़ा हो गया और अर्थी के स़ामने से गुज़र जाने के बाद, वह मणिकर्णिका घाट पर स्थित भूतू चाचा की कोठरी पर आ पहुँचा था।

कोठरी का द्वार खुला था सो महा भीतर प्रविष्ट हो गया और उसने देखा कि चाचा चूल्हे पर रखी कड़ाही में सब्ज़ी का बघार लगा रहे हैं। पलट कर महा पर दृष्टि पड़ते ही भूतनाथ की आँखों में ऐसे भाव थे, जैसे उसके मुक्तिदाता साक्षात् बाबा विश्वनाथ उसकी कोठरी में पधारे हैं। चित्त मानो असीम आकाश की ऊँचाई को छूने लगा था और आँखों से अश्रु छलक आए थे। तेज़ी से खड़े हो भूतू ने महा को प्रगाढ़ आलिंगन में भर लिया और किसी असीम तृप्ति को पा वह मात्र इतना बोल पाया-

"आज तू यहाँ कैसे आया बेटा?"

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

महा की आँखों में मानो आज एक निश्चय था और वह मात्र इतना बोला-

"वचन दो चाचा, जो माँगूंगा ना नहीं करोगे।"

भावातिरेक में अश्रु बहाता भूतनाथ बोल उठा-

"वचन देता हूँ, जान चाहिए तो जान माँग ले।"

"मैं तुम्हारे साथ चिता जलाने का कार्य करूँगा।"

महा के स्वर में दृढ़ निश्चय था। भूतू यह सुनकर सिर से पाँव तक काँप गया और बोल पड़ा-

"नहीं बेटा नहीं! यह क्षुद्र कर्म तेरा नहीं है, तू तो कोई महात्मा है।"

"तुमने वचन दिया है चाचा, ना नहीं करोगे", महा ने कहा।

"परंतु यह तेरा कार्य नहीं है", भूतू रोते-रोते बोला।

"मैंने निश्चय कर लिया है, मेरा मन तो मात्र चिता में ही रमता है", बोलते महा की आँखें असीम साहस छलका रही थी।

"क्यों चिता को कर्म की प्रथम सीढ़ी बना रहा है? भाभी क्या कहेंगी?" भूतनाथ ने प्रश्न किए।

"उन्हें मैं समझा दूँगा, मैं अभी रात्रि में ही वापस आ रहा हूँ। तुम डोमराजा से बात कर लेना।"

आगे भूतनाथ कुछ बोल पाता उसके पूर्व ही महा तेज़ी से पलट कोठरी से बाहर निकल गया और अपने पग स्वयं की कोठरी की तरफ़ बढ़ा चला।

काशी की इन आड़ी-तिरछी-सँकरी गलियों में महा अपनी कोठरी की ओर पग बढ़ाता सोच रहा था कि भले ही माँ रुष्ट होगी, पर वह अपने निर्णय से पीछे नहीं हटेगा और आज रात्रि से ही वह महाश्मशान में कार्य प्रारंभ कर

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

देगा। अपनी कोठरी पर पहुँच जैसे ही उसने अपना यह निर्णय यशोदा को सुनाया, तो स्वयं एक आश्चर्य से चौंक उठा था। उसे लग रहा था कि माँ नाराज़ होगी, परंतु आशा के विपरीत क्रोध तो दूर माँ के मुखमंडल पर ऐसे भाव थे, मानो माँ ने भूतकाल में ही उसका भवितव्य पढ़ रखा था।

माँ की दृष्टि उसके दाहिने पाँव के अँगूठे के दाग़ पर थी और वह मुस्करा रही थी। उसका माथा चूमते हुए माँ बोल रही थी-

''जा मेरे नन्हे काशी विश्वनाथ! उसी भूमि पर रमना, वही तुझे तेरे जीवन का अर्थ देगी।''

माँ की इतनी सहज स्वीकृति पाकर, महा के प्राण प्रसन्नता से काँपने लगे और माँ के पाँव छूता वह पुनः मणिकर्णिका की ओर चल निकला।

आज प्रथम रात्रि भूतू ने उसे मात्र अपने साथ ही खड़ा रखा था। भूतू के भीतर की बेचैनी उसके चेहरे पर स्पष्ट झलक रही थी और महा, भूतू को चिता सजाते देख यह समझने की कोशिश कर रहा था कि चिता कैसे सजाई जाती है। अब चिता जल रही थी और वह देख रहा था कि भूतू चाचा किस तरह बाँस के टुकड़े द्वारा शव के चिता से बाहर निकले अंगों को ठोंक-ठोंक कर चिता में समर्पित कर रहे थे।

भूतू के लाख कहने पर भी आज महा अपनी कोठरी वापस नहीं लौटा था। गाँजे की पिनक में रात्रि के अंतिम पहर भूतनाथ घाट की सीढ़ी पर लेट सो गया था। दृष्टि के सामने की चिता बुझ चली थी। महा की दृष्टि आकाश को तकती डूबते तारों को निहार रही थी। तब महा को यह प्रतीत हो रहा था कि इस नभ की व्यापकता में ही तो संपूर्ण सृष्टि व्याप्त है। यही तो सबको स्वयं में अवकाश देता कर्म करने की योग्यता प्रदान करता है। जल, अग्नि, पृथ्वी, वायु, सभी तो इसी आकाश में अवकाश पा अपना-अपना कर्म कर रहे हैं।

अभी वह बेचारा क्या जानता था कि उसका सखा आकाश जितना व्यापक है, उससे कहीं अधिक सूक्ष्म भी है। यही तो संपूर्ण ब्रह्मांड को अवकाश

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

देता गतिमान् कर रहा है। साथ ही इसी की सूक्ष्म उपस्थिति के कारण जीवजगत् का प्रत्येक पदार्थ पृथक-पृथक भासित होता है। यही नभ ही तो द्वैत को उत्पन्न करता पदार्थों एवं प्राणियों की भिन्नता दर्शाता है। अंतर के आकाश का ज्ञान अभी दूर था और बाह्य आकाश को तकते महा कब सो गया, उसे ज्ञात न हुआ। स्वप्न में कबीर पुन: आ खड़े बोल रहे थे-

''इस संसार में अब पुन: नहीं लौटूँगा, शरीर को इन पंचतत्त्वों से मुक्ति मिल गई है। भीतर की पृथ्वी, पानी में जा समाई है और पानी के गुण अग्नि में भस्म हो चले हैं। अग्नि अब हवा में लीन हो गई है और हवा शब्द रूपी आकाश में। शब्द रूपी ये गुण अब सहज समाधि में जा समाए हैं।''

''जैसे कुंदन के सभी आभूषण गलकर सोना होते अपना नाम रूप खो देते हैं, इसी तरह सृष्टि लोक के द्वारा प्राप्त समस्त नाम रूप शून्य तत्त्व में विलीन होते शून्य हो जाते हैं। यह तो सुख-सागर स्वामी की ही कृपा है कि आत्महंस, परमहंस परमात्मा में जा मिलेगा।''

''जीवन के मर्म के ज्ञान के साथ अब तुझे इस भूमि पर मृत्यु का पाठ भी पढ़ना है। इसी जीवन-मरण को पढ़ते तुझे ज्ञात होगा कि जीवन-मृत्यु के इस द्वैत से परे, अद्वैत के रंग में रँगा तेरा यह घट अभी दमक रहा है और इसी रंग के उतरते ही तेरी भी काया शव कहलाएगी। चिताग्नि तुझे मरण का ज्ञान देगी और अद्वैत का ज्ञान तुझे तेरे गुरु की कृपादृष्टि से ही प्राप्त होगा। इस महाश्मशान भूमि में घट की क्षणभंगुरता के बीच, मैं तुझे यों ही जीवन का ज्ञान कराता रहूँगा,

'पर याद रख मैं तेरा गुरु नहीं।' ''

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

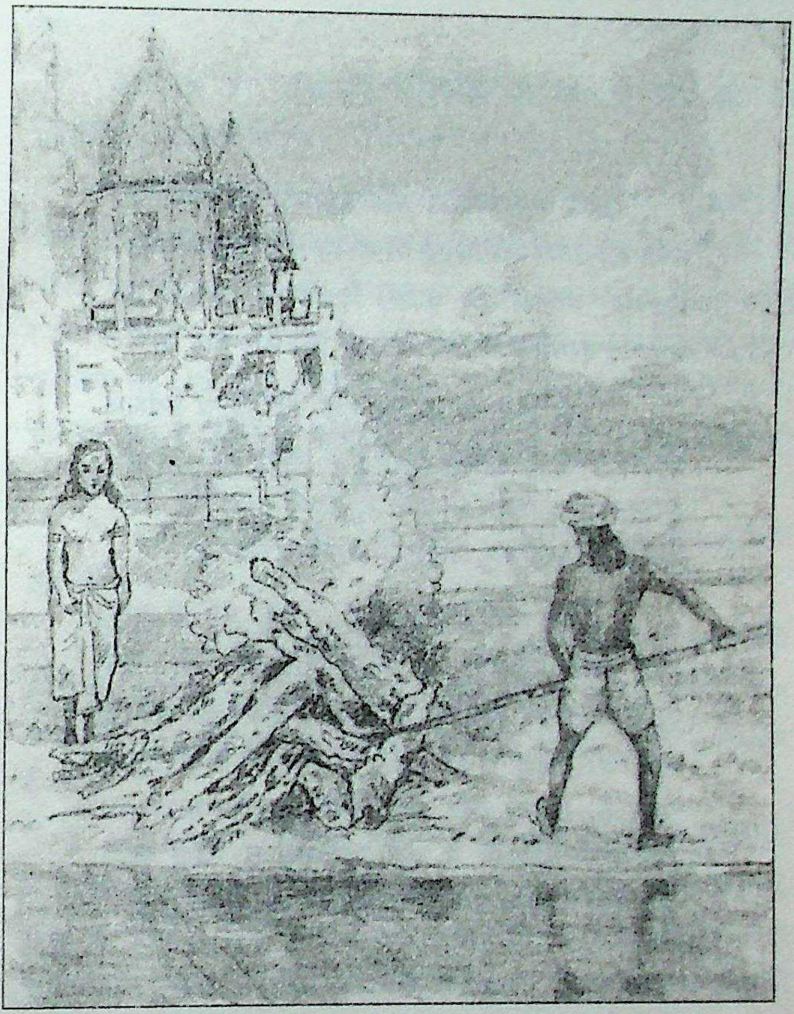

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अध्याय-१९

आज महाश्मशान मणिकर्णिका पर चिता की भस्म को अपने श्री विग्रह पर मलते भेरूण्डशतसेवित, यज्ञपति, नीललोहित काशी विश्वनाथ, शक्ति को साथ ले परमानंद में मग्न विचरते घोर नाद उठा रहे हैं-

"इस जगत् में समष्टि भूत और इंद्रिय वर्गरूप प्रत्येक जाल को अपनी अनंतता में रचकर विस्तार देता सृष्टि का रचनाकार मैं, अंत में संहार करता इस अनंत अनेक को एक कर, अद्वैत में लीन कर देता हूँ।"

"सारे बंध और विबंध, आत्मा की ही सुर-ताल युक्त दिव्यता में लीन हो जाते हैं। यही शक्तिप्रकाशक आत्मा, हृदय को स्पंदित कर समस्त योग और वियोग को स्वयं में साधकर भी निर्लिप्त रहती है। समस्त तर्क और वितर्क शून्यता प्राप्त कर इसी दिव्य आत्मा में लीन हो जाते हैं, जहाँ खड़ा परमात्मा मैं शिव अपनी शाश्वतता में मुस्कराता हूँ।"

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

महा को देखकर भूतनाथ को सदैव प्रतीत होता था कि हिमाच्छादित हिमालय जिस योगी आत्मा को प्रतिष्ठित करने के लिए बाट जोहता है, वह बाल योगी इस महाश्मशान पर शवों को जलाने के लघु कर्म में तल्लीन हो चला था।

कालचक्र का पहिया जस का तस घूम रहा था और महा अब महाश्मशान मणिकर्णिका के कार्यों में पारंगत हो गया था।

चिताग्नि को तकता महा अब मदमस्ती में डोल उठता था। कबीर का अपने प्रति असीम प्रेम देख अब वह सदा ही आह्लादित महाश्मशान में शवों को जलाते हुए भी आनंद से परिपूर्ण रहता था। कबीर का स्वप्न में आना अर्थात् सर्वत्र आनंद ही आनंद। कबीर के स्वरों से मानो समस्त धरा के स्नेह की मृदुता छलकती थीं। अब मानो कबीर ही उसकी जीवन नैया के कर्णधार हो गए थे। स्वप्न के बाद के दिवस माँ, भूतू चाचा या इस्माइल चाचा से हृदय में प्रेम की परिपूर्णता लिए वह लिपट, गर्व से कहता फिरता था-

"कबीर मेरे सखा हैं!" महा का प्रदीप्त मुख स्वप्न के बाद और उज्ज्वलित हो उठता था।

चिताग्नि से उठती लपटें अब उसे अग्नि का साज़-शृंगार प्रतीत होने लगी थीं। अग्नि का यह सौंदर्य मन को सम्मोहित करता उसे यह भान देने लगा था कि जैसे सखी अग्नि अब अपने कर उसकी ओर बढ़ाती, मित्रता का निमंत्रण दे रही है।

महाश्मशान पर अनगिनत बार सुना था कि शरीर पंचतत्त्वों के सम्मिश्रण के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है, परंतु इस रहस्य से परदा उठना अभी शेष था। भीतर की अग्नि का ज्ञान तो अभी भविष्य की घटना थी, परंतु जीवन यात्रा में पथिक बनकर चलते महा को यह प्रतीत हो रहा था, जैसे अग्नि अब सहयात्री बन इस यात्रा में गलबाहीं डाल उसके साथ चल रही है।

काशी विश्वनाथ के अधीन इस महाश्मशान में शवों को जलाने के इस श्रम में अब अग्नि उससे अभिन्न हो चली थी। यों तो वह इस महाश्मशान में

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

दिन में ही कार्य करता था, परंतु इन दिनों भूतू चाचा के बीमार रहते महा इस शिवभूमि पर रात्रि में भी शिवसाधना में लीन रहने लगा था। नई अर्थी को लाते और ''राम नाम सत्य है'' गुंजारित करते शव यात्री, अब उसके लिए हृदय का बोझ न हो गणमान्य अतिथि होते थे। एक के बाद एक चाहे कितने ही शवों का सिलसिला क्यों न हो, वह अपनी इस साधना से विमुख न होता था।

कई बार मन में प्रश्न उठते कि क्या दैहिक प्रणाली का अंत ही मृत्यु है? क्या मृत्यु ही शाश्वत अंत है? महाकाल के इस राज्य में अभी उनके कालातीत स्वरूप का दर्शन महा के लिए कोसों दूर था। मृत्यु रूपी इस सांसारिक दुःख के भीतर कुछ तो शुभ है, इसका तो उसे भान हो रहा था, परंतु क्या? यह अभी समझ से परे था।

आज अर्द्धरात्रि में वह जलती चिता के सामने एकाकी बैठा अग्नि के सौंदर्य को बढ़ाती लाल-नारंगी वर्ण की लपटों को तक रहा था। अत्यधिक कोहरे से सर्वत्र भीषण शीत का साम्राज्य व्याप्त था। भीषण शीत के होते शरीर कँपकँपा रहा था। यह साधना के श्रम का परिणाम था या शीत का? आँखें बोझिल हो चली थीं और निद्रा घेरने लगी थी। कहीं झपकी न आ जाए, यह सोचकर उसने अपने पग घाट की सीढ़ियों की ओर बढ़ा दिए थे।

सीढ़ियाँ उतरता अब वह सामने बहती गंगा के समीप आया और अँजुली में जल भर जैसे ही उसने अपने मुख एवं नेत्रों पर जल के छींटे मारे, मानो वह हिम सा जमने लगा, हाथ सुन्न पड़ गए और पूरा शरीर काँपने लगा। अब वह तेज़ी से पलट, दौड़कर चिताग्नि के समक्ष चला आया और उष्णता प्राप्त करने चिताग्नि से हाथ तापने लगा। यह भीषण शीत से कँपकँपाते शरीर और चिताग्नि से प्राप्त उष्णता का ही परिणाम था कि वह निद्रामग्न हो गया और स्वप्न फिर प्रारंभ हुआ।

संध्या का समय था और गगन में सर्वत्र लालिमा छाई हुई थी। पंचगंगा घाट की एक सीढ़ी पर बैठा विचारमग्न महा सामने बहती त्रिपथगा गंगा को निहार रहा था। गंगा का प्रवाह सदैव दृष्टि-सत्य बन उसे सुखद अनुभव दे

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

रोमांचित कर जाता था। श्वेत वस्त्रधारी, लहराते श्वेत लंबे केश और श्वेत धवल दाढ़ी लिए कबीर उसके पास आ बैठे थे। वह कौतुक भरी दृष्टि से कबीर को निहार रहा था जिनके वामहस्त पर एक दीपक जल रहा था। दाहिने कर से वे महा की अँगुली थाम उठ खड़े हुए थे और महा भी उनके साथ उठता घाट की सीढ़ियाँ उतरने लगा था। कबीर के स्पर्श मात्र से ही महा के भीतर सर्वत्र ''राम'' गुंजायमान हो रहे थे।

यह चमत्कार ही था कि पूर्वी बहती बयार से कबीर का श्वेत उत्तरीय, श्वेत धवल दाढ़ी एवं केश हवा में लहरा रहे थे, परंतु उनके हाथ पर रखा दीपक बुझ नहीं रहा था। दीपक की लौ पूर्णतः फड़फड़ा रही थी। सीढ़ियाँ उतरकर अंतिम सीढ़ी पर आ कबीर ने वह दीपक, गंगा में प्रवाहित कर दिया तत्पश्चात् वात्सल्य और करुणा से भरी दृष्टि को महा पर डालते हुए वे महा के सिर पर हाथ फेरने लगे। इसके पश्चात् दोनों दो-तीन सीढ़ियाँ चढ़, एक सीढ़ी पर बैठ गए। अब कबीर सामने तैरते हुए दीये की ओर अँगुली का इशारा करते स्निग्ध स्मित के साथ हृदय में उसके प्रति अगाध प्रेमभाव लिए बोल उठे-

''अपनी दृष्टि से उस तैरते हुए दीपक को ध्यान से देखो। उसका दरस यह जता रहा है कि दीपक, घृत और अग्नि तीनों साथ प्रज्वलित होते प्रकाश उठा रहे हैं। मैं भी अपने साथ इन तीनों को लाया हूँ। जीवन के इस पाठ में तू ठीक से जान ले कि हृदय रूपी दीपक में परमात्मा के प्रति स्नेह रूपी घृत डाल के तीव्र साधना की अग्नि को प्रज्वलित करना है। जीवन के संपूर्ण ऐश्वर्य में जब इस ज्ञान की ज्योति प्रज्वलित होती है, तो विषय-वासना रूपी कीट स्वयमेव नष्ट हो जाते हैं। असीम भगवत्-प्रेम की अग्नि प्रज्वलित होते ही क्षण मात्र में हृदय रूपी झोली की असंख्य कामनाएँ भस्म हो जाती हैं।''

अब कबीर ने स्नेह से महा के ललाट को चूमा और फिर अत्यंत स्नेहिल स्वर में बोल उठे,

''योगी सदैव अपने कर में खप्पर को धारण किए विचरते हैं। इसी खप्पर में तो वासना की नागिनें विचरती हैं। भगवत्-प्रेम की अग्नि जली, खप्पर रह

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
गया और वासना रूपी नागिन दग्ध हो भस्म हो गई। चेतन आत्मा अब अखिल ब्रह्मांड को धारण करती परमात्मा के साम्राज्य में विचरने लगी। जीवन के इस पाठ में खप्पर का ज्ञान ही परमात्मा के साम्राज्य में विचरण करवाता है। जो खप्पर के रहस्य को नहीं जानते, उनका खप्पर इन विषय-वासनाओं के सहित जलकर भस्म हो जाता है।''

''जो माया को नहीं छोड़ता वह परमात्मा के साम्राज्य में क्या विचरेगा? इस परमात्मा के साम्राज्य में विचरती आत्मा, अपने दिव्य आलोक में सारे बंध और विबंध लीन कर लेती है। योग और वियोग को अपने में समाहित करती आत्मा और अधिक दिव्य हो जाती है। इस साम्राज्य में जब आत्मा परमात्मा से एकाकार होती है, तो सारे तर्क-वितर्क शून्य हो जाते हैं। जीवन का यह पाठ तुझे सदैव स्मरण रखना है एवं तेरे स्मरण में यह बात भी सदा ही रहनी चाहिए पर...''

कबीर के अंतिम शब्द सुनते ही स्वप्न लुप्त हो गया एवं महा की आँखें खुल गईं। दृष्टि के समक्ष चिता जल रही थी एवं शव की खोपड़ी उसे स्पष्ट दिखाई दे रही थी। बाँस के टुकड़े से खोपड़ी को ठोंकते हुए अब वह उसे चिताग्नि में समर्पित कर रहा था। यह स्वप्न उसे अपनी सखी अग्नि का कितना स्पष्ट परिचय दे गया था और साथ ही यह रहस्य भी ज्ञात हो चला था कि न मात्र काया, अपितु विषय-वासना भी नश्वर है।

खप्पर के भस्म होते ही वह भी भस्म हो जाती है, फिर उसके बारे में सोचकर मन में रुदन कैसा? आँखों से अश्रुधार बह चली और आनंद के अतिरेक में वह अपने हाथ को चिता की लपटों में इधर-उधर हिलाने लगा। जीवन को परमात्मा के पथ पर धकेलने वाला ही सच्चा सखा होता है, परंतु अब भी यह रहस्य उसकी समझ से परे था कि कबीर अंत में सदा यह क्यों कह जाते हैं,

'पर याद रख मैं तेरा गुरु नहीं?'

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

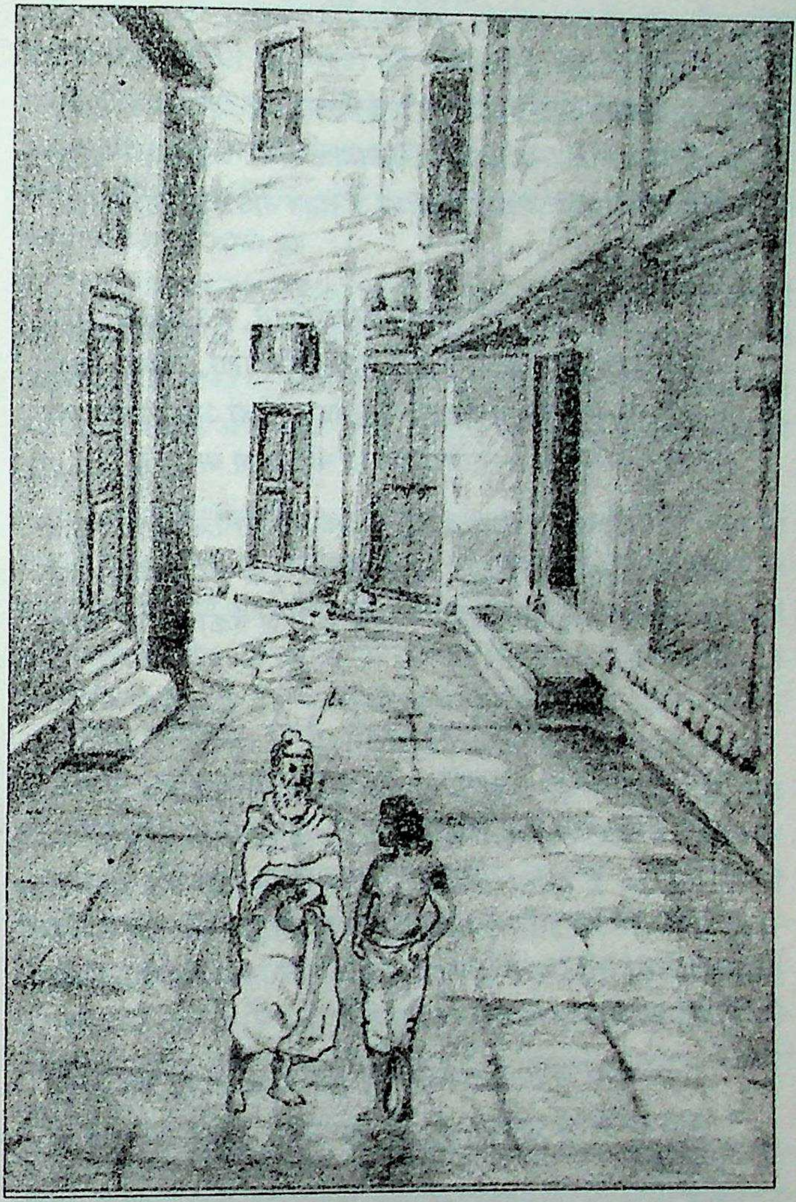

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अध्याय-२०

आज महाश्मशान मणिकर्णिका पर कल्याणप्रकृति, संवत्सरकर, निशाचर काशी विश्वनाथ सभी जड़ तत्त्वों सहित चेतन तत्त्व पुरुष में व्याप्त हो अमर अनाहत नाद को निनादित कर रहे हैं-

''मैं शिव ही सर्वदृश्यविवर्जित, स्वप्रकाश एवं सच्चिदानंदघन परब्रह्म हूँ। मैं ही त्रिमूर्त्यंतर्गत ब्रह्मा, विष्णु, महेश के कारणावस्था का नियंता हूँ। मैं प्रपंचकर्ता ही अपने प्रपंच को जलाकर भस्म रूप से उसके सारतत्त्व को ग्रहण करता हूँ।''

''शिवज्ञान, शिवभक्ति, शिवध्यान एवं शिवव्रत ही मुझ शिव के प्रमुख अंग हैं। मुझ शिव की इस पूजा में लीन जीव उस योग को पा जाता है, जहाँ वह मुझ शिव से एकाकार हो जाता है।''

''भस्म त्रिपुंड की प्रथम रेखा गार्हपत्य अग्नि, रजोगुण, 'अ'कार, भूलोक, स्वात्मा, क्रियाशक्ति, ऋग्वेद, प्रातः सवन तथा महादेवी का रूप है; द्वितीय रेखा दक्षिणाग्नि, सतोगुण, 'उ'कार, अंतरात्मा, ज्ञानशक्ति, माध्यंदिन सवन, यजुर्वेद तथा सदाशिव का रूप है एवं त्रिपुंड की तृतीय रेखा आह्वनिय अग्नि, 'म'कार, तमोगुण, परमात्मा, इच्छाशक्ति, तृतीय सवन तथा महादेव का रूप है।''

''जीव यदि अज्ञानवश भी इस भस्म त्रिपुंड को अपने ललाट पर नित्य खींचता है, तो वह स्वतः मुक्ति का पात्र हो जाता है।''

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

विश्वकर्ता महाश्मशानाधिपति शिव ही जैसे महा के भूत और भविष्य के सब लेखों को इस महाश्मशान मणिकर्णिका की मिट्टी में लिखते, महा को इस महाश्मशान में लाए थे। मानो वे ही चाहते थे कि महा वहाँ कार्य करते हुए उनसे एकात्म एवं संवादी बनकर उनके साथ-साथ सहगमन कर सके। किसी शाश्वत का स्पर्श अपने निज अंगों पर अनुभव करता महा, महाश्मशान की इस तमसील छाया में आया था।

महाश्मशान की शाश्वत नीरवता में महा को शिव रमते प्रतीत होते थे एवं शिव में महा का मन रमता था। जैसे शिव ने ही अपनी दयाशरण से उसे आवेष्टित कर उसका मन भस्म में रमाया था। शायद इसलिए तो मात्र तीन वर्ष की उम्र में महा ने अपने अंग-प्रत्यंगों पर इस महाश्मशान की चिताभस्म को मला था।

आत्मा की इस निज अज्ञानावस्था में वह नहीं जानता था कि शव को जलाते वह इस शिवज्ञान को प्राप्त कर रहा है कि मृत्यु तो शाश्वत अमरता के राज्य की ओर बढ़ने का मार्ग मात्र है। चिताग्नि से उठती लाल-नारंगी लपटों के साथ स्वर्णिम क्रीड़ा ही तो उसकी शिवभक्ति थी। इस चिताग्नि से उठता ज्योतिर्मय प्रकाश उसे ऐसी ज्योतिर्मय परम गुह्यता की ओर धकेल रहा था, जहाँ उसे इस शिवभक्ति के प्रतिफल के रूप में शिवसायुज्य प्राप्त होना था।

कई बार अर्द्धरात्रि में इस चिताग्नि में नश्वर देह को जलते देख महा किसी महाशून्य में उतर जाता एवं उसे प्रतीत होता कि अकथनीय शिव उसके अंतर् में उतर मस्तिष्क के सारे विचारों को शांत कर देते हैं। वह चिताभस्म से त्रिपुंड को ललाट, कंठ, छाती एवं भुजाओं पर खींच, अपनी पलकें मूँदकर पद्मासन में बैठ शिवध्यान में मग्न हो जाता था, जहाँ उसे कोई दिव्य प्रकाश आ घेरता था। भूतनाथ नित्य ही देखता कि अपने अंगों पर चिताभस्म से त्रिपुंडों को खींच अहर्निश शवों को जलाना महा के लिए शिवव्रत के समान हो चला था।

महा के लिए यह स्थल मात्र महाश्मशान न होकर, शिवाराधना का जीवित जाग्रत् देवालय था। भूतू चाचा ने उसे बताया था कि हरिश्चंद्र घाट पर पंडों के साथ निर्ख़ को लेकर किसी लाला कश्मीरीमल की कहासुनी के बाद,

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

आनन-फ़ानन में लाला ने अपनी माँ के दाह संस्कार के लिए इस महाश्मशान को बनवाया था एवं साथ इसलिए भी कि भविष्य में किसी को भी अपने स्वजन के दाहकर्म को लेकर निर्ख़ संबंधी कोई परेशानी न हो। परंतु शाश्वत का संदेश देने वाला यह स्थान तो महा के लिए वह तीर्थस्थल था, जहाँ सृष्टि की रचना के लिए तपस्या के परिश्रम में भगवान् श्री विष्णु के कर्ण से मणि गिरने पर यह स्थल मणिकर्णिका बना था।

जब स्वयं साक्षात् शिव ने अपने ओज से इस पंचक्रोशी काशी को स्थापित कर प्रलयकाल में इसे अपने त्रिशूल पर धारण कर लिया था, तो महा भला भूतू चाचा के कहे उस घटना-सत्य पर कैसे विश्वास करता? इस अवस्था की प्रज्ञा के किसी क्षण जैसे कोई पौराणिक ऋषि उसके कानों में सृष्टि के प्रारंभ का यह मंत्र सुना जाते थे-

''एकमेवाद्वितीयम्'', अर्थात् परमात्मा ने ही एक से दो हो जाना चाहा और इस सृष्टि का निर्माण हुआ। तब भला उसके लिए यह महाश्मशान उस परमात्मा शिव का ही एकरूप क्यों न हो? यों तो यह कथा उसने इस्माइल चाचा से भी सुनी थी, परंतु इस महाश्मशान में जैसे किसी शक्ति ने उसके मानस को भेद कर उसे इस ज्योति-आविर्भूत महिमा का गान सुनाया था। अब वह यह मानने लगा था कि शिव काशी में नित्य रमण करते इस महाश्मशान में शवों के कान में तारकमंत्र फूँक, जीव को मुक्ति प्रदान करते हैं। अब महा को इस ज्योतिर्मय देवालय के संबंध में किसी ऐतिहासिक घटना से कोई सरोकार न था।

शव, लकड़ियाँ, फूल-मालाएँ, घृत, गुलाल आदि के विपरीत रंगों के साथ चिताग्नि के भी विविध रंग, सभी तो एक हो भस्म में आ समाते हैं, यह देखता महा सोचने लगता कि निश्चित ही किसी दैवीय प्रभाव को धारण करती है यह भस्म। इस निराले, एकाकी महा के लिए भव्य, परंतु औरों के लिए भयानक इस महाश्मशान में मात्र भस्म ही तो सशक्त रूप धारण करती, इस वातावरण के मध्य जीती है।

यहाँ तक कि चिताग्नि भी भभककर शांत हो जाती है, यह देखते ही महा को प्रतीत होता था कि निश्चित ही इस भस्म का साक्षात् शिव से कोई अटूट संबंध है। क्या है यह संबंध?, सोचते ही मन उसे पार्थिवता से घेर किसी

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

द्वंद्व के संघर्ष में ले आता था एवं वह कुछ घड़ियों के लिए व्याकुल हो उठता था।

महा पर दृष्टि पड़ते ही भूतनाथ सोचने लगता कि इस संत बालक के जीवन का कौनसा अभिशाप इसे इस नरक के मार्ग पर ले आया था, जहाँ मृत्यु की बलिवेंदी बन चिता रोज़ शवों की बलि लेती है। पूर्वजन्म का ऐसा कौनसा पापकर्म था जो इस ऋषि आत्मा को सर्वतिरस्कृत एवं घृणास्पद चांडाल जाति में ले आया था, जिसकी छाया भी धर्म को भ्रष्ट कर देती है। इस सोच में जब वह महा को पद्मासन में बैठा ध्यानमग्न देखता, तो वह इस चांडाल स्वरूप के पीछे महा के महात्मा स्वरूप का दर्शन पा शांत हो जाता था। हृदय के किसी कोने से यह वाणी गूँजती कि निश्चित ही भविष्य में यह चांडाल आनंद के किसी सुरम्य देवालय में देव के सदृश प्राणप्रतिष्ठित होगा।

आज अर्द्धरात्रि में अपने आत्मक्षेत्र के इर्द-गिर्द घूमता महा, चिताग्नि के सामने पद्मासन में बैठा शिवध्यान में लीन था। जब आँख खुली तो भोर होने को थी एवं ज्योतित नक्षत्र अब भी आकाश को जगमगा रहे थे। किन्हीं आवेशमयी तरंगों के आवेश से खिंचा महा, पंचगंगा घाट की ओर पग बढ़ाने के लिए बाध्य हो गया था। अंग-प्रत्यंग पर चिताभस्म से खिंचे त्रिपुंड अब भी विद्यमान थे। जैसे ही वह पंचगंगा घाट पर पहुँचा, उसने देखा कि आध्यात्मिक दृष्टि को शुद्ध करने वाली अंजन रूपी गंगा से वही दिव्य महात्मा स्नान कर घाट की सीढ़ियाँ चढ़ रहे हैं, जिन्होंने उसे गंगा के स्वरूपों का ज्ञान कराया था। उन पर दृष्टि पड़ते ही महा के कर्णपटल पर उनके शब्द गूँजने लगे थे-

''चिताग्नि के मध्य तू मरण को जान लेगा।''

अब महा को उन महात्मा के शब्दों का ज्ञान हो गया था। चांडाल बन अब वह चिताग्नि के मध्य ही नित्य मरण को देख रहा था। महा ने आज उन्हें दूर से ही साष्टांग नमन किया था। महात्मा की दृष्टि महा के ललाट पर पड़ते ही उस पर त्रिपुंड देख, वे बोल उठे-

''तू सचमुच भाग्यवान् है कि शिव स्वयं योग निर्मित कर, तुझे शिवपूजा में लीन कर रहे हैं। जानने को उतावला है तो जान ले कि शिव से इस भस्म का क्या संबंध है-

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

आकाश के सारतत्त्व से केश पर भस्म को स्थापित करते शिव, सौंदर्य को प्राप्त करते हैं तो वायु के सारतत्त्व से मुख, अग्नि के सारतत्त्व से हृदय एवं जल के सारतत्त्व से कटि भाग को सुशोभित करते शिव, पृथ्वी के सारतत्त्व से भस्म को घुटनों पर धारण कर स्वयं की शोभा बढ़ाते हैं। ललाट पर त्रिपुंड के रूप में ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र सारतत्त्व बन अनंत ज्योतिर्मय प्रकाश उठा ब्रह्मांड को प्रकाशित करते हैं, अर्थात् शिव ने ही प्रपंच के सार-सर्वस्व को अपने वश में किया है और यही भस्म का रूप है। अभी वह योग तुझसे बहुत दूर है कि तुझे यह ज्ञात हो-

भस्म त्रिपुंड की प्रथम रेखा गार्हपत्य अग्नि, रजोगुण, 'अ'कार, भूलोक, स्वात्मा, क्रियाशक्ति, ऋग्वेद, प्रात: सवन तथा महादेवी का रूप है। द्वितीय रेखा दक्षिणाग्नि, सतोगुण, 'उ'कार, अंतरात्मा, ज्ञानशक्ति, माध्यंदिन सवन, यजुर्वेद तथा सदाशिव का रूप है एवं त्रिपुंड की तृतीय रेखा आह्वनिय अग्नि, 'म'कार, तमोगुण, परमात्मा, इच्छाशक्ति, तृतीय सवन तथा महादेव का रूप है।''

महा अवाक् महात्मा को देखता ही रह गया और उसे शिव से भस्म का संबंध बता महात्मा अब पंचगंगा घाट की सीढ़ियाँ चढ़ते, दृष्टि से ओझल हो गए। आज तो महा उन महात्मा की ओजपूर्ण वाणी के समक्ष यह भी नहीं पूछ पाया था कि क्या आप ही मेरे गुरु हैं?

मृत जानवरों की देह को भूतनाथ कभी महा को नहीं उठाने देता था। जब महा पंचगंगा घाट से लौटा तो उसे संदेशा मिला कि ठठेरी गली से एक मृत कुत्ते की काया को उठाना है। भूतू चाचा इस समय महाश्मशान में नहीं थे, सो वह ही ठठेरी गली की ओर चल दिया। जैसे ही वह उस मृत कुत्ते की देह को उठाने के लिए झुका, उसकी ओर बदहवास दौड़ते भूतू चाचा की आवाज़ से वह चौंककर रुक गया। आज भी चाचा ने उसे मृत जानवर को नहीं उठाने दिया था, और तो और उन्होंने उससे यह वचन भी ले लिया था कि भविष्य में भी वह कभी ऐसा नहीं करेगा। वह चाचा से मात्र इतना पूछ पाया था-

''क्या मानव के शव एवं जानवर के शव में कोई भेद है?''

इस पर क्रोधित निरुत्तर भूतू चाचा की दृष्टि देखकर वह आगे कुछ न पूछ

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पाया था।

रात्रि के घने अंधकार में अपनी कोठरी में माँ के पास लेटा वह सोच रहा था कि जब जीवन वरदान है, तो मृत्यु क्या है? जीवन एवं मृत्यु के मध्य की वास्तविकता क्या है? क्या मानव शव एवं जानवर के शव में कोई यथार्थ अंतर है? यदि सब मरते हैं तो क्या मैं और माँ भी मर जाएँगे?

काया का क्षणभंगुर सा खिंचा हुआ चित्र अब उसे भयभीत करने लगा था एवं भय के पाश में धड़कते हृदय के साथ वह निद्रामग्न हो गया था। अब वह स्वप्न देख रहा था कि बाँस के टुकड़े से वह अर्द्धरात्रि में शव के नरमुंड को चिताग्नि में समर्पित कर रहा था एवं कबीर उसके निकट आ खड़े हुए थे। जलती हुई जाँघों की पिघली मांस-मज्जा में से झाँकती हुई हड्डी की ओर इंगित करते कबीर उससे कह उठे-

''अंतर की गहराई से देखेगा तो ज्ञात होगा कि यह संसार तो मुर्दों का गाँव है, जहाँ सब मरते हैं। पीर, पैग़ंबर, योगी मरे एवं चिता चढ़े। क्या राजा, क्या प्रजा, क्या रोगी, क्या वैद्य? सभी मरते हैं। और तो और काल के ग्रास से सूरज, चंद्रमा, यहाँ तक कि चौदह भुवन के स्वामी भी नहीं बचते। नौ ग्रह, दस अवतार, अट्ठासी हज़ार मुनि एवं तैंतीस करोड़ देवता भी मरते हैं।''

महा को प्रतीत हो रहा था जैसे कबीर उसे मृत्यु की छाया की गोद में बैठा रहे हैं, जहाँ मृत्यु रूपी उग्र नियति के अतिरिक्त भविष्य में कुछ भी नहीं, जहाँ सभी एक निरंतर पावक के मध्य जल रहे हैं और वे महात्मा उससे कह रहे हैं- ''चिताग्नि के मध्य तू मरण को जान लेगा।''

स्वप्न में भी महात्मा के शब्द महा के कर्णपटल पर गूँज रहे थे एवं विवश वह चिताग्नि को तक रहा था कि पुनः चिताग्नि की पीली-नारंगी लपटों के प्रकाश से देदीप्यमान होते कबीर के मुखश्री से यह स्वर गूँज उठे-

''मुर्दों के इस गाँव में मात्र आत्मज्योत ही अविनाशी अमर है, जो हर घट में व्याप्त है। इसी की तृष्णा तुझे उस परम शक्ति की ओर ले जाएगी जहाँ शिव स्वयं गुरु का रूप धर, धरा पर अवतरित होते हैं। इसी शाश्वत अविनाशी आत्मज्योत की ओर इंगित करने ही तो मैं आता हूँ,

'पर याद रख मैं तेरा गुरु नहीं।' ''

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अध्याय-२१

आज महाश्मशान मणिकर्णिका पर आद्यशक्ति का स्वर्ण सा दमकता सौंदर्यमय मुख, जटाधारी, अष्टमूर्ति, महायोगी बाबा विश्वनाथ के भीतर दिव्यशक्ति रूपी ऊर्जा संचारित कर रहा है और महाश्मशान अब महेश्वर के नाद से निनादित हो रहा है-

"मैं शिव ही परम आनंदरूपिणी आद्यशक्ति के साथ एकरूप हो पंच महाभूतों का सृजन करता हूँ। पुरुष एवं प्रकृति वाला जगत् मुझसे ही उत्पन्न होता है।"

"पृथ्वी, जल, आकाश, तेज और वायु मुझ अज्ञेय, अविकारी, चैतन्य से उत्पन्न होते हैं। मेरे ही परम चैतन्य से सृष्टि, स्थिति और संहार संचालित होते हैं।"

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

ललिता घाट पर सूरज डूबने से पूर्व महा, इस्माइल के साथ बैठा आकाश को तक रहा था। जब से महा ने चांडाल का कार्य प्रारंभ किया था, इस्माइल उससे इसी घाट पर मिलने आ जाता था। हालाँकि कई बार महा रात्रि में इस्माइल के साथ उसकी कोठरी में भी बैठता था, परंतु जब-जब महा, श्मशान में रात्रि बिताता इस्माइल स्वयं उससे आकर मिल लेता था। समय के साथ इस्माइल का महा के साथ रिश्ता प्रगाढ़ से प्रगाढ़तम हो चला था। अब महा के भीतर छिपी प्रतिभा का अनावृत रूप इस्माइल के समक्ष स्पष्ट आ खड़ा था। कबीर का महा के सपनों में आना इस्माइल को आंदोलित कर गया था। महा कोई भी बात यशोदा या इस्माइल से नहीं छिपाता था। अपने ही स्वप्न में कबीर से आध्यात्मिक तत्त्व की झलक पा कस्तूरी मृग के समान स्वयं की अमरता की सुगंध में महा पागल हो रहा था।

''क्या आकाश भी जीवंत है?'', महा प्रश्नवाचक दृष्टि से इस्माइल की ओर देख पूछ बैठा।

इस्माइल को क्षण को यों लगा जैसे इंद्रिय जीवन के अधिपति आज भी समस्त जीवों को अंधकारमय गुफा में क़ैद कर मर्त्य सत्ता पर राज करते हैं। शायद इसलिए कबीर की बिरली आत्मा महा की आत्मा को खोजते विचर रही है, ताकि वह उसे वहाँ से उठाकर ज्योतिर्मय जगत् के द्वार पर ला खड़ा करे। महा का यह प्रश्न इस्माइल को जता गया था कि क्यों महा विद्यालय में पढ़ने नहीं गया। इस बिरली आत्मा को तो कबीर की आत्मा विचरती रोज़ जगाने का प्रयत्न कर रही है। महा की ओर अवाक् दृष्टि गड़ाए इस्माइल शांत ही रहा।

रात्रि के समय चिता के सम्मुख खड़े महा की दृष्टि चिता से उठती लपटों पर टिकी थी। सखी रूपी अग्नि अब स्पष्ट हो चली थी। रात्रि के घने अंधकार में अग्नि ही तो प्रकाश फैलाती पथप्रदर्शन करती है। महा को भीतर लगा कि अग्नि कुछ भी नहीं अपितु बल, शक्ति, सौंदर्य, शोभा और नेतृत्व का समन्वित रूप है। छोटी से छोटी तीली भी जलकर इतना बल प्राप्त कर लेती है कि स्वयं की शक्ति से नेतृत्व करते हुए अंधकार के साम्राज्य को चुनौती देती है। क्षण भर ही सही अंधकार को पराजित कर, सौंदर्यमयी हो प्रकाशयुक्त शोभा से निखर उठती है। अब महा जान चला था कि कबीर सपनों में आ भीतर की भूल-भ्रांति

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

रहित संकल्प रूपी अग्नि को जगा रहे हैं।

भूतू अभी-अभी अपनी कोठरी की ओर गया था और इस क्षण श्मशान में महा के अतिरिक्त कोई नहीं था। अचानक महा को यों प्रतीत हुआ जैसे क्षण को हृदय की गहराई में प्राण मदमस्ती में डोल उठे एवं शरीर कंपित होने लगा था। स्मृतिलोप की इस अवस्था में मन अपनी ही कोठरी में थक, सुप्त हो चला और महा को लगा जैसे भीतर से किसी के स्वरों की गूँज, गूँजती उठ रही है। प्रतीत हो रहा था कि जिसे गुज़रे सदियाँ बीत गईं, वह अपने स्वर उठाता भीतर गुंजायमान हो रहा है! अविश्वसनीय परंतु सत्य, महा स्वयं को झंझोड़ रहा था। कैसी विचित्र दशा थी? पल का जागरण तो दूसरे ही पल सुषुप्ति। जब स्वयं का भान न होता तो भीतर गूँजते शब्द स्पष्ट सुनाई देते और जब स्वयं का भान होता तो स्वर लुप्त हो जाते। ज्ञान की भाषा भी अजीब है, काल के जिस क्षण वह उतरती है, उसी क्षण सब कालातीत हो जाता है।

महा का मन अब कोठरी में सो गया था और कबीर के स्वर अब स्पष्ट से स्पष्टतम गुंजायमान होने लगे। आज प्रथम बार कबीर, महा के भाव में उतर स्वर उठा रहे थे। महा अब आकाश की अनंतता में उतरता ब्रह्मांड की सैर करने लगा था। ज्योतिर्मय ग्रह, नक्षत्र एवं आकाशगंगाएँ दृष्टि के सामने आ खड़ी हुईं, और वह समुद्र की गहराइयों में ग़ोते लगाने लगा था। स्वर कभी रेशम से कोमल होते, तो कभी खद्दर से खुरदरे। अब महा को शक्ति की तरंगों पर सवार खड़ी-बोली शब्द-दर-शब्द सुनाई पड़ने लगी थी-

''चैतन्य कभी नहीं मरता, वह न तो जन्म धारण करता है न ही मरण को प्राप्त होता है। उसके लिए स्वर्ग-नरक कुछ भी नहीं। इसी चैतन्य से तो सहज पाँचों तत्त्व जन्म ले उसी में लय हो जाते हैं और उनकी पृथकूता का कोई भी चिह्न नहीं रहता। जैसे समुद्र में डुबोए गए घट के बाहर और भीतर सर्वत्र जल व्याप्त रहता है, वैसे ही शरीर रूपी घट भी भीतर और बाहर से उसी चैतन्य से व्याप्त होता है, जिससे सृष्टि, स्थिति और संहार तीनों उठते हैं। खोज सके तो उस चैतन्य को खोज, वही चैतन्य तो मुझे तेरे द्वार लाया है,

'पर याद रख मैं तेरा गुरु नहीं।' ''

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अध्याय-२२

आज महाश्मशान मणिकर्णिका पर कंठ में हलाहल विष का नील चिह्न धारण कर सुशोभित एवं परम कांति उठाते नियताश्रय, सर्वाचार्यमनोगति, महोषधि, बाबा विश्वनाथ संपूर्ण जगत् के प्रति मैत्री भावना से भर अमर अनाहत नाद निनादित कर रहे हैं-

''मुझ शिव से ही माया का जन्म होता है जिसके गर्भ में व्योम उत्पन्न होता है। यही व्योम, वायु को जन्म देता है एवं वायु से अग्नि उत्पन्न होती है। फिर अग्नि, जल को जन्म देती है, यह जल, पृथ्वी को सृजित करता है और इन पाँचों से उत्पन्न देह पंचभूतात्मक कहलाती है।''

''माया के अखंड रणांगण में इस पंचभूतात्मक देह के पंचतत्त्व कभी माया से ग्रसित हो जीव को पशु का रूप दे भटकाते हैं, तो कभी ये मेरे अनुग्रह से ही माया से निर्लिप्त हो जीव-पशु की सहायता करते, उसे मुझ पशुपति की ओर प्रशस्त करते हैं।''

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

महाश्मशान में कार्य करते हुए महा को यह स्पष्ट हो चला था कि श्मशान ही एक ऐसा स्थल है, जो अत्यधिक सरल अर्थ से लेकर महान अर्थगौरव तक विस्तृत है। किसी के लिए यह मात्र शव जलाने का स्थान है, तो कोई संपूर्ण ब्रह्मांड की शक्तियों का ज्ञान यहाँ से प्राप्त करता है। कोई इसे मरण-तुल्य कष्टों से मुक्त करने वाला मुक्तिधाम समझता है, तो कोई यहाँ अपनी अंतर्दृष्टि से आत्मस्वरूप को देख यह जान लेता है कि आत्मा का न कोई आदि है, न ही मध्य और न ही अंत।

इस अंधकार के साम्राज्य के प्रति नकार ही तो मृत्यु का भय देता मानव को माया के अरण्य में भटकने पर बाध्य करता है। न केवल मानव अपितु संपूर्ण ब्रह्मांड का कण-कण इस माया से व्याप्त है, यह भान महा को चिताग्नि में जलते शवों को देखकर होने लगा था।

अपनी पार्थिव गिनतियों का गुलाम बन जब मानव ईश्वर की अनंतता के प्रति विमुख हो उठता है, तो फिर पंचमहाभूत भी उस काया के साथ माया में भटकते अपनी-अपनी वसीअत के लिए मानो युद्ध करने को ऐसे आतुर हो उठते हैं, जैसे कोई भी महाभूत इस मृत काया पर अपना अधिकार नहीं छोड़ना चाहता। जब कभी महा, शव को जलाता तो उसे प्रतीत होता कि घने अंधकार में प्रकाश फैलाती अग्नि मुखर हो उठती है-

''इस काया पर पूर्णरूपेण अधिकार मेरा ही है, क्योंकि मैं ही इसे जलाकर भंस्म करती हूँ।''

तो उसी क्षण महा को प्रतीत होता जैसे कि गंगा का जल तरंगित होता स्वर उठा रहा है-

''अग्नि का शमन तो मेरे ही बल पर होता है, अत: इस काया की भस्म पर सर्वाधिक हक़ मेरा है।''

कल्पना के लोक में विचरता महा अब यह महसूस करने लगता कि प्रचंड वेग से आँधी उठाती वायु साँय-साँय कर चीत्कार रही है-

''इस काया में प्राणों का संचार मेरी ही शक्ति से था, अत: इसकी भस्म

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

भी अब मेरे साथ उड़कर जाएगी।''

महा को आश्चर्य तो तब होता जब वह अपनी कल्पना में सहिष्णु पृथ्वी की यह अधीरता देखता-

''इस काया की मिट्टी और इसका आधार मैं ही हूँ, सो अंततः इसे मुझमें ही आ समाना चाहिए।''

तो विद्युत की गर्जन, व्योम का यह संदेश ला सुनाती-

''मेरे ही गर्भ में इन महाभूतों का जन्म हुआ है और मैंने ही इन्हें अवकाश दिया है, तो फिर भला मैं इनका जनक अपने अधिकार से वंचित क्यों रहूँ?''

पंचमहाभूत ही नहीं, कौए और गिद्ध भी गंगाजल में बहते शव को किस क़दर नोच खाते हैं और किनारे पर श्वान और सूअर भी कैसे बहते शव की राह तकते, नदी पर आँख गड़ाए बैठे रहते हैं।

यह सब देखते एवं कल्पना करते हुए महा तब और व्याकुल हो जाता, जब वह देखता कि दाह संस्कार में आए बंधु-बांधव भी रस्मों को लेकर अपना अहंकार नहीं छोड़ते। जब सब क्षणभंगुर है, तो क्या सब अर्थशून्य भी है? सोचते ही महा के अंतःकरण में कोई स्वर सुनाई पड़ता कि निश्चित ही यह तो एक अपूर्ण प्रक्रिया है। ये सब मात्र प्रतीक हैं और इन प्रतीकों के परदे के पीछे वास्तविक परिपूर्णता कुछ और ही है।

''क्या है यह वास्तविक परिपूर्णता? कौन हूँ मैं? इस अर्थशून्य के पीछे का महाअर्थ क्या है?'' प्रश्न उठते ही नेत्र स्वतः बंद हो जाते और मन किसी अज्ञात की कोठरी में जा लुप्त हो जाता था। महा की दृष्टि अंतर्मुखी होकर जीवन की दिव्यशक्ति के स्पंदन में लीन हो जाती थी। ज्ञान के झंझावात में भ्रम का छप्पर उड़ जाता और माया की रज्जु छिन्न-भिन्न होते ही मन एवं चित्त के स्तंभ पर खड़ी काया रूपी झोंपड़ी धराशायी हो जाती थी और उसका अंतःकरण किसी दिव्य आलोक से आलोकित हो उठता था।

अब उसे प्रतीत होने लगता कि ये पंचमहाभूत वैरी न होकर, सखा बन

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

उसे उस स्वर्णिम मार्ग पर धकेल रहे हैं जिसका अंत परमात्मा के राज्य पर होता है। पृथ्वी अब मेरुदंड की अस्थि का रूप लेती उसे पद्मासन में बैठा देती। व्योम अब हृदयाकाश का रूप धर किसी दैवीय प्रकाश को अवकाश प्रदान करने लगता। अग्नि अब भगवत्-संकल्प का रूप ले परम के तीर्थ की यात्रा की प्रेरणा देने लगती। वायु वेग दे ब्रह्मांड के विचरण को सुगम बना देती एवं जल आत्मा से परमात्मा के गठबंधन के कार्य के शक्ति संधान में व्यस्त हो जाता।

ध्यान सधते ही भाव में कबीर अपने गंभीर स्वरों को मुखरित कर दिग्दिगंत को कंपायमान कर उठते-

"जिसे परमात्मा से प्रेम है, उसे काल जगत् में होशियारी से क्या वास्ता? वह तो इस जगत् में स्वतंत्र विचरता है। उसकी इस माया रूपी जगत् से मित्रता कैसी? जब परमात्मा भीतर ही है, तो हमें कैसा इंतज़ार? यदि उससे बिछुड़ना हो जाए तो फिर दर-दर भटकने के अलावा कोई चारा नहीं। न हम क्षण को परमात्मा से बिछड़ते हैं और न वह हमसे बिछड़ता है। जब उन्हीं से प्रेम है, तो व्याकुलता कैसी? यह प्रेम ऐसा है जहाँ हृदय में दो को दूर करना पड़ता है एवं ऐसी नाज़ुक राह है जिस पर चलने के लिए सिर पर कोई बोझ नहीं हो सकता।

इस राह पर चलने वाले पर तो परमात्मा स्वयं अनुग्रह कर पंचमहाभूत को माया से निर्लिप्त कर ऐसी दशा में ले आते हैं, जहाँ वे जीव-पशु की सहायता करके पशुपति के मार्ग पर प्रशस्त करते हैं। इसके विपरीत यही पंचमहाभूत, हृदय में दो को रखने वाले के लिए स्वयं माया से ग्रसित हो, माया के अखंड रणांगण में जीव को पशु का रूप दे भटकाते हैं। जिसके लिए सद्गुरु का नाम सच्चा है, उसकी इस मायावी दुनिया से कैसी मित्रता? जबकि तू तो सद्गुरु को छोड़, उसकी झूठी तृष्णा में हृदय में दो बैठाकर मेरे इन शब्दों के अर्थ को भी नहीं समझ पाता,

'पर याद रख मैं तेरा गुरु नहीं।' "

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अध्याय-२३

आज महाश्मशान मणिकर्णिका पर लिंगाध्यक्ष, सिद्धवृन्दारवंदित, लोहितात्मा तनूनपात्, काशी विश्वनाथ शरणागत जनों के शोकशल्य को निकालकर स्वयं में धारण कर एवं तीनों वेदों का प्रतिपादन करते अमर अनाहत नाद निनादित कर रहे हैं-

''मेरे परम अनुग्रह से ही जीव मुझ शिव के लोक में निवास करता सालोक्य-मुक्ति को प्राप्त होता है, तो कोई जीव मुझ शिव का रूप पा सारूप्य-मुक्ति की पात्रता धारण करता है। किसी जीव का भाग्य उसे मेरे सान्निध्य में रख सान्निध्य-मुक्ति का फल देता है, तो कोई बिरली आत्मा मुझ शिव से एक होती सायुज्य-मुक्ति को प्राप्त होती है।''

''मेरे इस काशी क्षेत्र में रहकर जीव सालोक्य-मुक्ति को प्राप्त होता है, तो वाराणसी क्षेत्र सारूप्य-मुक्ति को अभिलक्षित करता है; वहीं अविमुक्त क्षेत्र सान्निध्य-मुक्ति का, तो अंतर्गृह क्षेत्र सायुज्य-मुक्ति का फल देता है।''

''कोटि-कोटि जन्म के पुण्य से ही कोई जीव काशीवास के रहस्य को ज्ञात करता, इन मुक्ति के भेदों का ज्ञान प्राप्त कर मुझ शिव से एक होता है।''

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

महाश्मशान मणिकर्णिका पर कार्य करते-करते महा को सदैव यह आभास होता था, जैसे चिताग्नि कोई सामान्य अग्नि नहीं अपितु यह तो बाबा विश्वनाथ के उस मुक्तियज्ञ की अग्नि है, जिसमें बाबा विश्वनाथ स्वयं शव का हविष्य अर्पित करते जीव को मुक्त करते हैं। इस यज्ञ से उठती अग्नि की देदीप्यमान ज्वालाओं को देख उसकी आत्मा की शिशु उड़ान किसी गुह्य प्रभुसत्ता की ओर प्रस्थान करती थी। उस क्षण अज्ञान का अंधकारमय परदा फट जाता था एवं ज्ञान का ज्योतिर्मय प्रकाश उसे आ घेरता। अपने व्यक्तित्व के अज्ञान में वह चिताग्नि की शक्ति का सामर्थ्य नहीं जान पाता था, परंतु भाव के इस क्षण उसे प्रतीत होता था कि बाबा विश्वनाथ के इसी यज्ञ की ज्वालाएँ उसे एक ज्योतित नक्षत्र के समान अकेले ही अनंत की यात्रा करने का सामर्थ्य प्रदान कर रही हैं।

कबीर अब तक स्वप्न में आ यह तो समझा गए थे कि चलना केवल स्वयं तक है एवं निज स्वभाव ही गंतव्य है, परंतु निज स्वभाव की इस यात्रा से अनंत की यात्रा कैसे संभव है? यह प्रश्न अब भी उसकी समझ से परे था। भाव में जो कुछ घटित होता था उसका क्षण मात्र भी सामान्य अवस्था में उसे याद न रहता था। भाव के पश्चात् अपने शरीर में वह मात्र एक तीव्र ऊर्जा का संचरण होता देखता था।

चिता की भस्म को अपने शरीर पर मलते ही उसे जान पड़ता, जैसे सत्य की किसी विभूति को वह मल रहा है क्योंकि यह शरीर तो क्षणभंगुर ही है और उसका अंतिम शाश्वत सत्य यह भस्म है। हाड़-मांस का परिधान ओढ़े नगण्य मानव भले ही किसी विराट राज्य का सम्राट हो, स्वर्ण के सिंहासन पर आरूढ़ होता कितने ही अहंकार के स्वर उठाए, सब मिथ्या है। अंततः तो उसे भी यही भस्म होना है, मात्र यह भस्म ही सत्य है।

प्रपंचकर्ता परमेश्वर शिव ने ही अपने में आधेयरूप से विद्यमान प्रपंच को जलाकर, भस्म रूप से उसके सारतत्त्व को ग्रहण किया है। भस्म त्रिपुंड की तीनों रेखाओं के संदर्भ में महात्मा द्वारा दिए हुए ज्ञान रहस्य से परदे का उठना महा से अभी कोसों दूर था।

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

आज अर्द्धरात्रि भी वह यज्ञकर्ता बाबा विश्वनाथ के यज्ञ को निहारता भाव-विभोर हो रहा था। किसी गूढ़ शक्ति के साम्राज्य में पग धरने से पूर्व ही अचानक एक आर्तनाद से उसका भाव टूट गया था और उसने देखा कि जीवन के सर्वाधिक पीड़ादायक आघात को झेलता एक वृद्ध अपने नौजवान पुत्र की अर्थी से लिपट विलाप कर रहा था।

भूतू चाचा अब उस नवयुवक की चिता को रचने में व्यस्त हो गए थे और वह वृद्ध भाग्य के अनिवार्य हाथों से प्राप्त इस अभिशाप पर पागलों की भाँति चिल्लाता, अश्रु बहा रहा था। अभी कुछ घड़ी पूर्व ही महा, आनंद की अनंत यात्रा की ओर पग बढ़ा रहा था और अब इस घड़ी उस वृद्ध के दु:ख को देखकर वह विषाद की कालिमा में धँस रहा था।

''क्या कोई स्वतंत्र नहीं? क्या सभी किसी शक्ति से बँध संचालित होते सुख-दु:ख भोग रहे हैं? क्या मैं भी जगत् के इन्हीं दु:खों में भाग लेने आया हूँ?''

प्रश्नों का यह नागपाश अब महा को उसकी चेतना के निम्नतम स्तर पर ले आया था। शनै:-शनै: अब वह इन द्वंद्वों में स्वयं को फँसा हुआ मानकर स्वयं से ही थकने लगा था।

भूतनाथ अब एक जलती लकड़ी ले आया था और वह वृद्ध पंचमहाभूत का ऋण उतारने, काँधे पर जल से भरी छिद्रयुक्त मटकी को रख चिता के इर्द-गिर्द पाँच फेरे ले रहा था। अब उस वृद्ध का दु:ख महा के लिए भी असह्य हो चला था और जैसे ही वृद्ध ने अपने पुत्र की चिता को मुखाग्नि दी, महा की आँखों से अश्रु बह चले थे।

कुछ ही घड़ी में चिताग्नि तीव्र होती लपटों को उठाने लगी थी और इन उठती लपटों को देख महा की दृष्टि के समक्ष पुन: यज्ञवेदी सज उठी थी। मृत्यु की यह बलिवेदी अब पुन: उसके लिए किसी देव का पीला-नारंगी रथ हो चला और इस रथ पर सवार वह अपनी इंद्रियों के पार सनातन अखंड के राज्य की ओर बढ़ने लगा था। आँखें स्वत: बंद हो गईं और कब वह पद्मासन में बैठ गया, उसे ज्ञात न हुआ।

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

उस वृद्ध पिता की दृष्टि महा की इस अवस्था पर चली गई और पुत्र की मृत्यु का शोक क्षण भर में ही सिमट महा के प्रति श्रद्धा में परिणत हो गया। मानो उसके लिए भी प्राण, प्रकृति और परमात्मा एक हो गए। यम के काले धुएँ के बादल छँट गए और अंतर में आदित्य के उदित होते ही जैसे संभावना घट गई और परम होश को उपलब्ध वह महा के चरणों में जा गिरा। सारे शवयात्री आश्चर्यचकित इस घटना को देख रहे थे और किसी का ध्यान न था कि दूर खड़े पाषाण हृदय के चांडाल भूतनाथ की आँखों से अश्रु की तीव्र धार बह रही थी।

जब महा की आँखें खुलीं तो भोर होने में कुछ समय शेष था। कोहरे से घिरी इस भीषण रात्रि में शीत से बचने भूतू चाचा चिता के पास ही निद्रामग्न थे। तेज़ ऊर्जा के संचरण से महा की आँखें भी भारी हो चली थीं एवं वह भी भूतू चाचा के पास आ लेटा था। लेटते ही वह निद्रामग्न हो गया था और कबीर पुन: स्वप्न में आ खड़े, बोल रहे थे-

''ईश्वर की भक्ति में सहज भाव से लीन मानव ही योगी है, ऐसा योगी सदैव ही भीख में अखंड का प्रेम पाकर खाता है एवं अनाहत नाद, शृंगीनाद को सुनता लीन रहता है। काम, क्रोध और विषयों पर वह विवाद नहीं करता। और मन में ही स्नान करता वह त्रिकुटी में ध्यान लगा काशी को शरीर में ही खोज, ईश्वर के प्रकाश को प्रकाशित करता है। मूलाधार को बाँधकर एवं ज्ञान की मेखला को धारण करता वह बंकनाल से स्त्रावित अमृतरस का पान कर वीर्य को स्थिर रखता है।''

''शरीर की काशी में सालोक्य-मुक्ति, वाराणसी में सारूप्य-मुक्ति, अविमुक्त क्षेत्र में सान्निध्य-मुक्ति को प्राप्त कर जीव अंतर्गृह क्षेत्र में सायुज्य-मुक्ति को प्राप्त होता, शिव से एकाकार होता है। गुरु के ज्ञान को मन की मुद्रा बना, गुरु के शब्द पर ध्यान करने वाला जीव ही काशीवास के रहस्य को ज्ञात कर इन मुक्ति के भेदों के ज्ञान को प्राप्त होता है,

'पर याद रख मैं तेरा गुरु नहीं।' ''

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अध्याय-२४

ओजस्तेजोद्युतिधर, नाकेश, गूढ़व्रत काशी विश्वनाथ भाँग की आत्मिक मस्ती में परम मस्त पंचगंगा घाट पर स्थित बिंदुमाधव के धरहरे की ओर स्वयं के डोलते पग बढ़ा रहे हैं। श्री विष्णु सहस्रनाम का आत्मिक जाप करते एवं परम की खुमारी में रमते यह अमरगान गा रहे हैं-

''राम रामेति रामेति, रमे रामे मनोरमे।''

अब वे उत्तमज्ञान से संपन्न तथा बुद्धस्वरूप अपने देदीप्यमान स्वर्णिम शरीर से असंख्य रश्मियों को उठाते, यह जयघोष कर रहे हैं-

''संपूर्ण ब्रह्मांड में एक कण भी ऐसा नहीं जो मुझ शिव की आज्ञा के अधीन न हो। वस्तुतः मैं शिव निर्गुण होकर भी परम आवेष्टित हो मर्त्यात्मा पर अनुग्रह करता लिंग स्वरूप सकल रूप धारण करता हूँ एवं ऐसा करने पर भी स्वभावतः मैं निर्गुण ही हूँ।''

''अजितेंद्रिय पुरुषों द्वारा जिसकी आराधना अत्यंत कठिन है, ऐसा अमर-तत्त्व जीवन एवं मृत्यु दोनों से परे बसता है। जहाँ सगुण और निर्गुण दोनों के द्वंद्व से परे मैं शिव अद्वैत में नित्य विराजमान हूँ।''

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

स्वयं की भाव ऊर्मियों में महाश्मशान मणिकर्णिका पर शवों को जलाना मानो महा के लिए शिवपूजा हो चली थी। वह महाश्मशान मणिकर्णिका की धरा पर जैसे साक्षात् काशी विश्वनाथ के हस्ताक्षर को पढ़ता था। स्वयं के आरोहण में उसे प्रतीत होता था कि चिता से बाहर निकले शव के मस्तक को ठोंक-ठोंक कर चिताग्नि में समर्पित करना ऐसा है, जैसे वह परम की दिव्यता उठाते काशी विश्वनाथ के ज्योतिर्लिंग पर फूलमाला को अर्पित कर रहा हो। चिता सजाना उसके लिए रुद्र पाठ था, तो चिता की राख को गंगा में प्रवाहित करना उसके लिए ज्योतिर्लिंग पर चिताभस्म से त्रिपुंड खींचने के समकक्ष हो गया था।

महाश्मशान की इस असीम दिव्यता में अहर्निश शवों को जलाना उसके लिए अब वह शिवसाधना थी, जिसमें मग्न वह इस शिव भूमि पर शिव की संहार लीला को उसकी पूर्णता प्रदान करता था। ब्रह्म मुहूर्त में उठ अखाड़े में व्यायाम कर, गंगा-स्नान के पश्चात् महा के लिए इस शिवसाधना का कोई समय निश्चित नहीं था।

महाश्मशान मणिकर्णिका पर शिवसाधना करते यदा-कदा उसके नेत्र स्वत: बंद हो जाते थे एवं स्वयं की आत्मा में लीन होकर वह किसी अज्ञात की प्रार्थना में उतर जाता था। इस घड़ी हृदय के द्वार अकस्मात् खुल जाते थे एवं स्वयं की इस ऊर्ध्व उड़ान में कबीर दिव्यता लिए कब प्रकट हो जाते थे, स्वयं उसे भी ज्ञात नहीं होता था। शाश्वत प्रकाश एवं ज्ञान की इस ऊर्ध्व उड़ान में जैसे कबीर उसके प्राणों के एक अंश हो चले थे। रूपरहित शून्य लेकर वह कब पंचगंगा घाट की अंतिम सीढ़ी पर आ बैठता, इसका भी उसे भान न रहता था। अंतर में कुछ शेष रहता तो मात्र एक अनामी शाश्वतता। भाव टूटते ही प्रश्न उठता-

"क्या यह आनंद ही निर्गुण राम हैं?"

गंगाजल को अँजुली में भर, पीते ही मानो भीतर के प्रश्न लुप्त हो जाते एवं दृष्टि के समक्ष कबीर का मानस चित्र आ खड़ा होता। नीचे से फैली सीढ़ियों वाला यह चौड़ा घाट ऊपर की ओर सँकरा होता चला जाता था। कुछ सीढ़ियों

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पश्चात् श्रीमठ एवं अंत में मस्जिद।

हृदय में कबीर मानो जन्म-जन्मांतर के प्रेमी बन आ समाए थे। उन्हीं की मधुर स्मृति में आज भी वह पंचगंगा घाट की सीढ़ियाँ चढ़ रहा था, परंतु आज एकाएक अकल्पनीय आश्चर्य से फैला दृश्य, दृष्टि के समक्ष आ खड़ा हुआ था। वह अवाक् एवं स्तब्ध ज्यों का त्यों खड़ा रह गया था। उसे प्रतीत हो रहा था जैसे सीढ़ी पर गुरु के समक्ष बैठा एक स्वर्णिम दिव्यता उठाता ब्राह्मण-बालक ज्ञान अर्जित कर रहा है। शरीर पर दिव्यता उठाती श्वेत धवल धोती एवं मात्र जनेऊ था। घुटा हुआ सिर जिस पर एक लंबी शिखा लिए वह ब्राह्मण-बालक गुरु से क्या ज्ञान अर्जित कर रहा है? यह महा को ज्ञात नहीं हो रहा था।

भाव टूटते ही दृष्टि के समक्ष मात्र रिक्त सीढ़ी के अतिरिक्त शेष कुछ भी नहीं था। स्वप्न था या यथार्थ? जैसे कोई मोहक सौंदर्य निभृत मौन में अवतरित हुआ था। कबीर के साथ जीवन की परिक्रमा करते, अब यह कौन बालक आ खड़ा था? निश्चित ही यह बालक कबीर तो नहीं थे। मन गगन से कोई परदा उठा था या फिर शायद यह उसका कोई भ्रम था। कबीर का भाव में आना तो उसका अनुभव था, परंतु अव्यक्त की इस शून्यता में इस जीवंत एवं देदीप्यमान दैवीय बालक के दर्शन का यह उसका प्रथम अनुभव था। अब दृष्टि के समक्ष उस तेजोमय ब्राह्मण का मानस चित्र उभर आया जिसे उसने रामलीला में हनुमान के स्थान पर देखा था।

सिर को झटका मार स्वयं को नकारता महा जैसे ही सीढ़ियाँ चढ़ मस्जिद की ओर बढ़ा, तो अंतिम सीढ़ी पर पग धरते ही अंतर से उठती तरंगमयी ऊर्जा के आवेश में पुनः हृदय का क्षुद्र कपाट खुल गया एवं स्वयं के अभिराम गृह में 'श्रीराम' की मनोहर मूर्ति को अधिष्ठित करते उसने स्वयं को एक अत्यंत ही भव्य मनोहर देवालय में खड़ा पाया था। जहाँ बिंदुमाधवजी प्राणप्रतिष्ठित हैं एवं उनके दक्षिण में माँ लक्ष्मीजी विराजित हैं। उसी बारह वर्षीय ब्राह्मण-बालक की काया स्वर्णिम दिव्यता उठाती भाव-विभोर हो बिंदुमाधवजी की स्तुति में लीन है। भाव पुनः टूटा एवं दृष्टि स्वयं के समक्ष खड़ी व्योम चुंबन में व्यस्त मस्जिद

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

की मीनार पर टिकी थी, जो काशी में सर्वाधिक ऊँची हैं।

भाव जगत् का यह परिवर्तन जैसे महा के लिए कोई स्वर्णिम मार्ग खोल रहा था एवं जीवनशक्ति जाग्रत् हो रही थी। कैसा विचित्र परिवर्तन था यह? भाव के शुभ मुहूर्त के शेष रहते वह पगचाप को सुनते ही कबीर के सत्कार के लिए पलक-पाँवड़े बिछा देता था, परंतु दृष्टि के समक्ष अब एक दिव्य वृद्ध ब्राह्मण सरस वाणी उठाता आ खड़ा होता था। रामगीत अंतर में गूँजते ही हृदय के प्रशांत मौन में जैसे ईश्वर श्रीराम की सगुण मूर्ति प्राणप्रतिष्ठित हो जाती एवं उस ब्राह्मण के स्वर लय में गूँथ, ताल से निबद्ध संगीत का रूप धारण करते कर्णपटल पर गूँजने लगते थे-

"राम रामेति रामेति, रमे रामे मनोरमे।"

जैसे ही वह हृदयनिवासी ईश्वर श्रीराम की मनोहर मूर्ति को साष्टांग नमन करने के लिए लेटता, तो पाता कि दृष्टि के समक्ष कबीर आ उस श्रीराम की सगुण मूर्ति को नेत्रों से ओझल कर, खड़ी बोली में बोलते उसे निर्गुण राम के मार्ग पर प्रशस्त करने लगते थे। दर्शित एवं अदर्शित ये रहस्य, महा के समक्ष अब यह प्रश्न उठा रहे थे कि क्या कबीर उससे कोई क्रीड़ा कर रहे हैं?

पुरानी पथरेखा लुप्त होती तो नया मार्ग सामने आ खड़ा होता एवं नवीन मार्ग पर पग धरते ही वह पुनः पुरानी पथरेखा में परिवर्तित हो जाता। दोनों ही मार्ग एक-दूसरे में लुप्त होते महा के प्राणों को अपनी-अपनी ओर बरबस ही खींच लेते थे एवं महा दुविधाग्रस्त जस का तस एक ही स्थान पर खड़ा हो जाता था। आज अपनी इस दुविधा को वह भूतू चाचा से पूछ ही बैठा-

"यह निर्गुण एवं सगुण राम क्या हैं?"

अध्यात्म ज्योति के प्रति दौड़ते इस नन्हे महा की दृष्टि में किसी योगी की सत्ता-सा विस्तार पाकर, भूतनाथ कह उठा-

"संपूर्ण ब्रह्मांड में एक कण भी ऐसा नहीं जो शिव की आज्ञा के अधीन न हो। वस्तुतः शिव निर्गुण होकर भी परम आवेष्टित हो मर्त्यात्मा पर अनुग्रह करते लिंग स्वरूप सकल रूप धारण करते हैं एवं ऐसा करने पर भी स्वभावतः

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

शिव निर्गुण ही हैं।''

भूतू चाचा से उत्तर सुनने के पश्चात् भी महा इस रहस्य का कोई ओर-छोर नहीं पा रहा था। प्रश्न यथावत् ही था एवं उत्तर ऐसा था कि जैसे महा को किसी ने गहरी निद्रा से जगाया हो एवं घड़ी को आँखें मलता वह पुन: निद्रामग्न हो गया हो। विधाता के विधान एवं स्वयं के यथार्थ में समस्वरता न पाकर मानव, विधाता को कोसता है। परंतु असल में तो विधाता स्वयं के विधान में मानव से कभी अन्याय नहीं करता। स्वयं के यथार्थ में हारता मानव यह नहीं जानता कि यह पराजय ही वह स्वर्णिम मार्ग निर्मित कर रही है, जिसके द्वारा विधाता मानव को ईश्वर के द्वार पर ले जाना चाहता है।

दर्शक बन स्वयं का दर्शन, काल की इस घड़ी भले ही महा की दृष्टि से शनै:-शनै: दूर हो रहा था, परंतु विधातारचित यह इंद्रजाल महा को सगुण एवं निर्गुण 'राम' के द्वंद्व से ऊपर द्वंद्वातीत राज्य की ओर ले जा रहा था, जहाँ अजितेंद्रिय पुरुषों द्वारा जिसकी आराधना अत्यंत कठिन है, ऐसा अमर-तत्त्व जीवन एवं मृत्यु दोनों से परे बसता है। यहाँ सगुण एवं निर्गुण दोनों के द्वंद्व से परे शिव अद्वैत में नित्य विराजमान हैं।

कैसा विचित्र द्वंद्व था? कबीर उसे अपनी समग्र अखंडता लिए आत्मिक उत्थान के मार्ग पर निर्गुण राम के द्वारा धकेल रहे थे, तो ये ब्राह्मण उस पथ पर पग रखते ही उसे वहाँ से खींच सगुण राम की धरा पर ला खड़ा करते। जब-जब महा को भाव में इस ब्राह्मण के दर्शन होते, तो वह मणिकर्णिका महाश्मशान को छोड़ प्रहलाद घाट या अस्सी घाट पर आ पहुँचता और घंटों वहाँ बैठा रहता था।

अंतर में सगुण एवं निर्गुण के सूत्रों के द्वारा वह ब्रह्मांड रूपी पट बुना जा रहा था, जिस पर दृष्टि पड़ते ही यह ज्ञात हो जाता है कि जो पिंड है वही ब्रह्मांड भी। परंतु अभी इस पट की बुनावट महा के अंतर में उथल-पुथल मचा रही थी एवं द्वंद्व के अज्ञान में महा ज्ञान को खोजता आज पुन: प्रहलाद घाट पर बैठा सामने बहती, चिदाकाशरूप ब्रह्म को प्राप्त होने वाली, चिदाकाशवहा गंगा को

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

निहार रहा था।

प्रहलाद घाट पर उसके निकट ही एक हरिजन माँ अपने पुत्र को खाना खिला रही थी कि भाव फिर लगा और महा ने खड़े होकर उस हरिजन बालक को स्वयं के गले लगा लिया था। महा का मुखमंडल मानो दिव्य प्रकाश से दमक रहा था और उसका ओज देख उस हरिजन स्त्री ने आगे बढ़कर महा के पाँव छू लिए, जिसका महा को भान भी न था। अब इसी भावमय दशा में महा ने अपने पग महाश्मशान मणिकर्णिका की ओर बढ़ा दिए। रात्रि के इस अंधकार में महाश्मशान पर मात्र एक चिता जल रही थी। संपूर्ण महाश्मशान में भूतू के अलावा कोई नहीं था। भूतू भी घाट की सीढ़ी पर बैठा अपनी पोटली खोल खाना खा रहा था। भावमय महा आकर उसके पास बैठ गया और भूतू के साथ खाना खाने लगा। अभी महा ने कौर दो कौर खाए ही थे कि वह चिल्ला उठा-

''देखो चाचा देखो! वह ब्राह्मण किसी हरिजन को गले लगा रहा है और वही ब्राह्मण अब किसी हत्यारे के साथ खाना भी खा रहा है एवं हत्यारे की आँखों से अश्रुधार बह रही है।''

यों चिल्लाता महा अब उठ खड़ा हुआ और जलती चिता के सामने आ स्थिर हो गया। भावमय महा को ध्यान न था कि हत्यारा शब्द सुन भूतू की आँखों से भी अश्रुधार बह चली थी। जलती चिता के सामने खड़े महा के भीतर खुमारी लिए कबीर गुंजायमान हो रहे थे-

''मैंने भली-भाँति छानबीन कर समझ लिया है कि परम तत्त्व एक ही है। परमार्थ को न समझना और द्वैत की भावना रखना ही पतन का कारण है। अमर रस की प्यास में भटकता तू पहले जीवन के मर्म को समझ और मृत्यु के पाठ को सीख ले क्योंकि वह परमरस तो जीवन और मृत्यु के परे ही बसता है। जिसकी अद्वैत में निष्ठा है वही निर्भय है, इसलिए मात्र अद्वैत का ध्यान कर। इस अद्वैत का ध्यान तो तुझे तेरे गुरु ही करवाएँगे, मैं तो जीवन का मर्म सिखा रहा हूँ,

'पर याद रख मैं तेरा गुरु नहीं।' ''

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अध्याय-२५

आज महाश्मशान मणिकर्णिका पर विराट् ब्रह्मांड को गर्भ में धारण कर अखिल ब्रह्मांडमय विराट् पुरुष, सर्वबन्धविमोचन, सर्वभूतमहेश्वर काशी विश्वनाथ खप्पर में खाते अमर अनाहत नाद गुंजारित कर रहे हैं-

''मूढ़चित्त घमंडी कामदेव भी मेरी शाश्वत समाधि को भंग नहीं कर सकता। यदि वह कामबाण चलाकर मेरी साधना को भंग करने का प्रयत्न करे, तो मैं अपने ललाट पर स्थित तृतीय नेत्र को खोल प्रलयाग्नि को जन्म दे, उसे क्षण भर में भस्म कर देता हूँ।''

''अपनी शाश्वत समाधि में भी मैं सदैव ही अपने भक्तों के अधीन रहता हूँ और मेरे स्मरण मात्र से ही मेरे भक्त के भीतर का काम क्षण भर में भस्म हो जाता है।''

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

जीवन को सुस्थित करने के लिए होने वाले संघर्ष के अधिष्ठाता रुद्र अब महा को महाश्मशान मणिकर्णिका पर सुस्थित कर चले थे। जीवन किसी शक्ति का खेल है, यह महा को चिताग्नि से उठती लपटों को देख स्पष्ट ज्ञात हो चला था। इस शक्ति की सुगंध के समक्ष अब जलते शवों से उठती दुर्गंध उसे तुच्छ प्रतीत होने लगी थी। मृत्यु रूपी अनिष्ट के पीछे किसी इष्ट की व्यापकता अब उसकी दृष्टि के समक्ष आए दिन आ खड़ी होती थी।

वह प्रथम दिवस से ही जानता था कि मात्र जीवन यापन के लिए वह इस महाश्मशान में कार्य नहीं कर रहा है, अपितु समस्त कठिनाइयों और परिश्रम को स्वीकार करता वह स्वयं किसी महान उद्देश्य के लिए इस महाश्मशान पर शवों को जलाने आया है। किसी अज्ञात की अदृश्य शक्ति उसकी प्रकृति को परिवर्तित कर, उसके करों से शव जलवाकर उसे उच्च चेतना के साम्राज्य में विचरण करवाना चाहती है। शायद इसलिए मृत्यु की इस काली छाया में कबीर उसे जीवन का ज्ञान दे रहे हैं क्योंकि शवों को देखते उसे यों प्रतीत होता था कि इस मर्त्य संसार के पीछे निश्चित ही कुछ अमर है।

कितना प्रसन्न था वह कबीर के साथ! मन कभी तृप्त न होता था एवं प्रतीत होता था कि कबीर यों ही सदैव साथ बने रहें। अन्य सभी स्मृतियों के रंग कबीर के समक्ष फीके पड़ गए थे। दृष्टि में श्रद्धा भर सदैव ही वह उनकी राह तकता था।

जब मध्याह्नकालीन सूर्य अपनी सहस्र किरणों से अग्नि स्फुलिंग की वर्षा करता रहता और वह चिताग्नि के बीच शवों को जलाता श्रमसीकरों से भीग जाता, तो वह कबीर के साथ बिताए स्वर्गिक क्षणों को याद करता पंचगंगा घाट की अंतिम सीढ़ी पर आ बैठता एवं सामने बहने वाली तीर्थों की माता त्रिपथगा गंगा के जल को अँजुली में भर, घूँट-घूँट पीता। जल के कंठ में उतरते ही उसे प्रतीत होता जैसे इस ओजोदा का जल उसे असीम बल एवं तेज प्रदान कर रहा है।

जल की प्रत्येक बूँद से वह कबीर के द्वारा दर्शाए निराकार राम के आकार स्वरूप को भाव में समेट मानसपटल पर कल्पित चित्रों को खींचने लगता था। अब तक वह निराकार एवं साकार के द्वंद्व से अनभिज्ञ था। मन में सदा यह प्रश्न उठ ही आता कि निराकार राम अर्थात् क्या? जब पाप एवं अज्ञान का नाश करने वाली इस गंगा का स्वरूप है, मेरा स्वरूप है और कबीर भी स्वप्न

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

में सशरीर दिखाई देते हैं, तो भला 'राम' कैसे निराकार हो सकते हैं?

कालचक्र का पहिया घर्र-घर्र घूमता अब महा को उम्र के पंद्रहवे वसंत में ले आया था। कैसा अनोखा परिवर्तन ले आई थी प्रकृति ! मानो पूरा शरीर किसी कामना से स्पंदित होने लगा था। मन किसी अनोखे रस के पान की तृष्णा में भटकने लगा था। इंद्रियाँ अब चंचल हो उठी थीं और बलपूर्वक इंद्रियों की चंचलता का दमन, एक मनोविकार लाने लगा था। भूतू चाचा भले ही उससे समवयस्कों के समान व्यवहार करते, परंतु चाहकर भी वह उन्हें कुछ नहीं बता पाता था।

कई बार तो कामवासना अंग-अंग में व्याप्त हो जाती। कहाँ एक ओर दिव्य चेतनाशक्ति का आवाहन और कहाँ दूसरी ओर इंद्रियों की चंचलता, आज से पूर्व यह द्वंद्व महा के जीवन में कभी प्रविष्ट नहीं हुआ था। कबीर के साथ किसी दिव्य लोक में भ्रमण कर अचानक वह धरा की धूल में आ गिरा था। मुखमंडल पर तारुण्य अब स्पष्ट झलकने लगा था। कई बार तो उसे प्रतीत होता जैसे इंद्रियों का यह दमन कबीर द्वारा पाए प्रकाशित सत्य को धूमिल कर रहा है। इस द्वंद्व के साथ एक और नया द्वंद्व जीवन के द्वार पर दस्तक दे रहा था।

कबीर के साथ दिव्य लोक की यात्रा कर, वह स्वयं के लघु प्रयासों से निरंतर परिश्रम करता आज जब अस्सी घाट पर पहुँचा, तो अचानक उसे प्रतीत हुआ कि अंतर के ख़ालीपन में जो कुछ भी शेष था उसे भरने वही वयोवृद्ध दिव्य ब्राह्मण भावों में आ समाए थे। चित्त की वृत्तियों का विरोध उस क्षण शांत हुआ ही था कि मानो हृदय का द्वार खोलते वे तेजोमय ब्राह्मण अंतःकरण में प्रविष्ट हो गए और सर्वत्र श्रीराम की प्रतिमाएँ दृष्टिपटल के समक्ष घूमने लगीं थी। मानो वे ब्राह्मण अपनी समग्र दिव्य शक्ति से दृष्टि के समक्ष कबीर के निराकार राम को विस्थापित करते, साकार राम की मूर्ति की प्राणप्रतिष्ठा कर रहे थे।

कालखंड में काल के प्रसार होने के साथ अब ये सारे द्वंद्व प्रगाढ़ हो चले थे। नियति का विधान उसे ऐसे तिराहे पर ले आया था जहाँ इंद्रियाँ चंचल होती उसे एक मार्ग पर धकेलने के लिए उत्सुक हो रही थीं, तो दूसरे मार्ग पर कबीर उसे खींचते निराकार राम के जगत् की ओर ले जाने के लिए उत्सुक थे। वहीं अब यह ब्राह्मण जब-जब अपनी सरस वाणी में राम धुन को भाव में उठाते, तो राम की प्रतिमा तीसरे रास्ते पर उसे स्वयं की ओर आकर्षित करने लगती और

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सिलसिलेवार इन घटनाओं के मध्य वह किंकर्तव्यविमूढ़, स्तब्ध एवं निश्चेष्ट ही खड़ा रह जाता था।

अब लोलार्क कुंड में पहुँचते ही उसे प्रतीत होता जैसे हृदय के स्वच्छ मानसरोवर के निर्मल जल में प्रतिबिंबित होते वे दिव्यात्मा ब्राह्मण, भगवान् श्रीराम की चौपाई गाते स्वयं को संपूर्ण रूप से अभिव्यक्त कर रहे हैं। इस प्रकाशमय अमर चैतन्य के सामने उसे अपनी इंद्रियों की चंचलता तुच्छ प्रतीत होती और यह आभास होता जैसे इसी अमरता के साथ संयुक्त होने की सुगंध में वह पागल हो जन्म-जन्मांतर से दौड़ रहा है।

स्वयं को भूल, स्वयं को ही खोजता अब वह आए दिन अस्सी घाट पर चला आता था। यहाँ बैठ राम की प्रतिमा के रंग से रँगा वह जब-जब दृष्टि को अपने दाहिने पाँव के अँगूठे पर डालता, तो जले के दाग़ को देख मानो रंग में भंग पड़ जाता। भूतकाल की स्मृतियाँ जागकर उसे व्याकुल कर देतीं और वह पुन: स्वयं से प्रश्न पूछ बैठता, ''यह दाग़ कैसा?'' माँ से तो यह प्रश्न पूछना अब व्यर्थ ही हो चला था। आँखों से अश्रुधार बहने लगती और स्वयं को निराश्रित समझ सामने बहती चारित्रनिलया गंगा में आश्रय खोजता, वह उसमें डुबकियाँ लगाने लगता था। आज सायंकाल पुन: अंतरंग को परमरस से सिक्त करने वाले वे ब्राह्मण उसे अस्सी घाट पर आने का आवाहन दे रहे थे। भावों में खोया वह भूतनाथ से मात्र इतना बोल पाया था-

''चाचा आज तुम इस चिता को सँभाल लो, मैं अभी लौटकर आता हूँ।'' भूतनाथ ने उसकी दृष्टि के शून्य में उतरकर किसी महत्तर मौन की भाषा को पढ़ लिया था। वह महा के भावमय रूप से अब पूर्णत: परिचित हो चला था। अस्सी घाट पहुँचते ही महा की दृष्टि अनाथवत्सला गंगा में बहते एक शव को तक रही थी कि अचानक उसे प्रतीत हुआ कि अंत:करण में कुछ जाग्रत् हुआ एवं दृष्टि के समक्ष संपूर्ण दृश्य परिवर्तित हो गया। उसने देखा कि सर्वत्र घना अंधकार व्याप्त था, मेघगर्जन और बिजली की चमक के साथ घनघोर वर्षा हो रही थी और पवन भी बड़े वेग से मचल रहा था। सामने बहती नदी का प्रवाह अत्यंत वेगवान् था। अचानक गड़गड़ाहट के साथ विद्युत् चमकी और उसे दिखाई दिया कि उफनती नदी के मध्य शव को नाव समझ उस पर बैठा ब्राह्मण, अपने हाथों को पतवार के सदृश चलाता आगे की नाव का पीछा कर

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

रहा है।

"रत्ना....ओ रत्ना...." शव पर बैठा ब्राह्मण चिल्ला उठा।

कर्णपटल पर "रत्ना" शब्द पड़ते ही महा का भाव टूट गया। अनंतता शांत हो गई और हृदय की इस रिक्तता में दृष्टि के समक्ष पुन: गंगा का प्रवाह यथावत् आ खड़ा हुआ। घाटों पर सर्वत्र सन्नाटा छाया हुआ था और वह अब घाट-घाट पग बढ़ाता मणिकर्णिका महाश्मशान आ पहुँचा था। भयानक सन्नाटे में उसका मन किसी अधकटे मृगछौने के समान तड़प रहा था।

महाश्मशान पर अब भी दो चिताएँ जल रही थीं। बोझिल मन ले वह अब झाडू से राख को बुहारता गंगा में प्रवाहित कर रहा था। सीने में अब भी धक-धक हो रही थी और पाँव अब भी थर-थर काँप रहे थे। कितना भयंकर दृश्य था वह, यह ब्राह्मण एवं रत्ना कौन थे? सोचते ही तृष्णा फिर जाग्रत् हो गई और यह तृष्णा उसे अंधकार में धकेलने लगी थी। लक्ष्यहीनता के तमस् ने आँखों की ज्योति को हर लिया था।

महा की बदलती रूपरेखा को भूतनाथ क्षण-दर-क्षण देख रहा था। समय की शिला पर घिसती आयु के अनुभव से भूतनाथ, महा के मुखमंडल के हर भाव को पढ़ लेता था। अभी महा मानो किसी शून्य में विचर रहा था। अर्द्धमूर्च्छित वह इधर-उधर लुढ़क रहा था एवं उसे थामकर अपने पास बैठा जैसे ही भूतनाथ ने उसके चित्त को सहज किया, अनायास उसने अपने साथ घटित घटना को ज्यों का त्यों कह सुनाया। उसकी आँखों की काली पुतलियों में स्मृति की ज्योत को देख, भूतनाथ गंभीर एवं ध्यानमग्न अवस्था में बोल उठा-

"महा तू सचमुच भाग्यवान् है। मानव संपूर्ण जीवन में एक सच्चे महात्मा के दर्शन के लिए तरस जाता है और तुझे कबीरदास और तुलसीदास जैसे महात्मा स्वयं दर्शन दे जाते हैं।"

अब भी महा विचारों के ही टूटे-फूटे अवशेषों में साकार एवं निराकार, रात्रि एवं दिन, जीवन एवं मृत्यु के द्वंद्व को समेटे तुलसीदास के बारे में सोच रहा था। मोहक रात्रि के व्योम में स्निग्ध रश्मिमय चंद्रमा एवं सफ़ेद बादलों के खंड नज़र आ रहे थे और महा अपनी कोठरी की ओर लौटता कबीर और तुलसी के विविध रूपों एवं विविध अर्थों को सोचता, यह निर्णय नहीं कर पा रहा था कि

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

एकाएक जीवन में सगुण एवं निर्गुण का यह कैसा द्वंद्व उतर आया है?

आज घटी घटना को जान यशोदा को यह विश्वास हो गया था कि सत्य की ओर प्रशस्त होते अनंत मार्गों का ज्ञान ही महा का भाग्य है। आज वह महा के साथ स्वयं के भाग्य पर भी इतरा रही थी कि दोनों को ही अपनी जननी का ज्ञान न था, कबीर जुलाहे के घर पले बढ़े थे, तो तुलसी नाइन के घर। शंकर की पिंडी के सामने मस्तक को नत करती वह यह सोच रही थी कि जीवों में परमात्मा स्वयं की पुलक को भरने अंश रूप ले, महा के रूप में उसके घर में पल रहे हैं।

कभी कबीर तो कभी तुलसी, निर्गुण या सगुण? यदि इसके निवारण का कोई उपाय मिल जाए, तो यह काशी विश्वनाथ का मुझ पर परम अनुग्रह होगा, यह सोचते महा की दृष्टि भी आले पर रखी शंकर की पिंडी पर चली गई थी कि काल की कुटिलता में कामदेव ने पुन: बाण चला दिया और महा के शरीर में पुन: काममयी मस्ती छा गई।

दृष्टि के समक्ष कबीर और तुलसी उसी क्षण लुप्त हो गए। अब क्या निर्गुण और क्या सगुण? जब इंद्रियाँ अपने अस्त्र चलाती शरीर पर आधिपत्य ग्रहण करने लगें तो आत्मा हृदय की अपनी छोटी सी गुहा में पैठकर निद्रामग्न हो जाती है। परंतु कबीर और तुलसी के लुप्त होते संभ्रम की स्थिति में पहुँचते ही महा भयभीत हो गया और शंकर की पिंडी की ओर हाथ जोड़, ज़ोर से ''जय बाबा विश्घनाथ'' का घोष कर बैठा।

स्वयं के शब्द स्वयं के कर्णपटल पर पड़ते ही मानो कोई ईश्वरीय संगीत गूँज उठा और ससीम स्वयं को लय करता असीम में जा समाया। दृष्टि के समक्ष अब पुन: वह तूफ़ानी रात आ खड़ी हुई, जिसमें वर्षा के वेग से नदी रौद्र रूप ले बह रही थी। वह ब्राह्मण अब शव से नीचे गिर नदी में डुबकियाँ खाने लगा था और आगे जाने वाली नाव में से रस्सी फेंक उसे बचा लिया गया था। अब वह नाव में बैठी अपनी पत्नी रत्ना की गोद में ऐसे फूटकर रो रहा था, जैसे कोई अमूल्य धरोहर उसके हाथों से छूटकर जा रही थी। अपने पति को यों रोता देख, पत्नी बोल उठी-

''लाज न लागत आपको, दौरे आवहु नाथ।
धिक्-धिक् ऐसे प्रेम को, कहा कहूँ मैं नाथ।।

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अस्थि चर्म मय देह मम, ताते जैसी प्रीति।
ऐसी जो श्रीराम महं, होती न तो भव भिति।।''

पत्नी के शब्द कर्णपटल पर पड़ते ही तुलसी का ''मैं'' गिर गया था। ये शब्द गुरु नरहरि का प्रसाद बन, तुलसी को जीवन की सार्थकता जता गए थे। नियति ने 'राम' शब्द दे कामवासना को भस्म कर, तुलसी को अमर चैतन्य का द्वार दिखला दिया था। मार्ग पा गए थे तुलसी और 'राम' शब्द का बीज अंत:करण में गिर शरीर को स्वर्णमंडित दिव्य वृक्ष का रूप दे गया था।

महा की दृष्टि के समक्ष दृश्य बदल गया था। अब अस्सी घाट पर त्रिपथगा गंगा के सामने बैठ तुलसीदास, अपनी लेखनी द्वारा उसी के रूप में संसार रूपी मल का निवारण करने वाली दूसरी त्रिपथगा गंगा 'रामचरितमानस' की धार बहा रहे थे-

''नाथ विषय सम मद कछु नाहीं।
मुनि मन मोह करई छन माही।।''

विषय-वासना के अतिरिक्त और कोई मद नहीं, यह तो मुनियों के मन में भी क्षण मात्र में मोह पैदा कर देती है। अचानक महा की दृष्टि के समक्ष उस ब्राह्मण का मुखश्री आ खड़ा हुआ, जिसे उसने रामलीला में श्री हनुमान के स्थान पर देखा था, ये वही हैं। रामानंद से बीजमंत्र 'राम' को पा, कबीर के रोम-रोम में अमर चैतन्य जागरूक हो गया था एवं नरहरि शिष्य तुलसी, अपनी पत्नी के ताने में 'राम' शब्द सुन, परम श्रद्धा से भर संपूर्ण तारामंडित आकाश, पृथ्वी, प्रकृति, पदार्थ, अपदार्थ इत्यादि को राम मानते, स्वयं राम हो चले थे।

महा क्या जानता था कि सब संत अभिन्न हैं एवं भिन्न-भिन्न रूपों में एक ही कार्य करते हैं। जब शाश्वत समाधि में मग्न होकर भी काशी विश्वनाथ अपने भक्तों के अधीन ही रहते हैं, तो उनके स्मरण मात्र से आज तुलसी, रुद्र का रूप ले महा की कामवासना को भस्म कैसे न करते? इस क्षण महा के जीवन के तिराहे का एक मार्ग पूर्णत: अंधकारमय हो, लुप्त हो गया था। अब सगुण या निर्गुण के दोराहे पर खड़े महा को परमात्मा की वसीअत किस मार्ग से प्राप्त होगी? यह तो इस क्षण काशी विश्वनाथ या भावी गुरु ही बता सकते थे। भले ही फिर महा, कबीर से बार-बार यह क्यों न सुने-

'पर याद रख मैं तेरा गुरु नहीं।'

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

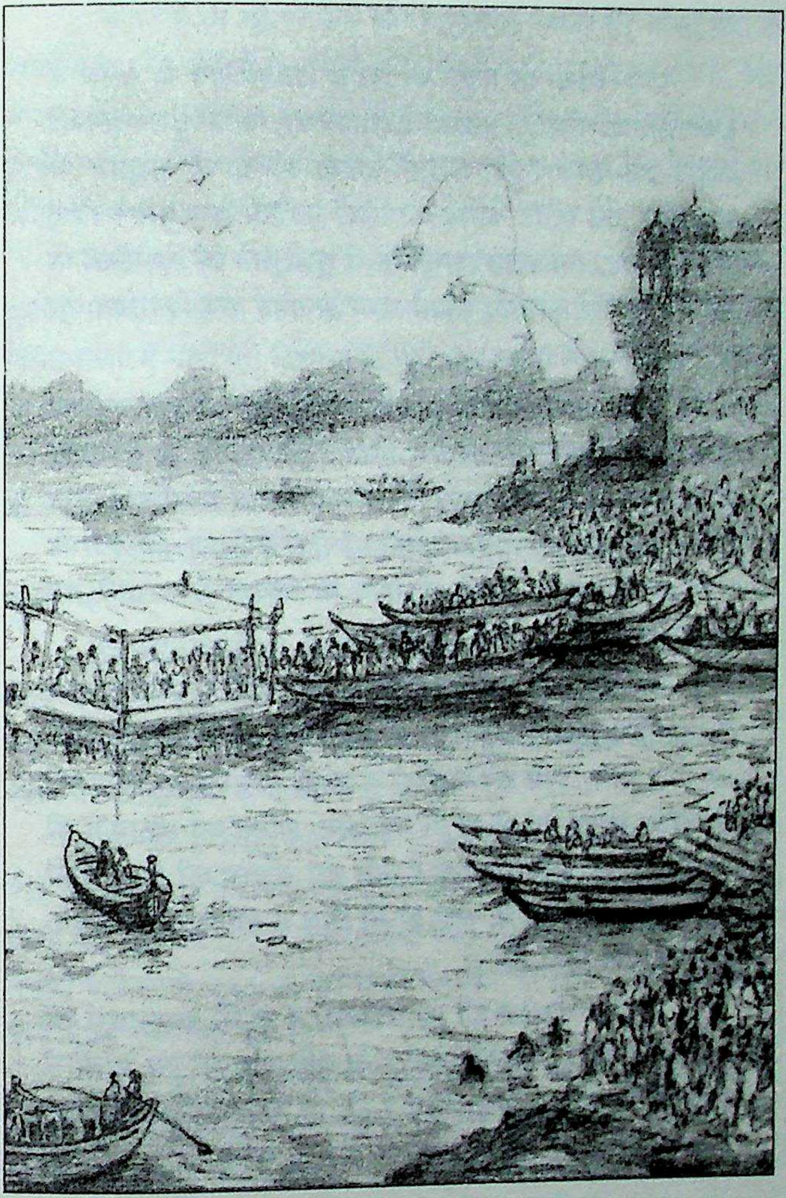

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अध्याय-२६

गंगा-वरणा के संगम पर स्थित आदिकेशव के मंदिर में कुबेरकोटिलक्ष्मीवान्, ब्रह्मकोटिजगत्स्त्रष्टा, कोटीन्दुजगदानन्दी श्रीहरि इस क्षण स्वयं करोड़ों चंद्रमा से प्राप्त आह्लाद से आह्लादित होते कोटि-कोटि कामदेवों का लावण्य धारण किए पीतांबर ओढ़, रत्नजड़ित आभूषणों से सुशोभित श्री लक्ष्मीजी के संग कैलास की ओर पग बढ़ाते अमर अनाहत नाद निनादित कर रहे हैं-

''मुझ कालातीत से सृजित अनंत काल की इस सर्वोत्तम घड़ी में प्रवेश करते मेरे प्राणों में अनंत कोटि ब्रह्मांड का परमानंद आ समाया है। आज ब्रह्मांड के कण-कण से प्लावित अमृत सुधा को आत्मसात् करते परम की मस्ती में मैं विष्णु, वैष्णवी के साथ अपने एकात्म सखा श्री शिव के विवाह में बाराती बन कैलास की ओर पग बढ़ा रहा हूँ।''

''विश्वकर्मा द्वारा नवनिर्मित अनंत कोटि सूर्यों के प्रकाश से प्रकाशित इस विवाह मंडप में अब शिव अपनी शक्ति शैवी का हाथ थाम, परम की यज्ञवेदी से उठती ऐश्वर्यमयी अग्नि की लपटों के समक्ष फेरे ले रहे हैं। यह शिव-शक्ति का एकाकार ही तो ब्रह्मांड को सृजित करता है और इस ब्रह्मांड की स्थिति का दायित्व ग्रहण करता मैं, सदा ही श्री शिव सहस्रनाम के आत्मिक जाप में लीन रहता हूँ।''

''शिव-विवाह की इस मदमस्ती में भी मेरे प्राण स्वयं की महाअर्थयुक्तता से विमुख नहीं होते। यदि जीव भी इस मस्ती में स्वयं के प्राणों के अर्थ से च्युत न हो, तो यही जागरण जीव को शिव से एकाकार करने के मार्ग पर प्रशस्त करता है।''

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

जीवन में रस की प्यास से कौन विमुख हो सकता है? मानव सदा ही अपने मस्तक पर अंकित विधाता के लेख में जीवन के रस को खोजता है, परंतु बनारस में तो साक्षात् यह रस बना ही हुआ है। स्वाति नक्षत्र की बूँदें यहाँ आए प्रत्येक चातक रूपी मानव को स्वयं उतर परम तृप्ति का भाव देती हैं। सात वार और नौ त्यौहार काशी के लिए सदा ही आम हैं।

काशी की इस रंगभूमि पर बाबा विश्वनाथ के विवाह के स्मरण में मंचित बुढ़वा मंगल, काशी के प्रत्येक रंग को दर्शाता है। इन रंगों में रँगा हर जीव तीन दिवस मस्ती में मानो ऐसे विचरता है, जैसे स्वयं काशी विश्वनाथ के विवाह में बाराती बन रमण कर रहा हो। लय और ताल के संगम पर प्रत्येक काशीवासी का हृदय ऐसे झूमता है, मानो इस लोकोक्ति को सार्थकता देने की तत्परता में ही नवयुवक मस्ती में डोलते हैं-

"डूब जाएँ कहीं न गंगा में ये काशी वाले, नौजवानों का सनीचर है ये बुढ़वा मंगल।"

वृद्ध काशीवासी भी मानो इस बुढ़वा मंगल में ऐसे रमण करते हैं, जैसे आयु के अंत तक तरुणाई बनी रहती है। विचरती गणिकाओं के स्तनों को ढँकने वाले वल्कल वस्त्र पर ये वृद्ध ऐसे दृष्टि गड़ाते हैं कि कहीं काया का सुत भर स्थल भी उनकी दृष्टि से वंचित न हो जाए।

राज घाट से अस्सी घाट तक नावों को ऐसे सजाया जाता है कि प्रत्येक नाव चमक कर वह प्रकाश उठाती है कि रात्रि में भी अंधकार का अनुभव नहीं होता। कई नावों को साथ मिलाकर बजड़ा पाटा जाता है और प्रत्येक बजड़े को सैकड़ों नावें घेरती जूमड़ का रूप धारण कर लेती हैं। मेले में नित्य ऐसे दस-बीस जूमड़ दृष्टिगोचर होते हैं।

प्रत्येक जूमड़ में सम्मिलित काशीवासी की मस्ती को तवायफ़ों के कोमल कंठ से निकलती स्वर-लहरियाँ सौ गुना प्रभावोत्पादक बना जाती हैं। इन दिनों में निद्रा में मग्न न होने की तो मानो प्रत्येक काशीवासी शपथ ले लेता है। वेश्याओं के शारीरिक सौंदर्य को निहारते काशीवासियों को न संध्या का भान रहता है न ही अर्द्धरात्रि का। तवायफ़ों के नाच के साथ पार्श्ववर्ती भाँडों का

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

प्रशंसागान मुग्ध करता, सोने पर सुहागा हो जाता है।

तीन दिवस रात-दिन निरंतर क्रियान्वित इस बुढ़वा मंगल में महा भी भूतनाथ और अन्य के साथ, डोमराजा की नाव पर सवार सम्मिलित हो गया था। भूतू चाचा की आँखों में आज महा वह उमंग देख रहा था, जो आज से पूर्व कभी उनकी आँखों में नहीं देखी थी। विस्मित और हतप्रभ दृष्टि से वह सभी सजीले काशीवासियों को देख रहा था, जो स्वयं सज-धज कर अपनी नावों को भी सजा, गंगा पर विचर रहे थे।

नावों को सजाना जैसे प्रतिष्ठा का विषय हो चला था। बजड़ों को पाटकर सजाना महा को ऐसा प्रतीत हो रहा था, जैसे सभी अपने-अपने अधिकार क्षेत्रों का दावा कर रहे हों। क्या काशीराज और क्या महाजन, यहाँ तक की श्मशान के डोमड़े एवं जुलाहे भी! सभी ने तो अपने सामर्थ्य और श्रद्धा के अनुसार नावों एवं बजड़ों को सजाया था। कोई बजड़ा मोर पंखों सा चित्रित था, तो किसी बजड़े को रथ सा आकार दे काष्ठ के चार कृत्रिम घोड़ों को निर्मित कर सजाया गया था।

कैलास की समस्त धवलिमा की मूर्तिमतिधारा गंगा आज रात्रि में असंख्य झाड़-फ़ानूस, मोमबत्तियों, पंचलेट और दीपकों के प्रकाश में नहाती पीतांबर वर्ण हो चली थी। दूर से देखने पर प्रतीत होता था, मानो अखिल ब्रह्मांड अपने तारों और नक्षत्रों के साथ गंगा पर उतर आया हो।

अर्द्धरात्रि के इस समय महा भी एक समूह में सम्मिलित हो देख रहा था की प्रत्येक काशीवासी रसिक बनकर तवायफ़ों और गणिकाओं के नृत्यगान के रस में डूबा मस्त हो रहा था। किसी नाव पर कोई शतरंज और ताश के खेल में अपने भाग्य को आज़मा रहा था, तो किसी नाव पर बूटा छन रही थी और गाँजे के दम लगाए जा रहे थे। हलवाई भी आज अपनी नाव पर दु:ख ान सजाए कचौड़ी-समोसे बेच रहे थे, तो मंगल की इस रात्रि में दूर एकाकी नाव पर बैठा कोई प्रेमी अपने हृदय को निकाल, गणिका के पग पर धर रहा था। चैतीगान के तान पर कत्थक करती कलावती के पैरों की थिरकन से न मात्र आम जन, अपितु रत्नपारखी गुणियों के भी हृदय मुँह को आ रहे थे।

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

प्रभात हो रहा था और भूतनाथ ने यह स्पष्ट देख लिया था कि सभी काशीवासियों की इस भटकन में भी महा अपने चरित्र के चरम पर विराजित हो, पूर्ण रात्रि निर्लिप्त ही बैठा था। किसी भी नवयौवना के कटीले नयन उसके मानस समुद्र को विक्षोभित नहीं कर पाए थे, अपितु रात्रि भर वह अपने पादांगुष्ठों को अपने ही पगों पर रगड़ रहा था। क्षण मात्र को भी भूतू उसकी दृष्टि में किसी कलुष भाव को नहीं पढ़ पाया था।

भोर का प्रकाश होते ही नावों पर सजे झाड़-फ़ानूसों की बत्तियाँ बुझा दी गई थीं और उनकी नाव गंगा की धारा में बहती मणिकर्णिका महाश्मशान के सामने से गुज़र रही थी। इस शिवभूमि से सुंदर भला कौनसा स्थान है? सोचते ही महा की दृष्टि जलती चिता की ओर चली गई थी और अब वह सोच रहा था कि रात्रिभर के इस कोलाहल की अपेक्षा मृत्यु की जय-ध्वनि कितनी स्निग्ध और मधुर है। इस धरा पर एकमात्र अटल सत्य, मरण के लिए कौन जीता है? क्या किसी भी गणिका का सौंदर्य इस चिताग्नि की सुंदरता को मात दे सकता है? भूतनाथ देख रहा था कि रात्रि में महा का जो मुखमंडल कांतिहीन हो चला था, वह चिताग्नि को देखते ही कांतिमान होता दिव्यता उठाने लगा था।

वाह रे काशी! अकस्मात् ही सही, राजा हो या रंक गंगा पर भ्रमण करते सभी की दृष्टि क्षण मात्र के लिए इस महाश्मशान पर पड़ ही जाती है। ज्ञानोदय का प्रथम और सर्वोत्तम चरण ही तो श्मशान है, जहाँ चरण या दृष्टि पड़ते ही वैराग्य अवश्यंभावी है।

इस महाश्मशान ने महा के हृदय में वैराग्य का अमोघ बीज बो दिया था। वह जान चला था कि सत्य, तटस्थ और विशुद्ध-विरक्त वास करना, श्मशान के अतिरिक्त इस संसार में अन्यत्र कहीं भी संभव नहीं। उसका हृदय कर रहा था कि वह नाव से उतरकर मणिकर्णिका महाश्मशान पर ही ठहर जाए, परंतु भूतू चाचा के आग्रह के सामने वह विवश हो चला था।

कल मंगल था तो आज दंगल। आज गंगा की धार के अतिरिक्त घाटों पर भी मेला सजा था, सर्वत्र प्रकाश ही प्रकाश। मंगल वस्त्रों को धारण करते और बनारसी सेले को शरीर पर धारण कर, गुलाब और खस का इत्र लगा रमण

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

करते नवयुवक सारी नवयौवनाओं की दृष्टि में झाँकते, अपनी प्रेयसी की ललक पाने को आतुर हो रहे थे।

गंगा में भी आज नौकाओं का दंगल था। कच्छों को पाट कर कई मंच सजे थे। पंचगंगा घाट पर मानो गंगाजी की अर्ध दूरी तक श्वेत एवं गुलाबी वर्ण का पुल बना हुआ था। सारे मंचों पर झुंड की झुंड गणिकाएँ विराजित थी।

संध्या में फिर सभी दीपावलियाँ प्रज्वलित हो उठी थीं। समाज की कुत्सित रुचि पर तिल-तिल करके जीवन-यज्ञ में स्वयं का हविष्य डालती गणिकाओं के कंठ से हृदयाग्नि सुमधुर स्वर लहरी बन वातावरण को मदमस्त कर रही थीं। गणिकाओं के नृत्य में मानो हर काशीवासी की श्वासें ज्यों की त्यों थम गई थीं।

रात्रि अब धीरे-धीरे अपने साम्राज्य को फैलाने लगी थी। गणिकाओं के फड़कते होठों का सौंदर्य अब देखते ही बनता था। शृंगार कर नयनों में काला अंजन लगा जब गणिका अपने कटीले चितवन के बाण चलाती थी, तो बाबा विश्वनाथ का प्रत्येक बाराती घायल हो अपने हृदय को थाम लेता था। धारण किए गए आभरण से शोभित जब कोई गणिका मंच से नीचे शांत गंगा में झाँकती, तो उसके प्रतिबिंब पर मोहित हो न जाने कितने नवयुवक नदी में छलाँग लगाते डुबकी लगाने लगते थे। गणिकाएँ नृत्य करती लास्य को बिखेर रही थीं। भाँग एवं गाँजे की मस्ती में उनके नृत्य के साथ अपनी-अपनी नाव में सवार नवयुवक भी नृत्य में लीन थे।

मदजंपित होते, झूमते-झपकते भूतनाथ के मन का निश्चय आज कुछ और ही था। हृदय के देवालय में स्थित गुरुमूर्ति रूपी महा में आज वह गुरु के स्थान पर एक नवयुवक को देख रहा था। गाँजे की पिनक में उसके माथे पर हल्का सा पसीना चमक रहा था। रस की इस बाढ़ में अब वह उठ खड़ा हुआ और महा का हाथ थाम उत्तेजनापूर्ण स्वर में उसने उसे अपने साथ चलने को कहा।

शांत और गंभीर मुखमंडल लिए अब महा उसके साथ हो लिया था। एक-एक कर कई नावों को पार करता भूतनाथ, उसे गंगा के उस पार की ओर

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

स्थित उस अंतिम नाव में ले आया जहाँ मात्र दो पंचलेट जल रहे थे, दूसरी नावों की अपेक्षा यह नाव अंधकार के साम्राज्य में डूबी थी।

महा ने देखा कि नाव के सामने वाले छोर पर कोई लबादा ओढ़कर बैठा था। भूतू ने महा को थोड़ा आगे धकेलते हुए कहा-

''जा, जीवन का यह स्वाद भी चख ले।''

वाक्य ख़त्म होने से पूर्व ही भूतनाथ पलटकर वापस लौटते हुए दृष्टि से ओझल हो गया था।

भूतनाथ के जाते ही सामने बैठे व्यक्ति ने लबादा उतार फेंका और साया महा की ओर सरकने लगा। अब महा ने देखा कि एक कमनीय गणिका अपने सौंदर्य को प्रदर्शित करती उसके समक्ष आ खड़ी थी। उसके नयन, कमल की पँखुड़ियों के समान थे। कानों में कर्णफूल लटक रहे थे। बिजली चमकाती हुई काली घटा के समान, वह अपने कटीले नयनों से महा पर विद्युत् गिराने का प्रयत्न कर रही थी। महा के मुख की कांति देखकर उसके कुमुद खिल उठे थे। अपने घुँघराले अलकों और वल्कल वस्त्र से ढँके उन्नत स्तनों से वह महा को रिझाने में मग्न हो चली थी।

परंतु आश्चर्य! महा एक योगी सा अपने शरीर के भीतर ही विद्यमान था। संपूर्ण चेष्टा और पूरी शक्ति का उपयोग कर अब वह गणिका थक गई थी।

पराजय व निराशा का भाव लिए जैसे ही उसकी दृष्टि महा की दृष्टि से टकराई, तो महा की दृष्टि से झाँकते शुद्ध चैतन्य को देख वह सहम गई। आज से पूर्व उसने स्वयं के प्रति ऐसा श्रद्धाभाव किसी भी पुरुष की दृष्टि में नहीं देखा था।

अब मानो गणिका का शरीरबोध ख़त्म हो चला था और मन में एक अपरिभाषित वैराग्य का जन्म होते ही, स्वतः स्वर फूट पड़े-

''अपनी काया को ही संचित धन मान, इसे भोगा था। कितनी मूर्ख थी मैं! इंद्रियों के आधीन हो हड्डियों के ढाँचे पर सजी इस मांस और चर्म की काया को न जाने कितने पुरुषों को समर्पित किया और बदले में जो पाया वह कितना तुच्छ था। अनगिनत बार इस काया के विक्रय से मात्र स्वयं के प्रति मोह,

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हीनभाव और अश्रुओं के अतिरिक्त कुछ भी न पाया। समय यूँ ही व्यर्थ गँवा दिया।''

अब महा शांत निर्लिप्त भाव में दृष्टि नीचे की ओर झुका खड़ा था। एकाएक उसके कानों में गणिका के निश्चयात्मक स्वर सुनाई दिए-

''समय गँवाया है परंतु जीवन नहीं। आपकी अखंड शांति देख स्पष्ट हो गया है कि अनासक्ति ही शांति का मूल है। कामनाओं के उस पार ही आनंद बसता है।''

अब गणिका ने अपना सिर महा के चरणों में झुका दिया था। अब भी वह बोल रही थी-

''आपके मुखश्री से उठती दिव्यता के समक्ष इस गंगा की दिव्यता भी तुच्छ प्रतीत हो रही है। आप ही मुझ पतिता को भवसागर के पार उतार सकते हैं, सो कृपया मुझे अपनी शरण में लें।''

गणिका की आँखों से बहती अश्रुधार महा के पग को भिगो रही थी। महा मान रहा था कि भूतू चाचा उसे छोड़कर जा चुके हैं, परंतु भूतनाथ पास वाली नाव में छुपकर बैठा सब देख रहा था। अब वह महा के पीछे आ खड़ा हुआ था और उसका मन पश्चात्ताप की अग्नि में झुलस रहा था। महा के कंधे पर हाथ रख, अब वह बोल उठा-

''मुझे क्षमा कर दे पुत्र, तुझे जानकर भी पहचान न पाया।''

यह कहते ही भूतू की आँखों से भी अश्रुधार बह चली थी।

वह गणिका अब भी महा के चरणों में पड़ी सिसक रही थी। महा ने अब अपने पग तनिक पीछे कर लिए। तब गणिका ने अपनी दृष्टि ऊपर उठाकर कहा- ''भाग्य के अनिवार्य हाथों अब तक मैं नरक में जीती रही, आप ही मुझे मुक्ति के द्वार पर ले जा सकते हैं।''

महा ने झुककर गणिका को सहारा देकर खड़ा किया और अत्यंत शांत स्वर में कहा-

''बहन, यह चांडाल तुझे भवसागर से पार क्या उतारेगा? अभी तो मैं भी उस पथ का पथिक नहीं।''

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

आश्चर्य, जिज्ञासा और महा के प्रति श्रद्धा का भाव लिए भूतनाथ का शरीर पीला पड़ गया था। आज वह महा में किसी अदृश्य देवता की छवि को निहार रहा था। नीम के तेल में भूने जाते लहसुन के समान जलते हुए शवों से उठती दुर्गंध के बीच, भला यह चंदन की सुगंध क्या कर रही है? प्रश्न मन में उठते ही भूतनाथ काँप उठा और सोचने लगा कि शिव के विवाह की इस मंगल बेला की मदमस्ती में भी महा अपनी अर्थयुक्तता से विमुख नहीं हुआ। सामने खड़ी इस सौंदर्यमयी गणिका को देखकर भी महा अपने चांडाल रूप को नहीं भूला। इस मस्ती में भी महा अपने प्राणों के अर्थ से च्युत न हुआ था। अवश्य ही यह चांडाल नहीं, अपितु कोई महान संत है। इसी जागरण में यह जीव निश्चित ही शिव से एकाकार करने को जन्मा है, तभी तो मैं और अब यह गणिका भी इसे अपना गुरु मान रहे हैं।

अब गणिका के कहे पर ध्यान न देते हुए जैसे ही महा अपनी नाव पर पुनः जाने के लिए पलटा, उसके कर्णपटल पर गणिका के कातर स्वर पड़े-

''आप ही मुझ पतिता को मुक्ति प्रदान कर सकते हैं। हाँ, मैं अपने प्राणों की शपथ लेकर कहती हूँ कि आज के बाद कोई पर-पुरुष मुझे हाथ तक नहीं लगा सकता और जब तक आप मुझे अपनी शिष्या स्वीकार नहीं करते, तब तक इस आस में बाबा विश्वनाथ पर रोज़ एक पुष्प चढ़ाऊँगी कि किसी दिवस तो आप मुझे शिष्या स्वीकार करेंगे।''

क्षण को महा ठिठककर रुक गया और पुनः पलट गणिका की ओर देखने लगा। आज उसका मुखमंडल एक अद्भुत तेज से प्रकाशित था। अब वह तनिक मुस्कराकर बोला-

''क्यों व्यर्थ की आस लगाती हो बहन, जिसे तुम गुरु बनाना चाहती हो वह तो आए दिन सिर्फ़ यही सुनता है-

'पर याद रख मैं तेरा गुरु नहीं।' ''

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अध्याय-२७

महाश्मशान मणिकर्णिका पर समाधिस्थ अविकर्ता, त्रिशूली, महाज्ञेय काशी विश्वनाथ अब अपने नेत्र खोल सामने जलती चिता को निहार रहे हैं। उत्तम कीर्ति से सुशोभित वे दूसरी चिता पर सजे शव के कान में तारकमंत्र फूँकते अनाहत नाद उठा रहे हैं-

''मैं शिव ही संपूर्ण ब्रह्मांड के समस्त भूतों में गुहा रूप से व्याप्त हो, भूतों की अंतरात्मा एवं धर्माध्यक्ष कहलाता हूँ। ब्रह्मा से लेकर तृणपर्यंत जो कुछ भी भासमान है, उसमें नाना तत्त्व की मिथ्या कल्पना ही माया है। इस त्रिगुणमयी माया को लाँघकर जो जीवात्मा अपने शुद्ध स्वरूप में स्थित होता है, वही मुझ सत्यानंद स्वरूप अनंत बोध में निर्मल शिवात्मा से एकाकार हो, मुझ पूर्ण ब्रह्मशिव के पद पर सुशोभित होता है।''

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

महा की आत्मा पर अब माया की भ्रांति रूपी राख पड़ने लगी थी। चिताग्नि में तपकर अब उसके प्राण वह मरुस्थल हो चले थे, जहाँ मृगमरीचिकाओं को देखते ही अंतर लालायित हो जल की आस में दौड़ने लगता था।

कितना प्रिय था उसे कबीर का सखा रूप! कितने गर्व से वह माँ, इस्माइल चाचा और भूतू चाचा से कहता था कि "कबीर मेरे सखा हैं।"

मानसपटल पर अंकित कबीर का सखा रूप अब मानो पूर्णतः अदृश्य हो गया था। कबीर का शांत स्निग्ध मुखश्री अब कितना कठोर हो चला था! अनगिनत.मानस निवेदन के पश्चात् भी अब कबीर स्वप्न में सखा के रूप में नहीं मिलते थे। आँखों में क्रोध भले न हो, परंतु कबीर वाणी अब कठोर हो चली थी। मानो कबीर स्वप्न या भाव में उतरते उसका सिर फोड़ने पर उतारू हो गए थे। अब उसे ध्यान आ रहा था कि सखा रहते अपने स्निग्ध स्मित के साथ कबीर सदा कहते थे-

"कबीरा खड़ा बाज़ार में, लिए लुकाठी हाथ,
जो सर फोड़े आपना, होय हमारे साथ।"

जैसे मित्र के संग सारे तार टूट गए हों और कबीर अपनी छिपी हुई आकांक्षा को तृप्त करने यथार्थ में ही सिर फोड़ रहे हैं। जो वेदना अब तक महा में सुषुप्त थी अब मुखमंडल पर स्पष्ट झलकने लगी थी। जब-जब वह कबीर का यह रूप इस्माइल चाचा अथवा भूतू चाचा को बताता, तो उनके शब्द भले ही अलग हों, पर भाव एक ही रहता कि "महा तू भाग्यवान् है।" परंतु उसकी पीड़ा को कौन समझता था? माँ तो मानो अब उसे निहारती मूक मौन हो चली थीं, परंतु उसकी दृष्टि में सदा उसे स्वयं के प्रति वात्सल्य नहीं, अपितु श्रद्धा का भाव झलकता प्रतीत होता था।

पूर्व में कबीर के स्वप्न में आने के कारण उठती तरंगित भाव-लहरियाँ, अब कबीर का यह कठोर रूप देखकर गतिहीन हो गई थीं। कबीर मानो अब

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हृदय में शूल चुभाने लगे थे और उनके शब्द अब गूढ़ से गूढ़तम हो चले थे।

भोर का समय था, अत्यधिक कोहरे से शीत बढ़ गई थी। श्रम और थकान से चूर महा अब मणिकर्णिका से चलकर पंचगंगा घाट पर आ बैठा था। कंबल को ओढ़े वह कोहरे की सफ़ेद चादर में लिपटी गंगा को तकने का प्रयत्न कर रहा था। सखा-वियोग से लगे घाव से निकलते मवाद को अब गंगा का निर्मल जल स्वच्छ करता, तो चिताग्नि की उष्णता मरहम का काम करने लगी थी।

अत्यधिक शीत और श्रम के प्रभाव से घाट की सीढ़ी पर बैठा महा कंबल ओढ़ वहीं लेट गया। हृदय धड़क रहा था कि यदि नींद आ गई तो फिर कबीर का कठोर रूप दृष्टि के समक्ष आ खड़ा होगा, परंतु थकान ने भय पर विजयश्री पा ली और महा निद्रामग्न होता स्वप्न में उतर गया।

स्वप्न में वह देख रहा था कि दोपहर की भीषण गर्मी में शवों को जलाता वह श्रमसीकरों से भीग गया था। कंठ सूख रहा था और तृष्णा को तृप्त करने अब वह पंचगंगा घाट आकर अंतिम सीढ़ी पर बैठ, सामने बहती त्रिपथगा गंगा के जल को अँजुली में भर-भर कर पान कर रहा था। जैसे ही खड़े होकर उसने अपना पग घाट की दूसरी सीढ़ी पर रखा तो उसने अपने दाहिने पाँव के अँगूठे पर एक तीक्ष्ण दंश महसूस किया। दृष्टि ऊपर औरंगज़ेब की मस्जिद की ओर थी सो दंश को महसूस कर जैसे ही उसने दृष्टि सीढ़ी की ओर नीचे की, तो देखा कि एक श्वेत नागिन कुंडली मार फन फैलाए बैठी है। महा की दृष्टि पड़ते ही अब वह शनैः-शनैः सरकती आँखों से ओझल हो गई थी। नागिन के दंत चिह्न अँगूठे पर स्पष्ट दिखाई दे रहे थे, परंतु आश्चर्य कि उसे तनिक भी भय प्रतीत नहीं हो रहा था।

अब खड़ाऊँ की खट-खट की आवाज़ सुन जैसे ही उसकी दृष्टि ऊपर की ओर गई, पंचगंगा घाट की सीढ़ियाँ उतरते कबीर उसके समक्ष आ खड़े हुए थे। उनके मुखमंडल पर सखा का भाव तो न था, परंतु फिर भी एक स्निग्ध स्मित उनके मुखश्री को दमका रहा था। अंगुष्ठ पर नागिन के दंत चिह्न को देखते वे

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मुस्करा कर महा से बोल रहे थे। मुखमंडल पर भाव कोमल थे परंतु वाणी गूढ़ एवं कठोर।

''सहस्रार में राम का ध्यान करते ही जीवन-मरण से युक्त जीव के सारे भ्रम लुप्त हो जाते हैं। यहाँ स्थित रहना अत्यंत कठिन है, परंतु यह स्थान अनंत नक्षत्रों के प्रकाश से प्रकाशित परमेश्वर का साक्षात्कार कराता है और इसी प्रकाश से तीनों लोक प्रकाशित हैं। मन, वाणी और बुद्धि से परे इस तत्त्व को कोई नहीं समझ सकता। ध्यान ही लगाना है, तो इड़ा और पिंगला के मध्य सुषुम्ना के शून्य शिखर पर लगा। इस शून्य के शिखर पर ही वह दिव्य ज्योति उठाता चैतन्य तत्त्व है, जो वर्ण-शब्द से परे यहाँ अनाहत नाद उठाता है। दिव्य ज्योति रूपी हृदय कमल ही आत्म-तत्त्व का निवास स्थान है। द्वादश कमलदल रूपी अनाहत चक्र पर ध्यान करते ही परमात्मा आ खड़ा होता है। न तो वह स्वच्छ है, न ही मलिन है। धूप-छाँव, रात-दिन, सूर्योदय-चंद्रोदय की शून्यता में वह मायातीत तत्त्व सच्चिदानंद है।''

''सोऽहम् का जाप ही दिव्य आत्मा रूपी मानसरोवर में डुबकी लगवाता है। यह जाप ही तुझ जीवात्मा को अपने शुद्ध स्वरूप में स्थित कर त्रिगुणातीत माया के परदे को फाड़ देगा। आत्म-ज्योति को मन में स्थिर करते ही जीवात्मा सत्यानंद स्वरूप अनंत बोध में शिवात्मा से एकाकार करती, पूर्ण ब्रह्मशिव के पद पर शोभित होती है। यह शोभा तो तुझे तेरा गुरु ही देगा, परंतु तू इस त्रिगुणातीत माया में फँसकर अपने आत्मस्वरूप को खोता सदा यही सोचता रहता है कि अंत में सदैव मैं तुझसे यह क्यों कहता हूँ-

'पर याद रख मैं तेरा गुरु नहीं।' ''

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अध्याय-२८

आज महाश्मशान मणिकर्णिका पर मध्याह्न की इस घड़ी चिताभस्मलेपनकारी, श्मशानविहारी, त्रिनेत्र काशी विश्वनाथ इंद्रियों एवं विषयों से अतीत, अमर अनाहत नाद निनादित कर रहे हैं-

"मैं शिव वस्तुत: निर्गुण ही हूँ एवं परमानंद में मग्न सगुण रूप धारण करता इस अखिल ब्रह्मांड को सृजित करता हूँ। मुझ निर्गुण एवं सगुण उभयात्मक शिव की कोई जाति नहीं, मेरे ही नि:श्वास से समस्त वेद रूप धरते अवतरित हुए हैं।"

"मैं शिव ही स्वयं की उत्पत्ति सृष्टि-कौशल का ध्यान कर इस सृष्टि के पीछे चैतन्य स्वरूप दर्शक रूप में अवस्थित हूँ, साथ ही साथ सभी जीवों की आत्मा में स्थित सर्वांतर्यामी हूँ।"

"अविद्या का प्रपंच ही भेद उत्पन्न करता है एवं जीव काल-संघर्ष से ग्रसित स्वयं की धारणाओं के क्षुद्र मल से घिर परम सत्य को खो देता है।"

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

काल का चक्र अब तेज़ी के साथ घूमने लगा था एवं कबीर, महा के साथ अपना सखाभाव छोड़ कठोर हो चले थे,

क्या दोष था उसका?

क्या मात्र इतना दोष था कि विचारमग्न संध्या के धुँधलके में वह तृष्णा में अपने गुरु को प्राप्त करने की चाहना रखता था? क्या वह इसलिए दोषी था कि मौन आकाश के नीचे विचरता वह उस रूप को ढूँढ़ रहा था, जिसका सौंदर्य उसे अनंत के द्वार पर ले जा सकता था? क्या उसका गुनाह मात्र इतना था कि वह उस सद्गुरु को खोज रहा था, जो उस पर किसी असंवेदी मध्यरात्रि में अपने अनुग्रह की वर्षा कर उसे आनंद समाधि में लीन कर सकें ?

स्वयं की मनोदशा के व्यापार में महा अब न केवल खंडित अपितु स्वयं से भी लज्जित होने लगा था। एक अर्थविहीन क्रिया जैसे उसकी संपूर्ण दिव्यता को ग्रसने लगी थी। अपने चैतन्य अस्तित्व से वंचित हो अब वह कबीर के संग बिताई घड़ियों के आनंद को खोने लगा था एवं कबीर थे कि अब दिन-प्रतिदिन कठोर होते जा रहे थे। निर्गुण एवं सगुण के द्वंद्व में महा का अंतर अब सुप्त हो चला था।

जब कबीर मृदु थे एवं उनकी वाणी प्रेम के रस को आप्लावित करती थी, तब तुलसी भी अपनी सरस वाणी में रामचरितमानस के अमर गान को गा, उसकी दृष्टि के समक्ष सर्वत्र मनोहर सगुण राम की स्मित उठाती मूर्तियों को ला खड़ा कर देते थे। परंतु अब इन घड़ियों में कबीर तो जैसे उसके हृदय को भंग करने ही आते थे एवं यदा-कदा यदि तुलसी भी भाव में आते, तो जैसे सगुण राम की उस क्रोधमयी मूर्ति को दृष्टि के समक्ष ले आते थे, जो रावण के गर्व को नष्ट करने के लिए घोर नाद उठाते बाणों की वर्षा कर रही हो।

महाश्मशान मणिकर्णिका की धरा पर भी अब तो काशी विश्वनाथ के हस्ताक्षर शनैः-शनैः उसकी दृष्टि से ओझल होते जा रहे थे। महाश्मशान की दिव्यता का महिमागान भी अब खंडित हो चला था एवं अंतस् के इस तम में अब वह शिवज्ञान भी लुप्त हो रहा था, जहाँ वह मृत्यु को शाश्वत अमरता के राज्य की ओर बढ़ने वाले मार्ग का रूप मानता था। शिवभक्ति तो जैसे पूर्णरूपेण खंडित होने की कगार पर ही थी एवं उसके खंडावशेष में अब शिवध्यान भी

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

टूट गया था। भूतनाथ देख रहा था कि विगत कई मासों से महा पद्मासनस्थ हो रात्रि में चिताग्नि के समक्ष नहीं बैठा। अब तो महा अहर्निश शवों को जलाने एवं ललाट पर चिताभस्म से त्रिपुंड खींचने के शिवव्रत को भी खंडित करने लगा था।

स्वयं के इस अधोपतन में महा जब रात्रि के किसी पहर महाश्मशान की धरा पर लेटता, तो लज्जित मन, धरणी के संदेशों को सुन और लज्जित हो जाता। स्वभाव से रूखी होने पर भी यह स्थूल धरा, स्वयं की स्थूलता में प्रत्येक को स्वयं की ओर आकर्षित करती है, इसके विपरीत वह तो सदैव ही हंसमुख एवं सबके प्रति प्रेम से भरा हृदय लिए फिरता है। फिर क्यों माँ के अतिरिक्त कोई उससे आकर्षित नहीं होता? अब तो सखा कबीर भी उससे विमुख होते विकर्षित हो रहे हैं। भूतू चाचा व्यर्थ ही कहते हैं कि "महा, तुझमें एक अलग ही आकर्षण एवं तेज है।" वाचाविहीन यह धरा समस्त द्रव्यों को स्वयं में धारण कर स्थिर है, परंतु वह तो कबीर के संग बिताई घड़ियों के आनंद को भी स्वयं में धारण नहीं कर पाया एवं अस्थिर हो गया है। इस धरा की कठोरता ही इस पर सबके वास का कारण है, जबकि किसी मूर्ख के समान वह अपनी भावनाओं में बहकर भावुक हो, स्वयं में भी स्थिर नहीं हो पाया।

इस क्षण महा को यह ज्ञात न था कि वाचाविहीन धरा, वास्तविक रूप में उसे यह संदेश प्रेषित कर रही है कि दग्ध होकर भी सहिष्णु बन। स्वयं की छाती चीर उपजाऊ होकर ही उसने स्वयं का अर्थ पाया है एवं स्वयं का अर्थ ज्ञात करने के पश्चात् कोई भी अर्थहीनता महसूस नहीं कर सकता।

स्वयं के अन्वेषण में अब वह कबीर के अंतिम शब्द रूपी प्रज्वलित अंगारों में दग्ध होता बेसुध सा यात्री बन, प्रत्येक महात्मा में स्वयं के गुरु को खोजता असहिष्णु हो चला था एवं मान बैठा था कि इस चांडाल स्वरूप ने ही उसे इस जगत् में नितांत रीता छोड़ दिया है। तभी तो उसे उस दिवस भी उन महात्मा को दूर से ही साष्टांग नमन करना पड़ा था, जिन्होंने उसे शिव एवं भस्म के संबंध से अवगत कराया था। ये वही महात्मा थे जिन्होंने स्नेहसिक्त होकर उसके सिर पर हाथ फेरते, 'ज्ञानवान् भव।' का आशीर्वाद दिया था। समय की उस घड़ी वह चांडाल नहीं था।

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अब शव जलाने के उद्देश्यहीन श्रम में उसकी दृष्टि जो अंश मात्र देखती थी, वह था किसी भी महात्मा के मुखमंडल पर स्वयं के गुरु का दर्शन और इसी तृष्णा में स्वयं को अशक्त करता वह हर महात्मा के मुखमंडल में स्वयं के भावी गुरु को खोजने लगा था।

प्रकृति का एक क्षुद्र दास बन, निज मन के विशाल रीतेपन में मात्र एक प्रश्न ही शेष रह गया था-

"क्या मुझ चांडाल का भी कोई गुरु हो सकता है?"

निराश हृदय लिए वह आज भीषण ग्रीष्म के इस मध्याह्न में बाँस के टुकड़े द्वारा शव के बाहर निकले पगों को ठोंक-ठोंक कर चिताग्नि में समर्पित कर रहा था। संपूर्ण काया स्वेद कणों से भीग गई थी कि अचानक उसकी दृष्टि सामने गंगा पर बहती नाव पर टिक गई, जिसमें एक अपरिचित महात्मा बैठे थे। कैसा अपूर्व सौंदर्य झलक रहा था उनके मुखमंडल पर! मानो कोई देव, अमृत जल की धारा बहाने वाली गंगा से अमृतपान करने धरा पर उतर, इस नाव पर सवार हो गए थे। वे महात्मा भी अपनी आँख गड़ाए उसी को देख रहे थे। उनकी दृष्टि जैसे महा के विदीर्ण अंतर पर शांत अमृत की वर्षा कर रही थी। अब नाव पंचगंगा घाट की ओर बढ़ रही थी।

"अंधगर्त की परम दासता से यही मुझे मुक्ति देंगे", सोचते महा का हृदय धड़क उठा। गुरु रूपी मृगमरीचिका महा की दृष्टि के समक्ष पुन: आ खड़ी हुई। अंधे हृदय स्थल में जैसे कोई आशा रूपी प्रकाश की किरण उतर आई हो एवं उसे मुक्ति का मार्ग दर्शा रही हो, यह भाव उठते ही महा नंगे पग घाटों की सीढ़ियों की ओर दौड़ पड़ा था। आशा की इस शक्ति में घाटों के तपते पत्थर भी महा के पगों को दग्ध नहीं कर रहे थे। श्रमसीकरों से भीगा महा दौड़कर जैसे ही पंचगंगा घाट पहुँचा, उसने देखा कि भविष्य आशा की साक्षात् मूर्ति वे महात्मा अपने शिष्यों के साथ नाव से उतरकर पंचगंगा घाट की सीढ़ियाँ चढ़ रहे थे।

स्वयं की उखड़ती साँसों एवं अस्थिर चित्त के साथ, महा जैसे ही उन महात्मा को साष्टांग नमन करने के लिए झुक ही रहा था कि महात्मा के क्रोधित स्वरों ने मानो उसके कर्णपटल पर लावा उँड़ेल दिया था-

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

"अरे अनपढ़ चांडाल! परे हट, तेरी तो छाया भी धर्म भ्रष्ट कर देती है।"

कलुषित फंदे वाले जाल रूपी इन शब्दों में फँस महा के प्राण छटपटा उठे थे, जैसे अखिल व्योम को मृत्यु के देव ने अपनी कालिमा से आ घेरा था। इस कालिमा भरे मर्त्याकाश के नीचे महा जिस द्रुत गति से यहाँ पहुँचा था, उससे दो गुनी गति से अश्रु बहाते पलटकर वह महाश्मशान मणिकर्णिका पर आ पहुँचा था। दृष्टि केसमक्ष दो जलती चिताओं एवं भूतू चाचा के अतिरिक्त इस घड़ी वहाँ कोई नहीं था। सारे शवयात्री सिंधिया घाट पर स्नान के लिए जा चुके थे। भूतू चाचा के निकट आ, उनसे लिपट वह फूट-फूट कर रोने लगा। क्यों उसने विद्यालय जाना छोड़ दिया था एवं क्यों उसने इस चांडाल स्वरूप कलुष फंदे के जाल में स्वयं को स्वयं से ही बद्ध कर लिया था? सोचते, वह रोते हुए भूतू चाचा से पूछ बैठा-

"क्या अनपढ़ होना एवं चांडाल बनना कोई पाप है? जो महात्मा ज्योतिर्लिंग पर फूल-मालाएँ अर्पित करते हैं, वे उसी काशी विश्वनाथ के अधीन इस महाश्मशान में कार्यरत हम चांडालों का इतना घोर तिरस्कार क्यों करते हैं? क्यों वे हमारी छाया से भी घृणा करते हैं?"

कहते महा ने भूतू चाचा को पूर्ण घटना का वृत्तांत दे डाला था। अब भी अश्रुधार जस की तस थी एवं हृदय की इस दग्धता में उसके उच्चारणों में एक अपूर्व तुतलाहट थी।

प्रदमित एवं उत्पीड़ित महा पर दृष्टि डाले भूतनाथ देख रहा था कि काल के दानव के मुख में महा का तेज शनैः-शनैः समाता जा रहा था एवं उसकी संपूर्ण आभा अब विलुप्ति की कगार पर खड़ी थी। एक दिव्य चिंगारी अब काल की ठोकरों से शनैः-शनैः बुझने लगी थी।

उसे संबल प्रदान करने के लिए अब भूतनाथ ने उसे अपने भुजपाशों में जकड़ लिया था एवं उसके केशों पर अपना कर फेरते भूतनाथ बोल उठा-

"देख, इस महाश्मशान की धरा को देख। आदित्य की दग्धता एवं चिताग्नि की झुलसन में झुलसकर भी यह शांति एवं सहिष्णुता का संदेश सुनाती है एवं तू ज़रा सी अग्नि की आँच से झुलसता, स्वयं को पतन के मार्ग पर धकेल

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

रहा है। अरे तू तो अपने स्वरूप से भी परिचित नहीं।''

कहते भूतनाथ ने उसे स्वयं के साथ सीढ़ी पर बैठा लिया।

संपूर्ण सत्ता मानो आज महा की दृष्टि के समक्ष विलुप्त हो गई थी। जीवन की इन बाह्य जकड़नों से अब वह थकने लगा था। स्व की चिताग्नि में स्वयं को शव के रूप में धरता अब वह अपने श्वाससूत्रों को बिखेरने लगा था। शून्य दृष्टि से वह अब भूतू चाचा को तकने लगा था। भूतनाथ अब उसकी इस रिक्त दृष्टि में साफ़ पढ़ रहा था कि यह दिव्य आत्मा अब स्वयं के स्वरूप का भान खो, अविद्या के प्रपंच में पड़कर भेद उत्पन्न कर रही है। अब वह स्वयं काल-संघर्ष से ग्रसित होती अपनी धारणाओं के क्षुद्र मल से घिरकर परम सत्य को खो रही है। महा अब भी उसे वैसे ही तक रहा था, परंतु अब उसके अश्रु थम चुके थे।

महा के प्रति दृष्टि में एक आलोकित भावबोध लिए, भूतनाथ पुन: बोल उठा-

''स्वयं मुक्तिदाता मुक्ति नहीं खोजते। तेरा दर्शन तो ऐसा है जैसे स्वयं की तरुणाई में काशी विश्वनाथ, चांडाल का रूप धर शवों को जला, मुक्ति प्रदान करते हैं। किस जाति की बात कर रहा है? जो काशी विश्वनाथ वस्तुत: निर्गुण होकर भी परमानंद में सगुण रूप धारण कर इस अखिल ब्रह्मांड को सृजित करते हैं, उन निर्गुण एवं सगुण उभयात्मक काशी विश्वनाथ की कोई जाति नहीं है। किसे अनपढ़ मान रहा है? अरे काशी विश्वनाथ के नि:श्वास से तो संपूर्ण ब्रह्मांड का ज्ञान, वेदों में समाहित होता धरा पर अवतरित हुआ है। आज जो तेरे साथ घटित हुआ, वह तो स्वयं काशी विश्वनाथ के साथ भी घटित हुआ था।''

महा अब प्रश्नवाचक दृष्टि से भूतू चाचा को देखने लगा। अंतर की उथल-पुथल दृष्टि में यह भाव स्पष्ट झलका रही थी कि काशी विश्वनाथ के साथ क्या हुआ था? उसकी दृष्टि के भावों को पढ़ते भूतनाथ कह उठा-

''मन के समस्त चिंतन के पश्चात् उसकी रिक्तता में जैसे साक्षात् अद्वैत उतर आया हो एवं उसी का प्रतिपादन करते आदि शंकराचार्य भी अपने शिष्यों के साथ स्नान के लिए मणिकर्णिका घाट की सीढ़ियाँ उतर रहे थे। तब साक्षात्

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बाबा विश्वनाथ चांडाल का रूप धर चार वेदों को श्वानों का रूप दे, उनके समक्ष आ खड़े हुए थे। उस घड़ी आदि शंकराचार्य ने भी यही कहा था-

"अरे चांडाल हट, रास्ता छोड़ दे।"

स्निग्ध स्मित ले चांडाल स्वरूप काशी विश्वनाथ बोल उठे थे-

"किसे मार्ग छोड़ने को कह रहे हो? नश्वर काया को या चेतन आत्मा को? आत्मा तो सर्वव्यापी, निष्क्रिय एवं सतत शुद्ध स्वभाव है। वह कैसे मार्ग छोड़ सकती है एवं काया तो जड़ नश्वर है वह कैसे हटेगी? काया किसी और काया से कैसे भिन्न है? ब्राह्मण एवं चांडाल में कैसी भिन्नता? यदि भिन्नता है तो अद्वैत कैसा? क्या अद्वैत मात्र आपका मिथ्या अभिमान नहीं? गंगाजल एवं मदिरा में प्रतिबिंबित आदित्य में क्या कोई भेद है? क्या यही आपका ब्रह्मज्ञान है?"

महा अब अवाक् भूतू चाचा को देख रहा था एवं महा के प्रति दृष्टि में अगाध श्रद्धा का भाव लिए भूतनाथ कह रहा था-

"चांडाल के मुख से इन सारगर्भित वचनों को सुन, शंकराचार्य को यह स्पष्ट हो गया था कि ये काशी विश्वनाथ के अतिरिक्त कोई नहीं एवं तब उनकी स्तुति में लीन शंकराचार्य भाव-गद्गद हो कह उठे थे-

"हे समस्त वेदों के प्रति समज्ञानी! आप ही मेरे गुरु हैं। आपके चरणों में मेरा कोटि-कोटि वंदन।"

कहते अब भूतनाथ के नेत्रों में अश्रु छलक आए थे एवं भूतनाथ पुनः आगे बोल उठा-

"वह महात्मा नहीं, मायाग्रसित मल से घिरा पशु था, जिसकी दृष्टि यह नहीं देख पाई कि गंगाजल एवं मदिरा में प्रतिबिंबित आदित्य में कोई भेद नहीं होता। क्यों गुरु की तृष्णा में तू यहाँ-वहाँ भटक रहा है? मुक्तिदाता, गुरु नहीं खोजते। शायद इसीलिए कबीर भी तुझसे कहते हैं-

'पर याद रख मैं तेरा गुरु नहीं।' "

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अध्याय-२९

सर्वकामद, व्याघ्रलोचन, महेश्वर काशी विश्वनाथ संध्या के इस क्षण आदिकेशव मंदिर के गर्भगृह में स्थित श्री केशव की परमेश्वर मूर्ति का पूजन करते, ईश्वरीय गान उठा रहे हैं-

''हे श्रीहरि! आपका श्री विग्रह अलसी के फूल की भाँति श्याम वर्ण का है, पक्षीराज गरुड़ ही आपके वाहन हैं। आप अपनी महिमा से कभी च्युत नहीं होते और शेषनाग की शय्या पर शयन करने वाले आप ईश्वर की मैं नित्य उपासना करता हूँ। श्री विष्णु सहस्रनाम का आत्मिक जाप सदा मेरे अंदर गुंजायमान होता है। न आप मुझसे भिन्न हैं, न ही मैं आपसे भिन्न हूँ।''

अब बाबा विश्वनाथ मंदिर से बाहर आ, यह अमरघोष उठा रहे हैं-

''तू जिस बिगड़ने को बिगड़ना मानता है, उस बिगड़ने में ही तो जीवन नृत्य करने लगता है। वहीं से तो अमरत्व का पान कर तू विश्वेश्वर के पद पर शोभायमान होने पग बढ़ाता है। राम का जाप करता बिगड़ने वाला, स्वयं राम हो जाता है। इसी बिगड़ाव में तो अखिल का सौंदर्य खिल उठता है।''

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

भूतनाथ से सुनी आदि शंकराचार्य की कथा ने महा को कहीं गहरे थोड़ी सी शांति दी थी, परंतु अब महा का स्वयं पर अविश्वास ही उसे खंडित करने लगा था। अपने स्वर्ण से दमकते शरीर को अब वह स्वयं कीचड़ का लोंदा समझने लगा था। अपना अर्थ वह अब दूसरों के प्राणों में खोजने लगा था। मूल्य के इस विशृंखलन में जो चांडाल रूप पाया उससे अब स्वयं उसे घृणा होने लगी थी और वह सोचने लगा था कि क्या चांडाल बन कहीं उसने स्वयं को तो नहीं बिगाड़ दिया?

जो है और जो होना चाहता है, इसी द्वंद्व में घिरा महा स्वयं के अर्थ से विमुख हो दु:खी होने लगा था। महात्मा द्वारा किया गया उसके चांडाल रूप का तिरस्कार रह-रह कर उसकी आँखों के सामने नाच उठता और हृदय व्याकुलता से भर उठता था।

आज संध्या में भी इसी व्याकुलता को शांत करने महा, पंचगंगा घाट की सीढ़ी पर बैठा सामने बहती गंगा के ओजस्वी प्रवाह को देख रहा था।

''हे बाबा विश्वनाथ! तुम्हारे पास तो अमर प्राणरस का असीम भंडार है, फिर मैं शवों को जलाता तुम्हारी भक्ति में लीन, प्राणरस की एक बूँद के लिए क्यों तरस रहा हूँ? क्या मेरा चांडाल बनना ही इस चदरिया पर दाग़ लगा उसे बिगाड़ना है? जीवन इतना अगतिमान् क्यों है?''

अभी महा सोच ही रहा था कि पूर्वोत्तर समीर का एक झोंका उसे कोई संदेश देने लगा-

''तुझे भी मुझ वायु सा गतिमान् होना है और परम प्राण का आधार भी बनना है।''

अकस्मात् महा को लगा जैसे यह वायु उसे भीतर से वह बल और चपलता देने लगी, जिसके माध्यम से वह वायु सा अपने दु:खों का शोषण करने लगा।

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मन थोड़ा शांत हुआ ही था कि विचार ने फिर आ घेरा कि वायु की तो कोई छाया नहीं है और इसी की गति से तो पृथ्वी, सूर्य, चंद्र और तारे घूमते हैं। यह ऋतुएँ उठाती मेघों को परस्पर टकरा विद्युत् उत्पन्न करती है, वृष्टि करवाती है एवं शब्द और प्रकाश का माध्यम बन उन्हें सर्वत्र फैलाती है। संध्या के समय पीछे की ओर होता घंटनाद अब उसे स्पष्ट सुनाई दे रहा था और लगा कि यह घंटनाद वायु के माध्यम से ही तो उसे सुनाई दे रहा है। यही वायु तो धरा को अपनी धुरी पर स्थिर रखने को बाध्य करती है तथा वनस्पतियों को, फूलों-फलों इत्यादि को उत्पन्न करने की उर्वरा शक्ति प्रदान करती है।

वायु का यह रूप ध्यान आते ही महा को यों प्रतीत हुआ कि वास्तव में चांडाल बन उसने भूल की है, क्योंकि चांडाल की तो छाया से भी लोग घृणा करते हैं। शवों को जलाने वाला, तिमिर और मृत्युगान का तो माध्यम हो सकता है परंतु जीवन रूपी प्राणमय शब्द और अमर प्रकाश को फैलाने का माध्यम तो क़तई नहीं हो सकता। शव के सिर को ठोंक-ठोंक कर चिता में समर्पित करने वाला, भला क्या किसी को फल देगा? जिसका प्राण रूपी पुष्प स्वयं मुरझा रहा हो, वह भला जगत् में क्या फूल खिलाएगा?

अचानक महा को सीढ़ियों पर पीछे से आती खड़ाऊँ की खटखट सुनाई दी और उसने पलटकर देखा, तो एक हृष्ट-पुष्ट देह लाल-नारंगी चोग़ा धारण किए उसकी ओर बढ़ रही थी। उस बौद्ध भिक्षु का मुखमंडल दमक रहा था। अत्यंत छोटे केश और गोल चेहरा मानो कोई प्रकाश उठा रहा था। चेहरे पर अगाध शांति थी। जैसे ही वह महा के पास आकर बैठे, महा उनसे थोड़ा दूर हो गया और बोल उठा-

"चांडाल हूँ, अतः आपको मुझसे दूर ही रहना चाहिए। आपका यों मेरे पास बैठना उचित नहीं।"

अब वह बौद्ध भिक्षु उठे और महा के पास आकर सिर पर स्नेह से हाथ फेरते, उसके पास सटकर बैठ गये और बोले-

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

''कल्याणमित्र की राह पर चलने वाला यह भली-भाँति जानता है कि जैसी गंदी काया तेरी है, वैसी ही मेरी भी।''

''याने?'' महा ने प्रश्न किया। तब वह भिक्षुक बोले-

''रुग्ण भिक्षु वकीली से जब तथागत मिलने आए थे, तो बुद्ध को आसन देने के लिए वकीली ने उठने की चेष्टा यह कहते हुए की-

''आपको देखने की तीव्र इच्छा थी।''

तब तथागत ने उसके पास बैठकर बड़े प्रेमपूर्वक कहा-

''इस गंदी काया को देखने से क्या लाभ? शांत वकीली शांत, जो धर्म को देखता है, वह मुझे देखता है। अन्यथा तो जैसी तेरी गंदी काया है, वैसी मेरी भी।''

उस बौद्ध भिक्षु के उन शब्दों ने मानो महा के भीतर नए प्राणों का संचार कर दिया था। भीतर वायु वह बल दे गई, जैसे महा उड़कर तारों को छू सकता हो।

बौद्ध भिक्षु फिर बोले-

''बोधितत्त्व प्राप्त तथागत की देह आसक्ति नष्ट हो गई थी। वे तो आत्मदीप बनने का उपदेश देते अपने शिष्यों से कहते थे कि जैसे मित्र, मित्र को पूछता है वैसे ही तुम मुझसे पूछो। इसलिए तो बुद्ध को कल्याणमित्र कहा जाता है।''

अब वह बौद्ध भिक्षु खड़े हो गये थे और महा के सिर पर हाथ फेरते, फिर बोले-

''कल्याणमित्र के ये शब्द सदा याद रखना, 'जैसी तेरी गंदी काया है, वैसी मेरी भी।' ''

समय के इस क्षण बेचारा महा क्या जानता था कि जिसे वह अर्थहीन

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

समझ रहा है, उस महाश्मशान मणिकर्णिका पर तो बाबा विश्वनाथ उसे जीवन का महाअर्थ देने चांडाल बना स्वयं लाए थे। जब-जब महा निराशा की गर्त में डूबने लगता, तब-तब शिव अपने अभिन्न विष्णु को माध्यम बना उसे उस गर्त से बाहर निकालकर जीवन के मार्ग पर पुन: धकेल देते थे। तभी तो श्री विष्णु के नौवे अवतार बुद्ध का यह अनुयायी उसे यह संदेश दे गया था।

अब पूर्वोत्तर से बहती हवा मानो सारनाथ से उसे यह संदेश ला सुना रही थी कि क्यों कबीर स्वप्न या भाव में उससे मित्रवत् मिलते थे। परंतु अब वे इतने कठोर क्यों हो गए हैं? अंतर में प्रश्न उठते ही महा काँप उठा था।

इन दिनों महा के भीतर कबीर का भाव में क्रोधित होते स्वर उठाना आम हो चला था। अपने चांडाल रूप के भान का बोझ कम होते ही मन रिक्त हो, हल्का और शून्य हो गया और भाव फिर सध गया। अब भीतर कबीर गूँज रहे थे-

"जीवन के इस नृत्य में डोलता मैं, राम की सौगंध खाकर तुझसे कह रहा हूँ कि कबीर बिगड़ चुका है। चंदन के वृक्ष के निकट खड़े वृक्ष भी बिगड़-बिगड़ चंदन हो जाते हैं। लोहा भी तो पारस को छू बिगड़कर सोना हो जाता है। नाले का पानी भी गंगा से मिल बिगड़ गंगोदक हो जाता है। ध्यान से देख, तेरे इस बिगड़ने में ही तो चिता के उस पार जीवन नृत्य कर रहा है। इसी बिगड़ने में ही तो तू शवों को जलाता, जीवन के अमर रस का पान करता विश्वेश्वर की ओर पग बढ़ा रहा है। अखिल का सौंदर्य तो अभी तुझसे दूर है, परंतु अभी तू मात्र इतना जान ले कि शिवभक्ति में शवों को जलाते, तू बिगड़ता शिव की ओर क़दम बढ़ा रहा है और साथ ही यह भी जान ले कि पूरा बिगड़ना तो तुझे तेरे गुरु ही सिखाएँगे। मैं तो तुझे बिगड़ने का प्रथम पाठ सिखाने आता हूँ, परंतु तू इस बिगड़ने को क्या जानेगा? तेरे गुरु पाने की तृष्णा में तुझे तो यह भी भान नहीं कि तुझे बिगाड़ने ही मैं अंत में सदा ये कहता हूँ-

'पर याद रख मैं तेरा गुरु नहीं।' "

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

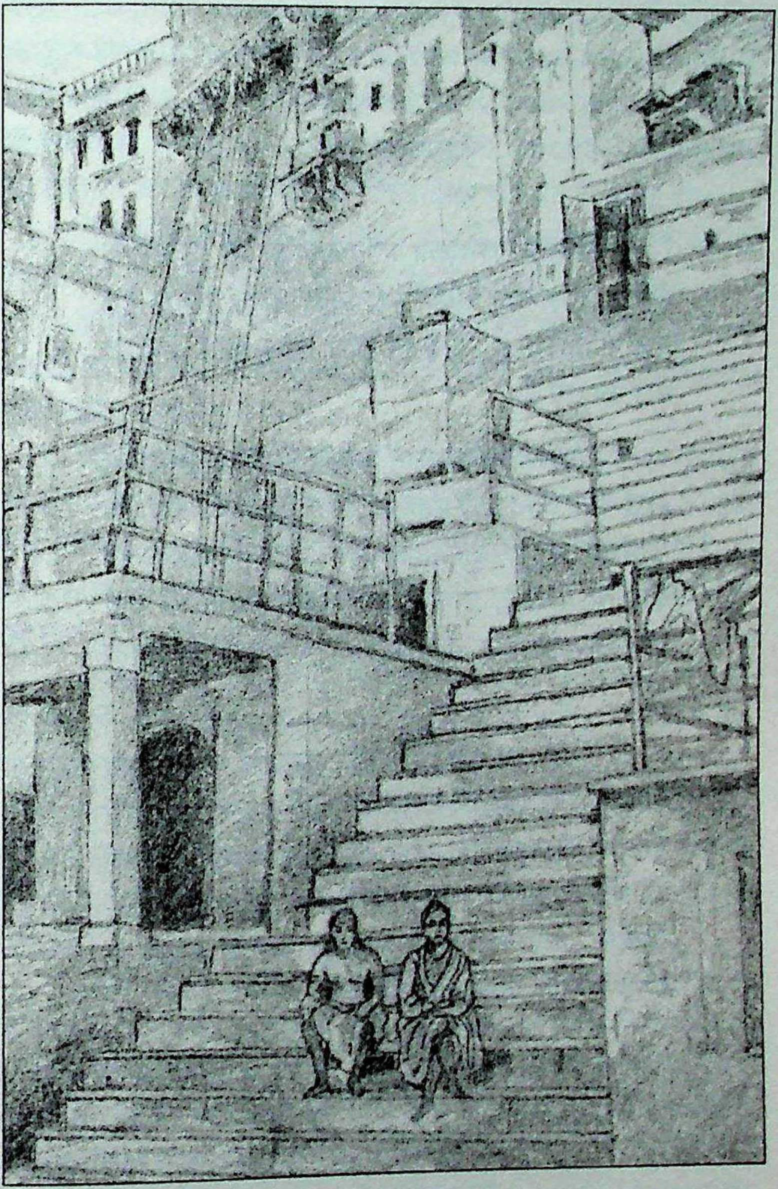

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अध्याय-३०

आज महाश्मशान मणिकर्णिका पर परोमायी, विज़ेय, दुष्कृतिहा काशी विश्वनाथ महान उत्साह एवं बल से संपन्न हो, प्रेतों के साथ रमण करते अनाहत नाद उठा रहे हैं-

"यह कलिकाल तो अत्यंत विकराल है। इसमें कहाँ नीति और कहाँ मुझ परमात्मा का ज्ञान? इस युग में पापी मनुष्यों को मुक्ति देने के लिए काशी ही एकमात्र शरण है, परंतु मुक्ति से पूर्व पापियों को यहाँ रुद्रपिशाचता प्राप्त कर, यातना तो भोगनी ही पड़ती है।"

"जो आत्मानुभव से शून्य है, वह पशु कहलाता है। पशु की प्रेरणा से कोई पशुत्व नहीं लाँघ सकता और पशु होता जीव, काल के प्रवाह में इंद्रियों की पंच विषय-वासनाओं में फँसकर उत्पत्ति, स्थिति, विकृति, क्षय तथा नाश से प्रसूत विविध दुःखों के थपेड़े झेलता, दर-दर ठोकरें खाता है।"

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

गुरु की चाहना में महा, अंतर में विद्यमान भागवत सत्ता से विमुख हो चला था। अचिंतित संघर्ष में अब वह मृत्यु की उत्पीड़ित यातना को झेलते हुए व्याकुल होकर जितना गुरु से मिलने की चेष्टा करता, उसे प्रतीत होता कि गुरु उससे उतने ही दूर होते जा रहे हैं। उसके यौवन की आभा अब क्षीण होने लगी थी एवं संदेह, अविश्वास, अनिश्चय एवं भय की भावनाओं से ग्रसित उसका मन चिता में जलती काया को देख पीड़ित होता प्रश्न उठाने लगता था-

''क्या है शाश्वत? कहाँ है सत्य? कौन हैं मेरे गुरु? क्या उनके दर्शन से पूर्व ही मेरी भी काया चिताग्नि में जल भस्म हो जाएगी?''

प्रत्येक प्रश्न की अभिव्यक्ति अब कारागार बन उसे ही बद्ध कर रही थी। अश्रु से भरे मेघ अब नयनों पर छा, या तो बरसते ही नहीं थे या निरंतर अजस्र गति से बरस उठते थे।

महाश्मशान पर व्यतीत होता यह पाँचवाँ वर्ष अब जीवन को खोखला करने लगा था। परमात्मा के देवालय का गर्भगृह मानकर शवों को जलाने की पूजा रूपी शिवसाधना अब भंग होने की कगार पर आ पहुँची थी एवं भ्रामक दृष्टि को ग्रहण करता वह स्वचेतना का विरोधी हो चला था। अब सारे कार्य उसे निःसार एवं शून्य प्रतीत होने लगे थे।

महाश्मशान को छोड़ अब वह अपना अधिक से अधिक समय रुग्ण माँ की सेवा में व्यतीत करना चाहता था, परंतु शवों के आने की निरंतरता उसे महाश्मशान पर रहने पर बाध्य कर देती थी। सृष्टि को मंदिर मान, कबीर का पुजारी बन, स्वयं को वह जीवन भर कबीर की पूजा में ही देखना चाहता था। परंतु इस सृष्टि मंदिर के पट अब कबीर स्वयं बंद करने पर उतारू हो चले थे और इस पट पर माथा ठोंकते स्वयं को लहूलुहान करना अब उसकी नियति हो चली थी।

महाश्मशान के अपने कार्यकाल में महा को यह स्पष्ट ज्ञात हो गया था कि स्वयं के जीवन को अस्वीकार करते भूतू चाचा अपनी ही किसी चोट से बहते विष से ऐसे पाषाण हो चले हैं, जिस पर जीवन का कोई भी पुष्प अंकुरित नहीं हो सकता। इस घाव से पीड़ित उनके अंतर की गहराई के सारे भाव किसी भीषण कालिमा से युक्त कोठरी में जा समाए थे।

किसी अर्थी के साथ आए नक़ली पंडे के प्रति भूतू चाचा की घृणा और

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

क्रोध को महा मूक जड़ दर्शक की तरह देखता रहता था। उनके क्रोध रूपी कोहरे के पीछे अवश्य ही कोई रहस्य था क्योंकि यह प्रक्रिया एक बार की नहीं अपितु निरंतर थी। आहत मन लिए ऐसे पंडों का निरादर कर, उन्हें दुःखी करना भूतू चाचा का क्रूर आनंद था। किसी लघुता का बोध शायद इस रहस्य से जुड़ा था, परंतु कैसी लघुता? यह महा के लिए अबूझ था। शव जलाते हुए स्वयं की चेतना के छिछले समतल पर खड़े हो वे कई बार बड़बड़ाते थे-

"ये साले रगूल लेख पीकर, बरंगे से मुँह को लाल कर माझी को कब पार लगा देते हैं, खोटर तक को पता नहीं चलता।"

इस क्षण महा को ऐसा प्रतीत होता जैसे भूतकाल के प्रति गति करते हुए काल प्रवाह के ज्वार-भाटे इस पाषाण से टकराकर उसे खंडित कर रहे हैं। चिता में झुलसता अंगारा मानो उछलकर काया पर आ गिरा हो और उससे झुलसते भूतू चाचा मानो ऐसे पंडों को उठाकर चिता में जीवित ही स्वाहा कर देंगे। महा ने कभी उनसे यह प्रश्न पूछने का साहस नहीं किया था कि ऐसा क्यों?

चिताओं से भाराक्रांत महा अकेला आनंद के उस लघु अंश को याद करता था, जो उसने सखा कबीर के साथ बिताया था। उनके उस रूप में जैसे नेत्रों में प्रभुता उतर आती थी एवं हर्ष किसी सीमा में नहीं बँधता था। पर अब वह गरिमा विलुप्त हो गई थी एवं गिरगिट के समान रंग बदलते कबीर अब कलेजे पर ऐसे घाव करते थे कि उसका मृत शरीर बची-खुची शक्ति के संचार से ही पग बढ़ाता, इस महाश्मशान में शवों को जला रहा था। कबीर के ऐसे कठोर व्यवहार से अब त्रस्त-पस्त वह घाट की सीढ़ी पर बैठ, अपने इस अनिष्ट एवं दुर्बलता में स्वयं के बालों को नोचने लगता था। मर्त्य लोक के भूत अब नरक का द्वार खोल उसे अंध शक्तियों का गुलाम बनाने लगे थे और इस प्रचंड संघर्ष में तनाव से जकड़े हुए उसके निर्जीव हस्त, शवों को जलाने में भी काँपने लगे थे।

उसके मृतप्राय शरीर के अगतिमान् हृदय को तब क्षणिक गति और संवेदन प्राप्त होता था, जब इस्माइल चाचा उसे अपने प्रगाढ़ आलिंगन में भर लेते थे। नियति नटी को उसकी इतनी गति एवं स्पंदन भी जैसे खल रहे थे, सो आज इस्माइल चाचा भी हज यात्रा पर जा रहे थे। महा को प्रगाढ़ आलिंगन में लेकर भारी स्वर में चाचा केवल इतना बोल पाए थे-

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

''हृदय के असीम एकाकीपन में ही जीवन, संगीत के उन सुरों को छेड़ता है जिनके पकड़ में आते ही मानव स्वयं का अर्थ जान लेता है।''

चाचा के जाने के पश्चात्, संतप्त और प्रचंड झंझावातों से भयभीत वह माँ की गोद में आ समाया था एवं दुःख और कष्ट के आच्छन्न मेघ, अश्रु का रूप ले बरस पड़े थे। इस खोखलेपन में अब वह भविष्य के कल पर क्या विश्वास करे, जो उसे स्वयं का अर्थ देगा? इस्माइल चाचा अब न थे, दृष्टि के समक्ष रह गए थे मात्र महाश्मशान पर जलते शव, माँ की रुग्णता एवं मन का शून्य।

आज अर्द्धरात्रि भूतू चाचा पुनः शवयात्रियों के साथ आए नक़ली पंडे पर क्रोधाग्नि में भड़क उठे थे एवं महा प्रश्न पूछ ही बैठा था कि ऐसा क्यों? महा के प्रश्न की क्रिया की प्रतिक्रिया में भूतनाथ पथराई दृष्टि से महा को तकने लगा था और कुछ बोलते ही उसका अधरोष्ठ काँपने लगा था। आवाज़ कँपकँपा रही थी और स्वर मानो किसी अंधकार की कंदरा से आते गूँज रहे थे-

''पुनर्जन्म के भय से मुक्त होने मुक्ति की आस में लोग काशी आते हैं, परंतु यह कलिकाल तो अत्यंत विकराल है। इसमें कहाँ नीति और कहाँ परमात्मा का ज्ञान?''

महा प्रश्नवाचक दृष्टि से भूतनाथ को तक रहा था और भूतनाथ बोल उठा-

''सात्त्विक ब्राह्मणों और गंगापुत्रों ने आज भी ज्ञान की ज्योत को काशी में जगाए रखा है, परंतु शनैश्चर का दान ग्रहण करते कब लोग गले में जनेऊ डाल एवं बीड़ी की भस्म को माथे पर लगा पंडे बन जाते हैं एवं कब ये पंडे यात्रियों के कपड़े तक उतरवा लेते हैं, कौन जानता है?''

महा अब आश्चर्य से भूतू चाचा को देखने लगा था एवं भूतनाथ धारा प्रवाह बोल रहा था-

''भूतकाल में मुक्ति के नाम पर किसी मोटे असामी को लूट, उसे काशी-करवट के तहख़ाने में स्थित आरे पर धक्का दे, गिराकर हत्या करना भी इन ठगों के लिए मामूली बात थी। आज भी काशी-करवट उन भयंकर रहस्यों का मूक साक्षी है। पशु होते ये जीव, काल के प्रवाह में इंद्रियों की पंच विषय-वासनाओं

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

में लिप्त होकर ठग बन बैठे हैं एवं सात्त्विक पंडों को बदनाम कर रहे हैं।''

''परंतु चाचा यह 'बरंगा', 'रगूल', ये शब्द क्या हैं?'' महा ने प्रश्न किया।

गाँजे के नशे में धुत्त भूतनाथ की आँखें अब भारी हो चली थीं और निद्रामग्न होने से पूर्व वह सीढ़ी पर लेटा बड़बड़ा रहा था-

'' 'बरंगा' याने 'पान' और 'रगूल' अर्थात् 'चोर।' अपने शब्दकोश में ये शराब को 'लेख', पुलिस को 'खोटर' और यात्री को 'माझी...' '', कहता भूतनाथ निद्रामग्न हो चला था।

महा के मस्तिष्क में भूतू चाचा का वाक्य अब स्पष्ट हो गया था। 'ये साले चोर शराब पीकर पान से मुँह लाल कर, कब यात्री को ठिकाने लगा देते हैं, पुलिस तक को पता नहीं चलता।' भूतू चाचा को इन शब्दों का ज्ञान कैसे है और कैसे काशी विश्वनाथ के रहते, काशी में लोग ठगी कर सकते हैं? प्रश्न महा के मस्तिष्क को झकझोरने लगे थे। अब काशी विश्वनाथ का ध्यान आते ही महा की दृष्टि जलती चिता पर चली गई और भाव पुनः सध गया। कबीर के क्रोधित स्वर अंतःकरण में गूँजने लगे थे-

''मायाजन्य अज्ञान के कारण तृष्णा जन्म लेती है और यही तृष्णा दुःख का कारण बनती है। गुरु की मायाजन्य तृष्णा में तू स्वयं अपने मूल को खो बैठा है। स्वभाव का विनाश होता है परंतु तृष्णा का नहीं। यही तो जनम-मरण के फेरे में ला धकेलती है। तेरा अहंकार तृष्णा को जन्म देता, तुझे त्रिरूप संताप और कष्ट में धकेलकर अब तक तुझे पुनः जननी के गर्भ में लाया है। तू भ्रमर के सदृश गुरु-तृष्णा रूपी कमल में प्रविष्ट हो जाता है, जहाँ मृत्यु के अलावा कुछ नहीं। 'तेरे-मेरे' के चक्कर में ही तो संसार जल रहा है। धिक्कार है ऐसे स्वार्थ पर। देह के आश्रय पर खड़ा तू, आत्मा के आश्रय को छोड़ जनम-मरण के फेरे में पड़ा है।''

''जो आत्मा अनुभव से शून्य है, वह पशु कहलाती है और पशु की प्रेरणा से तू पशुत्व नहीं लाँघ सकता। तू तो पशु की प्रेरणा में ही यह सोचता है कि क्यों मैं तुझसे कहता हूँ-

'पर याद रख मैं तेरा गुरु नहीं।' ''

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

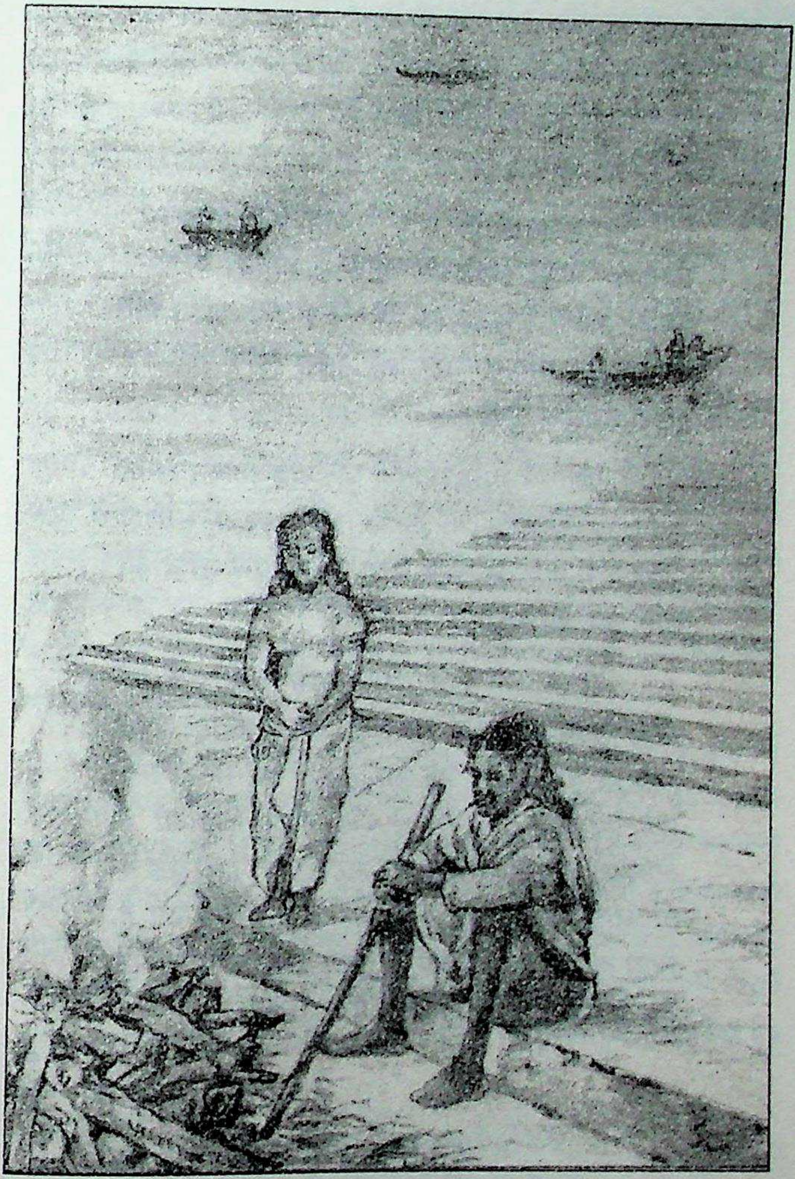

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अध्याय-३१

भूतवाहनसारथि, पञ्चविंशतितत्त्वस्थ, सदसन्मय बाबा विश्वनाथ आज विश्वनाथ मंदिर में स्थित अपने ज्योतिर्लिंग से परम प्रकाश उठाते महाश्मशान मणिकर्णिका की ओर देखते मंद-मंद मुस्कराते बोल रहे हैं-

''मेरी ही आद्यशक्ति ने घोर नाद उठाकर अनंत व्योम के अंधकार में प्रकृति रूपी स्वधा-सलिल अवस्था में तेज को जन्म दिया और संपूर्ण सृष्टि की रचना का आरंभ हुआ।''

''ऐश्वर्यमय दिव्य प्राण रूपी उल्टे वृक्ष की भाँति निश्चल भाव से मुझसे ही संपूर्ण ब्रह्मांड प्रकट होता है। मैं निराकार जड़ का रूप ले इस संसार रूपी वृक्ष को पोषित करता हूँ एवं आठों दिशाओं के आकाश को मैंने ही आच्छन्न कर रखा है। इसी वृक्ष पर तो आत्मा रूपी पक्षी बिना पैर के नृत्य कर रहा है, बिना हाथ के ताल दे रहा है, बिना जिह्वा के गा भी रहा है और मेरी ही तरह निराकार डोल रहा है।''

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कबीर की अवज्ञा महाश्मशान मणिकर्णिका पर शव जलाते महा के मन और मस्तिष्क को ज्वरग्रस्त कर चली थी। कल तक कबीर पृथ्वीपट के पीछे से अपना ज्योतिर्मय शरीर लिए दृष्टि के समक्ष आ, हृदय की आंतरिक गहराइयों को अनंत प्रकाश से प्रकाशित कर उसके जीवन को परिपूर्णता देते थे, पर आज वे ही उसे अवज्ञेय मान भाव में आ सदैव उसका तिरस्कार करते थे। अब कबीर का भावों में आना शरीर के सारे जोड़ों को थकाने लगा था। हृदय के हर्ष अब बहिर्गमन करते जीवन में मिले संपूर्ण प्रकाश को ग्रसने लगे थे। अब कबीर का भाव में आना महा के लिए ऐसा हो चला था, मानो कोई फुंकारता विषधर अचानक सामने आ आतंकित कर रहा हो।

फक्कड़ों के साम्राज्य का सम्राट अब अपनी सी करने में महा की कोई परवाह न करता था। परतंत्र बनी अपनी व्यक्ति-चेतना के द्वारा महा, अपनी संपूर्ण सत्ता को समेटकर कबीर से पुन: सखा होने की प्रार्थना करता स्वयं को आत्म-समर्पित कर देता था, पर धरा के समस्त मानवों के स्वभाव के उलट एक अलगाव को जीते कबीर उसकी मर्म व्यथा को बग़ैर जाने अपने क्रोधी स्वर उठाते, हृदय के स्वाधिकार को ऐसे कुचलते कि मनस्ताप के अतिरिक्त कुछ भी प्राप्त न होता था।

अब महा को समझ आ रहा था कि क्यों कबीर अक्खड़ों के राज्य में धवल कीर्तिपट के सदृश लहराते हैं। महा अपनी इंद्रियों, मन, बुद्धि एवं अहंकार को समन्वित करता अपनी संपूर्ण शक्ति से हृदय में श्रद्धा एवं सखा-प्रेम रूपी बालू की दीवारें निर्मित करता, परंतु कबीर अपनी सी कहने में न चूक, खड़ी बोली का वह हथौड़ा चलाते कि क्षण भर में ही संपूर्ण दीवार ध्वस्त हो जाती, जैसे उसका हनन ही कबीर का एकमात्र उद्देश्य हो। मृत-निष्प्राण होती अपनी तुच्छ आत्मा में महा, हद और अनहद दोनों के पार जाते कबीर को देख यह जान गया था-

''हद में चले वो औलिया, अनहद चले वो पीर,
जो हद-अनहद दोनों चले वो ही होत फ़क़ीर।''

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

भूतनाथ अब स्पष्ट देख रहा था कि प्रातः में पूर्व दिशा से उदित होता सूर्य रूपी महा, पूर्व दिशा में उदित होने से पहले ही अस्त होने लगा है। उसकी आँखों के त्रासद, अवसाद एवं अनर्थकारी अश्रुजल इस सूर्य की रश्मियों को उसके अवतरण से पूर्व ही ग्रसित कर रहे थे। आदित्य के रूप में अंधकार की इस परिभाषा को भूतनाथ, महा के जीवन में पिछले कुछ महीनों में ही पढ़ने लगा था। वह देख रहा था कि जैसे महा अंधकार की शक्तियों के समक्ष अपने भाग्य को सौंप रहा था।

धूमिल अज्ञान का सृजन करता महा का मन पूर्ण छाया से घिर अपने प्रकाश को खो बैठा था एवं श्वासों के इस कठिन संघर्ष में पंगुपन की ओर पग बढ़ाता, अब वह क्रोधित होता अहंकार को भी जन्म दे रहा था। भीतर से कहीं अब द्वेषी होता वह कबीर के प्रति द्वेष रखने लगा था। अत्यधिक प्रेम ही द्वेष का मूल स्त्रोत है, यह वह इस क्षण नहीं समझ पा रहा था। प्रेममय हृदय का बंधन ही तो घृणा को जन्म देता है। स्वप्नद्रष्टा प्रेयसी स्वप्न में भी अपने प्रेमी के मात्र एक कठोर वचन से आतंकित होती उससे मुँह मोड़ लेती है, फिर महा तो विगत कई महीनों से कबीर के मुख से मात्र कठोर वचन ही सुन रहा था।

किसी कंदरा के गूढ़ अंधकार में खड़ा महा आज अर्द्धरात्रि में अपने अस्तित्व के काँपते प्रत्येक तंतु के साथ खड़ा, बाँस के टुकड़े से शव के बाहर निकले सिर को चिताग्नि में समर्पित कर रहा था। स्वयं की काया की कोठरी की संकीर्ण दीवारें हृदय को कुचल रही थीं कि ''राम नाम सत्य है'' की गूँज कर्णपटल पर गूँजने लगी। गाँजे की पिनक में सीढ़ी पर बैठा भूतनाथ, महा को देख बोल उठा-

''लो आ गई एक और अर्थी। जा तू लकड़ियों की व्यवस्था कर, इस चिता को मैं देख लेता हूँ।''

तिमिरगर्भ में दाहिनी ओर पग बढ़ाता महा सीढ़ियाँ चढ़ता लकड़ियों के ढेर के पास आ पहुँचा। किसी कुत्सित पशु की तरह अपने अतृप्त अधीर मन

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

से वह ढेर.से लकड़ियाँ निकालने लगा था।

जगती का कोई अभाव उसे व्याकुल कर रहा था। क्षुब्ध, मलिन एवं क्लांत अपने मौन में उसने ढेर से जैसे ही एक और लकड़ी को उठाया कि सर्वत्र चंदन की सुगंध व्याप्त हो गई और लकड़ी हटाने के साथ ही ढेर में कुंडली मार बैठा एक काला नाग झटके से अपना फन फैला उसकी ओर फुँकार उठा था। उसकी लपलपाती जिह्वा पर दृष्टि पड़ते ही महा पुन: भाव में लीन हो गया एवं भीतर से कबीर के क्रोधित स्वर गुंजायमान हो उठे-

''हृदय में गुरु से मधुर मिलन का क्रंदन ही तेरे हृदय का राजस्व अपहृत कर रहा है। यह तेरी भ्रांति है, प्रेमवेदना नहीं। मन के सुख में सो, तू जाग्रत् गुरु को ढूँढ़ रहा है। आज तक तूने मुझसे क्या ख़ाक जीना सीखा है?

अब तो तू मुझे भी उसी दिन पुन: देख पाएगा, जिस दिन तू उस गुरु को खोज लेगा जो तुझे इस पहेली का ज्ञान देंगे- 'आकाश में बिना जड़ के एक वृक्ष फैला है, जिस पर बिना फूल के फल लगते हैं। इस वृक्ष की न कोई शाख़ है, न ही पत्तियाँ। फिर भी आठों दिशाओं के आकाश को उसने आच्छन्न कर रखा है। इस वृक्ष पर बैठा एक पक्षी बिना पाँव के नृत्य कर रहा है और बिना हाथ के ताल देता, बिना जिह्वा के गा भी रहा है। मज़ा तो यह है कि गाने वाले की कोई रूपरेखा नहीं और पक्षी, मछली के मार्ग को ढूँढ़ रहा है।' ''

''आज तक तूने मेरा क्रोध देखा ही कहाँ है? गुरु को पाने की तृष्णा तेरे प्राण की नहीं अपितु अहंकार की है और मैं तो उन्हीं की सहायता करता हूँ जो भरे चौराहे पर अपना सिर फुड़वाने को तैयार हों। नहीं, तू उनमें से नहीं। तेरा अहंकार तेरे सिर चढ़ बोल रहा है, इसलिए अब तो जीवन भर तू मुझसे यह सुनने के लिए भी तरस जाएगा-

'पर याद रख मैं तेरा गुरु नहीं।' ''

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अध्याय-३२

आज काशी की गलियों में अलौकिक एवं सुस्पष्ट प्रकाश से युक्त सर्वलोकधृक्, मन्त्रप्रत्यय, महातपस्वी काशी विश्वनाथ परम का प्रकाश फैलाते घोर नाद निनादित कर रहे हैं-

''मुझ शिव को जानकर ही जीव शिवत्व प्राप्त कर मुक्त होता है। हृदय में आत्मस्वरूप मुझ शिव का साक्षात्कार होते ही हृदय की ग्रंथि टूट जाती है, संदेह लुप्त हो जाते हैं एवं कर्म-बंधन क्षीण हो जाते हैं।''

''मुझ शिव से साक्षात्कार कर मुझसे एकाकार होना मात्र नित्य गंगा-स्नान एवं काशीवास रूपी तपस्या से ही संभव है।''

''संकीर्ण चेतना को जीता तू क्यों व्यर्थ ही नित्य गंगा-स्नान को भूल एवं अपनी काशीवास रूपी तपस्या को भंग करते मुझसे एकाकार करने में काल को गँवा रहा है?''

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

विधाता के क्षोभ भरे दुष्काल द्वार पर बैठे महा के साथ कैसा अपमानजनक व्यवहार किया था कबीर ने! अपने सारे ही अलंकार तो उतार फेंके थे उसने कबीर के समक्ष। हृदय के अंतराल में कबीर के शब्दों को ज्यों का त्यों लिपिबद्ध कर दिया था उसने एवं जब उनके प्रेम में महा अपना सर्वस्व लुटाना चाहता था, तो इस अज्ञात के जगत्-शून्य में कबीर ने उसे अकेला छोड़ दिया था। जिस शक्ति से उसके मानस को संबल मिलता था उसे एक ही क्षण में छीनकर कबीर ने उसे निर्बल बना दिया था। कबीर की विरह रूपी विषबेल अब उसकी बची-खुची शक्ति को भी चूसने लगी थी। कबीर ऐसी श्वास बन चले थे, जो न तो पकड़ी जा रही थी एवं न ही छोड़ी जा रही थी। अपनी पीड़ाओं एवं स्मृतियों के साथ वह निपट अकेला हो चला था। किसी देवस्थान के शिखर पर ला खड़ा कर, कबीर ने धक्का देकर उसे जैसे किसी अंधकूप में धकेल दिया था। सामर्थ्य इतना नहीं था कि कबीर के समक्ष पुनः जा खड़ा हो एवं शक्ति इतनी नहीं थी कि कबीर को स्वयं के निकट बुला ले।

कबीर ने ही तो कहा था उससे कि राम के प्रेम में उन्हें घाव लगा है और उन्होंने बहुत दर्द सहा है। अब यह दुःख-दर्द वह राम के सिवाय किससे कहे? जीव विरह रूपी भाले से बेधा गया है एवं हृदय दिवस-रात्रि टीस उठा रहा है। सद्गुरु ने जिस शब्दबाण से बेधा है उससे उठते दर्द को कौन जानता है? कबीर कहते थे कि राम के सिवाय इस जगत् में कोई वैद्य नहीं एवं कबीर के सदृश कोई रोगी नहीं। ऐसी विरह-वेदना आत्मा में जन्म ले रही है कि वियोगी के प्राण छटपटाते जीना दुरूह कर रहे हैं। दिवस-रात्रि अब वे राम के ध्यान में ही बिताते हैं जबकि राम आकर उनकी ओर दृष्टि भी नहीं डालते। इस विरह के दुःख में अब कबीर कैसे जीएँ?

कबीर के विरह में अपने व्याकुल प्राण लिए महा सोच रहा था कि वह भी तो कबीर को राम मानकर ही उनसे प्रेम करता था। भूतू चाचा से उसने सुना था कि एक दुःखी ही किसी दूसरे का दुःख भली-भाँति जान सकता है। जब कबीर ने स्वयं राम की विरह-वेदना को भोगा है फिर वे उसे यह वेदना क्यों दे

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

रहे हैं जिसमें उसका हृदय रात-दिन टीसता है? क्या कबीर स्वयं विरह की अग्नि में जलकर आत्म-पीड़ित हो, उसे भी यों ही जलते देख प्रसन्न होना चाहते हैं? धिक्कार है ऐसे क्रूर आनंद पर! क्या कबीर का उससे यों मिलना मात्र उनके हृदय की हलचल या अंधी वासना थी? शायद यह उनकी अंधी वासना ही थी, तभी तो वे अब उसे वासना के राज्य की पाशविक वृत्तियों से बाँध चले हैं।

कबीर का यह पुजारी महा, श्मशान की राख में दबे अंगारों से जले अपने पग पर पड़े फफोलों से रिसते पानी को देख, भाग्य की विडंबना पर अश्रु बहाने लगा था। अब तो उसे प्रतीत होता था कि एक छोटे से दाह से भी वह भस्म हो जाएगा।

जीवन की इस अपूर्णता में अपमान एवं लज्जा के भावों को जीता महा जब दृष्टि चिताग्नि पर डालता, तो क्षणिक भाव जागता कि वह भी स्वयं को इस चिता में समर्पित कर दे और उसकी जलती काया से उठते धूम्र को देखकर करुणामय कबीर पुनः दर्शन दे, उसकी इस विरह अग्नि को शांत कर दें। तो कभी मन में आता कि देह को भस्म कर स्याही निर्मित करे एवं मस्तिष्क की अस्थि को लेखनी का रूप दे, कबीर का नाम लिखे एवं उनके चरणों में समर्पित कर दे।

जीवन के इस तूफ़ानी भँवर के बीच मर्त्य जीवन की क्षणभंगुरता का अनुभव कर, अब उसका हृदय स्वयं को माँ की मृत्यु के भय से भी संपीडित करने लगा था। मृत्यु की काली छाया को माँ के सिर पर मँडराता देख वह भय के गृह में संकुचित होता जा रहा था। आंतरिक हृदय शनैः- शनैः इंद्रियों, मन एवं मस्तिष्क को भी शून्य करने लगा था।

प्रकृति के आघातों से संचालित चिंताग्रस्त एवं भ्रांत मन लिए काशी की सँकरी, पेचीली एवं अँधेरी गलियों में भटकते हुए वह अपने मन को भी उन्हीं गलियों का रूप दे बैठा था। गलियों में कूड़ा-करकट तो मन में स्वयं की लघुता का उससे भी गहरा कूड़ा-करकट। गलियों में राहगीरों की थूक, खंखार और

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पान की पीक, तो चित्त में भय का थूक, आशंका का खंखार और पराजयबोध की पीक। गलियों में पान की पीकों से लाल दीवारों के सहारे बैठे भिक्षुगण तो दान पाकर दाता की जय मनाया करते हैं, परंतु स्वयं के मन के गलियारों के अँधेरे में दीवार से टिक भिखारी बन, वह किससे कबीर के प्रेम का दान पाकर उसकी जय मनाए?

पीड़ाओं की अविश्रांत धारा में अपने मर्त्य रूप को ही सब कुछ मानता महा, अमर अनाहत शाश्वत प्रकाश के प्रति विमुख होता कबीर के प्रति भी विमुख हो चला था। अंतर के गूढ़ रहस्य को छोड़कर अब वह स्वयं को ही सब कुछ मान कबीर से द्वेष करता, अहंकार को जन्म देने लगा था। अपने उदास एवं बुझे जीवन में अब वह जगत् की सीमाओं में बँध संकीर्ण चेतनाओं को जीता, आलस्य और अचेतना से व्याप्त अज्ञान के साम्राज्य की ओर पग बढ़ाने लगा था।

कबीर उसे किसी अंधकारमय कंदरा में धकेलकर उसके शुष्क होठों को क्यों विरह की अग्नि में झुलसा रहे थे? यह समझने का न तो उसमें ज्ञान था, न ही भान। दुर्भाग्य और देह को स्वयं के मस्तक पर अभिशाप मानकर स्वयं के अहंकार में वह अपनी उस अदृश्य नियति से मुख फेरने लगा था, जो उसे शिव को जानने के मार्ग पर धकेलकर शिव से साक्षात्कार कराने वाली थी एवं जहाँ शिव को जानकर वह भी शिवत्व प्राप्त कर मुक्त होने वाला था।

हृदय की ग्रंथि में बँधा वह स्वयं के संदेह में अपने कर्मों को बाँधता, अब नित्य गंगा-स्नान छोड़ रहा था। मन में माँ की मृत्यु का संदेह जाग्रत् होते ही वह सोचने लगा था कि माँ की मृत्यु के पश्चात् वह काशी में रहकर क्या करेगा? सोच तब निश्चय में परिवर्तित हो जाती, जब मन में यह भाव उठता कि इस काशी और काशी विश्वनाथ ने एकाकीपन और भय के अतिरिक्त यदि कुछ दिया भी है, तो मात्र मन और मस्तिष्क को हिलाने वाले ये शब्द-

'पर याद रख मैं तेरा गुरु नहीं।'

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अध्याय-३३

महाश्मशान मणिकर्णिका पर आज जगद्धितैषी, नक्षत्रमाली, महारौद्र काशी विश्वनाथ अनंत कोटि सूर्यों का आलोक बिखेरते प्रणिनाद कर रहे हैं-

''मैं परब्रह्म परमात्मा शिव ही परम नियम को संचालित करता ब्रह्मांड के कण-कण को मुझसे एकाकार के परम मिलन के महागंतव्य की ओर प्रशस्त करता हूँ।''

''काशीवास ही वह द्वार है जो जीव को इस परम मिलन के मार्ग पर ला खड़ा करता है। जन्मों-जन्म की तृष्णा से जब शुष्क होंठ जल उठते हैं और खौलते लावे की तपन से जब शरीर दग्ध हो जाता है, तभी नियति के देवता अनुकंपा कर जीव को इस काशीवास का सौभाग्य देते हैं।''

''तू उस पुरुषार्थ को क्या जानेगा? तू तो मोहित होकर शोक करता, स्वयं के मूल उद्देश्य को संभ्रम के काले धुएँ में खो रहा है एवं अपने अज्ञानमय पाश रूपी मल से घिर पशु बनता दर-दर की ठोकरें खा रहा है।''

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

महा की आत्मा अपने एकांत में अब चीख़ने लगी थी। हृदय संताप की ज्वाला में जलने लगा था। कितना स्पंदित था उसका जीवन कबीर के साथ! जहाँ प्रेम की मशाल द्वारा प्रकाशित उसका हृदय अनंत के गीत उठाता था। कबीर की वाणी हृदय को कंपित कर आनंद से परिपूर्ण कर देती थी। प्रेम के स्त्रोत के तट पर गंगा की बालू से कितने स्वप्निल भवनों का निर्माण किया था उसने कबीर के साथ। मानो सारे भवन काल की एक ठोकर से ही ध्वस्त होते पुनः बालू में जा समाए थे। अब कबीर की फक्कड़ाना अलबेली छवि दृष्टि से ओझल हो चुकी थी एवं कबीर के संग उसकी स्वर्गिक कल्पनाओं का नभमंडल आज धरा पर टूट, उसे तोड़ गया था। दीर्ण-विदीर्ण हृदय में रह-रह कर कबीर के अंतिम शब्द गुंजायमान हो जाते थे-

''तूने मुझसे क्या ख़ाक जीना सीखा है? गुरु पाने की तृष्णा प्राणों की नहीं अपितु अहंकार की है। तेरा अहंकार तेरे सिर पर चढ़कर बोल रहा है।''

कबीर के ये शब्द ध्यान आते ही वह स्वयं से ही कटु हो चला था। अंधकार, एकाकीपन एवं निरंतर पीड़ा अब उसे पराजित करने लगे थे और वह स्वयं से ही खोने लगा था। अंतरतम स्वयं को निःशेष कर कबीर की सेवा के लिए ढरक जाना चाहता था, परंतु अब कबीर दृष्टि के समक्ष कहाँ थे?

जीवन का आँगन अब यथार्थ में सूना हो चला था और हृदय कबीर-वियोग की अग्नि में दग्ध हो रहा था। विरह रूपी सर्प कलेजे में घुसकर घाव करने लगे थे एवं बीते सुखों का स्मरण उन घावों को कुरेदता उन्हें और गहरा करने लगा था।

भूतनाथ, महा के क्लांत मुख को देखकर समझ रहा था कि कहीं कोई चिंगारी अंतर में सुलग रही है और ये अग्निकण महा को अब चिता के समान जलाने लगे हैं। शव जलाने के श्रम में रिसते श्रमबिंदुओं के साथ मानो अब वह महा को भी रिसता देख रहा था।

ज्योतिर्मय कबीर काल के पार लुप्त हो गए थे एवं पथ पर कोई पदचिह्न भी नहीं छोड़ गए थे, सोचते-सोचते महा स्वयं को साधनहीन एवं पथभ्रांत मान व्याकुल हो उठा था। भय के संकुल पाश में बद्ध वह माँ को भी मृत्यु की ओर पग बढ़ाता देख रहा था। माँ की मृत्यु के भय से उद्विग्न उसका जीवन काँप रहा था। जीवन में सारी असुरक्षा के घुटनों पर झूलते उसके भाग्य में इस्माइल चाचा

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

को भी इन्हीं दिनों हज की यात्रा पर जाना था।

कैसी नियति है मेरी? जो आँख-मिचौली खेलती, सभी ओर से ठोकर मार रही है, सोचते ही वह विद्रोही हो उठता था।

रुग्ण माँ के पास बैठ उसकी सेवा करता महा अब अपनी कोठरी की ओर बढ़ते यम के पदचाप को स्पष्ट सुनने लगा था। यम का आगे बढ़ता प्रत्येक पग, अब पीड़ा बन उसके नयनों से लहू टपकाने लगा था।

अंतरात्मा के आसन पर स्थित स्वच्छ सरोवर में माँ की मृत्यु का भय एवं कबीर-विरह का विष पड़ चुका था और उस विष से नीली होती महा की काया भूतनाथ की दृष्टि से छिपी न थी। इस विष का क्षालन कैसे हो एवं महा के इस कार्ष्ण्य को कैसे पुन: उज्ज्वलता प्रदान की जाए? सोचते भूतनाथ की दृष्टि उसके सुंदर एवं बलिष्ठ आकर्षक शरीर पर चली गई। आत्मघाती महा के कष्टों को शारीरिक परिश्रम शायद कम कर दे, यह विचार आते ही भूतनाथ महा से बोल उठा-

''इन दिवसों में तेरा ध्यान व्यायाम पर कम एवं चिता जलाने पर अधिक है। क्यों अपनी इस शारीरिक बलिष्ठता को कम कर रहा है? जा, पुन: अखाड़े में जाकर व्यायाम कर। तेरी दृष्टि में ये अश्रु शोभा नहीं देते।''

जब भूतनाथ यह बोल रहा था तब महा की दृष्टि एवं सामने जलती चिता के दृश्य के मध्य अश्रुबिंदु, चिताग्नि के सौंदर्य को धुँधला बना रहे थे। प्रथमत: भूतनाथ ने ही उसे मणिकर्णिका घाट पर स्थित 'नागनाथ' के अखाड़े में भेजा था। काशी में यही अखाड़ा ऐसा था जहाँ जाति का कोई भेद नहीं देखा जाता था।

दिवस भर महा पागलों की तरह मुर्दों को जलाता और रात्रि भर काशी की गलियों में यहाँ-वहाँ भटकता फिरता था। और अब वह स्वयं को थकाने के लिए अखाड़े में अत्यधिक व्यायाम करता, परंतु निद्रा मानो आँखों से कोसों दूर हो चली थी। चाहे कितने भी शव जलाए, चाहे गलियों में कितना ही भटके या अखाड़े में कितने ही दंड पेल ले, परिणाम वही शून्य का शून्य। मानो कबीर स्वयं के साथ उसकी निद्रा भी ले गए थे।

मानो हृदय में ग्राहिका संवेदना अवशिष्ट न रही थी और महा का अंत:स्पंदन एकदम रुक गया था। विस्तृततर लक्ष्य की ओर विस्तार में बढ़ने

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

वाले चरण अब शारीरिक बलवृद्धि रूपी लघु दायरे की ओर बढ़ने लगे थे। सर्वोच्च प्रभुसत्ता की ओर पग बढ़ाने वाला यात्री अब स्वयं की काया को बल देने की यात्रा में व्यस्त हो चला था। जो भीमकाय प्रयोजन अनंत के हृदय को भेद सकता था, वह अपने मानसिक लूलेपन में उस कोढ़ी को ढूँढ़ने के प्रयोजन में व्यस्त हो चला था, जिसने उसकी सहायता करते संतराम के शारीरिक लूलेपन को बटुक भैरव की मूर्ति दे दूर किया था। घंटों महा, मणिकर्णिका स्थित 'संतराम' के अखाड़े के समक्ष बैठ दृष्टि को यहाँ-वहाँ घुमाता उस कोढ़ी को ढूँढ़ता रहता कि शायद वह मिल जाए और कबीर से पुन: मिला, उसके मानसिक लूलेपन को दूर कर दे।

जिसकी ज्योतिर्मय निद्रा शाश्वत के शिखर का स्पर्श कर सकती थी, अब वह महा, पशु और देव के बीच का द्वंद्व लड़ता निष्फल, निराश और अशांत होकर अज्ञान की निद्रा में मग्न हो ऐसा बलिष्ठ होना चाहता था कि मणिकर्णिका पर इसरगंगी स्थित अखाड़े के स्वामी 'अधीन सिंह' के समान पत्थर के दो शेरों को विवेकानंद स्कूल के मैदान से कंधों पर उठा, मत्स्योदरी तालाब पर स्नान कर वैसे ही पुन: वहाँ से लौट सके। आत्मिक अजेयता खो चली थी और अब महा अखाड़े की दुनिया में शारीरिक अजेयता प्राप्त करने के उद्देश्य को लक्ष्य बना, दिन-रात व्यायाम और दंड पेलने में मग्न हो गया था।

आदित्य की ओर पीठ कर महा यह भूल चुका था कि ऐसा करने से स्वयं की छाया के अतिरिक्त कुछ भी प्राप्त नहीं होता। शाश्वत का चिंतन जैसे कबीर स्वयं के साथ ही ले गए थे।

मर्त्य देह की मिट्टी को बल देने के लिए प्राण-सत्य की ज्योत खोता, अज्ञान के अँधेरे में पग बढ़ाता महा यह भूल गया था कि जीवन का कोई सामाजिक उत्तरदायित्व होता है। भले ही वह अब ऐतरनी-बेतरनी पर स्थित अखाड़े के स्वामी 'भंगड़ भिक्षुक' के समान अजेय मल्ल बनना चाहता था, परंतु वह इस क्षण क्या जानता था कि इसी भंगड़ भिक्षुक ने अपनी मातृभूमि का ऋण चुकाने के सामाजिक उद्देश्य में अपनी काया को हविष्य बना पंचगंगा घाट पर अग्नि में होम किया था। ये वही भंगड़ भिक्षुक थे, जिन्होंने कालभैरव का वह वज्रघोष उठाया था कि अँग्रेज़ सरकार भी सिर से पाँव तक काँप उठी थी।

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

नियमित व्यायाम एवं मल्लविद्या से यद्यपि महा का शारीरिक सौंदर्य खिल उठा था तथापि भूतनाथ स्पष्ट देख रहा था कि मृत्यु की छाया के अंधकार की ओर पग बढ़ाता महा, अब आए दिन क्रोधित होने लगा था।

मन अपनी छाया को ही आत्मा मानने लगा था और महा आज नसों में रक्त के वेग का आधिक्य लिए जग्गू सेठ के अखाड़े आ पहुँचा था। यों तो काशी में जहाँ हनुमान जी की मूर्ति दिखी नहीं कि एक अखाड़ा बसा नहीं। जग्गू सेठ के अखाड़े में सारे मल्ल नाना भाव से व्यायाम कौशल का प्रदर्शन कर रहे थे। उनके अविरल तालोट्टंकन से सभी दिशाएँ कंपित हो रही थीं।

खौलते लावे की तपन तो महा में नहीं थी परंतु अहंकार से जन्मे क्रोध से रक्त खौल रहा था। किसी अन्य अखाड़े का चेला देख केसरी सिंह ने उसे जंघा पर ख़म ठोंकते हुए कुश्ती के लिए ललकारा और स्वयं के मूल उद्देश्य को संभ्रम के काले धुएँ में खोता महा क्रोधित हो उस ललकार को स्वीकार कर बैठा।

वाह रे माया! पशुपति के पथ को प्राप्त होने वाला जीव, पशु बन अज्ञानमय पाश रूपी मल से घिर क्रोध उठाता आत्मिक उत्थान की क्रीड़ा को छोड़, शारीरिक क्रीड़ा में व्यस्त हो चला।

दोनों अद्भुत विरति निनाद करते हुए एक दूसरे से भिड़ पड़े थे। एक का अंग मोटन दूसरे के विकुंचन से असफल हो रहा था। दाँव, उसका तोड़ और पुनः पलटवार। दोनों ही एकाग्रचित्त भिड़े हुए थे कि अचानक महा का ध्यान कबीर की ओर चला गया और मानो स्वयं के अंतर से आवाज़ गूँजी-

"यदि लगाना ही है तो शरीर को राम के खेल में लगा।"

उसने देखा कि यह स्वर कबीर का नहीं था, अपितु स्वयं की क्षण को जन्मी विरह-वेदना ने एकाग्रचित्तता को भंग कर दिया था। मौक़े का फ़ायदा उठाकर केसरी सिंह ने वह दाँव लगाया कि महा चारों खाने चित हो गया।

जीवन को इस श्रम के मार्ग पर प्रशस्त कर जो पाया वह कितना अल्प था, अभी महा यह सोच ही रहा था कि केसरी सिंह के गर्वोक्त स्वर उसके कर्णपटल पर पड़े, "यों तो यह दाँव मैं तुझे क्षण भर में सिखा दूँ,

'पर याद रख मैं तेरा गुरु नहीं।' "

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

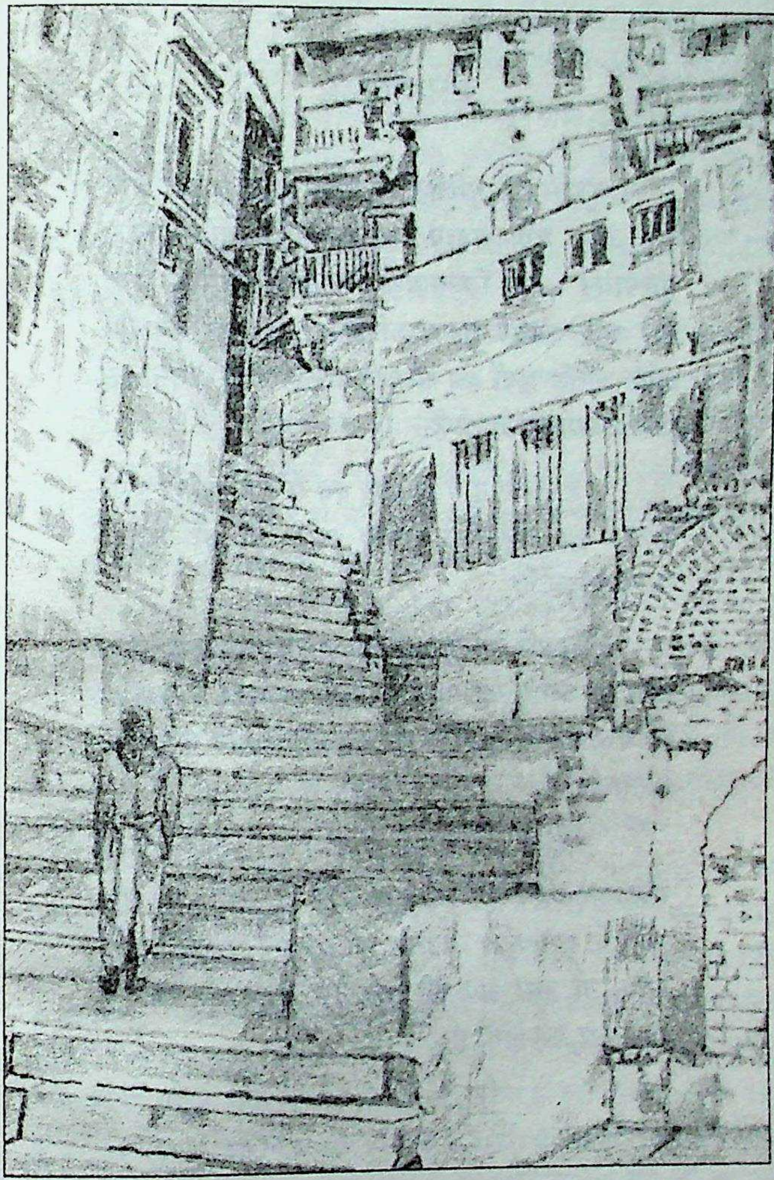

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अध्याय-३४

काशी की गलियों में रमण करते अस्सी घाट की ओर पग बढ़ाते भस्मशायी, विजितात्मा, भूतभावन काशी विश्वनाथ त्रिकाल में कभी न नष्ट होने वाले अपने परम कांतिमय महाभूतस्वरूप से अनंत कोटि सूर्यों का तेज फैलाकर अपने भक्तों के प्रति जयघोष उठा रहे हैं-

"हे जीव! तू मैं हो जाए एवं मैं तू हो जाऊँ, इसी प्रकार का तेरा-मेरा अभेद भाव ही तो काशी मरणान्मुक्ति है।"

"मुझसे सृजित अखिल ब्रह्मांड का कण-कण जीव को उसके गत, अनागत और वर्तमान में सदा ही मेरे पंचाक्षर प्रणव अमर मंत्र का जाप करने को प्रेरित करता है।"

"जिस ज्ञान के समय जीव की आत्मा मुझसे एकाकार करने को व्याकुल होती है, उस घड़ी यदि जीव के कर्णपटल पर परम का यह मंत्र गुंजायमान हो जाए, तो उसी क्षण मैं शिव उस जीव को स्वयं से एकाकार कर लेता हूँ।"

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

आज संपूर्ण सृष्टि मानो अंधशक्तियों की गुलाम बनी व्योम में उमड़ते-घुमड़ते मेघों से भीषण वर्षा में लीन हो चली थी। मुसलाधार बारिश आज प्रलय का गान उठाने को आतुर हो उठी थी। तेज़ गड़गड़ाहट से विद्युत् को जन्म देते विद्युतगर्भ मेघों ने जैसे अपना विकराल मुँह खोल दिया था। विगत दिवसों की वर्षा के पश्चात् आज तो मानो इंद्र अपना अमोघ अस्त्र चलाने पर उतर आए थे। वज्राघात सदृश वृष्टि में तीव्र गड़गड़ाहट के साथ विद्युत् का कौंधना वातावरण को और अधिक भयावह बनाने लगा था। जैसे आज वृष्टि संपूर्ण काशी की आहुति लेने को ठान चुकी थी।

सारे घाट जलमग्न हो चले थे और गलियों से तीव्र प्रवाह के साथ बहता जल, गंगा में मिलकर घोर नाद उठा रहा था। गंगा का रौद्र रूप प्रलय के द्वार को घोर नाद उठाते दस्तक दे रहा था। सर्वत्र पानी ही पानी, लोग घरों में दुबके पड़े थे, तो साँड़ों ने भी किसी स्थल का आश्रय ले लिया था। अहर्निश वर्षा से गलियाँ घुटने तक जलमग्न हो चली थीं। पूर्वी हवा के थपेड़े और हवा में नमी के कारण संपूर्ण वातावरण में शीत का प्रभाव व्याप्त था।

महाश्मशान मणिकर्णिका पर सर्वत्र अंधकार व्याप्त था। सायंकाल में जली चिता अब बुझने को आई थी एवं उसमें लकड़ियाँ डाल, फूँक मार अग्नि को प्रज्वलित कर हाथ तापते महा के चित्त में संध्या से ही किसी अनिष्ट का संशय रह-रह कर बिजली की तरह कौंध रहा था। मृत्यु के साम्राज्य में पाँच वर्ष बिताने पर भी अब तक महा मृत्यु से कभी भयभीत नहीं हुआ था, परंतु आज कोई मृत्युगान चित्तशक्ति को हिलाता उसे भयभीत कर रहा था।

महा के सूक्ष्म बिंदु से प्राणों में मानो आज संपूर्ण ब्रह्मांड का भय आ समाया था। दृष्टि के समक्ष जलती चिता की शवभस्म में से जैसे मृत्यु का देव पुनः खड़ा हो अपनी असंख्य काली बाँहों के पाश में उसे जकड़ रहा था। सृष्टि के नाटक का निर्देशक मानो किसी स्वजन की मृत्यु को उसकी आँखों के समक्ष ले आया था एवं वह उस भयभीत पात्र की तरह काँप रहा था, जिसका सर्वस्व उसके प्राणों सहित हाथों से छूट रहा हो। उसे प्रतीत हो रहा था जैसे आज काल का देव अपने क्रूर आघात से उसके जीवन के सर्वोच्च प्रेममयी संबंध को खंड-खंड करने उसके समक्ष आ खड़ा हुआ है। मस्तिष्क का हर तंतु अनिष्ट और

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अमंगल की आशंका से कंपित हो उठा था।

चिता की भस्म को कुरेदते हुए वह क्षण को स्वयं को संयत करता, तो दूसरे ही क्षण संशय उसे क्षत करता संतप्त कर देता। इस प्रचंड झंझावात में भयभीत महा, माँ की मृत्यु की कल्पना कर अब चिता पर दृष्टि डालता सिसकने लगा था। यम रूपी काला परदा महाश्मशान के अंधकार को और गहरा कर रहा था एवं इस अंधकार में वह स्वयं के प्राणों को स्वयं से छूट, लुप्त होते देख रहा था। श्वास गति तीव्र हो गई थी एवं भयभीत महा के समक्ष खड़े मृत्यु के देव की सत्यता को जैसे लकड़ियों के ढेर में दुबके श्वान के रोने के कातर स्वरों ने प्रमाणित कर दिया था।

क्रूर काल की शक्ति जैसे उसे उसकी कोठरी की ओर धकेल रही थी और वेग से गरजती गाज अब उसके चित्त, अंतःकरण एवं मन को कलुषित करने लगी थी। माथे पर श्रमसीकर छलक आए थे और इस भीषण कोलाहल के मध्य एक तीव्र कामना जन्म ले रही थी कि क्षण में ही वह अपनी कोठरी पर पहुँच जाए और माँ की गोद में सिर रखकर फूट-फूट कर रोए। हृदय का स्पंदन बंद होता प्रतीत हो रहा था और सुन्न मस्तिष्क उसे मात्र एक ही संदेश दे रहा था कि चाहे जो हो, वह शीघ्रातिशीघ्र अपनी कोठरी पर पहुँच जाए।

आज से पूर्व महा का परिचय ऐसी दारुण कालरात्रि से कभी नहीं हुआ था। अनिष्ट से उत्पीड़ित एवं काल के अंध अनुमान में अब वह तिमिराच्छन्न सीढ़ियों को चढ़ता गली में आ पहुँचा था। जलमग्न गली, धरा का निशांधकार एवं मुसलाधार वर्षा में मग्न होते हृदय के साथ निष्प्राण महा के लिए एक पग आगे बढ़ाना भी दुरूह हो चला था। रात्रि की इस नीरवता में अंध आगे बढ़ते उसका कंपित शरीर जैसे ही आगे पग बढ़ाने को उद्यत हुआ तो पानी के विपरीत प्रवाह के कारण वह ठोकर खा, धरा पर गिर पड़ा। अत्यधिक जलराशि होने से काया पर कोई चोट न पहुँची और जल में डुबकी खाता वह पुनः उठ खड़ा हुआ था।

काल की निर्दयता का भान आज उसे प्रथम बार हो रहा था परंतु अनिष्ट की आशंका ही शक्ति का रूप धर, इस घने अंधकार में उसे अपनी कोठरी की ओर पग बढ़ाने के लिए प्रेरित कर रही थी। ब्रह्मांड का प्रत्येक अणु जलकण का

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

रूप धर बरसता हुआ उसे माँ की मृत्यु की ओर पग बढ़ाने का संदेश सुना रहा था और एक दुर्निवार संभ्रम-वेग उसे ठेलकर कोठरी की ओर बढ़ने को बाध्य कर रहा था।

इस तिमिर रात्रि एवं घोर वृष्टि में पग आगे कैसे बढ़ाए? अभी यह प्रश्न मस्तिष्क में आया ही था कि एक आश्चर्य से वह चौंक उठा। दृष्टि के समक्ष मानो किसी अज्ञात अदृश्य से एक शाश्वत ज्योत आ उतरी हो। ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश रूपी त्रिदेव का दिव्य आलोक उठाती एक तेजोमय नंग-धड़ंग काया उससे कुछ पग की दूरी पर हाथ में लालटेन लिए चल रही थी।

अब यह ईश्वरीय आलोक इस मर्त्य संसार के अंधकार में उसका पथप्रदर्शन करता आगे बढ़ रहा था। इस ब्रह्मांडीय रहस्य में वह लालटेन के प्रकाश में इस दोहरी काया वाले नंग-धड़ंग महात्मा के मात्र कर एवं पार्श्व को ही देख पा रहा था। ज्योतिषमान देव सदृश महात्मा के समक्ष आते ही महा का हृदयकेंद्र किसी ज्योतिर्मय निद्रा में लीन होने लगा था। उनकी काया से उठती तरंगों ने जैसे महा को सम्मोहित कर दिया था एवं स्वप्निल नेत्रों से वह उस आलोकमय काया से अपनी दूरी को कम करने का प्रयत्न कर रहा था, परंतु दोनों के मध्य अंतर यथावत् था।

सम्मोहन की इस दशा में महा के हृदयांतराल में स्थित समस्त वेदनाएँ एवं भय लुप्त हो गए थे। असीम दिव्यता धारण करती इस काया के पीछे-पीछे चलते हुए महा कब अपनी कोठरी के द्वार पर आ खड़ा हुआ, उसे ज्ञात न हुआ। जैसे कोई ईश्वरीय कृत्य घटा था। द्वार पर पहुँचकर जैसे ही सम्मोहन भंग हुआ और महा ने यहाँ-वहाँ दृष्टि दौड़ाई तो दूर-दूर तक कोई न था। कौन थे वे? कोई योगी, औघढ़ या स्वयं काशी विश्वनाथ?

कौतुक लिए महा कोठरी में प्रविष्ट हुआ, इस अभूतपूर्व अनुभूति से उसका शरीर काँप रहा था एवं दृष्टि सामने बैठी माँ पर गई तो ऐसा प्रतीत हुआ जैसे माँ को ज्ञात था कि वह आ रहा है। आज माँ का मुखमंडल भी एक अभूतपूर्व आभा से दमक रहा था। अतिशय कोमल एवं प्रेमभरी दृष्टि से वह उसे निहार रही थी। आज जैसे माँ की देह में कोई शिवालय स्थापित हो गया था और माँ की दृष्टि उस शिवालय में शिव को प्राणप्रतिष्ठित करने को आतुर

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

दिखाई दे रही थी। गोद में शंकर की पिंडी थी एवं हाथ में एक हरा कपड़ा था। माँ को देखकर महा को प्रतीत हो रहा था जैसे उसका हृदय, चातक पक्षी के समान सत्य रूपी स्वाति नक्षत्र की बूँद को निज कंठ में उतारना चाहता है और जैसे यह बूँद उतरते ही संपूर्ण रिक्तता समाप्त होकर उसका हृदय किसी परमप्रेम से लबालब भर जाएगा।

रात्रि के इस गहन अंधकार में आले पर रखे दीये से उठते प्रकाश में महा देख रहा था कि आज स्वर्णिम आभा फैलाती यह देवी उस पर किसी सत्य को उद्घाटित करना चाहती है। इस देवी की पूजा में नतमस्तक होते ही पुन: उसकी मृत्यु के भय ने महा को आ घेरा और वह माँ की गोद में सिर रखकर फूट-फूट कर रोने लगा।

यशोदा अब महा के केश पर हाथ फेर रही थी और महा, माँ की दृष्टि में झाँकता उस दृष्टि में किसी निश्चय को पढ़ रहा थं। अपनी अँगुलियों को महा के केशों में फेरते हुए अब तक अपने हृदय के मौन में छिपाए रहस्य को, अब यशोदा शब्द-दर-शब्द महा के समक्ष उघाड़ रही थी। प्रत्येक शब्द के साथ चेहरे की पवित्रता एवं दिव्यता, और निखर रही थी। जैसे यशोदा ने आज अपनी मातृशक्ति का लय आद्यशक्ति में ठान लिया था और आद्यशक्ति जैसे कोई परावाणी उठाती बोल रही थी।

स्वयं के अस्तित्व पर लगे प्रश्नचिह्न का अंधकार एवं यशोदा के सत्य रूपी दिव्य भावपूर्ण प्रकाश के मध्य झूलता महा, प्रकाश में उतर गया था। वह इस क्षण हृदय में मौन को स्थापित कर माँ की पवित्र आँखों में झाँकते हुए सब कुछ भूल जाना चाहता था।

जैसे संपूर्ण वातावरण यशोदा के जागरण के स्वरों से गूँज रहा था। आज उसकी दृष्टि मानो आद्यशक्ति के स्वरूप को प्रकट कर रही थी और आत्मभाव से मैत्री कर वह महा के हाथ में शंकर की पिंडी और हरा कपड़ा देती बोल उठी-

''यदि मेरी इस जीवन यात्रा में मैंने क्षण भर भी अपनी मातृशक्ति को कलंकित नहीं किया है, तो इस शंकर की पिंडी को अपने हृदय पर स्थित कर तुम तीव्र स्वरों में ''ॐ नम: शिवाय'' का जाप उठाओ।''

माँ के स्वरों की शक्ति महा के मन को आलोड़ित कर रही थी और वह

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

इस देवालय के प्रांगण में लेटा शंकर की पिंडी को अपने हृदय पर रख, तीव्र स्वर में ''ॐ नमः शिवाय'' का जाप करने में लीन हो गया था। इस क्षण मानो न कोई भूतकाल था न ही भविष्य। ''ॐ नमः शिवाय'' का उच्चारण यशोदा के कर्णपटल पर गूँज रहा था और इस जाप में महा कब निद्रामग्न हो गया उसे ज्ञात न हुआ।

जब आँखें खुलीं तो वह पूर्ववत् माँ की गोद में लेटा हुआ था। अब भी यशोदा का हाथ उसके केश में उलझा हुआ था और जैसे ही वह उठ खड़ा हुआ, माँ का हाथ एक झटके से धरा पर गिर पड़ा। भयग्रस्त महा ने जैसे ही यशोदा को छुआ तो उसे प्रतीत हुआ जैसे किसी ने उसके हृदय को मुट्ठी में कस लिया हो और प्राणवायु की अल्पता में वह छटपटाने लगा हो। माँ का शरीर ठंडा पड़ चुका था, माँ के प्राण-पखेरू उड़ चुके थे।

यशोदा के पग अंगुष्ठ पर सिर रखकर महा फूट-फूट कर रो रहा था। अब स्वयं को संयत करते महा की दृष्टि जैसे ही यशोदा के मुखमंडल पर गई, तो उसे प्रतीत हुआ जैसे माँ मोक्ष के स्वर्णिम सिंहासन पर आरूढ़ थीं। माँ का मुखमंडल उसे दर्शा रहा था मानो अब भी वह कह रही हो-

''मैं शिव हो गई और शिव, मैं!''

इसी ज्ञान के समय वह स्वयं के कर्णपटल पर ''ॐ नमः शिवाय'' का प्रणव रूपी महामंत्र सुन रही थी। योगिनी सा दमकता माँ का मुखमंडल, जीव और शिव के अभेद को दर्शाता हुआ काशी मरणान्मुक्ति को परिभाषित कर रहा था। अपने देह रूपी शिवालय में वह शिव को प्राणप्रतिष्ठित कर चुकी थी।

अंचानक महा एक झटके से काँप उठा। माँ के इस शांत और ओजमय मुख पर दृष्टि पड़ते ही उसे ध्यान आया कि जब वह ''ॐ नमः शिवाय'' के जाप में लीन निद्रामग्न हो रहा था, तब माँ ने उसके भविष्य की कोख में छुपे किसी रहस्य को देख लिया था, क्योंकि माँ के अंतिम शब्द थे-

''समय पास आ रहा है जब तुझे ज्ञात होगा कि क्यों कबीर तुझसे कहते थे-

'पर याद रख मैं तेरा गुरु नहीं।' ''

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अध्याय-३५

परम आद्यशक्ति की उपासना में लीन युगादिकृद्युगावर्त, देवासुरमहाश्रय, योगेश्वर काशी विश्वनाथ आज हरिश्चंद्र घाट पर समाधि में लीन होने से पूर्व परम घोष उठा रहे हैं-

''मैं शिव आप शक्ति से भिन्न नहीं! अधिष्ठान से अध्यस्त की सत्ता भिन्न नहीं होती। मैं एकरस अपरिणामी तथा आप परिणामी हैं। आप शक्ति का कार्य यह ब्रह्मांड है। आपके आविर्भाव से तीनों लोक उत्पन्न होते हैं तथा आप शक्ति के तिरोभाव से ही ब्रह्मांड का अत्यंत अभाव हो जाता है।''

''हे जगज्जननी आद्यशक्ति! आप वाणी, मन और बुद्धि से अगोचर हो। आप आकाररहित, भावातीत, गुणातीत एवं सब इंद्रियों के द्वारा अग्राह्य होने पर भी अपनी संतानों के कल्याण के अर्थ ही सगुण रूप धारण कर भावगम्य हो मातृशक्ति का रूप धर, अपनी संतानों को निःश्रेयस प्रदान करती हो।''

''आपका एक अंश ही मातृशक्ति का रूप धारण कर समस्त जीवों के हृदय में अनंत शांति और करुणा का स्त्रोत प्रवाहित करता, व्यथित जीवों को शांत कर देता है।''

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

काल को अपने मुख का निवाला बना परम मृत्यु को प्राप्त यशोदा की जीवात्मा, शिवात्मा से एकाकार हो गई थी। महा को निःश्रेयस प्रदान कर, अब यह भावगम्य मातृशक्ति स्वयं के तिरोभाव में अपने सगुण रूप यशोदा को छोड़ती, भावातीत एवं गुणातीत आद्यशक्ति में लीन हो गई थी।

करुणा और वात्सल्य के अमरानंद के प्रति स्पंदित हो जिस आद्यशक्ति ने यशोदा रूपी मानव-काया को धारण किया था, आज वही मानव-काया शव का रूप धर चिता पर लेटी थी। चिता पर माँ के शव पर दृष्टि डाल, अश्रु बहाता महा सोच रहा था कि सत्य को उद्घाटित करते ही इस देवी ने स्वयं के देह रूपी शिवालय में शिव की प्राणप्रतिष्ठा कर ली थी। जैसे माँ के प्राण इस सत्योद्घाटन में ही अटके हुए थे एवं मानो माँ ने अपनी संपूर्ण शक्ति इसलिए बचाकर रखी थी कि वह उस पर उसके सत्य का उद्घाटन कर सके। इसलिए तो सत्योद्घाटन के साथ ही अब उसकी संपूर्ण मातृशक्ति तिरोहित हो आद्यशक्ति में लीन हो गई थी।

इस देवी ने तो सत्य को चुन अपनी गति पा ली थी, परंतु अब शक्ति के इस तिरोभाव से महा के लिए संपूर्ण ब्रह्मांड का अत्यंत अभाव हो गया था। आत्म-गौरव की आत्यंतिक ऊँचाई आलोक का रूप धर, शव रूपी यशोदा के मुखमंडल को आलोकित कर रही थी। अब भी उसके मुखश्री पर वे भाव थे कि भले ही मृत्यु ने उसे अपने दामन में छिपा लिया हो, परंतु अब भी वह महा का मंगल चाह रही है। माँ के शव को निहारता महा का हृदय अब लहू के अश्रु बहाने लगा था। इस अविश्रांति में अब उसका हृदय काशी विश्वनाथ के प्रति भी आशंकित हो उठा था।

श्मशान की भयंकर निस्तब्धता का अनुभव आज महा को जीवन में प्रथम बार हो रहा था। कैसा विचित्र स्थान है यह! जो देखते ही देखते सारे रिश्ते-नातों को लील जाता है। महाकाल के अधीन यह स्थान भले लोकप्रिय न हो परंतु अत्यंत आवश्यक है। आकाश इस स्थान को अवकाश देता शिव की संहार लीला को पूर्णता प्रदान करता है।

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

समस्त भावों को हृदय के भीतर किसी पाषाण से दबाकर, चांडाल भले ही दूसरों के शवों को जलाता है और अपने इसी कर्म को स्वयं का धर्म समझता है, परंतु स्वजन का दाहकर्म हृदय में रखे पाषाण को खंडित कर, समस्त भावों को उघाड़ देता है और सारे भाव अश्रु का रूप ले आँखों से बह निकलते हैं। आज ऐसा ही कुछ महा के साथ हो रहा था। मुखाग्नि देने से पूर्व महा, माँ के शव के साथ लिपटकर ऐसे रो रहा था, जैसे वात्सल्य भरी ममता की यह गोद अपनी आँखों से झरते वात्सल्य को अब कभी न लुटा पाएगी, जिसे पाकर वह सनातन शांति की लोरी सुनता था।

वर्षा रात्रि में ही थम गई थी और गलियों का पानी सबको शरण देती गंगा में जा समाया था। गंगा आज रौद्र रूप धर घोर नाद उठाती मानो स्वर्ग, भूतल और पाताल, तीनों लोकों को आक्रांत कर रही थी।

हरिश्चंद्र घाट के ऊपर के स्थान में जैसे ही महा जलती लकड़ी लेकर चिता को मुखाग्नि देने के लिए आगे बढ़ा, तो भूतनाथ उसके मुख के विचित्र भावों को देखकर सिहर उठा, जैसे महा नहीं चाहता था कि वह इस चिता को मुखाग्नि दे। भूतनाथ इस क्षण नहीं जानता था कि महा सोच रहा है कि जिस माँ की काया के प्रत्येक अणु को किसी देवी से कम न माना था, क्या उस देवी की चिता को अपनी नाड़ियों में दौड़ते अशुद्ध रक्त के कारण वह मुखाग्नि देने की पात्रता रखता है?

न जाने किन कामुक पशुओं का रक्तांश था वह? मन में विचार आते ही महा के मुखमंडल पर विचित्र भावों ने जन्म ले लिया था, जिन्हें पढ़ते हुए भूतनाथ देख रहा था कि कहने पर भी महा मुखाग्नि देने के लिए पग नहीं बढ़ा रहा था। अंततः भूतनाथ ने स्वयं उसका कर पकड़ आगे की ओर खींचते हुए मुखाग्नि दिलवाई थी और मुखाग्नि देने के साथ ही एक अर्थहीन जीव की तरह महा धरा पर बैठ, फूट-फूट कर रोने लगा था।

दृष्टि के समक्ष चिताग्नि अब शव रूपी ईंधन को पा पनपती, बढ़ चली

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

थी और लपलपाती लपटों में पंचमहाभूत अपना-अपना अंश ग्रहण करने को उद्यत हो उठे थे।

पूर्वी हवा चिता से उठते मटमैले धूम्र को महा की ओर धकेल रही थी और महा को प्रतीत हो रहा था कि उसका जीवन भी इस धूम्र के समान काला हो गया है। गंगा के रौद्र प्रवाह के सदृश काल धारा का तीव्र प्रवाह महा को डुबो गया था। इस क्षण महा के जीवन की इस रुँधी गली में यदि कुछ शेष था, तो मात्र काशी विश्वनाथ के प्रति क्रोध। इस क्षण यदि महा के स्वयं के लिए कुछ भी बचा था तो मात्र इस अपवित्रीकृत शरीर-पिंड के दुर्बल चित्त में काशी विश्वनाथ के प्रति धिक्कार एवं काशी से मोहभंग। नाशयुक्त और नाशहीन का अंतर-सत्य खोते महा के भीतर अब भी माँ के ये शब्द गुंजायमान हो रहे थे-

''तू मेरा पुत्र नहीं है। मैंने तुझे जन्म नहीं दिया है।''

स्वयं के प्रयाणकाल में यशोदा के लिए सत्य का सर्व चैतन्य, मुक्ति के मार्ग से व्यापक था, इसलिए महाश्मशान मणिकर्णिका पर कार्यरत ये दो डोम आज हरिश्चंद्र घाट पर बैठे, किसी अन्य डोम द्वारा अपने स्वजन का दाहकर्म होता देख रहे थे। प्रकृति के निज निराले सशक्त वातावरण में अंतर की एक स्पंदित धड़कन से यशोदा ने मुक्ति के विपरीत सत्य को चुना था, क्योंकि उसके लिए सत्य के समक्ष मुक्ति का सौदा महँगा था और इसी सत्य की अभिव्यक्ति के लिए ही वह अपना दाह संस्कार हरिश्चंद्र घाट पर चाहती थी। सत्य की यही परिपूर्णता तो अनपढ़ गँवार से लेकर राजा हरिश्चंद्र तक को धर्म के मार्ग पर चलने को बाध्य करती है।

एक के बाद एक पहर बीत रहे थे एवं ध्येयविहीन महा अब भी चिता के समक्ष बैठा रो रहा था। जब मूल पर ही आघात पहुँचा हो तो काल का भान नहीं रहता। अपनी आँख गड़ाए अब भी वह महाप्रयाण पर निकली माँ की चिताभस्म को तक रहा था। रात्रि का अंधकार, श्मशान की नीरवता एवं श्वानों के रोने की आवाज़ वातावरण को बोझिल बना रहे थे।

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

एकाएक वह जीवन के ऐसे चौराहे पर आ खड़ा हुआ, जहाँ स्वयं का जन्म, शिवभूमि में शव जलाने की साधना, कबीर एवं स्वयं काशी विश्वनाथ रूपी सभी मार्ग अब कालिमा में लुप्त होते उसे पथहीनता का बोध करा रहे थे। जीवन का एकमात्र वात्सल्य रूपी सत्य भी अब उसकी दृष्टि के समक्ष जलकर भस्म हो गया था। माँ के शब्द फिर कान में गूँज उठे-

''यदि इस जीवन यात्रा में क्षण भर भी अपनी मातृशक्ति को कलंकित नहीं किया है, तो शंकर की पिंडी को अपने हृदय पर स्थित कर तुम तीव्र स्वरों में ''ॐ नमः शिवाय'' का जाप उठाओ।''

विगत रात्रि तो वह सत्य रूपी दिव्य भावपूर्ण प्रकाश में उतर ''ॐ नमः शिवाय'' के जाप में लीन हो गया था, परंतु अब उसे उसी शिव से घृणा होने लगी थी एवं मातृशक्ति शब्द ध्यान आते ही वह यशोदा माँ को भूलकर अपनी जननी को कोसता, मातृशक्ति पर भी प्रश्नचिह्न लगाने लगा था।

आकाश में घुमड़ते श्यामवर्णी मेघों से रह-रह कर विद्युत् कौंधती और प्रश्न चारों दिशाओं से आ घेर लेता-

''कौन हूँ मैं?''

इस दारुण भीषण प्रश्न से विक्षिप्त होता अचानक वह अपनी धोती उतार पूर्ण दिगंबर हो बैठा एवं अपनी इस विक्षिप्तता में वह तीव्र स्वरों में चिल्लाता माँ की भस्म को अपने शरीर पर मलने लगा। यह उसकी कर्म दिव्यता थी या कर्म मलिनता, सोचते ही भूतनाथ की दृष्टि के समक्ष तीन वर्षीय वह महा आ गया, जिसने इसी तरह महाश्मशान मणिकर्णिका पर चिताभस्म को अपनी काया पर मला था। अंतर मात्र इतना था कि उस दिवस वह चिताभस्म में स्नान किए नन्हे काशी विश्वनाथ का प्रतिरूप दिखाई दे रहा था, तो आज वह काली और अतिविकराल प्रेतछाया के समान प्रतीत हो रहा था।

महा को अपने भुजपाश में बाँध, उसे थामकर लगभग चिल्लाते हुए भूतनाथ ने कहा-

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

''बस, अब बस कर। आज से तू मेरे साथ ही रहेगा।''

घायल, संपीड़ित हृदय लिए अब स्वयं की छाया से भी डरता महा, भूतनाथ के साथ उसकी कोठरी की ओर पग बढ़ा रहा था। आज उसे प्रतीत हो रहा था जैसे इन अंधे घाटों में वह निरर्थक किसी पशुलोक या प्रेतलोक की ओर पग बढ़ा रहा है और प्रेत का विचार आते ही वह इन अंधे नीरव घाटों में गंगा पर दृष्टि डाल ज़ोर से चीख़ पड़ा-

''नहीं, मुझे प्रेत होना भी क़बूल नहीं, क्योंकि वे तो मित्रवत् हो शिव के साथ रमण करते हैं। मैं पशु ही ठीक हूँ। हाँ मैं पशु हूँ, जिसे शिव से कोई लेना-देना नहीं।''

रात्रि के इस पहर में महाश्मशान मणिकर्णिका के पास स्थित भूतनाथ की कोठरी में चिता का धूम्र प्रविष्ट हो रहा था। अपनी जड़ की टूटी-फूटी दीवार लिए महा, कोठरी की छत पर खड़ा स्वयं की काया के प्रति घृणित भाव से महाश्मशान को तक रहा था। मार्गविहीनता और अर्थहीनता अब उसे आत्मघात के द्वार तक ले आए थे। अभी वह कुछ सोचता उसके पूर्व ही उसकी दृष्टि जलती चिता के समक्ष खड़े एक फ़क़ीर पर चली गई, जो गाँजे की चिलम पीता चिताग्नि को तक रहा था।

क्षीण होते हृदय स्पंदन के साथ महा मस्तिष्कीय नभ के गुह्य प्रदेश में स्वयं के अस्तित्व के प्रति प्रश्नचिह्न का शल्य गाड़, छत से उतर कोठरी में चला आया। उसे दिखाई दिया कि निद्रामग्न भूतू चाचा करवट बदलते बड़बड़ा रहे हैं। महा मात्र दो शब्द सुन पाया था, 'बरंगा' और 'रगूल'। शब्द कर्णपटल पर पड़ते ही महा के भीतर यह प्रश्न जागा कि चाचा नींद में भी ठगों की इस भाषा में क्यों बड़बड़ाते हैं? परंतु अगले ही क्षण अपने प्रश्न को शून्य कर वह दबे पाँव कोठरी के बाहर निकल आया एवं चिता के समक्ष आ खड़ा हुआ था।

दृष्टि के समक्ष स्थिर फ़क़ीर की आँखें तप्त लोहित वर्ण सी चमक रही थीं। शोक एवं रुदन के परदे के पीछे के अपने वास्तविक स्वरूप को भूलता महा, स्वयं से ही प्रश्न कर रहा था कि सब कुछ तो दाँव पर लगा उसने इस

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

महाश्मशान में शिवसाधना करते शवों को जलाया था। इसके विपरीत इस क्रूर काशी विश्वनाथ ने उसे दुर्गंध उठाते दलदल में ला ढकेला था।

अग्नि मानो क्रोधाग्नि का रूप ले भभक रही थी। वायु अपने रौद्र रूप में बवंडर उठाती चिताभस्म को उड़ा रही थी। गगन, मेघों से विद्युत् नाद उठा अपने क्रोध को दर्शा रहा था। पृथ्वी कीचड़ की कालिमा से लिप्त उसके प्रतिरूप को दर्शा रही थी और रौद्र गंगाजल मानो प्रलय उठाने को आतुर था, जैसे सभी काशी विश्वनाथ के प्रति महा के इस क्रोध का समर्थन कर रहे थे।

विद्युत् की गड़गड़ाहट, वायु की साँय-साँय एवं तीव्र बहते जल के घोर नाद के मध्य, महा के कर्णपटल पर फ़क़ीर के क्रोधित स्वर गुंजायमान हो उठे-

''अरे मूर्ख! तू भुक्ति और मुक्ति के अंतर को क्या जानेगा? जिस तरह इस जलते काष्ठ के टुकड़े में अग्नि व्याप्त है, उसी तरह काशी विश्वनाथ भी हर घट, हर कण में व्याप्त हैं। समझने के लिए भावना चाहिए, जिसे तो तू माँ की चिताग्नि में ही भस्म कर आया। परम आद्यशक्ति का एक अंश मातृशक्ति का स्त्रोत बहाता तेरे हृदय को असीम शांति देता था। तू उसे बिसारकर क्षणभंगुर काया पर लगे प्रश्नचिह्न की अग्नि में झुलस रहा है। काया का भला क्या अस्तित्व? उलटे वृक्ष की पहेली तो कोई बिरला ही सुलझा सकता है, जिस पर बैठ पक्षी बिना पैर के नृत्य करता है, बिना जिह्वा के गाता है और इस पक्षी की कोई रूपरेखा नहीं।''

''शिव ही परम आद्यशक्ति से एकाकार हो संहार को उठाते, सृजन का मार्ग प्रशस्त करते हैं और तू अपने अहंकार में क्रोध उठाता उसी काशी विश्वनाथ को धिक्कार रहा है। जो मातृशक्ति को नहीं पहचान सकता, वह परम आद्यशक्ति को क्या जानेगा? इसलिए तो जन्म-जन्मांतर हर द्वार पर ठोकर खाता तू यह सुन रहा है-

'पर याद रख मैं तेरा गुरु नहीं।' ''

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

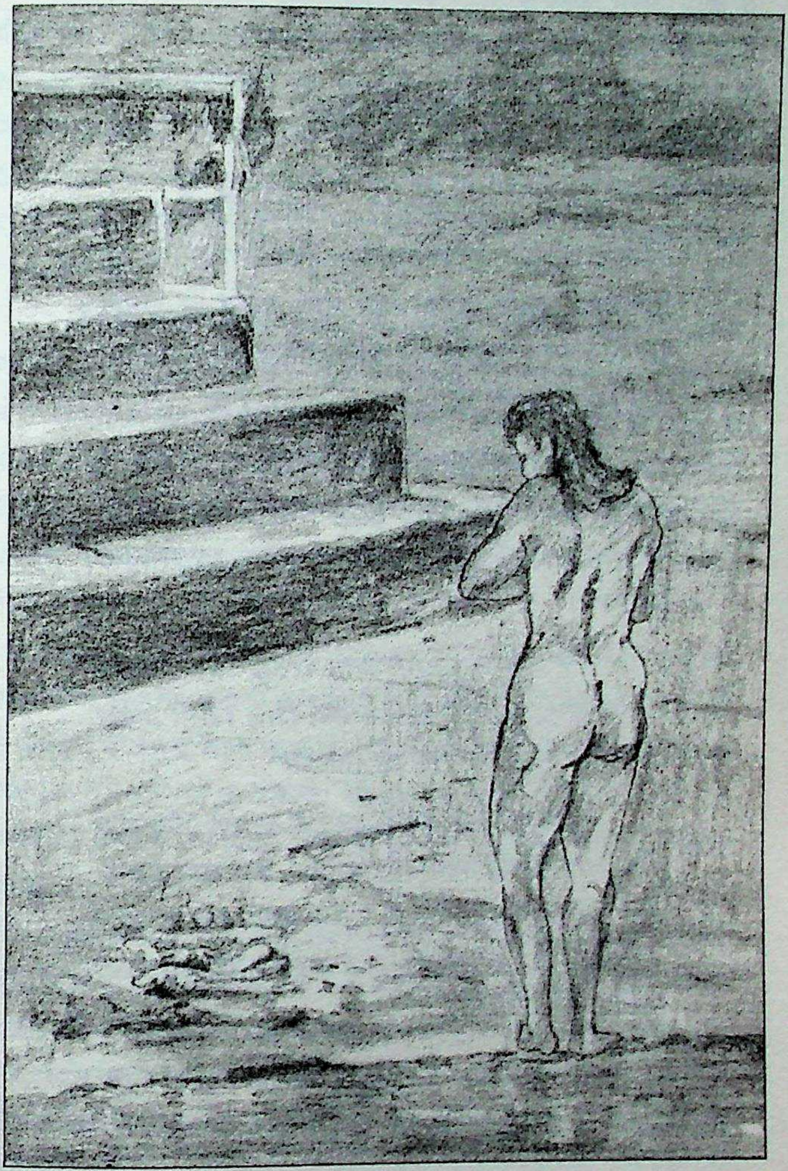

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अध्याय-३६

आज महाश्मशान मणिकर्णिका पर लोकवर्णोत्तम, अनिर्देश्यवपु, वियोगात्मा काशी विश्वनाथ अनंत शक्ति एवं श्रेष्ठ कांति से संपन्न भूर्लोक और भुवर्लोक की शोभा बढ़ाते अमर अनाहत नाद निनादित कर रहे हैं-

"हे आद्यशक्ति जगज्जननी! आप प्रकृति हैं और मैं जगत्-पिता पुरुष हूँ। अखिल ब्रह्मांड में मुझ जगत्- पिता से आप जगज्जननी माता का शतगुना प्रभाव है।"

"हे जगज्जननी माँ! आप परब्रह्म स्वरूप होकर भी माँ हैं एवं आपकी गोद में बैठा शिशु किसी प्रकार के अभाव का बोध नहीं कर सकता।"

"एक अज्ञान से ढँके रहने के कारण जीव पशु होता आप माँ को नहीं पकड़ सकता, नहीं जान सकता और उसका यह अज्ञान ही उसके लुप्त होते प्राण में अहंकार उठा, काशीवास रूपी तपस्या को भंग करने का विचार उठाता है।"

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

स्वयं के जीवन की मूक निराशाजनक निशा के भीतर भीषण दुःख से ग्रसित महा, अब किसी कीट के समान महाश्मशान की मिट्टी में रेंगता घसीटता चल रहा था। उसे प्रतीत हो रहा था जैसे उसकी काया चिपचिपे कलंक से जकड़ी एवं मलग्रसिता सी बनकर अब मृत्यु के देव का निवाला बनने को आतुर हो रही है। एक अशुभ तत्त्वान्तरण में जैसे वह स्वयं से ही परित्यक्त बन स्वयं का ही आधार खो चला था। उसका काया रूपी देवालय कलश तक कालिमा से भर उठा था।

दृष्टि के समक्ष बहती संसार रूपी मल का निवारण करने वाली अमला गंगा से ईर्ष्या की अग्नि में दग्ध होते उसके प्राण उसे अनिष्ट की अंधगर्त में धकेल रहे थे। मर्त्यता की इस भंगुर लघुता में वह गंगा से यह सोचकर घृणा कर रहा था कि कहाँ इस अतिशय सौभाग्य से परम सुंदर प्रतीत होने वाली सौभाग्यसुंदरी गंगा का पवित्रतम उद्गम गोमुख और कहाँ संपूर्ण धरा की कालिमा से युक्त उसकी दुर्भाग्यमय काया का उद्गम स्थल कोई गंदा नाला, जिसमें संपूर्ण जगत् की विष्ठा आ समाती हो!

मृत्यु के सदृश सत्य के एक विकराल मुख ने उसे निगल उसके हृदय को कुचल दिया था और अंतर में समस्त धरणी का क्रंदन आ समाया था। रात्रि की इस नीरवता में जलती चिता के समक्ष मणिकर्णिका घाट की सीढ़ी पर बैठा वह मूकदर्शक की तरह माँ के शब्दांश को चित्रवत् देख रहा था। स्वयं के इस विश्रृंखलन में माँ के उन निर्मम शब्दों की कल्पना मात्र ही उसे पीड़ा से दहला रही थी।

शुष्क होंठों को थूक से तर कर व्यग्र भाव में उसने सारी रात्रि यों ही बिता दी थी। लुप्त होते मानसिक संतुलन में कब भोर हो गई उसे ज्ञात न हुआ। मंदिरों से उठते घंटे-घड़ियालों के नाद में जैसे उसके मस्तिष्क का साम्य एकदम नष्ट हो गया और उसके प्राण-प्रवाह का मूल स्त्रोत ही सूख गया था। गंगा में उतरती आदित्य किरणों की आभा पर दृष्टि पड़ते ही विक्षिप्त सा वह अपने बालों को नोचने लगा था।

भूतकाल में स्वयं के हृदय की मूक भाषा में सहस्र भावों को भर एवं एक

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अगाध श्रद्धा का अनुभव करता, वह मणिकर्णिका घाट के बाएँ पार्श्व में स्थित तिरछे मंदिर पर जब-जब आ बैठता, तब-तब अंतर में अनंत का विस्तार गुंजारित होता उसे स्वयं के स्थितप्रज्ञ भाव में ला बैठाता था। भाव के उस क्षण अंतर का आलोक उसे यह दर्शाता था कि यह मंदिर माँ के समान अपने वात्सल्य भाव से सुख निकेतन में शयन करने के लिए ममता से भरा उसे पुकारता था, जहाँ वह अपने शव जलाने के श्रम से थक, मंदिर के साथ लगी सीढ़ियों पर जा लेटता था। इस मंदिर का एकांतिक आवाहन उसे माँ का आवाहन प्रतीत होता था और दूर से उसकी पूजा उसे माँ की पूजा का सुख प्रदान करती थी। जैसे माँ रूपी देवी अस्सी घाट पर बैठी अपने संपर्क-सूत्र को इस मंदिर के माध्यम से महा के साथ बाँधती थीं।

इस मंदिर के समक्ष स्थिर हो अंतर की आनंदानुभूति उसे यह दर्शाती थी कि नागर शैली में निर्मित इस सर्वोत्कृष्ट कृति में विराजित रत्नेश्वर महादेव, इस पुरातन निधि के माध्यम से उसकी आत्मा के तारों को माँ की आत्मा के तारों से संबंधित कर रहे हैं एवं शव जलाने के श्रम से थकित उसकी काया और हृदय को यह पुरातन निधि पुकारती उसे माँ की भक्ति का आवाहन दे रही है। जहाँ स्वतः हाथ जोड़ते ही उसका सीमित मानवाकार असीम प्रेम की पूजा में लीन होता आनंदातिरेक से भर उठता था। भले ही इस भव्य कृति की नींव कमज़ोर होती कृति को धरा में धँसा गई हो एवं गर्भगृह गंगा में जा समाया हो, परंतु इसका धँसना भी महा के लिए यह संदेश लाता था कि भवन धँस सकता है, किंतु माँ रूपी सर्वोच्च सत्य के भव्य भवन की बृहत् नींव सतत दृढ़ स्थित हो पुत्र को अपने प्रगाढ़ आलिंगन में भर उस ऊँचाई पर स्थित कर देती है, जहाँ समस्त सांसारिक हलचलों से दूर पुत्र का हृदय असीम शांति को प्राप्त कर आत्मधाम में निमग्न हो जाता है।

महा उस लोककथा से पूर्णतः अवगत था कि मन की वक्रिय चाल में एक पुत्र ने माया को अर्जित कर, माँ के दूध का ऋण चुकाने इस मंदिर को स्थापित किया था और माँ की दृष्टि पड़ते ही यह देवालय धरा में जा धँसा था। जब जगज्जननी परब्रह्म स्वरूप होकर भी स्वयं माँ का रूप धर, अपने पुत्र को

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

गोद में बैठा उसके समस्त अभावों को अपनी वात्सल्य शक्ति से दूर करती है, तब एक नश्वर मानव तो क्या, उसके दूध का ऋण तो देव भी नहीं चुका सकते!

विधाता के इस प्राण-हर आघात से मानो महा की काया का भवन एक जीर्ण खँडहर में परिवर्तित हो गया था। किसी वज्र शिला के समान गिरकर उसे तोड़ते माँ के वे स्वर अब भी उसके कानों में गूँज रहे थे-''तू मेरा पुत्र नहीं है।'' हृदय में माँ के शब्द रूपी इन प्राणघातक बीजों की बुआई हो गई थी और मानस रोग की इस छुआछूत में दृष्टि दाहिने पग अंगुष्ठ के दाग़ पर चली गई, जैसे जीवन का कु-आरंभ इसी दाग़ से हुआ था।

जब किसी सत्य में स्वसत्यता खोती है, तो इससे अधिक दारुण दु:ख संसार में और कोई नहीं होता। नियति जैसे उसे तिमिराच्छन्न टेढ़े-मेढ़े मार्ग पर ले आई थी और अब इस मार्ग पर पग बढ़ाते आज जब वह इस तिरछे मंदिर के समक्ष स्थिर था, तो स्वयं के नितांत एकाकी, भयानक और घनघोर मौन में वह काशी विश्वनाथ को पूर्णरूपेण नकारता, जगती के इन भीषण प्रश्नों से सिहर रहा था- कौन सा सत्य? किसके दूध का ऋण? वह जो उसे जन्म देने के साथ ही श्मशान में छोड़ गई थी? कैसी मातृशक्ति?

रह-रह कर महा के कर्णपटल पर यशोदा के अंतिम संस्कार की रात्रि में फ़क़ीर द्वारा बोले गए शब्द गूँज रहे थे-

''जो मातृशक्ति को नहीं पहचान सकता वह आद्यशक्ति को क्या जानेगा?''

कटु विधि-विधान में रुदन करता महा निराशोन्मत्त हो चीख़ पड़ा-

''कैसी मातृशक्ति?''

एक सत्य की स्पर्श यातना ने जैसे अखिल ब्रह्मांड की कालिमा का बोझ महा के कंधों पर डाल दिया था।

उसकी चीख़ सुनकर भूतनाथ बदहवास दौड़ा आया और उसे अपने आलिंगन में भरते भूतनाथ को अनुभव हो रहा था, जैसे इस क्षण महा किसी भीषण बोझ को निज कंधों पर ढोता निज जीवन की बलि देने को आतुर है। भूतनाथ के आलिंगन में बँधा महा, मृत्यु एवं पीड़ा भरे जीवन में जकड़ा

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

स्वसंकल्प लेता बोल उठा-

"नहीं रहना अब मुझे इस काशी में।"

आज एक अज्ञान में ढँक पशु होता महा, मानो माँ के वास्तविक स्वरूप को नहीं जान रहा था और अपने लुप्त होते प्राणों से अहंकार उठाता यह बोल रहा था। महा के इस निपट उलट स्वभाव को देखता भूतनाथ बोल उठा-

"आनंद के इस सुसाम्राज्य में काशी विश्वनाथ स्वयं रमण करते हैं। इस काशी रूपी धरा का प्रत्येक कण शंकर है। माया से दग्ध होते प्राण इसी धरा पर शांत हो मुक्त होते हैं। क्या तू उसे छोड़ना चाहता है?"

विदीर्ण अंतर के समस्त संघर्षों की ज्वाला में दग्ध होता महा, क्रोधित होता चिल्ला उठा-

"इस मिथ्या जगत् में कुछ भी सत्य नहीं, न काशी, न काशी विश्वनाथ और न ही मातृशक्ति। सत्य है तो मात्र मेरी कलंकित काया।"

नरक के जाल में बंद होते पशु के सदृश महा को देखता भूतनाथ व्याकुलता से पुन: बोल उठा-

"उद्धारक काशी विश्वनाथ ही तो तुझे चांडाल बना तेरा भाग्योदय करने कबीर और तुलसी को तेरे जीवन में लाए थे। क्या यह सत्य नहीं?"

शायद चांडाल बनना ही महा का अंतर्युद्ध है और इसे ही महा स्वयं का कलंक मान रहा है, अभी भूतनाथ यह सोच ही रहा था कि तमसाच्छन्न क्रोधित महा चिल्ला उठा-

"किस सत्य की बात कर रहे हो चाचा? उस शिव की, जिसकी साधना में मैं सदा लीन रहा और अंतत: उसने मेरी आत्मा को कलंकित कर दिया या फिर उस कबीर की, जो गिरगिट के समान रंग बदलता मेरी इस काया की कालिमा से अछूता रहने के लिए सदा यह गली ढूँढ़ लेता था-

'पर याद रख मैं तेरा गुरु नहीं।' "

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

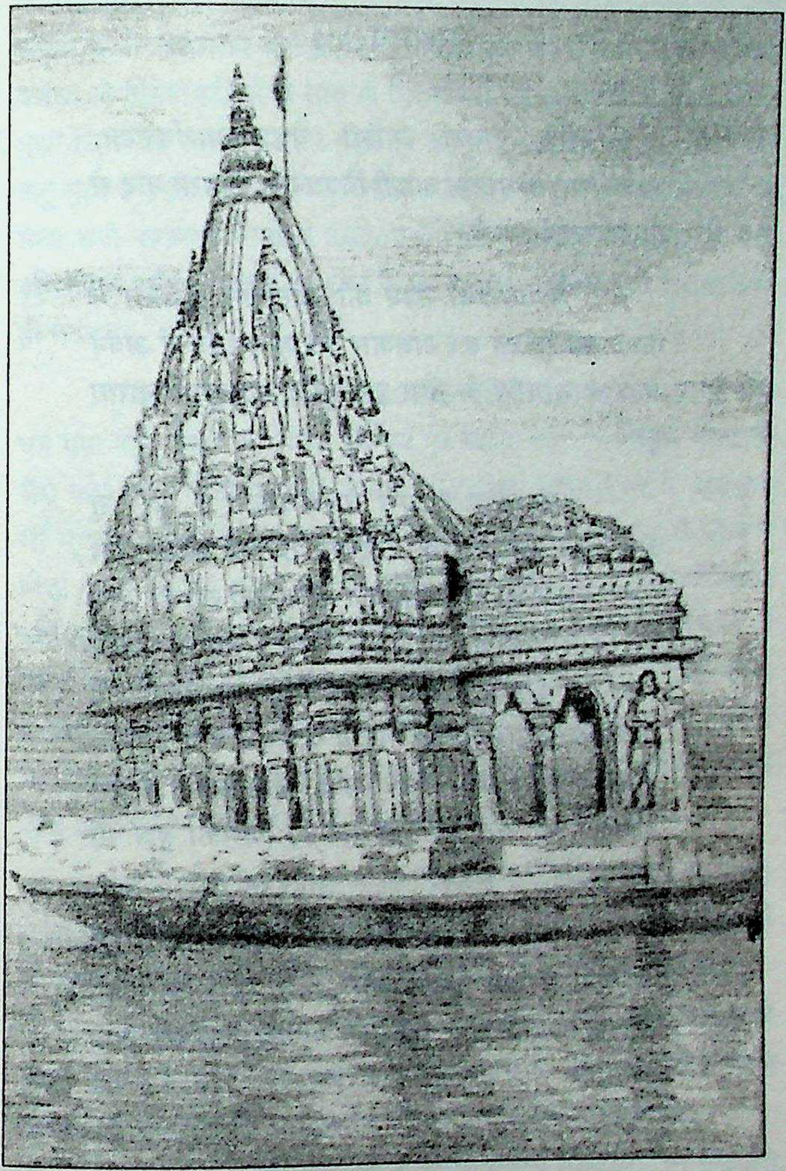

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अध्याय-३७

आज संपूर्ण काशी वेदशास्त्रार्थतत्त्वज्ञ, भावगोचर, उन्मत्तवेष काशी विश्वनाथ के परम नाद से निनादित हो रही है-

"मैं परमेश्वर स्वयं की कालहीन अनंतता में काल को सृजित कर अंधकार की शून्य रात्रि में अपने सनातन जागरण के द्वारा इस सृष्टि का सृजन करता हूँ।"

"तेरा होना परिपूर्ण वास्तविकता है, परंतु तू अपने क्षुद्र अस्तित्व की पहचान खोजते जीव-संज्ञा धारण करता अपनी आत्मा को मलिन कर रहा है। जीव का स्वाभाविक मल ही तुझे इस संसार चक्र में भटका रहा है। तू पशुपति अपनी वास्तविकता को भूल, क्षुद्र माया रूपी अस्तित्व के मोह में पशु बन बैठा है। अब तू पशु काशीवास रूपी तपस्या को छोड़ अज्ञान के उस अंधकूप की ओर पग बढ़ा रहा है, जिसका तुझे भी ज्ञान नहीं।"

"तथापि तू मेरा प्रिय है इसलिए तू कभी इस अंधकूप में नहीं गिरेगा और अंततः काशीवास की तपस्या में पुनः लीन हो काशी मरणान्मुक्ति को प्राप्त होगा।"

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कालचक्र के एक हथौड़े ने महा को पूर्णरूपेण खंडित कर दिया था। कौनसी मातृशक्ति? जननी ने तो जनने के साथ ही उसे त्याग दिया था। अब जीवन मानो अभिशाप बन सामने आ खड़ा था। पालनहारी माँ की समस्त करुणा तो उसकी हड्डियों के साथ ही चिताग्नि में तड़क गई थी। दृष्टि के समक्ष बुझी चिता की राख पर आँख पड़ते ही अब उसे प्रतीत होता था, मानो एक कटु सत्य ने उसके अंतर को भी जला कर राख कर दिया था। माँ के द्वारा बताए सत्य रूपी नागपाश में जकड़े उसके प्राण छटपटा रहे थे। कल तक जो सत्य दृष्टिगोचर नहीं था, आज वह दृष्टि के समक्ष आते ही मानो महा अस्तित्वहीन हो गया था।

भूतनाथ अब स्पष्ट देख रहा था कि भाभी की मृत्यु के बाद यह महा वह महा नंहीं, जिसे वह अपना गुरु एवं पुत्र मानता था। इस महा के भीतर तो जैसे कोई ज्वालामुखी फटा हो जिसका लावा बाहर नहीं आ रहा है। अब जब भी भूतनाथ की दृष्टि महा पर पड़ती तो उसे प्रतीत होता जैसे महा के हृदय में पीड़ा का कोई ऐसा छाला पड़ा है, जिससे पानी तो रिसता है परंतु आँखों से नहीं बहता। महा की यह असीम वेदना माँ को खोने की या कबीर-विरह की तो क़तई नहीं थी। जब भी वह इस संबंध में महा से प्रश्न पूछता, तो महा उत्तर न दे वहाँ से खड़ा हो चल देता था। चिता में शवों को जलते देखना तो भूतनाथ के लिए आम बात थी, परंतु महा के भीतर की चिताग्नि में उसका यों जलना अब उसकी सहनशक्ति से परे हो गया था।

महा के हृदय का स्वच्छ मानसरोवर अब पूर्णत: विषमय हो चला था। न तो यह विष उससे उगला जा रहा था, न ही निगला जा रहा था। एक क्षुद्र घेरे में जीता वह रोज़ अपने जीवित शव को चिताग्नि में समर्पित कर रहा था।

महा के अंग-अंग में मानो कोई पीर व्यापी हो और वेदना असह्य हो चली हो। इसी वेदना को कम करने भूतनाथ अब महा को लेकर कभी जंगमवाड़ी मोहल्ले, तो कभी कबीर चौरा की ओर निकल पड़ता था।

रविवार को कभी जंगमवाड़ी में संगीत मंडली बिराजती, तो पखावज

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

की धमक पर ध्रुपद की गमक सभी को रस-विभोर कर देती, परंतु महा वैसा का वैसा व्याकुल दिखाई पड़ता था। अपितु दूसरों के आनंद से महा खिन्न होकर कई बार बिफर उठता। भूतनाथ को महा के पैरों के नीचे की आधारभूमि ऐसे खिसकती जान पड़ती, जैसे महा मानो किसी दलदल में धँसता जा रहा हो और वह लाचार सा महा को धँसता देखकर भी कुछ न कर पा रहा हो। महा के मुखमंडल पर क्षणिक शांति का भाव लाना भी अब भूतनाथ के लिए भगीरथ प्रयास हो चला था। उसके मन की क्षणिक रिक्तता में संशय फन फैलाने लगा था कि क्या महा काशी छोड़ देगा? प्रश्न पूछने पर महा की लाल आँखों को देखने के अतिरिक्त भूतनाथ कोई उत्तर न पाता। वह अब जान रहा था कि महा स्वयं को खोता जा रहा है।

कबीर चौरा पर चाहे ध्रुपद नहीं गाया जाता था तथापि ठप्पा, ठुमरी, ग़ज़ल, कजरी एवं चैती अपने संपूर्ण ऐश्वर्य में गाए जाते थे। आजीविका जो ठहरी, पूर्वजों का जमाया हुआ पेशा था, दूसरा कुछ न कभी सोचा न ही सीखा था।

बुढ़वा मंगल में कामवासना के प्रति महा की निर्लिप्तता को भूतनाथ हृदय से आत्मसात् कर चुका था, परंतु इस आस में कि शायद कोई बाईजी खोए महा को वापस लौटा लाए, भूतनाथ महा को आज कबीर चौरा पर बाईजी के कोठे पर लाया था।

गणिकाओं के कोठे थे, हर एक के ठाठ अनूठे थे। सारंगी के स्वर के भीतर कामिनी कंठ स्वर उठाता था और सितार की झंकार में बाईजी का मधुरगान सुनाई पड़ता था। विचित्र जमघट था, रूप पिपासुओं का पनघट था। मरीज़-ए-इश्क़ की कोई दवा नहीं, कोई कहेगा दिमाग़ बदल गया है, यारों का जादू चल गया है। परंतु भूतनाथ देख रहा था कि महा की काया की मिट्टी पूरे काशी की मिट्टी से अनूठी थी। बाईजी के सामने महा ने दृष्टि उठाकर भी न डाली थी। बुढ़वा मंगल में भूतनाथ ने कामवासना के प्रति निर्लिप्तता में महा के मुखमंडल पर एक अद्भुत दिव्यता देखी थी, परंतु आज इस निर्लिप्तता में महा

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

का मुख संपूर्ण मानस अंधकार से घिरा प्रतीत हो रहा था। किसी निम्न चेतना का आकर्षण उसे श्वेत-धवल हिमालय की ऊँचाइयों से खींच, इस दलदल की कालिमा तक ले आया था।

सामने बाईजी गा रही थी और महा को प्रतीत हो रहा था जैसे वह किसी पशु के समान अंधकूप की ओर पग बढ़ा रहा है। मन में विचार उठा, ''क्या काशी छोड़ दूँ?''

अभी महा यह सोच ही रहा था कि एक पुरुष के तीव्र स्वर से बाईजी का गान बंद हो गया और महा के कर्णपटल को अब वह स्वर कंपित करने लगे थे-

''माना कि गायन सीखने की तुम्हारी ललक तीव्र है, परंतु यदि सही में गाना सीखंना चाहती हो तो उसके लिए कड़ी साधना और गुरु चाहिए। सुर महाराज पहले बड़ी ताथैय्या कराते हैं, परंतु एक बार सध गए तो बेड़ा पार। बेड़ा पार तो साधना के बाद ही होता है। मैं तुझे वह साधना नहीं सिखा सकता, अत: गुरु मिलने से पूर्व मुझसे जो सीख सकती है, सीख ले,

'पर याद रख मैं तेरा गुरु नहीं।' ''

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अध्याय-३८

महाश्मशान मणिकर्णिका पर ब्रह्मज्योति, विश्वगालव, ब्रह्मवर्चसी काशी विश्वनाथ बाघंबर ओढ़ भुक्ति मुक्ति दायिनी दिव्य आद्यशक्ति से एकाकार करते अनंत जीवात्माओं को मुक्त कर स्वयं में लीन कर रहे हैं और महाश्मशान अब शिव की जयघोष से गुंजायमान हो रहा है–

''हे देवी महाकाली! तू ही इस जगत् की उत्पत्ति, स्थिति, संहार करने वाली है। तू ही महाविद्या, महामाया, महामेघा, महास्मृति और महामोहस्वरूपा है। दारुण कालरात्रि, महारात्रि और मोहरात्रि भी तू ही है।''

''तू नभ, मन और अहंकार भी है, बाह्य-अबाह्य में सुख तथा दुःख, ज्ञान तथा अज्ञान, लय तथा अलय एवं उपताप तथा शांति भी है, तू ही जगत् की स्वामिनी है।''

''तेरे ही कालचक्र के फेरे में इच्छा ही शक्ति का रूप लेती जीव को कर्म के मार्ग पर प्रशस्त करती है, यही इच्छा किसी दूसरी बड़ी इच्छा से आहत हो अशक्ति का रूप धर क्रोध को उठाती है और फिर यही क्रोध सर्वत्र भय का रूप लेता जीव को मल रूपी पाश में बाँध पशु बना देता है।''

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

स्वयं को घिनौना मान महा ने अपने शरीर को कंकालों से भी अधिक वीभत्स और डरावना बना डाला था। स्वयं के अंत:करण की चीत्कार से वह अब मानो स्वयं ही डरने लगा था। मनोवेदना का भार अब उससे असह्य हो चला था। अब मानो संपूर्ण संसार की वेदना को झेलते हुए महा, मकड़ी के जाले के बारीक धागे से भी अधिक निर्बल हो गया था। स्वयं से होती घिन में वह अपनी काया को किसी कुष्ठ रोगी की काया मान रहा था, जिसकी दूषित नाड़ियों में बहता अशुद्ध रक्त मानो मवाद बन शरीर के कण-कण से निकल रहा था। स्वयं की स्वयं के प्रति इस घृणा में अब वह काशी विश्वनाथ से भी घृणा करने लगा था एवं आत्मपीड़न अब उसे काशी को त्यागने के लिए आलोड़ित कर रहा था। माँ द्वारा बताए गए सत्य के बाद जैसे उसका अस्तित्व कुत्सित वासना की छाया मात्र रह गया था।

महाश्मशान पर व्यतीत किए इन पाँच वर्षों में महा प्रथम दिन से ही देख रहा था कि मृत्यु के काले असंख्य भावों के पाश में बँधे भूतू चाचा, अपनी जीवन समाधि के खँडहर पर खड़े-खड़े यहाँ शवों को जलाते हैं। अंधकार और नरक की ओर ले जाने वाली शक्तियों का अनुसरण करते, वे असत् विश्व के जीवन धागे में झूलते स्वयं के हंता बन बैठे हैं। आज भी जैसे उनके अंतरतम का प्रत्येक कोना अतृप्त सा किसी तृप्ति की आस में भटक रहा है।

उनके इस पतन का उपाय खोजते-खोजते अभी महा कुछ कर पाता, उसके पूर्व ही महा भी स्वयं के पतन की कगार पर आ खड़ा हुआ था। मानो दो मानव अब कीट बनते एक-दूसरे की पीड़ा जानने को व्याकुल हो रहे हों और कालचक्र की इस गति में दोनों ही विनाश की ओर अपने पग बढ़ा रहे थे। एक की घृणा से भरी दृष्टि दूसरे के अपराधग्रस्त रहस्य को खोज रही थी, तो दूसरे की स्वयं के प्रति शापित दृष्टि पहले की हृदय वेदना का मर्म जानने के प्रयत्न में व्यस्त थी, परंतु दोनों ही अपने प्रयत्नों में निष्फल निराश पथराई दृष्टि से एक-दूसरे को तक रहे थे। एक ही कोठरी में दोनों काया के निस्पंद कण-कण से निद्रा मानो कोसों दूर हो चली थी और दोनों की रहस्यमय पीड़ा उनके हृदय को आक्रांत कर रही थी। निर्मम देव के क्रूर आघातों से हुए घावों पर दोनों एक-दूसरे के प्रति मरहम लगाने की कोशिश करते, अब थक चले थे।

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

महा अक्सर कोठरी के कोने में बैठे सिसक-सिसक कर रोते भूतू चाचा को देखता था, परंतु भूतनाथ को उस समय यह ज्ञात न होता था कि महा निद्रा का नाटक कर उसे चोरी से रोते देख रहा है। मन की मरुभूमि से उत्पन्न अंधड़ में आज भी अर्द्धरात्रि में भूतनाथ दीवार से सिर पटक-पटक कर रो रहा था। तीव्र मानस संताप से भरा महा अब स्वयं को न रोक पाया। धीरे से उठ वह भूतनाथ के पास आया और उसके कंधे पर हाथ रख बोल उठा-

''आज इस फटते हृदय का संपूर्ण संताप सुना दो चाचा। इस निरंतर पीड़ा को जन्म देने वाले विष को उगल दो, जो तुम्हें तड़पा-तड़पा कर मार रहा है। आज मत रोकना चाचा, मत रोकना। उगल दो सारा विष।''

हृदय में मानो भूतकाल की कटार रूपी वह स्मृति भूतनाथ की दृष्टि के समक्ष जस की तस आ खड़ी हुई, जो हृदय को नित्य घायल करती थी। अब वह महा की ओर घूमकर, महा की आँखों में झाँकने लगा। अब भी उसकी आँखों से अश्रुधार बह रही थी। खिन्न विचारों में डूबा भूतनाथ अब अपने अश्रु पोंछ चुका था और मुक्ति की याचना भरी दृष्टि से महा को देखकर वह बोल उठा-

''किसे चाचा कहता है? घने अंधकार में घूमते एक बाल हत्यारे राक्षस को, यह दानव तेरा चाचा नहीं हो सकता।''

जागरण और नशा सेवन से भूतनाथ की आँखें लाल हो रही थीं और मुखमंडल पर कालिमा छा गई थी।

कंपित स्वरों में महा ने पूछा-

''बाल हत्यारा?''

साव की तंबाकू के पिंड जैसी भूतनाथ की काली छरहरी काया पत्तों सी काँप रही थी और आत्मपीड़ा की अग्नि में झुलसता, वह और अधिक काला लग रहा था। ''हाँ, बाल हत्यारा! नक़ली पंडों के समान ठग यह तेरा चाचा एक बाल हत्यारा है।''

महा की दृष्टि में प्रश्न यथावत् था और भूतनाथ पुनः बोल उठा-

''माया के तम से हारते मानव की लालसा स्वयं की विस्मृति में उसे ठग बना देती है और स्वयं के इस अन्याय को धर्म का वस्त्र ओढ़ा, कर्म करते

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

वह उसे न्याय का नाम दे देता है।''

''धर्म अर्थात्?'' महा ने पुनः प्रश्न किया।

''स्वयं के अज्ञान, अपूर्णता एवं शोक के भीतर मानव-प्रज्ञा निद्रामग्न हो जाती है और इसी निद्रा में मैं भी माँ काली को अपनी पथप्रदर्शक आराध्य देवी मान, ठग बन बैठा था। और जब धर्म का नाम हो, तो आगे अंधकार और ठोस हो जाता है'', भूतनाथ ने कहा।

''परंतु माँ काली और ठगी प्रथा?'' प्रश्न पूछने की घड़ी महा की दृष्टि के समक्ष उन उग्ररूपिणी देवी की मूर्ति आ खड़ी हुई, जिनके चरणतल में काशी विश्वनाथ शव रूप धारण करके निपतित रहते हैं।

''जब प्रज्ञा को लोभ की कालिमा घेर ले, तो मनुष्य किसी भी देवी-देवता को अपनी ढाल बना पाप कर्म में लिप्त हो जाता है। हम ठग भी यही मानते थे कि हम माँ काली के सदृश किसी राक्षस का संहार कर इस धरा के भार को कम करते हैं, क्योंकि माँ काली ने भी रक्तबीज राक्षस को ठग कर ही मारा था। सो स्वयं को उनका वंशज मान हम भी संहार कार्य में लीन रहते थे। परंतु ऐसा करते हुए हम यह नहीं जानते थे कि वास्तविक दानव तो हम ही हैं, जिनके भार से इस धरा को मुक्त होना है।''

''परंतु आप ठग कैसे बने चाचा?'', महा ने पूछा।

तब भूतनाथ बोला-

''मेरे पिता ने ही गुरु बन मुझे दीक्षा दी थी। हम मुक्ति की आस में काशी आने वाले यात्रियों के साथ रास्ते में ही मिलकर उनमें से किसी मोटे असामी को अपने जाल में फँसा, उसको लूट उसकी हत्या कर देते थे।''

''परंतु बालहत्या कैसे चाचा?''

''उस समय जब मैं एक सेठ की लाश को दफ़्ना रहा था, तभी एक छः वर्षीय बालक वहाँ आ पहुँचा। उसका मासूम चेहरा देख मेरी इच्छा हुई कि उसे न मारूँ, परंतु यह इच्छाशक्ति अभी कार्य करती उससे पूर्व ही लगा कि यदि उसने पड़ाव पर जाकर कुछ कह दिया तो? उसी क्षण दूसरी तीव्र इच्छा ने आ घेरा कि इसे भी मार दूँ। इस भीषण इच्छा से न मारने की इच्छाशक्ति आहत हो, अशक्ति में परिवर्तित हो गई और क्रोध ने जन्म ले लिया। सर्वत्र भय छा

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

गया और उसी भय में मैंने उसे भी मार, दफ़्ना दिया एवं पशु बन दर-दर की ठोकरें खाने लगा'', कहता भूतनाथ फूट-फूट कर रो उठा।

''फिर यहाँ कैसे आए चाचा?'', महा ने प्रश्न किया।

''पापी भी सहस्र वर्षों की पिशाच-यातना भोग इस काशी में मुक्त होता है। सो शव को जलाने रूपी पिशाच-यातना को भोगने, मैं इस महाश्मशान में चांडाल बन बैठा। जानता था कि इस जन्म में मुक्ति नहीं होगी, परंतु तुझ पर दृष्टि पड़ते ही यह प्रतीत हुआ कि किसी पूर्वजन्म के किसी महान पुण्य के फल से काशी विश्वनाथ स्वयं तेरे रूप में मुझे मुक्ति देने इस महाश्मशान में पधारे हैं। तू ही है मेरा काशी विश्वनाथ, जो मुझ पशु का गुरु बन मुझे मुक्ति देगा।''

कहता भूतनाथ जैसे ही महा के चरणों में गिरने को झुका, उसे थाम कर महा ने उसे अपने आलिंगन में भर लिया था। अब पुन: महा की दृष्टि के समक्ष माँ कालिका की उग्ररूपिणी रूपी मूर्ति आ गई थी और अचानक महा को उन महात्मा के शब्द याद आ गए, ''इस माँ कालिका के कालगर्भ में ही सारे भूत पदार्थ जन्म लेते, लय होते हैं। काल के ऊपर प्रतिष्ठित यह नित्यसिद्धा महाशक्ति माँ काली है और अद्वैत में काल की शक्ति, इस माँ की पराशक्ति में लय होती है।''

क्षण को महा के अंत:करण में इच्छा जाग्रत् हुई कि वह दौड़कर जा, उन महात्मा के चरणों में गिर उन्हें गुरु बना ले, परंतु काशी विश्वनाथ का नाम ध्यान आते ही महा क्रोध से भर उठा और उसी क्षण एक नई इच्छा ने जन्म लिया कि ''नहीं बनाना मुझे किसी को गुरु'', इस इच्छा ने प्रथम इच्छाशक्ति को आहत कर दिया और आहत होकर शक्ति, अशक्ति में परिवर्तित हो गई। इस अशक्ति में क्रोधाग्नि भभक उठी और महा पशु के समान ज़ोर से दहाड़ उठा-

''सब मिथ्या है चाचा, न कोई गुरु और न ही कोई काशी विश्वनाथ। यहाँ तक कि कबीर के ये शब्द भी मिथ्या हैं-

'पर याद रख मैं तेरा गुरु नहीं' ''

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

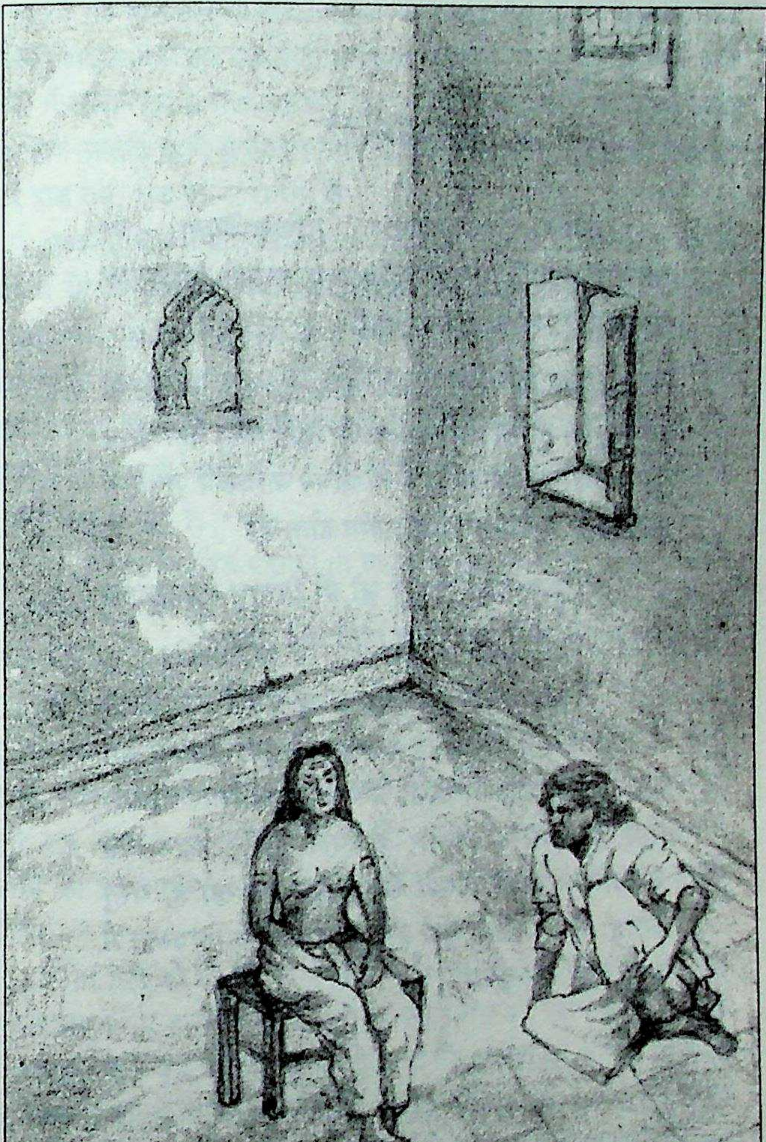

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अध्याय-३९

आज महाश्मशान मणिकर्णिका पर लोकानामग्रणी, गुरूद, मोक्षदायक काशी विश्वनाथ उन्मत्त होते घोर नाद उठा रहे हैं-

"मैं ही जगत् का कारण और जगद्रूप आदिपुरुष हूँ। मेरे अतिरिक्त और कोई वस्तु नहीं है, न कारण और न ही कार्य। मैं ही अपने कार्यरूप जगत् में स्वेच्छा से अनेक रूपों में प्रतीत होता हूँ।"

"ऐसा कौन पुरुष है जो मेरे विधान में उलटफेर कर सके? जैसी मेरी इच्छा होगी वही होगा।"

"परंतु संताप रूपी दु:ख का जनक जो अज्ञान है, वह मैं नहीं हूँ। संताप के योग से उत्पन्न हुआ मन भी मैं नहीं हूँ एवं तेरे भीतर जन्म लेता अहंकार भी मेरा नहीं है। अपने अहंकार से भले ही तू स्वयं की काशीवास रूपी तपस्या को खंडित कर रहा है, परंतु अंतत: मैं अंतरात्मा तुझे इस काशीवास की तपस्या में पुन: लीन कर दूँगा।"

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

काशी विश्वनाथ का नाम सुनते ही क्रोधावेश के कारण महा की आँखें भर आती थी। इस्माइल चाचा की प्रतीक्षा में अब प्रत्येक दिवस महा को और अधिक आहत कर रहा था। बाह्य भटकाव से त्रस्त-पस्त महा के लिए अब काशी में रहना स्वयं के लिए घट रूपी तन का खपरा तोड़ना हो चला था। प्रखर तप्त प्राण-ज्योति हाथों से सरकने लगी थी और उसे प्रतीत हो रहा था जैसे वह स्वयं शव बन, शव को जला रहा है।

काशी विश्वनाथ के प्रति महा का इतना क्रोध क्यों? अब यह पहेली भूतनाथ के लिए अबूझ होती असाध्य बन चली थी। इसका उत्तर खोजते-खोजते अब वह स्वयं भी थक चला था। क्षण प्रतिक्षण अब वह देख रहा था कि विधाता का बनाया यह अपूर्व सौंदर्य स्वयं को खंडित करता, विखंडन की कगार पर आ खड़ा है। भूतनाथ की दृष्टि ने अब यह स्पष्ट पढ़ लिया था कि काशी में शिव रूपी महा अपनी सत्यता एवं सुंदरता को खोता शक्तिहीन शव में परिवर्तित हो रहा है।

''दुर्भाग्य विडंबित महा यों तो स्वयं को नष्ट कर लेगा'', विचार उठते ही भूतनाथ सिर से पाँव तक सिहर उठा। अब उसके भीतर रंच मात्र भी संदेह न रहा और वह इस निश्चय पर आ पहुँचा कि महा को काशी छोड़ देना चाहिए। अब वह महा की उस बेबस स्थिति को नहीं देख पा रहा था, जिसमें महा छटपटा भी नहीं पा रहा था। मुखमंडल पर मात्र निःशब्द अंधकार एवं थकी निगाहें। महा की दृष्टि अब सपाट मरुस्थल सी हो चली थी और उस दृष्टि को पढ़ते अब भूतनाथ भी जान चला था कि काशीवास रूपी तपस्या एवं शव जलाने की शिवसाधना, महा को कुचलती उसे मृत्यु के द्वार की ओर धकेल रही है।

अब महा को भी यह लगने लगा था कि जननी ने तो जन्म देने के साथ ही उसे आधा मार डाला था और अब यह काशीवास उसे पूरा मारने पर उतारू हो चला है। बार-बार उसे यह प्रतीत होता था कि यशोदा माँ जीवित होती तो वह उनके चरणों में अपना मस्तक रख, सिसक-सिसक कर अपना सारा विष उगल देता। परंतु यह उसका दुर्भाग्य था कि माँ ने उसके जीवन का सर्वोच्च कटु सत्य अपने जीवन के अंतिम दिवस ही बताया था।

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

संपूर्ण जीवन का रथ-चक्र घर्र-घर्र उसकी दृष्टि के समक्ष घूम रहा था। काशी विश्वनाथ, काशीवास, माँ, इस्माइल चाचा, महाश्मशान मणिकर्णिका, कबीर एवं तुलसीदास। दृश्य परिवर्तित होते जा रहे थे एवं मानो एक-एक कर सब उसे छोड़ चले थे।

"क्या दोष था मेरा? और यदि नहीं था तो फिर दोषी कौन है? निश्चित ही काशी विश्वनाथ!"

उन्हीं के साधना-यज्ञ में तो संपूर्ण जीवन का हविष्य समर्पित करते उसने शवों को जलाया था। उसके उलट, आज काशी विश्वनाथ ने प्रतिफल में उसे जीवित शव बना दिया था और वह भी एक लावारिस अस्तित्वहीन शव।

आज भी क्षुब्ध और उद्विग्न वह देर रात्रि कोठरी पर पहुँचा था। द्वार भीतर से बंद न था और पंचलेट का प्रकाश झिर्री में से बाहर फैल रहा था। ज्यों ही उसने द्वार को हाथ लगाया, वह चर्र की ध्वनि के साथ खुल गया। कोठरी के कोने में भूतू चाचा बैठे-बैठे मानो उसकी प्रतीक्षा में ही निद्रामग्न हो गए थे। धीमे पग वह कोठरी में प्रविष्ट होता, कोठरी के छोटे से दरीचे पर आ स्थित हो गया था।

दरीचे के सरियों पर सिर टिका, वह बाहर की ओर दृष्टि गड़ाए सोचने लगा- "इस्माइल चाचा की प्रतीक्षा करना अब व्यर्थ है। मुझे आज ही काशी छोड़ना है। परंतु भूतू चाचा से क्या कहूँ? उन्हें यों एकाकी छोड़ना क्या ठीक है?"

आज तक भूतू चाचा ने उसके कहे का कभी भी प्रतिवाद नहीं किया था।

"पश्चात्ताप की अग्नि में वे तो यों भी दग्ध हैं, उन्हें कैसे कहूँ?"

काशी विश्वनाथ के प्रति क्रोध में अब महा के मस्तिष्क का साम्य एकदम नष्ट हो गया था और वह जीवन की पूजा का मंत्र भूल गया था। अचानक एक स्पर्श ने उसे चौंकाया। भूतनाथ की हथेली हौले से उसके कंधे पर आ ठहरी थी।

"खाना खाएगा, थाली लगाऊँ?", भूतनाथ ने पूछा।

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

इस क्षण और अवसर के उपयुक्त शब्द मानो महा के लिए खो गए थे। ''क्या चाचा से कह दूँ कि बस आज से काशी में मेरा दाना-पानी ख़त्म? कहूँ तो कैसे कहूँ?'' महा सोच रहा था, परंतु अपनी समूची शक्ति बटोर वह मात्र इतना कह पाया-

''नहीं खाना, आज बाहर खा लिया था।''

भूतनाथ ने दुलार से महा के सिर पर ऐसे हाथ फेरा, जैसे कोई पिता अपने पुत्र के सिर पर हाथ फेर रहा हो। इस क्षण यह हाथ फेरना महा के लिए किसी अमृत का लेप था।

''बेटा देख, मेरी ओर देख'', भूतनाथ ने कहा।

उसकी वज्रवत् वाणी रुलाई की अंतिम स्वर सीमा तक पहुँच गई थी। स्वर को सुन निर्वाक-निस्पंद होकर महा पलटा और वहीं बैठ गया। भूतनाथ, महा को देखकर भाव-विभोर हो रहा था, जबकि महा स्वचेतना का विरोधी बन दृष्टि धरा पर गड़ाए बैठा था। एक आत्मा के स्वर मुखर होकर दूसरी आत्मा को सुनाई पड़ रहे थे एवं वाणी के स्वर खो गए थे। मौन में भूतनाथ व्यग्र महा की मन:स्थिति को समझ रहा था। महा मानो स्वयं से हार चला था, लगता था जैसे दृष्टि की किरणें पराजय के विचित्र भाव से भरी हैं। क्रोध,आवेश और बेबसी में उसका सारा बदन थरथरा रहा था।

''देख बेटा, मेरी ओर देख'', महा को निहारता भूतनाथ फिर बोला।

अपने विचारों में केंद्रित महा ने दृष्टि उठाकर भूतू चाचा की ओर देखा। पंचलेट के पीले प्रकाश में महा का मुख निर्जीव एवं भावहीन लग रहा था। भूतू चाचा को तकती दृष्टि, किसी पागल व्यक्ति की दृष्टि लग रही थी। परंतु भूतनाथ की दृष्टि में कोई विकलता नहीं थी। उसके नेत्र मानो ज्योति उठाते मन रूपी अंधकार को ग्रस रहे थे।

कुछ क्षणों के मौन के बाद हृदय के संपूर्ण भावों को अपनी झोली में समेट, भूतनाथ ने महा से कहा-

''मेरा स्वर्ग तो अब इस महाश्मशान में ही समाया है। एक ओर मेरी यह काया एवं दूसरी ओर जलती चिताएँ, परंतु तेरा इन चिताओं से ऋणानुबंध पूरा हुआ। जा महा, तू काशी छोड़ दे।''

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

जीवन की यात्रा में थका महा, भूतू चाचा का यह ओजस्वी रूप देखकर स्तब्ध रह गया था। आज चाचा का मस्तक दमक रहा था और दृष्टि मानो कोई ज्योति बिखेर रही थी। चाचा के शब्द सुनकर अवाक् महा एकदम खड़ा हो गया था। भूतनाथ के हृदय में हाहाकार मच रहा था और महा को यह कहते उसका दिल तड़प उठा था। परंतु हृदय की ज्योति और भी उज्ज्वल हो उठी थी एवं इस क्षण की पूर्ण शांति में दृष्टि, तेज के स्फुलिंग बरसा रही थी।

भूतू चाचा ने उसके स्वभाव को कैसे पहचाना? यह जानने के लिए महा अवाक् बोल उठा-

"यह तुम कह रहे हो चाचा! परंतु तुम्हें यों अकेला..."

अभी महा आगे कुछ बोल पाता, उससे पूर्व एक क्षण का विलंब न करते हुए भूतनाथ ने महा को अपने आलिंगन में भर लिया। उसकी तीक्ष्ण दृष्टि आज महा के अंतर-तम को छेद रही थी।

महा को कस के भुजपाश में बाँध, वह बोल उठा-

"जब काया की मिट्टी और स्थान की मिट्टी भिन्न-भिन्न प्रतीत होने लगे, तो उस धरा से कैसा संबंध? छोड़ दे यह काशी, अब यह तुझे नहीं बाँध सकती। तुझे तो तेरा सद्गुरु पुकार रहा है, अब तुझे कौन रोक सकता है?"

भूतनाथ प्रेम गद्गद वाणी में बोल रहा था। उसकी बुद्धि आज कार्य करती असीम वैराग्य को जन्म दे रही थी। महा देख रहा था कि आज जीवन की समस्त रुलाई को स्वयं में समेटे भूतू चाचा, समस्त अश्रुओं को पी गए थे। उनकी इस दुर्लभ शक्ति का परिचय महा को आज प्रथम बार हो रहा था। जिसने जीवन भर उसके सुख-दुःख में सहर्ष हाथ बँटाया था, वह पितृतुल्य व्यक्ति अपने पुत्र से कह रहा था कि "तू काशी छोड़ दे।"

महा मानो सुन्न सा हो गया था। उसका हृदय बुरी तरह से धड़क रहा था। भूतू चाचा के इस आचरण से अपराध भाव से ग्रस्त महा पुनः प्रश्न कर बैठा-

"यह तुम कह रहे हो चाचा?"

"हाँ भाई, यह तेरा चाचा ही कह रहा है", भूतनाथ ने कहा। भूतू चाचा के ऐसे अम्लान सहज भाव की कल्पना महा स्वप्न में भी नहीं कर सकता था।

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

स्वरों में न कोई कँपकँपाहट थी, न ही कोई नमी। भूतू चाचा की इस भव्य अभिव्यक्ति के समक्ष महा नतमस्तक हो, निश्चय ले बोल उठा- ''आज ही चला जाऊँगा चाचा।''

''सदा आनंद में रह'', कहते ही क्षण भर में विषाद का अंधकार छा गया और भूतनाथ की दृष्टि में वियोग का भाव तरंगित हो उठा। अब तक जिस दृष्टि का गगन साफ़ था अचानक मेघों ने उसे घेर लिया था। उसके अंतिम वाक्य में संपूर्ण धरा का दर्द आ समाया था एवं आँखों से अश्रुधार बह चली थी। भुजपाश में बँधे महा की आँखों से भी अश्रु छलक रहे थे।

वाह रे मानवी भावना! संत हो या डोम, सभी को रुला देती है। निर्लिप्तता में भी दबे पाँव कब लिप्तता आ जाती है, किसी को ज्ञात नहीं होता। अश्रुओं की इस धार में भी महा का चांडाल मन, चांडाल भूतनाथ की अद्भुत आत्मशक्ति की अलौकिकता को देख भाव-विभोर हो रहा था। दोनों स्तब्ध, एकदम रुद्ध चेष्ट! आज महा की दृष्टि के समक्ष भूतू चाचा की तेजोमयी किंतु एकाग्र दृष्टि आ खड़ी हुई थी। आत्मविश्वास, करुणा एवं श्रद्धा का एक अपूर्व संगम!

एकाएक महा, भूतू चाचा के चरणस्पर्श के लिए जैसे ही झुका वैसे ही भूतनाथ ने उसे थामते हुए मौन को भंग कर, मृदु-मंद स्वर में कहा-

''क्यों पाप में डाल रहा है? गुरु शिष्य के नहीं, शिष्य गुरु के चरणस्पर्श करता है।''

गुरु शब्द सुनते ही मानो महा के कंठ में कोई विष उतर आया एवं क्लांत, कटु शब्दों में वह कह उठा-

''कैसा गुरु चाचा? कोई गुरु नहीं होता।''

थर-थर काँपते स्वर में भूतनाथ बोल उठा-

''मरणधर्मा काया मृत्यु से ग्रस्त है। चाहे तू कुछ भी बोल, मैं तो तुझे अपना गुरु मान ही चुका हूँ। अब इस मरणधर्मा काया की दीक्षा इस जन्म में हो या भावी जन्म में, कोई अंतर नहीं। सो दे सके तो कोई मंत्र दे, अन्यथा कोई वस्तु, जिसका स्मरण कर मैं शांति से अपनी आँखें बंद कर सकूँ।''

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

'दीक्षा' एवं 'मंत्र' शब्द महा के कर्णपटल पर किसी महामंत्र के रूप में गूँज उठे। संपूर्ण दृश्यमान जगत् दृष्टि के समक्ष मानो लुप्त हो गया। अंतर की प्रज्ञा जाग उठी और महा किसी अनंत के पथ पर आ खड़ा हुआ। शाश्वत अमर चैतन्य के क्षणिक भाव में महा का वर्तमान लुप्त हो गया और वाणी किसी और लोक से उतरती महा को दिव्यता प्रदान करने लगी। इस समय महा कुछ क्षणों पूर्व का महा न था।

परम की सत्ता को दर्शाते हुए महा अब स्वर उठाने लगा था-

"तुम्हारी व्याकुल छटपटाती आत्मा उस दिन मुक्त होगी, जब तुम अपने इस पुत्र के शव की पालकी को काँधा दोगे। आज भले ही इस काया की मिट्टी काशी की मिट्टी से अलग हो रही है, परंतु इसे पुनः काशी की मिट्टी में ही आ समाना है। बालहत्या का प्रायश्चित्त तो शव जलाने की साधना में पूर्ण हुआ, परंतु मुक्ति के लिए तुम्हें उस बालक के पिता का दुःख रूपी ऋण चुकाना है, जिसे तुम अपने पुत्र के शव को काँधा देकर चुका दोगे। तुम अवश्य मुक्त होओगे।"

भूतनाथ महा के इस रूप को देखकर सिहर उठा था। यह रूप उसने उस दिन देखा था, जब वह तैरते हुए महा की नाव के पास आया था और नाव के छोर पर खड़ा नन्हा महा भावमय दशा में महाश्मशान मणिकर्णिका पर जलती चिताओं को देख रहा था। इस क्षण भी थी, तो भाव-सत्ता मात्र। स्वरों से ध्वनि मानो हृदयाकाश के किसी अनंत छोर से आ रही थी एवं महा की संकीर्ण चेतना किसी असीम से जा मिली थी। महा का कालिमा से भरा मुखमंडल अब किसी देदीप्यमान प्रकाश को उठाता मानो परमात्मा की वाणी की झलक देता गुंजारित हो रहा था। इसी अवस्था में महा पुनः स्वरं उठाने लगा-

"ऐसा कौन पुरुष है जो उसके विधान में उलटफेर कर सके? जैसी उसकी इच्छा होगी, वही होगा। तुझे भी मुक्ति मिलेगी, अवश्य मिलेगी, परंतु मेरे शव को काँधा देने के बाद।"

अब महा तेज़ी से पलटा एवं कोठरी के कोने में रखी अपनी पोटली और शंकर की पिंडी को अपने करों में उठाकर जब वह पुनः घूमा, तो एक महान

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

आश्चर्य से भूतनाथ चौंक उठा। कुछ क्षण पूर्व क्या हुआ था, जैसे महा को कुछ याद नहीं था। मुखमंडल पुनः कालिमा से भर उठा था और अब स्वरों में पूर्व की व्यथा और छटपटाहट पुनः आ खड़ी थी। अभी भूतनाथ को उसने क्या कहा था, इसका उसे तनिक भी भान न था।

पोटली में से हरा कपड़ा निकाल उसने भूतू चाचा के हाथों में धर दिया और अत्यंत व्याकुल स्वर में बोल उठा-

''यह कपड़ा ही मेरी वास्तविक पहचान है, सो इसे तुम रख लो चाचा। अब जीवन में काशी लौटना कभी न होगा एवं अब इस काया की मिट्टी किस मिट्टी से ज़ा मिलेगी यह तो ज्ञात नहीं, परंतु इतना तो निश्चित है कि पुनः यह काशी की मिट्टी में तो नहीं समाएगी।''

''नहीं-नहीं'', कहता भूतनाथ उस हरे वस्त्र से अपना मुँह ढाँपकर रो रहा था। कितना आश्चर्यजनक एवं विचित्र परिवर्तन था! कहाँ वह दिव्य वाणी और कहाँ यह क्लांत स्वर! कहाँ वह देदीप्यमान मुखश्री और कहाँ यह विषाद एवं कालिमा से भरा मुख!

किस अज्ञान में यह संत-चांडाल दुःख को जन्म दे बैठा है एवं इसी संताप में यह मन और अहंकार को जन्म देता अपनी काशीवास रूपी तपस्या को खंडित कर रहा है, अभी अश्रु बहाता भूतनाथ यह सोच ही रहा था कि उसके कर्णपटल पर महा के ये शब्द पड़े-

''चलता हूँ चाचा, अब कभी काशी न लौटूँगा।''

भूतनाथ ने देखा कि इतना कहते हुए महा कोठरी के द्वार से बाहर निकल गया था। उसे यों जाता देख भूतनाथ पीछे से ही चिल्लाया-

''यह मेरा प्रायश्चित्त नहीं हो सकता। नहीं होना है मुक्त मुझे। मुझे मुक्ति नहीं चाहिए। कौन कहता है कि तू मेरा पुत्र है? तुझे मैंने कभी अपना पुत्र नहीं माना, अतः तेरे शव को काँधा देने का तो प्रश्न ही नहीं। हाँ, अवश्य मैंने तुझे गुरु माना है और जन्म-जन्मांतर तक मानता रहूँगा। भले ही तू सभी जन्मों में जगत् के सामने ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाकर यह क्यों न कहे-

'पर याद रख मैं तेरा गुरु नहीं।' ''

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अध्याय-४०

महाश्मशान मणिकर्णिका पर रात्रि के इस पहर अनंत तेजस्वी, पंचतत्त्वोत्पादक, ज्योतिर्मय काशी विश्वनाथ की आँखों में क्रोध उतर आया एवं परमानंद में विराजमान भूतनाथ अब क्रोध में घोर नाद उठाते बोल रहे हैं-

"तेरे अहंकार में अभी तू यह भूल बैठा है कि योनि चक्र से निकलता जीव ऊँचे स्वर में रोता है। इस गर्भवास के यंत्र से निकल जीव, पाश में बँध पशु होता दुःख ही भोगता है।"

"माँ की ममता से विहीन तू उस अहंकार को जन्म दे बैठा, जिसमें आत्मा का आत्मा से ही ध्यान कर निदिध्यासन से उठ तू काशीवास रूपी तपस्या का त्याग कर रहा है। अरे मूर्ख पशु! मैं पति तो तुझे पशुपति के रूप में प्राणप्रतिष्ठित करना चाहता हूँ, पर तेरा यह पाश रूपी अहंकार ही तेरी काशी मरणान्मुक्ति को दूर कर बैठा है।"

"अब उत्तरवाहिनी गंगा का स्नान और काशीवास रूपी तपस्या तुझे तेरे जीवन के अंतिम दिन ही प्राप्त होंगे और उसी दिन तू पुनः गर्भवास की यंत्रणा के फेर को छोड़, मेरे ही अनुग्रह से काशी मरणान्मुक्ति को प्राप्त करेगा।"

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अपने अस्तित्व पर लगे प्रश्नचिह्न रूपी पीड़ादायक आघात को झेलने में महा अब अक्षम हो चला था। तीव्र मानस संताप से सारा शरीर जल रहा था। जीवन की नाट्यशाला में काल ने उसके समक्ष उसका वह घिनौना रूप प्रकट किया था, जिसकी वह स्वप्न में भी कल्पना नहीं कर सकता था। अंतर-पीड़ा की उठती ज्वाला में अब अहंकार सिर चढ़ बोलने लगा था और महा के भीतर काशी विश्वनाथ के प्रति रोष अब अपने चरम पर आ पहुँचा था। भले ही काशी विश्वनाथ के प्रति क्रोध था, फिर भी काशी के प्रति मोह में ही यशोदा की मृत्यु के बाद भी उसने इतने दिन काशी में बिताए थे।

अर्द्धरात्रि के इस क्षण महा कोठरी से बाहर आ, जी भर के काशी को देख लेना चाहता था। इसी ललक में अब वह मणिकर्णिका घाट की सीढ़ियाँ उतरता जलती चिताओं के पास आ पहुँचा था। विधि का भी कैसा खेल था कि यशोदा के बाद वह सर्वाधिक इस्माइल चाचा और भूतू चाचा को चाहता था। आज काशी छोड़ने की आज्ञा उसे स्वयं भूतू चाचा ने दी थी और इस्माइल चाचा हज की यात्रा से अभी नहीं लौटे थे। आज उन दोनों को छोड़ने का दर्द महा नहीं झेल पा रहा था और आँखों से अश्रु छलक रहे थे।

अंतर अब काला हो चला था, सो अश्रु भरे नयन लिए वह चिताग्नि से उठती लपटों में इधर-उधर हाथ फेरते, अपनी इस प्रिय सखी अग्नि से काशी छोड़ने की आज्ञा ले रहा था। इस मित्र से अब इस स्थान पर तो कभी मिलना न होगा, सोचता महा और व्यथित हो चला। काशी विश्वनाथ के प्रति आक्रोश से भरा महा अब पागलों की तरह चिल्लाता, सारे कपड़े उतार नग्न हो गया और बाजू की बुझी चिता की राख में सोता यहाँ-वहाँ लोटने लगा, पूरा शरीर भस्ममय हो चला था।

कबीर से वह यह जान चला था कि इस नश्वर संसार में देह के शव बनते ही, पत्नी भी घर की चौखट तक ही साथ देती है। भाई-बंधु ही इसे चिता में समर्पित कर स्वाहा कर देते हैं। यदि यह मानव-काया शव के रूप में धरा में दफ़्न होती है, तो कीड़ों का आहार बन जाती है। तोते की तरह मोहग्रस्त मानव स्वयं जाल में फँस जाता है।

चिताभस्म में लोटता, अब वह ज़ोर से चिल्लाया-

''नहीं! अब मुझे कोई माया रूपी जाल नहीं फाँस सकता। न ही इस्माइल चाचा और न ही भूतू चाचा, न काशी ही'', चिल्लाता एक झटके से

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

खड़ा हो शरीर पर मात्र धोती धारण करता महा, घाट-घाट होता पंचगंगा घाट की ओर बढ़ गया।

कल तक पंचगंगा घाट पर महावटवृक्ष के समान फैलता महा, आज जीवन की समस्त कालिमा को धारण किए जीवित पुतले की तरह घाट की सीढ़ियाँ चढ़ रहा था। अहंकार और स्वयं से घृणा की इस कालिमा में महा आज कबीर को भी भुला बैठा था। कल तक जिन सीढ़ियों को श्रद्धा से झुककर प्रेमपूर्वक छूता था, आज उन्हीं सीढ़ियों को मानो रौंदता वह पग धर रहा था। इसी घाट पर तो कल अनंत का प्रकाश उठता था, तो मानो आज यह घाट चिर अंधकार के साए में सोया था। आज मानो संपूर्ण घाट किसी राक्षसी सन्नाटे में मृत्यु की चीत्कार उठा रहा था। मस्जिद से बाईं गली में मुड़ते ही महा का शरीर जहाँ सदैव हर्ष रोमांचित हो गद्‌गद हो उठता था, वहीं आज भयानक अंधकारमय शून्य के अतिरिक्त कुछ न था। आज महा को लग रहा था मानो ये सँकरी गलियाँ लुप्त हो गई थीं। इस दृष्टि शून्यता में महा के पग अब कालभैरव के मंदिर की ओर बढ़ चले थे।

महा जानता था कि भक्तों के पापों का भक्षण करने वाले इस पाप-भक्षक कालभैरव को 'काशी का कोतवाल' कहा जाता है। काशी में यमराज का कोई अधिकार नहीं है, वरन् काशी में पाप करने वालों का शासन इन्हीं कालभैरव के हाथ में है। काशी विश्वनाथ के प्रति अहंकारयुक्त क्रोध में महा को यह भान न था कि ये कालभैरव भी बाबा विश्वनाथ का ही अंश हैं। महा सदा कालभैरव से भ्रातृवत् प्रेम रखता था, क्योंकि वह स्वयं को महाश्मशान मणिकर्णिका का कोतवाल मानता था और कालभैरव काशी के कोतवाल हैं।

"मेरी अंतिम उपस्थिति दर्ज करो", कहता महा फूट पड़ा।

क्रोधित लाल आँखों से बहती अश्रुधार लिए अब वह वापस पंचगंगा घाट चला आया और घाट-घाट चलता मणिकर्णिका महाश्मशान को पार कर, अब वह दशाश्वमेध घाट की ओर बढ़ गया था। प्राणवायु अब संसार रूपी अशांत ज्वार-भाटों से टकरा दम तोड़ने लगी थी।

इष्ट को अनिष्ट करता महा अब दशाश्वमेध घाट पर आ, धोती उतार दिगंबर हो गया और इसी अवस्था में उसने अष्टकोणीय चबूतरे पर खड़े होकर गंगा में छलाँग लगा दी। अब गंगा के प्रति भी महा की वह श्रद्धा नहीं थी, जो पूर्व में हुआ करती थी। मति पर अहं का परदा डाल महा, गंगा की महिमा को

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

भूल गया था। स्वयं के अस्तित्व पर लगे इस प्रश्न ने धूल-आँधी के बवंडर का रूप ले लिया था और इस बवंडर में वह न मात्र काशी विश्वनाथ से अपितु स्वयं से भी उखड़ चला था। आज वह गंगा-स्नान के लिए नहीं, अपितु मात्र स्नान के लिए गंगा में कूदा था।

तैरता हुआ अब वह नदी के मध्य तक आ पहुँचा और वहाँ मन-मस्तिष्क का प्रत्येक कोना अदृश्य उदास भाव से भर उठा। एकाएक यह कैसी उदासी! उसे इस स्थान पर लग रहा था, जैसे पूर्वजन्म का कोई बंधन उसे इस स्थान पर लाया था। आज से पूर्व वह दशाश्वमेध घाट के सामने गंगा में तैरते कभी यहाँ नहीं आया था। यह स्थान मानो उसे दलित-द्राक्षा के समान निचोड़ रहा था। समय के इस क्षण वह नहीं जानता था कि यही वह स्थान है, जहाँ उसके पालक पिता राघव ने आत्महत्या की थी।

थोड़ी देर हाथ-पैर चलाता वह वहाँ रुका और फिर वापस दशाश्वमेध घाट की ओर लौट चला। सुनसान गंगा में मात्र छप-छप की आवाज़ गूँज रही थी। वापस लौटते हुए उसे ध्यान आया कि कबीर भी काशी छोड़कर चले गए थे। अहंकार ने फिर स्वर उठाया-"ठीक ही तो है, मुक्ति के लिए किसी काशी की ज़रूरत नहीं।" परंतु वह नहीं जानता था कि कबीर तो काशी में रहते हुए ही काशी मरणान्मुक्ति को प्राप्त हो चले थे।

कबीर ने इस मुक्ति को पा संसार में यह घोष उठाया था कि मठों और देवालयों में जोगी, संन्यासी या पंडे भले गंगा में कितनी ही बार स्नान करें, यदि मन में मैल है तो मुक्ति क्या होगी? कोई बिरला कबीर ही तो काशी छोड़कर भी काशी मरणान्मुक्ति को सार्थक करता है। यों काशी छोड़ना कबीर का अहंकार नहीं, अपितु मुक्ति भाव था।

अब बाहर निकल वस्त्र पहन, पोटली उठाता महा भिक्षुओं की क़तार को पार करता दशाश्वमेध घाट की सीढ़ियाँ चढ़ने लगा। अब वह विश्वनाथ गली के भीतर मुड़ गया था। अचानक एक साँड़ अपने स्वामी बाबा विश्वनाथ की ज़मींदारी का अवलोकन करने, उसे छूता हुआ उससे आगे निकल गया। साँड़ के उदर की सिहरन से उसकी त्वचा कंपित हो गई। सँकरी-आड़ी-तिरछी गलियों में अभी महा आगे क़दम बढ़ा ही रहा था कि पार्श्व से होकर आगे निकले साँड़ से एक दूसरा साँड़ आ भिड़ा। दोनों के युद्ध से मार्ग अवरुद्ध हो गया था। दोनों ऐसे भिड़े थे जैसे काशी विश्वनाथ के पास कौन यह संदेश प्रथम ले

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

जाएगा कि क्रुद्ध महा यह घोषणा करने उनके दरबार की ओर पग बढ़ा रहा है कि वह काशीवास को त्याग रहा है।

विश्वनाथ मंदिर में मंगला आरती की तैयारी चल रही थी। कुछ पुजारी मिट्टी के घड़ों में गंगाजल भर-भर कर ला रहे थे कि एक पुजारी के हाथ से घड़ा छूट, धरा से टकरा टूट गया और जल सर्वत्र फैल गया। घड़े को फूटता देख कबीर का मुख महा की दृष्टि के समक्ष उभर आया और ध्यान आ गया कि क्षणभंगुर काया रूपी घट से भी प्राण इसी तरह बाहर निकल आते हैं, फिर मधुमक्खी सदृश द्रव्य रूपी शहद संचय कैसा?

अहंकार अब अपने चरम पर था और महा सोच रहा था कि कबीर यह सिद्ध कर चले कि काशीवास कुछ नहीं होता। मुक्ति के लिए तीर्थ की नहीं, अपितु आत्मा के परमात्मा से मिलन की आवश्यकता है। इसलिए तो फक्कड़ता में कबीर ने कहा था- ''भले ही नरक सी यातना झेलनी पड़े, काशी में रहकर मुक्ति स्वीकार करना मेरे लिए संभव नहीं। इस काशी को मैं यह यश नहीं दे सकता।''

अब महा विश्वनाथ मंदिर के शिखर की ओर देख, क्रोध में ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाने लगा-

''अब मुझे तेरी सत्ता स्वीकार नहीं। जीवन भर तेरी पूजा कर, तेरी चाकरी में आ शवों को जलाया, परंतु इसके विपरीत तूने मुझे क्या दिया? लोग तुझे मिथ्या ही भोलेनाथ पुकारते हैं। मुझे जन्म-जन्मांतर योनि चक्र से निकल यंत्रणा पा रोना स्वीकार है। भले ही अगले कई जन्म मैं पशु बन गर्भवास की यातना झेलता रहूँ। नहीं चाहिए मुझे यह तेरा काशीवास और नहीं चाहिए मुझे तेरी खोखली काशी मरणान्मुक्ति। अब इस कलंकित शरीर को ले भले ही मुझे कितनी ही पीड़ाएँ झेलनी पड़े, तेरे सामने नतमस्तकता अब मुझे स्वीकार नहीं।''

अब पलट महा कुछ क़दम चला और फिर विश्वनाथ मंदिर की ओर मुख पलटा वह फिर ज़ोर से चिल्लाया-

''अब भले लाख कष्ट उठाने पड़ें, तो भी तेरी इस धरा पर मैं अपने पग नहीं धरूँगा। इतना निश्चित जान ले कि अब अपनी अंतिम साँस तक इस धरा पर मैं कभी यह नहीं सुनूँगा-

'पर याद रख मैं तेरा गुरु नहीं।' ''

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

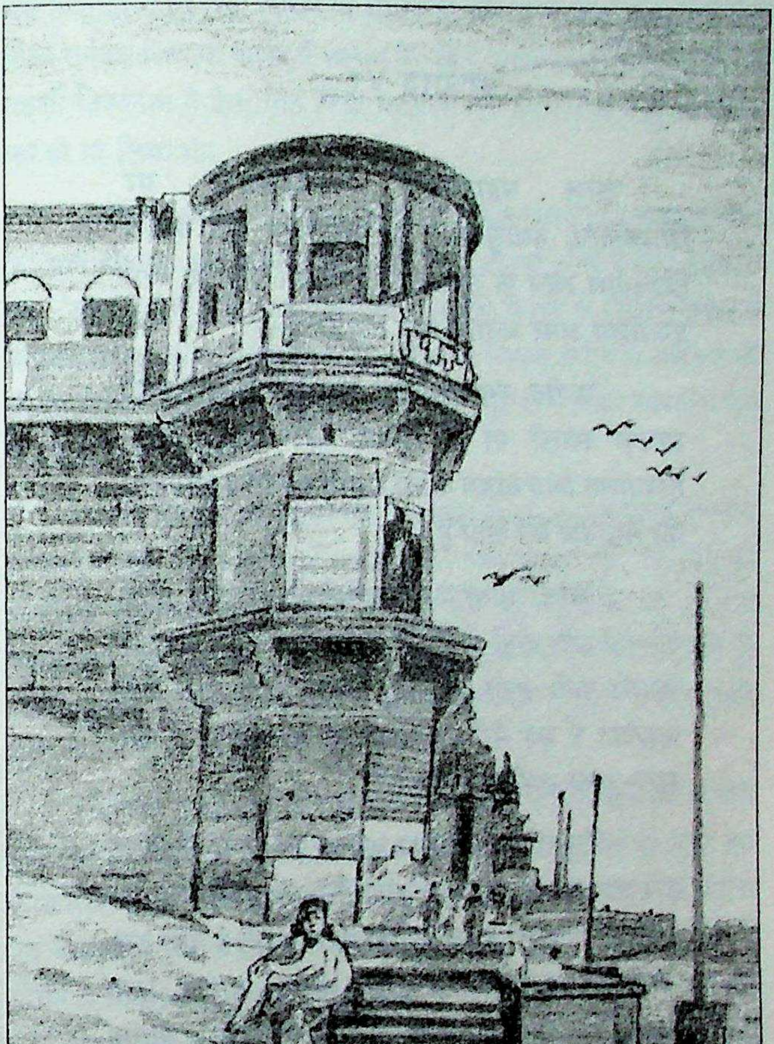

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अध्याय-४१

आज महाश्मशान मणिकर्णिका पर शिवज्ञानरत, देवासुरेश्वर, परमार्थगुरुर्दत्त सूरि काशी विश्वनाथ स्वयं के स्वरूपभूत ज्ञान की प्रभा से परम प्रकाशित अमर अनाहत नाद उठा रहे हैं-

"संगीत, व्याकरण एवं नृत्य की त्रिवेणी रूपी साधना स्थली पर मैं विराट, हिरण्यगर्भ, प्राज्ञ, विश्वात्मा शिव तांडव करता समस्त ईश्वरीय शक्तियों का समावेश कर लेता हूँ।"

"जीव, काया को देखता है किंतु काया, जीव को नहीं और दोनों से परे मैं उनको देखता हूँ, परंतु वे मुझको नहीं। ब्रह्मा से लेकर स्थावर तक सभी पशु कहलाते हैं एवं मेरी ही लीला के मायापाश में बँध सुख-दुःख रूपी चारा खाते हैं।"

"कुंडलिनी जागरण की प्रत्युष बेला में जीव इस ज्ञान को उपलब्ध हो जाता है कि इड़ा ही गंगा है, पिंगला ही यमुना है एवं सुषुम्ना ही सरस्वती है तथा इस प्रयाग पर स्नान जीव को पशु के पाश से काटता, मुझ पशुपति से एकाकार करने के मार्ग पर प्रशस्त करता है।"

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

दीर्घ काल तक काशी विश्वनाथ के शिवज्ञान, शिवभक्ति, शिवध्यान एवं शिवव्रत में हर घड़ी बिताने पर भी किसी अंध गुफा के अंध तमस् में उसे कैसा सर्पदंश दिया था काशी विश्वनाथ ने? बिना आहट प्राणों के घाती बन उस काशी विश्वनाथ ने ऐसा घात किया था मानो एक ही घात में संपूर्ण अस्तित्व को ही हर लिया था।

स्वयं का भीषण कलुषित अस्तित्व लिए महा काशी छोड़ चला था। पथ की धूल-धक्कड़ अब साँसों को अटकाने लगी थी एवं अंतर में प्रश्न उठते ही कि "कौन हूँ मैं?" महा को प्रतीत होता था जैसे नियति के विक्षिप्त श्वान ने काटकर उसकी काया में वह विष उँड़ेल दिया है, जिसके प्रभाव से अब वह भी विक्षिप्त होता, घोर यंत्रणा सहते जीवन की भूल-भुलैया में किसी लावारिस पशु की भाँति भटक रहा है।

प्रयाग की ओर पग बढ़ाते महा को प्रतीत हो रहा था जैसे किसी दानवीय प्रयोजन ने उसे अति लघु घेरे में ला खड़ा कर दिया था एवं कल तक स्वयं की काया के लघु देवालय में जो देव प्राणप्रतिष्ठित था, वह आज पशु का रूप धरता उस अंध गुहा की ओर पग बढ़ा रहा है जहाँ मात्र दानव डेरा डालते हैं। संतप्त दुर्भाग्य में अब उसकी काया स्वयं की छाया को देखकर भी काँप उठती थी।

अविरत दुःख भोग में कीलित बन अब उसने काशी विश्वनाथ के प्रति घृणा एवं तिरस्कार का एक विराट जग स्वयं के हृदय में स्थापित कर दिया था। कैसा घिनौना छल किया था काशी विश्वनाथ ने! जिससे प्राप्त पैशाचिक यातना एवं असहनीय संताप में अब उसके अश्रु भी सूख गए थे। किस पाप के दंड भोगने में यंह भयंकर दृश्य उसकी दृष्टि के समक्ष आ खड़ा था, जिसे महायत्न करने के पश्चात् भी परिवर्तित नहीं किया जा सकता था। नरक का राज्य भी इस कलुषता से अधिक उज्ज्वल होगा।

संसार की समस्त वेदनाओं को झेलते एवं स्वयं के हृदय की अग्निमय ज्वाला में महा प्रयाग आ कुंभ के मेले में ऐसे भटक रहा था जैसे कोई अँधियारा

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पाप-ग्रह अंतरिक्ष में भटकता-लटकता सा रहता है। जीवन का समरांगण प्रेत छायाओं से ढँकने लगा था एवं काया पग-पग पर मृत्यु देवता के पास आने की आहट से कंपित हो रही थी।

स्वयं से ही घोर उपेक्षित वह कुंभ के मेले के प्रति उमड़ते लोगों की श्रद्धा एवं उल्लास की भी उपेक्षा करता, मेले को महाश्मशान मणिकर्णिका का प्रतिरूप मान रहा था। नितांत मानवीय भावना के अभाव में परिस्थिति का दास बनता स्वयं को शव मान जब वह देखता था कि लाखों-लाख की जनमेदनी किसी विशेष मुहूर्त पर संगम में स्नान के लिए आपाधापी कर रही है, तो उसे प्रतीत होता था जैसे लक्ष-लक्ष शव एक साथ मणिकर्णिका महाश्मशान पर स्वयं को जलाने, हाहाकार मचा रहे हों। ऐसा प्रतीत होते ही कबीर का मुखमंडल दृष्टि के समक्ष घड़ी को घूम जाता था एवं स्मरण हो आता था कि इस मुर्दों के गाँव में, अमृत की आस में सारे मुर्दे संगम में स्नान के लिए व्याकुल हो रहे हैं। कबीर का स्मरण होते ही उसकी विक्षिप्तता तब अत्यधिक बढ़ जाती, जब वह लोगों को गुरु की तृष्णा एवं स्वयं के आत्मिक उत्थान की आकांक्षा में साधु-संतों के चरणों में नतमस्तक होते देखता। काल की इस निर्दयता में अब उसे 'गुरु' शब्द से भी घृणा हो गई थी।

नियति के रथ में जुतकर पशु की भाँति उसका मुखमंडल उस घड़ी क्रोध से ताम्रवर्णीय हो उठता था, जब उसकी दृष्टि के समक्ष प्रातः की घड़ी में शरीर पर भस्म रमाए समस्त नागा साधु युगपत् अपूर्व उत्तेजना के साथ एक अद्भुत विरति-निनाद करते संगम में स्नान के लिए कूद पड़ते थे एवं स्वयं के अखाड़े के प्रथम स्नान को लेकर वे रक्तपात से भी न चूकते थे। जब सर्वत्र जनसमूह इस छोर से उस छोर तक देववल्लभा गंगा के जय निर्घोष से दिग्मंडल को प्रकंपित कर उठता, तो उसे प्रतीत होता जैसे घड़ी भर में ही उसके कर्णपटल फट जाएँगे और वह मूर्च्छित हो जाएगा। काशी विश्वनाथ के साथ-साथ अब वह गंगा को भी धिक्कारने लगा था।

इतने दिवस मेले में बिताने पर भी घड़ी मात्र को वह स्नान के लिए संगम

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

में न उतरा था। अकिंचन, पथभ्रांत, अकर्मा वह तब अपनी विक्षिप्तता के चरम पर पहुँच जाता, जब उसे प्रतीत होता कि दृष्टि के समक्ष कैलास की संपूर्ण धवलिमा की मूर्तिमति गंगा की लहरें नहीं अपितु असंख्य प्रेतात्माएँ लहरों के सदृश उठती-गिरती बह रही हैं, जिनमें लोग मृत्यु का ग्रास बनने डुबकियाँ लगा रहे हैं।

धूल कण के समान स्वयं को आश्रयहीन मानता महा अति शोक-दग्ध हो तब पागल हो उठता था, जब उसके कर्णपटल पर दिगूमंडल को गुंजायमान करने वाले शास्त्रोक्त विधि से चल रहे यज्ञों के मंत्रोच्चारण एवं घंटनाद गूँज उठते। स्वयं को वह तब किसी पैशाचिक जाल में फँसा पाता जब उसकी दृष्टि अंगारों पर नग्न पग धरते किसी साधु पर पड़ती या स्वयं की काया को धरा में गाड़ मात्र सिर बाहर किए किसी साधु पर। जब काशी विश्वनाथ ही मिथ्या हैं, तब कैसी उपासना या किसका ध्यान?

आत्म-यंत्रणा के चरम पर आज भोर वह उस घड़ी अजगर सा फूत्कार उठा, जब उसके कर का स्पर्श पोटली में रखी शंकर की पिंडी से हुआ। दिनांत कालीन प्रचंड आँधी से छिन्न-भिन्न मेघों के सदृश छिन्न-भिन्न होता, वह उस पिंडी को कर में लिए नग्नावस्था में पशु सा गुर्राता द्रुत गति से संगम की ओर दौड़ पड़ा। किसी भेड़िये सी क्रूर दृष्टि लिए वह शंकर की पिंडी को घूर रहा था। उसका पैशाचिक अट्टहास एवं अनर्गल वाणी कर्णपटल पर गूँजते ही भीड़ ने उसे महात्मा मान मार्ग दे दिया एवं वह नदी में उतरता संगम के मध्य आ पहुँचा था। अब अत्यंत ही घृणित भाव से उसने उस शंकर की पिंडी को किसी पाषाण के खंड के सदृश जल में दे मारा था।

शंकर की पिंडी जल में जा समाई थी। उसके जल में समाते ही जैसे उसकी काया पर किसी ने कर से वज्रघात किया एवं वह भी पिंडी के सदृश जल में गिरता समा गया था। डुबकी लेते ही जैसे वह हड़बड़ाता उठ खड़ा हुआ, दृष्टि के समक्ष कैसा आश्चर्यजनक परिवर्तन आ खड़ा था! अंतर की समस्त सुशक्तियों ने कर के घात की घड़ी ही जन्म ले लिया था। आकाश से मानो

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

ईश्वरीय गान उठाती ऋचाएँ उतरतीं उसके कर्णपटल पर गुंजायमान हो रही थीं। हर्ष की दीर्घ लहर का स्पर्श पा, जैसे अंतरात्मा किसी स्वर्गिक सुख में लीन हो गई थी। घड़ी भर में ही जीवन की समस्त पैशाचिक यातनाएँ लुप्त हो गई थीं एवं हृदय में जन्म-जन्मांतर की शांति आ समाई थी। कैसा स्वर्गिक स्पर्श था यह!

श्रद्धा एवं विस्मय से अभिभूत महा अब अपनी दृष्टि के समक्ष खड़े उस दोहरी काया वाले नंग-धड़ंग दिव्य महात्मा के दर्शन कर रहा था। घड़ी भर के लिए माँ की मृत्यु की रात्रि का स्मरण हो आया, जब घनघोर वृष्टि में इन्हीं के सदृश एक तेजोमय महात्मा ने उसका पथप्रदर्शन किया था। कहीं ये वही तो नहीं? सर्वत्र एक स्वर्गिक सुगंध व्याप्त हो गई थी एवं महा सम्मोहित होने लगा था कि उस लंबी आकृति एवं दोहरी काया वाले सर्वत्र ज्योति उठाते नग्न महात्मा के क्रुद्ध स्वर महा के कर्णपटल पर गूँजने लगे-

''पशु को भान नहीं होता कि इस घड़ी इस संगम पर अमृत की वर्षा होती है। जन्म-जन्मांतर की शिवसाधना के पश्चात् तुझ पशु पर अनुग्रह कर, आज उस शिव ने तुझे इस त्रिवेणी के स्नान की घड़ी को उपलब्ध करवाया एवं तू पशु, उन्हीं पर क्रोधित होता उन्हें पाषाण के खंड की तरह तिरस्कृत कर इस जल में डुबो बैठा। पशु-जीव, काया को देखता है परंतु काया उस पशु-जीव को नहीं। दोनों से परे शिव ही दोनों को देखते हैं। ब्रह्मा से लेकर स्थावर तक, सभी पशु कहलाते हैं एवं शिवलीला के मायापाश में बँधे ही सुख-दुःख रूपी चारा खाते हैं। तू तो उस पशुपति को डुबो बैठा जिसकी अनुगृहीत दृष्टि सदैव तुझ पर है। अब निकाल, पुनः उन्हें इस जल से निकाल अन्यथा पशु की भाँति ही भटकेगा। मैं उसी के लिए आया हूँ कि तुझे पशुपति की ओर अग्रसर कर सकूँ। अतः तुझे उस पिंडी को पुनः निकालना ही होगा। यदि ऐसा नहीं होता है, तो मैं भी तेरी सहायता में असमर्थ हूँ, भले मैं यह कहूँ-

'पर याद रख मैं ही तेरा गुरु हूँ' ''

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

महात्मा का उन्नत ललाट, दमकता मुखमंडल एवं नेत्रों से झरता प्रकाश महा को मंत्रमुग्ध कर रहे थे। महात्मा की ओजमयी वाणी सुन उसने शंकर की पिंडी को पुनः प्राप्त करने के लिए जल में डुबकी लगाई, परंतु नदी के तल में कर को टटोलने के पश्चात् भी उसे कुछ प्राप्त न हुआ। तब महात्मा ने जल में स्वयं का कर डाल, माँ से प्राप्त शंकर की पिंडी के सदृश ही दो पिंडियाँ निकालकर महा के हाथ में धर दीं। वे पुनः क्रोधमय स्वर उठाते कह उठे-

''जो तेरी है वह रख ले एवं दूसरी पिंडी को विसर्जित कर दे।''

पिंडियाँ पूर्णरूपेण समान थीं, सो उन्हें आश्चर्य से तकता महा यह ज्ञात न कर पाया कि उनमें से उसकी पिंडी कौनसी है? अभी वह विचारमग्न ही था कि महात्मा अत्यंत क्रोधित स्वर में बोले-

''अरे पशु-जीव! जब तू स्वयं की पिंडी को नहीं पहचान सकता, तो उस पर तेरा स्वामित्व कैसा? स्वामी तो मात्र पशुपति हैं एवं इसी पिंडी की तरह तेरे इस कायापिंड पर भी तेरा स्वामित्व नहीं। फिर क्यों उस पर अपना स्वामित्व जताता, उस पर लगे प्रश्नचिह्न को लेकर पति को छोड़ पशुत्व की ओर अत्यधिक दीर्घ डग भर रहा है?''

महा अवाक् स्तब्ध खड़ा था, जैसे हृदय में संपूर्ण ब्रह्मांड का महाशून्य आ समाया हो। अब यशोदा की पिंडी को महा के हाथों में यथावत् रखते, दूसरी पिंडी को अपने करों में ले महात्मा ने अत्यधिक श्रद्धा के साथ उसे संगम में विसर्जित कर दिया।

महात्मा का फैला उदर मानों संपूर्ण धरा को अभिलक्षित कर रहा था। नेत्रों की चमक भगवत्-संकल्प की अग्नि को दर्शा रही थी। सिर पर छोटे श्वेत केश एवं मुखमंडल पर फैली छोटी श्वेत दाढ़ी, व्योम को इंगित कर रहे थे। महात्मा का श्वासोच्छ्वास, प्रणव का उच्चारण करता संपूर्ण ब्रह्मांड की वायु को अभिलक्षित कर रहा था एवं दयार्द्र नेत्रों की दमक के पीछे की नमी संपूर्ण ब्रह्मांड के जल को प्रतिबिंबित करती, आत्मा से परमात्मा के एकाकार के

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

शक्ति संधान को दर्शा रही थी। गले में नाभि तक फैली रुद्राक्ष की माला परम उज्ज्वलता लिए ब्रह्मांड में फैले समस्त नक्षत्रों को प्रतिबिंबित कर रही थी।

अभी महा सम्मोहन से बाहर आ पाता, उससे पूर्व महात्मा पुनः बोल उठे-

''कुंडलिनी जागरण की प्रत्युष बेला में जीव इस ज्ञान को उपलब्ध हो जाता है कि इड़ा ही गंगा है, पिंगला ही यमुना है एवं सुषुम्ना ही सरस्वती। इस प्रयाग पर स्नान जीव को पशु के पाश से काटता, पशुपति से एकाकार करने के मार्ग पर प्रशस्त करता है। अभी वह स्नान तुझसे दूर है इसलिए इस घड़ी इसी त्रिवेणी में डुबकी लगा।''

महात्मा का दिव्य शरीर प्रकाश के वलय उठा रहा था एवं भाव-विभोर होकर, स्वयं के संपूर्ण अस्तित्व से पुनः आलिंगन कर महा ने संगम में डुबकी लगा दी।

जैसे ही वह उठ खड़ा हुआ, दृष्टि के समक्ष सर्वत्र फैली भीड़ के अतिरिक्त कुछ नहीं था, अब वे महात्मा दृष्टि से ओझल हो गए थे। आकाश में अब भी नक्षत्र चमचमा रहे थे। सूर्योदय में कुछ घड़ियाँ शेष थीं परंतु कोई शक्ति महा के हृदय को स्पंदित कर गई थी एवं हृदय में स्वयं के प्रति आस्था का दीपक जल उठा था। काल के संसार में क्षण रूपी आशा का यह दीपक पुनः अनंत स्वप्नों को प्रकाशित कर गया था।

असीम देदीप्यमान महात्मा के स्मरण में जैसे क्षण को पुनः कोई द्वंद्व उतर आया था। हृदय का कोई कोना इन शब्दों को गुंजारित कर रहा था-

''पर याद रख मैं ही तेरा गुरु हूँ'', परंतु स्मृति पर फैले कालरचित संस्कारों की शिला पर अब तक अंकित शब्दों को उठाता मस्तिष्क, कर्णपटल पर गुंजायमान कर रहा था-

'पर याद रख मैं तेरा गुरु नहीं।'

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

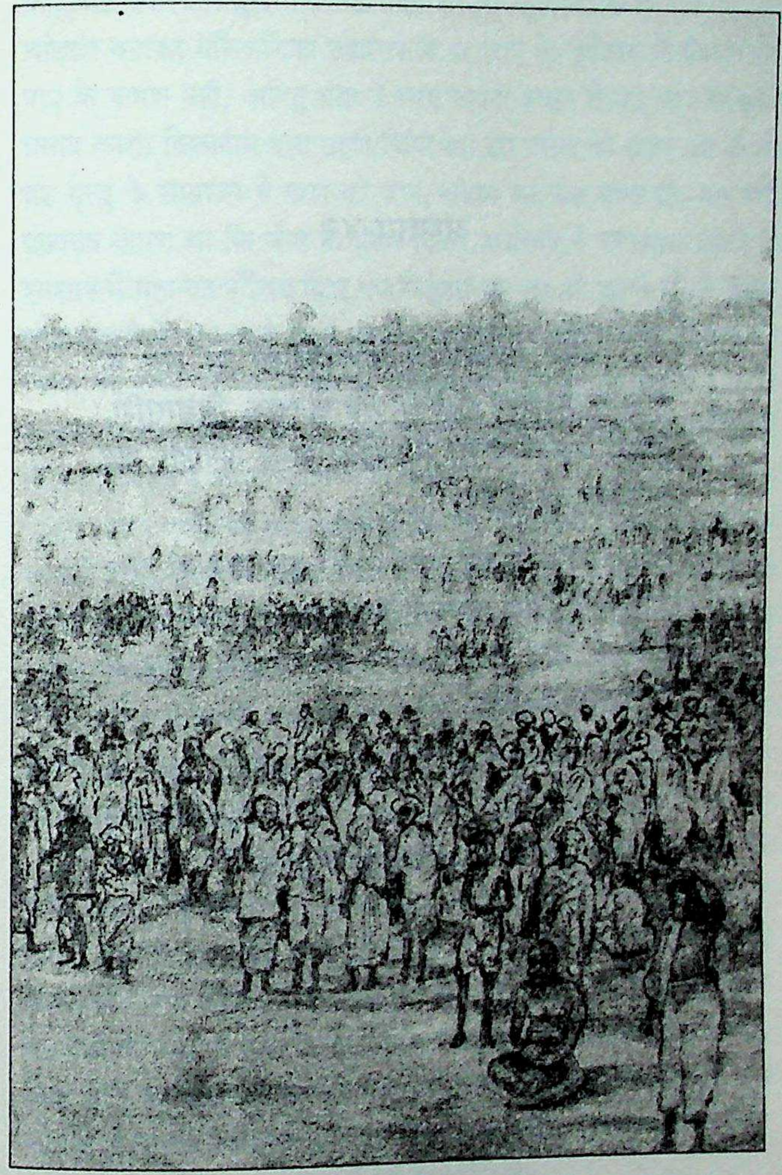

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अध्याय-४२

आज महाश्मशान मणिकर्णिका पर शव के कान में तारकमंत्र फूँककर अब कालहा, विद्याराशि, साक्षी अकर्ता काशी विश्वनाथ अमर अनाहत नाद निनादित कर रहे हैं-

"क्रिया, तप, जप, ध्यान एवं ज्ञान ही श्रेष्ठ साधनों से सिद्ध परमधर्म हैं, जिनका अनुष्ठान सिद्ध होते ही जीव साक्षात् मोक्ष को पा मुझ शिव से एकाकार करता है।"

"युग-युग में जन्मे शिष्यों को मैं शिव ही साक्षात् योगाचार्य का रूप धर, 'गुरु' बन इस परमधर्म के अनुष्ठान के मार्ग पर प्रशस्त करता हूँ।"

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

यह काशी विश्वनाथ की ही लीला थी कि जन्म-जन्मांतर से अंतराग्नि की प्रचंड ज्वाला में झुलसी देह की मिट्टी को और झुलसाने के लिए वे महा को चांडाल बनाकर मणिकर्णिका महाश्मशान पर लाए थे। पूर्वजन्म के किसी घोर पाप के कारण नहीं, अपितु महा ने स्वयं अपनी इच्छा से यह चांडाल रूपी प्रसाद काशी विश्वनाथ द्वारा ग्रहण किया था। इस प्रसाद को ग्रहण कर ही तो वह मृत्यु के साम्राज्य में मरण को जान, जीवन का पाठ सीख रहा था। यही एकमात्र कारण था कि जन्म के प्रथम दिवस अर्द्धरात्रि में फाफामऊ क़स्बे के श्मशान में महा का परिचय जिस गंध से हुआ था, वह थी जलते मुर्दे से उठती गंध। अपनी देह को मानो उसने स्वयं ही महाश्मशान मणिकर्णिका को समर्पित किया था। शवों को जलाने की इस शिवसाधना के कारण ही नियति ने उसके ललाट पर वह लेख लिखा था, जिससे महा का परिचय जन्म के प्रथम दिवस ही शव, चिताग्नि और श्मशान से हो गया था।

आप भला यह सोच सकते हैं कि फिर क्या कबीर, महा के स्वप्न या भाव में मात्र इसलिए विचर रहे थे कि वे महा को समजात समझते थे? यदि ऐसा समझा जाए तो यह न केवल कबीर और महा के प्रति अन्याय होगा अपितु पाठक, परमात्मा के प्रति भी अन्याय करेगा क्योंकि मात्र परमात्मा के मार्गदर्शन से ही मनुष्य जीवन के सर्वोच्च पद 'मोक्ष' पर विराजित हो, अमर का गान उठाता है। काशी विश्वनाथ तो महा को इसी सर्वोच्च पद पर विराजित कर सुशोभित करना चाहते थे।

परमात्मा मानव की समस्त अपूर्णताओं से युक्त मानवीय स्वभाव को स्वीकार कर, स्वयं उसे पूर्णता के मार्ग पर प्रशस्त करते हैं। जनम-मरण के वर्तुल के उस पार ही वह पूर्णता बसती है। आत्मबोध की दहलीज़ पर खड़े महा को काशी विश्वनाथ स्वयं ही इस वर्तुल का पाठ पढ़ा पूर्णता प्रदान करना चाहते थे। जन्म के साथ ही मरण का पाठ तो महा प्रथम दिवस से ही सीख रहा था, अतः मृत्यु का पाठ महा के लिए नया नहीं था। परंतु जीवन का ज्ञान तो महा को वही दे सकता है जो स्वयं जी गया था, यही वास्तविक कारण था कि कबीर बार-बार महा के स्वप्न या भाव में आ खड़े होते थे।

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कबीर ने स्वयं की आत्मा का ताना परमात्मा के बाने के साथ बुनकर योग का सर्वोच्च शिखर पा लिया था, जहाँ वे परमात्मा का अंशावतार धारण करते अमर के गान को गुंजारित कर रहे थे। परंतु महा को सर्वभूतात्मक के पद पर सुशोभित होने के लिए बहुत कुछ जानना-सीखना था। जन्म और मरण का आत्मसात् ही उस पद की योग्यता के लिए प्रथम आवश्यकता थी।

गुरु दीक्षा दें, उससे पूर्व गुरु पाने की तृष्णा से यदि जीवन वंचित रह जाए तो जीवन ही क्या? अनंत को साधने में यह तृष्णा प्रथम चरण है। गुरु के प्रेम में भाव-विभोर हो अश्रु बहाना ही तो परमात्मा के द्वार की प्रथम सीढ़ी है। परंतु यदि गुरु सरलता से उपलब्ध हो जाएँ तो गुरु रूपी परमात्मा का वास्तविक आकलन शिष्य नहीं कर पाता।

गुरु क्या होता है? उनकी तृष्णा में अंतरात्मा किस तरह व्याकुल हो उठती है? इन प्रश्नों के उत्तर महा के उस पागलपन में ही छुपे थे और इस पागलपन को कबीर ने और किसी हद तक तुलसीदासजी ने भी महा के समक्ष ला खड़ा किया था। यही कारण था कि अपने इस पागलपन के चरम पर प्रयाग में गुरु से सुने शब्दों - ''पर याद रख मैं ही तेरा गुरु हूँ'', को भी महा अपना भ्रम मान बैठा था।

दीक्षा तो आध्यात्मिक विवाह है, जहाँ परमात्मा स्वयं पति बन पशु को रूपांतरित करता, पशुपति बना देता है। आत्मतत्त्व का परोक्ष ज्ञान तो मात्र गुरु ही दे सकते हैं एवं गर्भवास के मूल कारण को भी मात्र गुरु ही काट सकते हैं। यह तभी संभव है जब युग-युग में जन्मे महा जैसे शिष्य को काशी विश्वनाथ स्वयं साक्षात् योगाचार्य का रूप धर, 'गुरु' बन उसे आत्मबोध की दहलीज़ पर ला खड़ा करें। फिर स्वयं ही कृपा कर शिष्य को साधना के पथ पर प्रशस्त करें और अमृत के उस फल का आस्वादन कराएँ, जिसका स्वाद पाते ही जीव स्वयं शिव से एकाकार हो जाता है। परंतु यह स्वयं परमात्मा की कृपा के बिना संभव नहीं है।

जला हुआ बीज ज़मीन में गाड़ने से अंकुरित नहीं होता। अत: उस बीज को रूपांतरित कर उचित भूमि में गाड़ना, परमात्मा रूपी सद्गुरु के अतिरिक्त

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

और कोई नहीं कर सकता।

इंद्रियों की इस छाया में मानसिक कल्पनाओं एवं ज्ञान की अनिश्चितता में जब तक पशु रूपी शिष्य के भीतर सद्गुरु पाने की आकांक्षा नहीं होती, तब तक कुछ भी संभव नहीं। ललाट पर सौभाग्य का तिलक ही अंतराग्नि की प्रचंड ज्वाला में झुलसी देह को गुरु रूपी परम गंगा को पाने की उत्कंठा प्रदान करता है। बिना उत्कंठा के प्रकाश कैसा? वास्तविक काशी विश्वनाथ को पाना इतना आसान भी नहीं और सस्ता भी नहीं। जीवन को क्षण-प्रतिक्षण उत्कंठा की चिताग्नि में झुलसा कर ही महाश्मशान काशी को पाया जा सकता है, जहाँ परम शिव नित्य रमण करते हैं।

इसी उत्कंठा को जगाने के लिए मृत्यु के साम्राज्य में कबीर, महा के स्वप्न में नित्य आ जीवन का ढोल बजाते थे। मृत्यु के साम्राज्य में जीवन का ढोल बजाकर नृत्य करने वाला ही जनम-मरण के वर्तुल को समझ सकता है। इसी नृत्य में स्वयं के हृदय में स्थित अंतरात्मा मार्गदर्शक बन काल के जगत् से कालातीत के द्वार तक लाती है।

जो शाश्वत ज्ञान परम शिव में नित्य विराजित है, उसका एक कण पाने को भी काल प्रवाह के गहन ज्वार-भाटों के थपेड़े खाता महा, गुरु पाने की तृष्णा में व्याकुल हो पागलों की तरह यहाँ-वहाँ भटक रहा था। और इस कण को पाने की उत्कंठा तो कबीर ही जगा गए थे। प्राण-सत्य की ज्योति में कबीर और तुलसी क्षण को भावपटल खोलते एवं दूसरे ही क्षण पुनः बंद कर देते थे, ताकि महा एक चिर-निरंतर व्याकुलता से भर उठे क्योंकि वह व्याकुलता एक कौड़ी की नहीं, जो उठकर लुप्त हो जाए।

पात्रता पाने के लिए पात्र को कितना तपना पड़ता है, यह महा के अतिरिक्त और कौन जानता था। चिता को सजा शव जलाने वाला महा अब कबीर की सजाई चिता पर स्वयं को प्रतिदिन, प्रतिपल जलता महसूस कर रहा था। और उस चिता की अग्नि ज़ोर-ज़ोर से तब भभक उठती थी जब कबीर उसमें इन शब्द रूपी घृत को उँड़ेलते-

'पर याद रख मैं तेरा गुरु नहीं।'

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अध्याय-४३

आज महाश्मशान मणिकर्णिका पर नग्नव्रतधर, देवासुरमहामित्र, विनीतात्मा काशी विश्वनाथ परम समाधि को उपलब्ध स्वरूपभूत अमृत का आस्वादन करते अमर अनाहत नाद निनादित कर रहे हैं-

''मैं शिव ही जड़ प्रकृति एवं चेतन जीव दोनों का नियंता परमेश्वर हूँ। प्रकृति ही पाश है, जीव पशु एवं मैं शिव ही पशुपति हूँ।''

''प्रणव धनुष, आत्मा बाण एवं ब्रह्म लक्ष्य हैं। जब जीव-पशु ब्रह्म को लक्ष्य मान, प्रणव रूपी धनुष से आत्मा को बाण बना लक्ष्य का संधान करता है, तभी वह मुझ पशुपति से एकरूप हो परमानंद में विचरता है।''

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कैसा अद्भुत साक्षात्कार था महा के लिए उन महात्मा का! एक ही स्पर्श में जैंसे मृत्यु ने अमरत्व का आस्वादन कर लिया था। आत्म-सम्मोहन की उस घड़ी में आत्म-छलावा मानो पूर्णरूपेण भंग हो गया था। नियति अब विक्षिप्त श्वान नहीं अपितु देवत्व का वरदान हो चली थी। हृदय में समस्त सद्गुणों ने एक साथ नींव रख दी थी एवं प्रेम की गुणवत्ता में हृदय पुन: शिवज्ञान, शिवभक्ति, शिवध्यान एवं शिवव्रत रूपी शिवपूजा में लीन हो चला था। जिसमें स्नान करने का अवसर दुर्लभ हो, ऐसी दुर्विगाह्या गंगा से क्षमा-याचना करता महा नित्य उसमें कई बार डुबकियाँ लगाने लगा था।

अब उसे ज्ञात हो रहा था कि कुंभ का मेला संपूर्ण मानव जगत् को आध्यात्मिक प्राणवायु देता उस शक्ति का संचार करता है, जो पशु को पशुपति की ओर ले जाती है। स्वयं में असीम रूप से समृद्ध होते मौन में एक एकाग्रता स्थापित होने लगी थी।

प्रेम के प्रस्फुटन में वह पुन: काशी लौटना चाहता था परंतु समस्त विचारों से रिक्त हुआ मन उसके पग किस ओर बढ़ा रहा था यह उसे भी ज्ञात न था। अब इस मुक्त मन में यदि उसकी दृष्टि दाहिने पग अंगुष्ठ के दाग़ पर भी चली जाती, तो मात्र निज अस्तित्व की संपूर्णता ही दृष्टिगोचर होती थी, जैसे संपूर्ण अतीत अब तिरोहित हो चला था। न कोई कलंक, न ही कोई कालिमा, न ही स्वयं के प्रति तिरस्कार। सर्वत्र एकमात्र सौंदर्य, संपूर्ण सनातन सौंदर्य। एक पूर्णत: भिन्न प्रस्फुटन ने संपूर्ण सामाजिक नैतिकता एवं मूल्यों का निषेध कर, जैसे अंतर को पूर्ण स्वतंत्रता दे दी थी। अब जैसे स्वयं के अस्तित्व का अर्थ भी लुप्त हो चला था।

प्रयाग से पैदल इस यात्रा में आज कई मास बीत चले थे एवं वह दक्षिण में उस धरा पर पग बढ़ा रहा था, जहाँ सर्वत्र अद्भुत एवं अनोखा प्रकाश घास के तृण-तृण पर बिखर रहा था। कौनसा आकर्षण उसे यहाँ खींच लाया था? यह मस्तिष्क से परे की बात थी। एक अनंत शक्ति स्वयं में उसे लपेटते हुए यहाँ तक खींच कर लाई थी। अब उसे स्वयं की उस विक्षिप्तता पर मात्र एक

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मुस्कराहट के अतिरिक्त कुछ भी प्राप्त नहीं होता था, जिस विक्षिप्तता में उसने काशी को छोड़ा था।

यदा-कदा इस्माइल चाचा द्वारा वर्णित उस कथा का ध्यान आ जाता, जिसमें काशी विश्वनाथ को भी काशी से विलग होना पड़ा था। घड़ी भर को वह भी पुन: काशी लौटने को व्याकुल हो उठता, तो उसी घड़ी उन दिव्य महात्मा का प्रशांत ललाट एवं ज्योतिर्मय नेत्र उसकी दृष्टि के समक्ष घूम जाते तथा मन पुन: रिक्त हो जाता। महात्मा के प्रति कृतज्ञता से भरा वह अरण्य, नदियों एवं मैदानों को पार करता, आज उस अनजाने प्रदेश में आ पहुँचा था जहाँ की भाषा का भी ज्ञान उसे नहीं था।

भूख से व्याकुल वह आज एक विशाल बरगद के वृक्ष की छाया में विश्राम कर रहा था। तभी वहाँ एक किसान आ पहुँचा। किसान उसकी तरफ़ अत्यंत ही स्निग्ध भाव से देख रहा था। जीवन को श्रम के माध्यम से प्रेम करने वाला यह सरल किसान, महा की दृष्टि में उसकी क्षुधा को पढ़ गया था। अत: स्वयं की पोटली खोल उसने महा को अत्यंत प्रेम से भोज्य पदार्थ अर्पित किया। एक-दूसरे की भाषा का ज्ञान न होने पर भी दोनों स्वयं की दृष्टि से प्रेम के गीत की मिठास उठाते, संवादी हो रहे थे।

भोजन करने से पूर्व महा ने स्वयं की सत्ता को पूर्णरूपेण एक कर, श्रद्धा की आत्यंतिक ऊँचाई पर शंकर की पिंडी के समक्ष नैवेद्य अर्पित किया था। हृदय में जैसे भाव की कोई कली खिली हो एवं मुक्ति में स्वयं का ज्ञान न हो, इसी प्रक्रिया के मध्य महा के मुख से मात्र एक शब्द निकला-

''होलिया''

शब्द को सुन उस किसान ने अपने नेत्रों से पथ को चिह्नित कर मार्ग दर्शा दिया था। अति एकांत पथ पर स्वयं को जैसे वायु को समर्पित करता महा आगे पग बढ़ाने लगा था। आदित्य के डूबने के पश्चात् भी रात्रि की निस्तब्धता एवं ज्योतित तारामंडल के प्रकाश में महा ऐसे पग बढ़ा रहा था, जैसे उसके संपूर्ण अस्तित्व का कोई केंद्र घनीभूत होता उसे स्वयं की ओर खींच रहा हो। धरा का

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कण-कण जैसे उसके हृदय प्रदेश को अपनी कृपा से भर रहा था।

किसी दिव्य प्राण के आवाहन में उसने स्वयं को अब एक श्मशान के मध्य खड़ा पाया। ध्यान मग्नता के भीतर उसकी दृष्टि सामने चिताभस्म पर चली गई। भस्म प्रेम के सशक्त आकर्षण में उसने स्वयं की काया से वस्त्र उतार फेंके एवं संपूर्ण काया पर आनंद के अतिरेक में उसने भस्म को मल लिया। नयनों में एक चमक पुन: काशी विश्वनाथ एवं महाश्मशान मणिकर्णिका का स्मरण करा रही थी, जैसे संपूर्ण श्मशान की इस भीषण नीरवता में 'हर हर महादेव' का घोष उच्चारित हो रहा हो। उसके कर्णपटल पर यह घोष गूँजते ही नेत्र स्वत: ही बंद हो चले थे एवं पद्मासन में स्थित हो महा ध्यानस्थ हो चला था।

काल के इस खंड में मानो कोई सत्य किसी रहस्य का परदा उघाड़ने की चेष्टा कर रहा था एवं मन की अनंत गहराइयों में उसे उतारते महा ध्यान में लीन हो गया था। सत्य अब उसकी एकांत आत्मा से कभी विमुख नहीं होगा, यह भाव सधते ही उसका मुखमंडल एक अपूर्व दिव्यता से भर उठा था।

अर्द्धरात्रि जब उसके नेत्र खुले तो दृष्टि के समक्ष कुछ फल एवं चावल रखे हुए थे। कोई ग्रामवासी उसे इस अवस्था में देख श्रद्धापूर्वक यह भोज्य सामग्री वहाँ छोड़ गया था। उसे ग्रहण कर एक असीम तृप्ति को उपलब्ध महा की दृष्टि श्मशान के निकट ही जीर्ण-शीर्ण होती खँडहर नुमा कोठरी पर चली गई थी। आकाश में मेघों ने अपना मुँह खोल दिया था एवं वृष्टि प्रारंभ हो गई थी, सो महा वहाँ से उठ इस कोठरी के द्वार पर आ पहुँचा था। द्वार खोलते ही मकड़ी के जालों ने उसका स्वागत किया था, सो एक लकड़ी से उन्हें साफ़ कर महा निद्रामग्न हो चला था।

अब नित्य ही चिताभस्म को अपने अंगों पर मल ध्यान में बैठ जाना ही महा का एकमात्र कर्म रह गया था। मौन रखने से गाँव में वह 'मौनी बाबा' के नाम से प्रसिद्ध हो गया था। कुछ श्रद्धालुओं ने कोठरी की सफ़ाई कर लालटेन का प्रबंध कर दिया था एवं गाँव वाले नित्य ही कुछ खाद्य सामग्री उसके लिए छोड़ जाते थे।

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

प्राण-शक्ति ने अब नकार को महा के जीवन से पूर्ण रूप से हर लिया था। हृदय की प्रत्येक धड़कन अब गुरु की खोज की पुकार से धड़क रही थी। वह यहाँ क्यों दिवस बिता रहा था? यह रहस्य अब भी उससे परे था। साधना से जागते प्राण कोई विराट् संदेश लाने वाले हैं, इसका पूर्वाभास महा को हो चला था।

आज मेघ जैसे विकराल तांडव पर उतर आए थे। श्रावण मास की वारिधारा रुकने का नाम नहीं ले रही थी। सभी दिशाओं से उमड़ आने वाली बिजली की तेज़ चमक तांडव का रूप ले रही थी। श्मशान के समक्ष धरा नीची होने के कारण संपूर्ण जलराशि ने किसी ताल का रूप धारण कर लिया था, जिसमें गाँव के नंग-धड़ंग बच्चे शोर मचाते क्रीड़ा कर रहे थे। वायु में नमी होने के कारण शीत का प्रभाव बढ़ गया था।

मध्याह्न की घड़ी महा भोजन ग्रहण कर, कोठरी में नेत्र बंद कर वज्रासन में बैठा ही था कि अचानक किसी पक्षी के फड़फड़ाते पंखों की ध्वनि से उसके नेत्र खुल गए। कोठरी के दरीचे एवं कपाट बंद थे एवं पक्षी झरोखे से भीतर प्रविष्ट हुआ था। भीगे हुए पंखों के कारण फड़फड़ाहट के साथ जलकण इधर-उधर बिखर रहे थे।

महा को प्रतीत हो रहा था जैसे कोठरी अब इस पक्षी के लिए कारागार सिद्ध हो रही है एवं भयभीत वह वहाँ से मुक्त होने की चेष्टा में स्वयं के पंखों को फड़फड़ाता कभी दीवारों से टकरा रहा था, तो कभी दरीचों एवं कपाट से। जब कभी वह लालटेन के समक्ष आता तो उसकी एक बड़ी छाया दीवार पर दृष्टिगोचर होती थी। महा को यह आश्चर्य हो रहा था कि जिस झरोखे से प्रविष्ट हो पक्षी कोठरी के मध्य आ पहुँचा था, उसे छोड़कर वह सभी और मार्गों से निकलने की चेष्टा कर रहा था, जबकि सारे अन्य मार्ग रुद्ध थे। शायद पक्षी यही सोचकर उस झरोखे से बाहर निकलना नहीं चाहता था कि इसी मार्ग ने तो उसे इस कारागार में बंद किया था।

अचानक एक विचार कौंधते ही महा के मुख पर स्मित फैल गया एवं

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

उसने खड़े होकर कोठरी का द्वार खोल दिया, जहाँ से फड़फड़ाता हुआ पक्षी कोठरी रूपी कारागार से बाहर निकल मुक्त हो गया था।

वृष्टि अब भी सतत हो रही थी। रात्रि का सन्नाटा सर्वत्र फैला हुआ था। स्वयं के दाहिने पग अंगुष्ठ पर पड़े दाग़ पर दृष्टि गड़ाए महा सोच रहा था कि वह भी व्यर्थ ही मुक्ति की आस में उस पक्षी के सदृश संसार रूपी माया की दीवारों एवं दरीचों से टकरा रहा है एवं उसी मूर्खता में भटक रहा है जिस मूर्खता में पक्षी कोठरी में भटक रहा था। श्मशान ही वह झरोखा है जिस मार्ग से काशी विश्वनाथ उसे इस संसार में लाए थे एवं उन्होंने ही अनुग्रह कर उसे उसकी मुक्ति के मार्ग महाश्मशान मणिकर्णिका पर ला खड़ा किया था, परंतु उसने स्वयं के अहंकार में काशी विश्वनाथ को धिक्कार कर स्वयं की मुक्ति का द्वार ही छोड़ दिया था। उसके घोर तिरस्कार के पश्चात् भी उन्होंने अपनी अनुकंपा उस पर कम न की एवं इसलिए आज पुनः वह इस श्मशान में ही इस मुक्ति ज्ञान को अर्जित कर रहा था।

अभी वह कृतार्थ भाव से भर काशी विश्वनाथ को मानसिक वंदन करता, उससे पूर्व ही माया की नागिन ने फिर उसे एक दंश दे दिया। वह यह सोचने पर बाध्य हो गया कि जब मैं उस पक्षी के लिए मुक्ति का नया द्वार खोल सकता हूँ, तो क्या मेरे लिए भी मेरी मुक्ति का द्वार खोलने वाला कोई और भी इस जगत् में है, जो काशी विश्वनाथ एवं महाश्मशान मणिकर्णिका से भिन्न है? दृष्टि के समक्ष पुनः उन नंग-धड़ंग दिव्य तेजोमय महात्मा का रूप घूम गया एवं घड़ी को महा को फिर व्याकुलता ने घेर लिया। मस्तिष्क में पुनः प्रश्न अपना फन फैलाने लगा, क्या वे ही मेरे गुरु थे?

इतने दिवसों का व्यापक दर्शन मानो इस प्रश्न से ही संकुचित हो उठा था, परंतु प्रश्न निर्दोष था जिससे काशी विश्वनाथ के प्रति श्रद्धा घड़ी को भी भंग न हुई थी। जो पवित्र है, पावन है एवं सत्य भी, वह दृष्टि के समक्ष यथावत् था। ध्यान के क्षण अब प्रणव स्वतः गुंजायमान हो उठता एवं 'ॐ'कार के गूँजते ही भान होने लगता कि परमेश्वर ही सत्य है, सत्य ही शिव है एवं शिव ही सुंदर

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

है।

आज महा को इस स्थान पर रहते आठ मास बीत चुके थे एवं ध्यानावस्था के मध्य ''सत्यम् शिवम् सुंदरम्'' का भाव जागरण अब उसके लिए सहज हो गया था। आज भी इस दिव्य ज्ञान में लीन वह निद्रामग्न हो चला था। स्वप्न में उसे सर्वत्र फैले हिमाच्छादित पर्वतों की शृंखला दृष्टिगोचर हो रही थी। इन पर्वतों के मध्य एक पर्वत पर हिम में स्थिर महा देख रहा था कि उस पर्वत की चोटी पर खड़े वही नंग-धड़ंग महात्मा उसे स्वयं की ओर पग बढ़ाने का आवाहन देते कह रहे हैं-

''प्रणव धनुष, आत्मा बाण एवं ब्रह्म लक्ष्य है। जब जीव-पशु ब्रह्म को लक्ष्य मान, प्रणव रूपी धनुष से आत्मा का बाण बना लक्ष्य का संधान करता है तभी पशु, पशुपति शिव से एकरूप हो परमानंद में विचर सकता है।''

इसी आवाहन से महा का स्वप्न टूट गया था। जैसे कोई शुभ मुहूर्त टल न जाए इसी विचार में महा ने हिमालय की ओर प्रस्थान का निर्णय ले लिया था। अंतर में अब कोई द्वंद्व स्थित न था। न तो वह अब एकाकी था, न ही हताश। मन में अब कोई आशा भी शेष न थी। यदि कुछ था तो मात्र स्वयं का स्वतंत्र अस्तित्व, जो इस घड़ी स्वयं में पूर्ण था। होलिया कब छूट गया एवं पग उत्तर में कब हिमालय की ओर बढ़ गए, यह भी उसे ज्ञात न था। स्वयं की स्वतंत्रता की सर्वश्रेष्ठ निधि को पा, महा के मन में यदा-कदा एक अहंकाररहित प्रश्न उठता कि जब कबीर जैसे ईश्वरांश स्वयं में पूर्ण हैं, तो वे भी मुझे मुक्ति के मार्ग पर प्रशस्त कर सकते थे। इसके विपरीत जीवन के मर्म का ज्ञान देकर सदैव अंततः वे यह क्यों कह जाते थे-

'पर याद रख मैं तेरा गुरु नहीं?'

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अध्याय-४४

महाश्मशान मणिकर्णिका पर स्थित नरनारायणप्रिय, अधिष्ठानम्, प्रकाशात्मा काशी विश्वनाथ अपना परम दिव्य प्रकाश उठाते विष्णु सहस्रनाम के जाप में लीन हैं। अब वे हरिद्वार की ओर देखते स्निग्ध स्मित लिए महाघोष उठा रहे हैं-

"आकाश में गति रखने वाले अनंतादि रूप से पृथ्वी के भार को धारण करते, हे निवृत्तात्मा! हे श्रीहरि! आपके इस तीर्थ में पग धरते ही एकात्म के भाव में मैं भी विष्णुरूप हो गया। आपका यह परम सुंदर हरिद्वार तीर्थों में श्रेष्ठ हो सभी पुरुषार्थों को प्रदान करने वाला है।"

"गहन एकात्म का भाव सधते ही सभी आकारों में नित्यात्मा अभिलक्षित होने लगती है। कालातीत उतरते ही प्रज्ञा को उपलब्ध जीव अपनी आत्मा के अतिरिक्त किसी अस्तित्व को स्वीकार नहीं करता। ज्ञान के इस परम पर अब कौन किसका ध्यान करे? आत्मज्योत जगते ही ध्याता और ध्येय की भिन्नता समाप्त हो जाती है।"

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

संध्या के इस समय हर की पौड़ी पर गंगा आरती के पश्चात् महा निर्लिप्त भाव से बैठा सामने बहती गंगा को एकटक निहार रहा था। होलिया गाँव में बिताए इन आठ महीनों के ध्यान के पश्चात् अब वह साक्षात् शून्यता का अनुभव करने लगा था। भूतकाल के अनुभवों की संचित राशि मानो अब ख़त्म हो चली थी। मन के समस्त स्तरों पर कर्म के प्रति अक्रियता का भाव सधते ही वह जान चला था कि कर्ता भाव ही दु:ख का वास्तविक कारण है। उसका अहंकार अब शनै:-शनै: लुप्त हो चला था। आत्मचेतना का मार्ग अब स्पष्ट होने लगा था और काशी विश्वनाथ और कबीर के प्रति क्रोध अब पूर्णत: लुप्त हो गया था।

इस मार्ग पर चलते अब वह जान चला था कि स्वयं की स्वयं के प्रति जागरूकता ही नियति की वह लेखनी है, जो मनुष्य को आत्मा के द्वार तक ले जाती है। यहाँ बैठे उसे यह प्रतीत हो रहा था कि इस हरि के द्वार से चलकर ही वह गुरु के द्वार तक पहुँचेगा। अब भीतर गुरु को पाने की लालसा भी क्षीण हो चली थी और ध्यान में उतरते ही शून्य के अतिरिक्त कोई भान न रहता।

उसके पास बैठा उसी का हमउम्र एक सजीला गौरवर्णीय नवयुवक उसे एकटक निहार रहा था, परंतु महा का ध्यान उस पर नहीं था। गंगा के प्रति महा का प्रेम देख अब वह युवक महा के ठीक पास आ बैठ गया और स्वयं अपना परिचय देता बोल उठा-

''कलकत्ता से द्वादश ज्योतिर्लिंग के दर्शन की अभिलाषा से यहाँ आया हूँ। तुम्हें देखकर प्रतीत हुआ कि जैसे बाबा रामकृष्ण परमहंस ने इस यात्रा की परिपूर्णता हेतु तुम्हें मेरे सखा के रूप में भेजा है। मेरा नाम बुद्धेश है। क्या मेरे साथ केदारनाथ चलना पसंद करोगे?''

महा ने उसकी ओर दृष्टि उठाकर ध्यान से देखा तो उसे प्रतीत हुआ कि इस नवयुवक में भी कोई आकर्षण है। आकर्षण ध्यान में आते ही महा की दृष्टि के समक्ष भूतनाथ का चेहरा तैरने लगा। भूतू चाचा उससे सदा कहते थे कि ''महा तुझमें एक अलग ही आकर्षण है।'' अब महा उस युवक की ओर देख

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मुस्कराया और बोला-

"पहले गोमुख जाऊँगा, फिर अवश्य ही तुम्हारे साथ केदारनाथ भी जाऊँगा। क्या तुम मेरे साथ गोमुख चलना पसंद करोगे?"

"क्यों नहीं मित्र, परंतु क्या मैं अपने इस नए मित्र का नाम जान सकता हूँ?" बुद्धेश ने हँसकर पूछा।

"महा", महा ने हँसकर कहा।

"तो कहो, कब आरंभ करनी है गोमुख की यात्रा?", बुद्धेश ने प्रश्न किया।

"प्रात:काल ही", महा हँसकर बोला।

बुद्धेश का मुखमंडल प्रसन्नता से खिल उठा। वह फिर मुस्कराकर बोला-

"चलो पास ही भागवत सप्ताह का पाठ हो रहा है। थोड़े समय उसका श्रवण कर धर्मशाला में रात व्यतीत कर लेंगे और भोर सवेरे ही यहाँ से चल निकलेंगे।"

व्यास पीठ पर बैठे संत, भागवत की कथा सुना रहे थे और महा एवं बुद्धेश एक कोने में बैठ कथा का आनंद ले रहे थे। तभी एक जिज्ञासु ने संतश्री से प्रश्न पूछा-

"जब इस संसार के सर्वश्रेष्ठ एवं परिपक्व गुरु परमात्मा श्रीकृष्ण थे और संसार का सर्वाधिक बुद्धिमान शिष्य अर्जुन था, तो नारायण का नर से मात्र इतना कहना पूर्ण न था कि- उठा धनुष और चला तीर? फिर गीता के अठारह अध्यायों की क्या आवश्यकता थी?"

संत का उत्तर बड़ा ही सहज था-

"निराकार परमात्मा के शाश्वत नित्य शब्द साकार रूप लेकर गीता को

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अवतरित करते हैं। शिष्य को उसके स्वरूप का भान कराना ही गुरु का एकमात्र उद्देश्य होता है। स्वभाव ही धर्म है और स्वभाव का ज्ञान पाकर ही कोई धर्मयुद्ध लड़ सकता है और महाभारत ऐसा ही धर्मयुद्ध था। शिष्य की बुद्धि चाहे कितनी भी तीक्ष्ण क्यों न हो, वह गुरु नहीं हो सकता। परमात्मा के पूर्ण अवतार बन कृष्ण इस धरा पर अवतरित हुए थे। स्वभावत: नारायण तो पूर्ण थे, परंतु नर अर्जुन अपने स्वभाव से विमुख हो बैठा था। क्षत्रिय होकर भी वह उस क्षण काँप रहा था।''

अचानक बुद्धेश की दृष्टि महा पर पड़ी तो उसने पाया कि इस संवाद के चलते महा काँप रहा था। माथे पर श्रमसीकर छलक आए थे और आँखों से अश्रुधार बह रही थी। इस संवाद को सुनकर महा की दृष्टि के समक्ष कबीर आ खड़े हुए थे और वह जान चला था कि कबीर तो पूर्ण थे, पर वह स्वयं ही अपने स्वभाव से विमुख हो चला था।

संतश्री की वाणी अब भी उसके कर्णपटल पर गूँज रही थी।

''शिष्य को पूर्णता प्रदान करने प्रथमत: कृष्ण उसके धरातल पर आ, उसे सखा या बंधु के समान अभिप्रेरित कर रहे थे। प्रारंभिक अध्यायों में स्वयं परमात्मा कृष्ण, अर्जुन को उसके स्वभाव की दहलीज़ पर ले आए थे। इस स्थान पर भी अपने स्वभाव से परिचित हो अर्जुन धनुष-बाण उठा सकता था, परंतु यहाँ गुरु की परिपूर्णता उसे उपलब्ध न होती। यदि इस स्थान पर गीता की इति हो जाती तो अर्जुन धर्मयुद्ध को लड़कर विजयश्री तो प्राप्त कर लेता, परंतु विजय प्राप्ति के पश्चात् दो संभावनाएँ अवश्य जन्म लेतीं।''

''प्रथम, आत्मग्लानि से भर अर्जुन पुन: स्वयं के स्वभाव से भटक सकता था। द्वितीय, सत्ता पाकर यदि वह मद से भर जाता तो वह भी कौरवों सा अधर्मी हो जाता। परंतु परमात्मा अपनी पूर्णता से कभी विमुख नहीं होता, अत: जब गुरु प्रसाद प्रदान कर ही रहे थे तो वह उस प्रसाद में शाश्वत सनातन का वह रहस्य प्रदान करना चाहते थे, जहाँ आत्मा परमात्मा से एकीकृत हो परम

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

तत्त्व में लीन हो जाती है।''

''कालखंड के उस क्षण अर्जुन में इतना सामर्थ्य नहीं था कि वह परम ऐश्वर्यमयी दिव्य प्राण उठाते परमात्मा के दर्शन कर सके। अत: ग्यारहवे अध्याय में श्रीकृष्ण ने अर्जुन को दिव्य चक्षु प्रदान कर, स्वयं के अनंत ज्योतिर्मय स्वरूप का दर्शन कराया और पुन: मानवीय धरातल पर आ, उत्तरार्द्ध में अर्जुन को गुरु की आत्यंतिक ऊँचाई के शिखर पर ले आए। इस उत्तरार्द्ध में गुरु श्रीकृष्ण गूढ़ से गूढ़तम रहस्यों से परदा उठा शिष्य अर्जुन को पूर्णता के उस मार्ग पर ले आए, जहाँ मोक्ष की साधना कर आत्मा परमात्मा से एकाकार होती है।''

आत्मग्लानि से बोझिल महा अब अपनी अश्रुधार नहीं रोक पा रहा था। अहंकार में स्वार्थ को सर्वोपरि रख उसने काशी, काशी विश्वनाथ और कबीर को न जाने कितनी बार कोसा था। आज उसे ज्ञात हो रहा था कि पूर्वार्द्ध में कबीर भी तो उससे सखावत् एवं भ्रातृवत् प्रेम करते जीवन का मर्म समझा रहे थे और उत्तरार्द्ध में वे भी गूढ़ से गूढ़तम हो चले थे। अहंकार से परिपूर्ण वह स्वयं ही तो अपने स्वभाव से विमुख हो चला था, शायद इसलिए कबीर उसे छोड़ चले थे।

अब भी बार-बार मन में यह प्रश्न उठ रहे थे कि प्रयाग के त्रिवेणी संगम पर मिले वे महात्मा कौन थे जिन्होंने उसे स्वप्न में हिमालय की यात्रा की आज्ञा दी थी? और कबीर जब स्वयं में परिपूर्ण थे तो क्यों वे उसे गहन एकात्म का भाव साधना नहीं सिखा रहे थे? जहाँ सभी आकारों में नित्यात्मा अभिलक्षित होने लगती है। कबीर उसे सदा काल में ही विचरण करवाते थे, उन्होंने कभी उस कालातीत का दर्शन नहीं कराया, जहाँ प्रज्ञा के उतरने से उसका जीव स्वयं की आत्मा के अतिरिक्त अन्य किसी अस्तित्व को स्वीकार नहीं करता।

क्यों कबीर ने उससे ज्ञान का वह परम दूर रखा, जहाँ ध्याता एवं ध्येय एक हो जाते हैं एवं आत्मा परमात्मा से एकाकार होती है? अपितु इसके उलट कबीर उसे सदा भिन्नता का भान कराते, अंत में यह कह जाते थे-

'पर याद रख मैं तेरा गुरु नहीं'

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

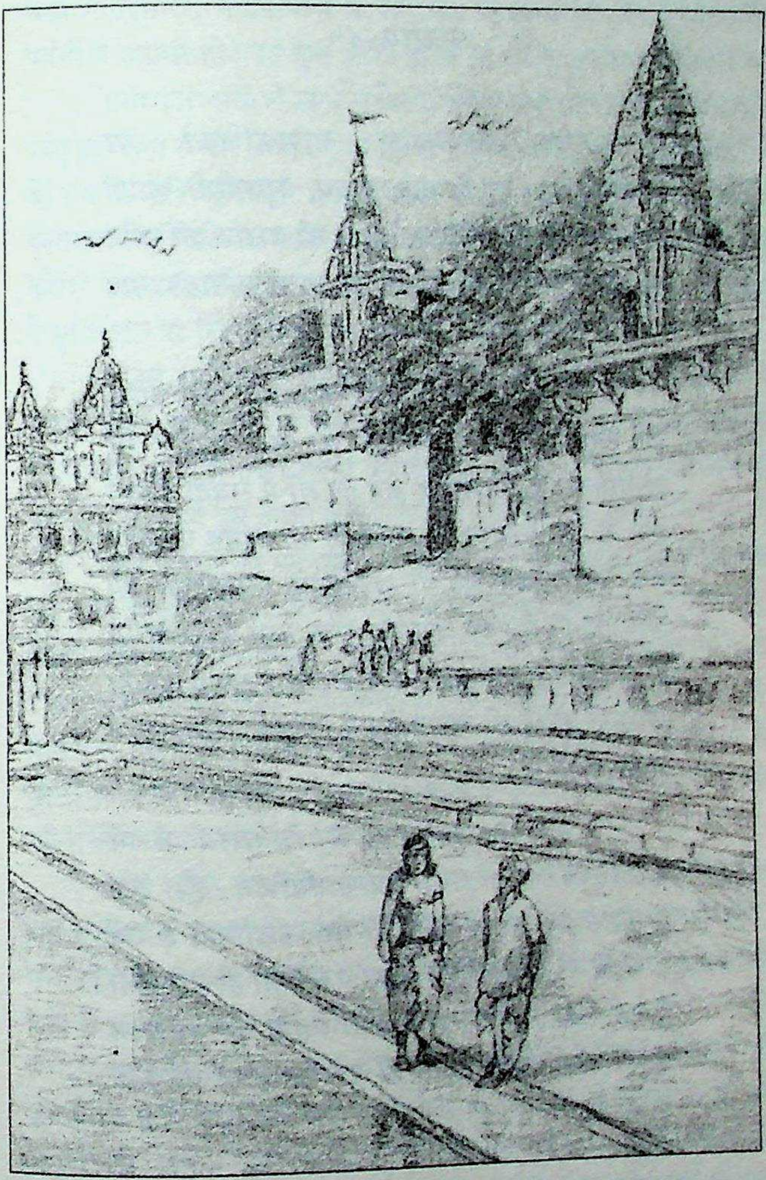

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अध्याय-४५

आज महाश्मशान मणिकर्णिका पर भस्मशुद्धिकर, स्वाधिष्ठानपदाश्रय, शुभयोगी काशी विश्वनाथ पूर्णतया विरक्त होकर भी ब्रह्मांड की सृष्टि के महान कर्तव्य से संपन्न हो अमर अनाहत नाद निनादित कर रहे हैं-

''मैं भले ही श्मशान सेवी हूँ तथापि तीनों लोक का स्वामी हूँ, अर्द्धनारीश्वर का रूप धरकर भी योगाधिराज हूँ, मदनजित् होते हुए भी मैं सर्वदा शक्ति उमा के संग विचरता हूँ। स्वयं के श्री विग्रह पर मात्र भस्म धारण करते हुए भी अनेकानेक रत्नराशियों का अधिपति हूँ। मैं स्वयं अजन्मा अनेक रूपों में आविर्भूत हूँ। गुणातीत स्वभाव को धारण कर भी मैं गुणाध्यक्ष हूँ। अव्यक्त होकर भी व्यक्त हूँ एवं सर्वरूप होकर भी मैं सर्वदा मुक्त हूँ।''

''जीव के काया रूपी शिवालय में मैं आत्मलिंग रूप धरता प्राणप्रतिष्ठित हूँ। इस अर्द्धनारीश्वर रूप में बुद्धि ही मेरी अर्द्धांगिनी है एवं प्राण ही मेरे गण हैं। विषयभोग में लीनता ही मेरी पूजा है एवं निद्रा समाधि। शब्द रूपी स्तोत्रों का उच्चारण करता जीव चलते फिरते ही मुझ शिव की परिक्रमा करता है।''

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

काल मार्ग से आत्मा की इस यात्रा में महा नहीं जानता था कि किस घड़ी महादुर्भाग्य, महासौभाग्य में परिवर्तित हो चला था। पग हिमाच्छादित पर्वतों में अग्रसर होते उसे पुनः काशी ही ले जा रहे थे, इसका उसे ज्ञान न था।

इस्माइल चाचा से उसने अनेक पौराणिक कथाओं का श्रवण किया था, परंतु इस कथा से वह अवगत न था कि कलियुग में काशी की पवित्रता भंग होने के भय से ऋषि-मुनियों ने भगवान् शंकर से यह पूछा था कि यदि काशी से पलायन की स्थिति आ खड़ी हो, तो इसके पश्चात् वे उनकी उपासना कहाँ करेंगे? उस घड़ी भक्ति के द्वारा भक्त के वश में होने वाले भक्तिवश्य श्री शिव ने मुखमंडल पर स्निग्ध स्मित ला कहा था-

''उस घड़ी संपूर्ण हिमालय ही मेरा निवास होगा। इस हिमालय में मैं काशी तथा अन्य समस्त तीर्थों के साथ इस काशी में निवास करूँगा। केदारमंडल में ही मैं संपूर्ण रूप से स्थित रहूँगा, और तो और यहाँ मणिकर्णिका घाट भी होगा एवं इस काशी का विस्तार भी पंचक्रोशी ही रहेगा।''

कई दिवसों की पग यात्रा के पश्चात् महा एवं बुद्धेश, धरासु को पार कर अब यमुनोत्री की ओर पग बढ़ा रहे थे। सीमित दृष्टिकोण में जो महा, काशी और काशी विश्वनाथ से विलग होने के भाव से यदा-कदा व्याकुल हो उठता था, वह इस घड़ी नहीं जानता था कि भीषण संकट आने पर भी जो काशी से विलग न होने दे, वही महायोग है। विस्तृत दृष्टिकोण के अभाव में अभी उसे ज्ञात न था कि यह महायोग पूर्ववत् है एवं इस घड़ी भी वह कलियुग की पंचक्रोशी की ओर पग बढ़ा रहा है।

कोई शक्ति ही थी कि हिम का तीक्ष्ण दंशन भी दोनों के लिए असह्य न था। बुद्धेश देख रहा था कि महा किसी ऋषि-समाधि में मग्न बाह्य ज्ञान से शून्य, पग बढ़ा रहा था। हिमाच्छादित पर्वतों के असीम सौंदर्य को निहारता बुद्धेश जैसे महा के साथ सुसंगत करता एकीकृत हो चुका था।

इस लंबे पथ की प्रत्येक दूरी जैसे महा के लिए अतिलघु हो चली थी एवं आज कई दिवसों की यात्रा के पश्चात् वे उस हिम की झील पर थे, जो यमुना का उद्गम स्थान है। कालिंदी पर्वत की गोद में यमुना स्वयं की शैशवावस्था में ही थी। चारों ओर फैली धवल शिखरावली बुद्धेश को मंत्रमुग्ध

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कर रही थी, जबकि महा इस स्थान पर भी किसी महान चिंतन में मग्न था।

यहीं से आगे अब उन्हें गोमुख की ओर बढ़ना था। शिखरों पर जमा हुआ शुभ्र हिम महा को यह संदेश दे रहा था कि भले ही कई ऋषि इस हिमालय की अतिशय शीत को सहते तपस्या में रत आत्मज्ञान को उपलब्ध हुए हों, परंतु हिमालय स्वयं ही किसी तपस्या में रत है। मानो प्रत्येक हिमकण किसी दिव्य वाणी के श्रवण में लीन है।

प्रणव के मानसिक उच्चारण में ध्यानमग्न, शांत एवं गंभीर महा ने गंगोत्री जाने का वह पथ चयनित किया था, जहाँ से कोई यात्री गंगोत्री नहीं जाता। गंगा का जो स्वर्णिम आवेग धरा पर प्रवाहित होता जीवों के पापों को हरता है, उसके उद्‌गम स्थान के दर्शन की लालसा में अब दोनों उस छायापथ से गुज़र रहे थे, जहाँ आदित्य के दर्शन भी दुर्लभ थे। भव्य हिमालय के शिखर सीधे तनकर इस मार्ग को अत्यधिक दुरूह कर देते हैं।

मेघाच्छादित उस दुरूह पथ पर यमुना की सँकरी धार को पार कर, अब महा उस शक्ति को साथ ले आगे पग बढ़ा रहा था, जिसके साथ रहते शिव के प्राण भी आनंदित रहते हैं। जब निज स्वभाव ही गंतव्य था तो मार्ग में आगे कोई विशाल हिमखंड यात्रा को कैसे अवरुद्ध करता? एक विशाल हिमखंड से मार्ग अवरुद्ध होने के पश्चात् भी दोनों ने गर्वोक्त खड़े पश्चिमी हिमपर्वत पर शनैः-शनैः आरोहण कर दिया था।

प्रणव का महामंत्र अब भी महा के मन में गुंजायमान था। जैसे पर्वत से भी एकात्म सध गया हो, वैसे एक कर से कँटीली झाड़ियों को थामे एवं पग-अँगुलियों से घास के तृणों को दबाकर संतुलन साधते अब वे आगे बढ़ रहे थे। पग का ज़रा सा कंपन अर्थात् सुशीतल हिम में स्वयं की समाधि। जीवन एवं मरण का एक अपूर्व सम्मिश्रण दृष्टि के समक्ष था। यह महायोगी, कैलासशिखरवासी, आशुतोष शंकर का ही प्रभाव था कि प्रत्येक परिवर्तित होती घड़ी में उनका सृष्टि संतुलन दोनों की दृष्टि के समक्ष आ खड़ा होता। एक घड़ी शीतल मंद सुगंधित बयार हृदय में दिव्य जीवन का गान भर देती एवं जीवन का संपूर्ण सौंदर्य इन सौंदर्यमयी पर्वत श्रृंखलाओं के रूप में सामने आ खड़ा होता, तो दूसरी ही घड़ी प्राणवायु की कमी एवं गहरी खाई के रूप में मृत्यु

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

के काले पंख दृष्टि के समक्ष आ खड़े होते। शिलाखंड पर चढ़ते हुए दोनों की काया कई स्थानों पर छिल गई थी, परंतु कोई विराटतर आवाहन शून्य से निम्न तापमान एवं प्राणवायु की कमी को भी तुच्छ कर देता था।

जीवन एवं मृत्यु के दृश्यों के मध्य इस दुरूह आरोहण के पश्चात् समस्त थकान के होते भी दोनों ने यह दुर्गम स्थान पार कर लिया था। खाद्य सामग्री के रूप में लाए उबले आलू का नैवेद्य शंकर की पिंडी को अर्पित करने के साथ ही जैसे महा को कोई भाव लग गया था एवं अल्प विश्राम के साथ ही यात्रा पुनः प्रशस्त हो चली थी। आज बुद्धेश भी स्वयं को नश्वरता से ऊपर पा ऐसे आगे बढ़ रहा था, जैसे कोई स्वर्ग की सीढ़ियाँ चढ़ रहा हो।

अब यात्रा पथ ही जैसे शक्ति का रूप धरता बुद्धेश से बर्फ़ काटने की कुल्हाड़ी से बर्फ़ कटवाता, आगे का मार्ग निर्मित कर रहा था। हिमपात भी प्रारंभ हो गया था एवं कुछ घड़ी हिम गिरने से आगे पग रखना अब सुगम हो चला था। कुछ घड़ी की चढ़ाई के पश्चात् ही जैसे संपूर्ण धरा का अविश्वास बुद्धेश की दृष्टि के समक्ष था, जिस पर दृष्टि पड़ते ही वह हर्ष-विभोर हो उठा था। दृष्टि के समक्ष अब हिमाच्छादित समतल मैदान था।

प्रकृति स्वयं के छिपे स्वरों से अब वह गान उठा रही थी, जिसके कर्णपटल पर पड़ते ही हर्षोन्माद में महा का कर पकड़ता बुद्धेश अब समतल मैदान में दौड़ने लगा था। कभी पग हिम में धँस जाते तो उन्हें पुनः बाहर निकालना उसके लिए जटिल हो रहा था।

कुछ घड़ी पश्चात् अब श्वेत धवल हिमराशि पर लालवर्णीय कंबल बिछा दोनों विश्राम कर रहे थे। महा को प्रतीत हो रहा था कि हिमाच्छादित हिमालय से बहती शीतल ठंडी हवाओं में बुद्ध का ध्यान बह रहा है। यह प्रतीत होते ही महा पुनः ध्यानस्थ हो गया था। पद्मासन में बैठे महा की ऊपरी काया कंबल एवं उत्तरीय के गिरते ही नग्न हो गई थी एवं ज्यों ही बुद्धेश उसे कंबल ओढ़ाने उसके निकट आया, तो महा के मुखमंडल पर एक अपूर्व तेज दृष्टिगोचर होते ही वह भी भाव-विभोर हो गया।

श्यामवर्णीय लंबे केश, गौरवर्णीय चौड़ा सीना एवं बोधितत्त्व प्राप्त महात्मा के सदृश बंद नेत्र, जैसे साक्षात् बुद्ध हिमाच्छादित समतल मैदान पर

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

ध्यानस्थ विराजित हैं। महा का ऐश्वर्यमयी अंतर अब मुखमंडल को दिव्यता प्रदान कर रहा था। मात्र आनंद, एक परिपूर्ण आनंद।

मेघों ने भी जैसे इस दिव्यता के दर्शन हेतु स्वयं का घूँघट हटा दिया था एवं आदित्य की किरणों के पड़ते ही संपूर्ण धरा की रजत हिमराशि स्वर्णिम हो दमकने लगी थी। बुद्धेश को ज्ञात नहीं हो रहा था कि यह हिमराशि किसकी दमक से स्वर्णमय हो दमक रही है? आदित्य के मुखश्री से या फिर महा के मुखमंडल से या दोनों के ही प्रकाश से?

मेघों ने पुन: आदित्य के मुखश्री को स्वयं के घूँघट से ढाँप लिया था एवं महा ने अपने नेत्रों को खोल दिया, मानो कोई अनंत दृष्टि स्वयं के समक्ष खड़े सुमेरु पर्वत को निहार रही थी। हिमालय का यह उत्तुंग शिखर मानो महा के लिए काशी विश्वनाथ के ज्योतिर्लिंग सी दिव्यता उठा रहा था। बुद्धेश शीत से काँप रहा था, परंतु मौन में मग्न आगे पग धरते महा की नग्न काया पर इस भीषण शीत का कोई प्रभाव न था। अस्तित्व के अनंत विस्तार को स्वयं समेटता अब वह बुद्धेश के साथ गंगोत्री आ पहुँचा था।

जैसे यह हिममयी गंगोत्री मात्र काशी में काशी विश्वनाथ के देवालय की शक्ति ही नहीं अपितु उसके परित्राण की हेतु भी है, यह भाव महा के हृदय में गहरा उतर गया था। बुद्धेश को आश्चर्य हो रहा था कि यमुनोत्री के पश्चात् गंगोत्री में भी महा ने मंदिर के भीतर पग नहीं धरा था। वह मात्र मंदिर के शिखर दर्शन से ही संतुष्ट हो जाता था।

रात्रि के विश्राम के पश्चात् आज भोर ही दोनों ने गोमुख की यात्रा का आरंभ कर दिया था। महा को प्रतीत हो रहा था जैसे गंगोत्री ही गोमुख का तेजोमय प्रवेश द्वार है। साथ ही साथ उसमें यह भाव भी उतर रहा था कि जैसे जटाधारी, पिनाकपाणी काशी विश्वनाथ साक्षात् उसके इस आरोहण का आलोकन कर रहे हैं।

चीड़ के घने वन चीड़वासा को पार करते, अब वे भोज वृक्ष से आच्छादित वन भोजवासा आ पहुँचे थे। बुद्धेश देख रहा था कि महा को कोई वैयक्तिक शक्ति नहीं, अपितु वैश्विक शक्ति संचालित कर रही है। तभी तो मृत्यु के मुख में भी इन विकट परिस्थितियों में वह ऐसे यात्रा कर रहा है, जैसे

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
वह न मात्र गोमुख की यात्रा अपितु अखिल ब्रह्मांड की यात्रा पर निकला हो।

गोमुख पहुँचते ही बुद्धेश को लगा जैसे वह किसी स्वर्ग में आ पहुँचा हो। उसके लिए यह दृश्य स्वर्गिक एवं वर्णनातीत था, सो वह भी महा की तरह मौन भाव-विभोर हो गोमुख की हिमानी को देख रहा था। गंगा को जटा में धारण कर शिवजी जिस विशिष्ट मुद्रा में बैठे थे, वही विशिष्ट मुद्रा संध्या उपासना के लिए आसन में ली जाती है।

महा के लिए मानो प्रकृति स्वयं ही तत्त्वज्ञान की कड़ियाँ मिलाती उसे यहाँ तक लाई थी। दो हिमाच्छादित उत्तुंग शिखर, गाय के कर्ण का रूप धर उस गुफा के दोनों पार्श्व में स्थित थे। गुफा के ऊपर हिम की श्वेत चादर, गाय के ओष्ठ का रूप धर संपूर्ण दृश्य को गोमुख का आकार दे रही थी। ऊर्ध्वरेता महात्माओं को प्रिय लगने वाली ऊर्ध्वरेतप्रिया इस पवित्र गंगा का इससे पवित्र उद्गम और क्या हो सकता है?

कैलास से यहाँ तक का मार्ग गर्भ में ही हिमस्तूपों के कोटि-कोटि मनों का भार सहती गंगा, इस स्थान से छोटी-छोटी धाराओं का रूप ले प्रकट होती है। धारा का झरने के रूप में दर्शन करते ही महा के हृदय में भाव उठा कि जननी का तो मानो भाग्य ही भार सहना है, कभी हिमस्तूपों का भार तो कभी स्वयं के पुत्रों के पापों को हरने का भार, फिर भले गोमुख हो या काशी। धारा के दर्शन में महा को यशोदा माँ के दर्शन हो रहे थे।

गंगा का जल कभी बालू के संपर्क में आ मटमैला हो रहा था, तो कभी चट्टानों से टकराकर फेनिल हो रहा था। सर्वत्र हिमाच्छादित शिखरों की चोटियाँ संपूर्ण प्रकृति का सौंदर्य दर्शा रही थीं। गंगा की धारा पर दृष्टि पड़ते ही महा को लगा जैसे अंतर से कोई चेतना की धार बाहर आने को व्याकुल हो रही है। ऐसा भाव आते ही महा ध्यानस्थ हो गया एवं क्षण को स्वरूप के धूमिल साक्षात्कार से यह भाव उठा-

''मेरे काया रूपी शिवालय में ही शिव आत्मलिंग रूप धर प्राणप्रतिष्ठित हैं। शिव के इस अर्द्धनारीश्वर रूप में ही बुद्धि अर्द्धांगिनी है एवं प्राण ही शिव के गण हैं। विषयभोग में लीनता ही शिवपूजा है, शब्द ही शिवस्तोत्र एवं यों विचरना ही शिव की परिक्रमा है।''

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

दर्शन अत्यंत ही धूमिल था, सो उसे भ्रम मान महा ने जैसे ही आगे बढ़कर गंगाजल को अँजुली में भर पान किया, तो अचानक उसे प्रतीत हुआ कि हिमाच्छादित शिखरों से आपूर्ण यह नीरव स्थान सहस्रों ऋषियों के एक साथ एक स्वर में मंत्रोच्चारण से गूँज उठा,

''अन्नाद् भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्न सम्भवः।
यज्ञाद भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्म समुदभवः॥''

''समस्त प्राणी अन्न से उत्पन्न होते हैं और अन्न की उत्पत्ति वर्षा से होती है। वर्षा, यज्ञ से होती है एवं यज्ञ, कर्म से उत्पन्न होने वाला है।''

सत्य की विभूति जैसे मस्तक लेख हो गई हो एवं दिव्यता से भरता महा बड़बड़ाने लगा-

''सर्वस्व परिवर्तित हो रहा है एवं वास्तविक रूप में परिवर्तित हो रहा है। संपूर्ण ब्रह्मांड की इस संयुक्तता में आदित्य की किरणें हमारे प्राणों के स्पंदन से संयुक्त हैं एवं हमारे प्राण, ब्रह्मांड से। व्योम में मेघ का विचरना, सरिताओं में जल का प्रवाहित होना, स्वयं की श्वासों का लय एवं चिताग्नि, सभी तो शिवरूप हैं।''

बुद्धेश, महा को आश्चर्य से तक रहा था एवं महा स्वयं अत्यंत धूमिल स्वरूप के दर्शन का साक्षात्कार कर तीव्र गति से पीछे की ओर घूमा एवं पोटली में से शिव की पिंडी को निकाल, उसने यह कहकर उसे गंगा में विसर्जित कर दिया-

''जब शिव स्वयं आत्मलिंग के रूप में प्राणप्रतिष्ठित हैं तो इसे साथ रखने का क्या औचित्य?''

महा का ध्यान न था कि पिंडी भारी होने से उसी स्थान पर स्थित हो गई थी, जहाँ उसने उसे विसर्जित किया था।

अब जैसे ही महा पुनः खड़ा हुआ, दृष्टि सामने की ओर चली गई एवं वह विक्षिप्त सा चिल्ला उठा-

''हाँ, आप वही हैं जिन्हें मैंने प्रयाग में संगम पर देखा था।''

बुद्धेश यह सुन अवाक् रह गया एवं महा के कर को थामता आश्चर्य से बोल उठा-

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

''किसकी बात कर रहे हो? किसे तुमने संगम पर देखा था?''

महा, धारा के उस पार इंगित करता पुनः बोल उठा-

''आप ही हैं, हाँ वह आप ही हैं, जिन्होंने इस शंकर की पिंडी को संगम से निकाल मेरे कर पर रखा था।''

बुद्धेश अब भयभीत दृष्टि से सामने की ओर देख रहा था। दृष्टि के समक्ष वहाँ कोई नहीं खड़ा था। भय मिश्रित स्वर में वह बोल उठा-

''सामने तो कोई भी नहीं, किससे वार्त्तालाप कर रहे हो?''

अचानक बुद्धेश से स्वयं का कर छुड़ाता महा, गंगा की धार में उतरने को उद्दत हो उठा एवं लगभग चिल्लाते हुए स्वर उठाने लगा-

''देखो वो जा रहे हैं, उन्हें रोको।''

बुद्धेश ने तेज़ी से महा को थाम अपने आलिंगन में भर लिया एवं उच्च स्वरों में बोल उठा-

''नहीं, वहाँ कोई नहीं। ऐसे आगे मत बढ़ो।''

स्वयं की संपूर्ण शक्ति से स्वयं को बुद्धेश के पाश से छुड़ाने के प्रयत्न में महा लगभग रो उठा था एवं विक्षिप्त सा चिल्ला रहा था-

''देखो वे मेरी दृष्टि से ओझल हो रहे हैं, उन्हें रोक लो। उन्हें मत जाने दो'', कहता महा फूट-फूट कर रोने लगा, परंतु बुद्धेश ने अपने पाश को ढीला नहीं किया था।

अंततः महा पुनः ज़ोर से चिल्ला उठा-

''जाते हो तो जाओ, परंतु मात्र इतना स्पष्ट कर दो कि उस भोर आपने क्या कहा था? पर याद रख मैं ही तेरा गुरु हूँ या...''

नीरवता के इस भीषण साम्राज्य में गंगा की छल-छल के अतिरिक्त सर्वत्र फैले श्वेत हिमाच्छादित पर्वतों में, महा के अंतिम शब्दों की प्रतिगूँज गूँज रही थी-

'पर याद रख मैं तेरा गुरु नहीं।'

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अध्याय-४६

आज महाश्मशान मणिकर्णिका पर विबुधाग्रचरश्रेष्ठ, अव्यक्तलक्षणोदेव, ज्ञानमूर्ति काशी विश्वनाथ दिगंबर रहने का व्रत धारण कर अमर अनाहत नाद निनादित कर रहे हैं-

''मैं शिव ही निराकार परब्रह्म हूँ एवं स्वयं की लीलाशक्ति में सर्वप्रथम मैंने ही अपनी मूर्ति की कल्पना की। यह मूर्ति संपूर्ण ऐश्वर्य-गुणों से संपन्न सबकी एकमात्र वंदनीया, शुभस्वरूपा, सर्वरूपा एवं समस्त संस्कृतियों का केंद्र है। इसी मूर्ति की कल्पना करता मैं अद्वितीय ब्रह्म उसमें अंतर्हित हो गया। मैं ही मूर्तिरहित परब्रह्म रुद्र हूँ एवं मेरा ही चिन्मय आकार सदाशिव है।''

''मैं शिव ही शक्तिस्वरूप परमेश्वर के अहम् पद का अर्थभूत हूँ। 'अ'कार परम प्रकाश मेरा शिवरूप है, 'ह'कार शक्तिरूप को दर्शाता है एवं मुझ शिवशक्ति के संयोग से ही उदित होता परमानंद 'म' कार को दर्शाता है। मुझ शिवशक्ति की सर्वरूपता ही ब्रह्म है एवं जीव से शिव के एकाकार की अमर घड़ी में 'अहं ब्रह्मास्मि' ब्रह्मांड में गूँजता कण-कण को आंदोलित कर देता है।''

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

प्रयाग से गोमुख तक की इस यात्रा में जैसे सृष्टि के मंदिर ने स्वयं के द्वार महा के लिए खोल दिए थे, जहाँ जीवन के दर्शन होते ही अब उसे प्रतीत होता था कि समस्त निर्जीव सत्ता भी एक जीवंतता ले उसे निहार रही है। अब काशी एवं काशी विश्वनाथ का महिमागान उसके लिए सर्वोपरि हो चला था। साथ ही साथ अब वह कबीर के समक्ष भी पूर्णरूपेण नतमस्तक हो चला था। वे ही तो थे जिन्होंने उसे जीवन के इस भव्य दर्शन की पात्रता प्रदान की थी।

सत्य की मार्गविहीन इस यात्रा में आज कई दिवसों पश्चात् महा पुन: व्याकुल एवं क्लांत हो गया था। क्यों वे महात्मा उससे बिना कुछ कहे ही लौट गए थे? कौन हैं वे? सोचता भाराक्रांत महा अब बुद्धेश के साथ गोमुख से लौट रहा था।

एक तीव्र आँधी के साथ हिमपात पुन: आरंभ हो चला था। प्रचंड शीत से दोनों की काया शिथिल हो चलीं थी एवं दोनों ही साँस लेने की तकलीफ़ को झेल रहे थे। मूढ़ मानव प्रकृति के संकेतों को नहीं समझ पाता, यह हिमपात भी ऐसा ही एक संकेत था।

हिमपात के थमते ही महा ने स्वयं को नितांत अकेला पाया। इधर-उधर तकती उसकी दृष्टि बुद्धेश को खोज रही थी, परंतु दृष्टि के समक्ष सर्वत्र फैली हिमराशि के अतिरिक्त कुछ भी न था। महा मार्ग से भटक गया था। जिस ईश्वरीय तेज ने इस आँधी को उठा महा को बुद्धेश से विलग कर दिया था, उस तेज का आभास अभी महा को न था। पथविहीनता की दशा में किंकर्तव्यविमूढ़ स्तब्ध सा महा एक पाषाण पर स्थिर हो विश्राम करने लगा।

कुछ घड़ी विश्राम के पश्चात् महा के पग निकट के पर्वत पर स्थित एक सँकरी पगडंडी पर बढ़ने लगे थे जो किसी शिखर की ओर जा रही थी। गोमुख की यात्रा से पूर्व ही महा एवं बुद्धेश ने निश्चित कर लिया था कि ऐसी किसी घड़ी का सामना हो जाए, तो जो भी सर्वप्रथम गंगोत्री पहुँचेगा वह दूसरे की वहीं प्रतीक्षा करेगा।

पथ पर पग प्रशस्त करते महा के अंतर में यह भाव उठ रहा था कि जैसे

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

भोलेनाथ शिव ही इस कैलासखंड में उसे इस अपरिचित मार्ग की ओर धकेल रहे हैं। मुग्ध दृष्टि से श्वेत धवल शिखरावलियों का दर्शन करता अब वह उस साधक की तरह पग बढ़ा रहा था, जिसने शब्द, स्पर्श, रूप, रस एवं गंध पर विजय पा ली हो।

पर्वत का शिखर हिम से ढँका था एवं महा की काया पर भी हिम की परत बिछी थी। प्रचंड शीत से काँपते महा की दृष्टि के समक्ष प्रत्येक घड़ी उस शंकर की पिंडी का स्वरूप आ स्थित हो रहा था, जिसे उसने गंगा में विसर्जित कर दिया था।

संवेग भरे सरल हृदय से पर्वतों के मध्य बहती गंगा की अमर शक्ति कल-कल, छल-छल की दिव्य वाणी उसके कर्णपटल पर गूँजाते हुए आगे प्रशस्त होने की शक्ति प्रदान कर रही थी। हिम गह्वर के क्रीड़ांगन में क्रीड़ा करती गंगा मानों इस घड़ी स्वयं के गान से हिम के शिलाखंड, चीड़ के वृक्ष, इस नीरव पथ, हिमाच्छादित पर्वत एवं महा को मग्न कर रही थी। अंतर किसी दिव्य अभीप्सा को उठाता दृष्टि के समक्ष ला रहा था एवं एक दिव्य वाणी के कर्णपटल पर गूँजते ही जैसे गहनतम रोमांच में महा काँप उठा। स्वर के कर्णपटल पर गूँजने की घड़ी ने ही महा को किसी शाश्वत सनातनता का उत्तराधिकारी घोषित कर दिया था। हर्ष रोमांचता के इस चरम पर जैसे ही महा ने स्वर की उत्पत्ति की दिशा में दृष्टि उठाई, तो उसके समक्ष अखिल ब्रह्मांड के सौंदर्य को धर वह देह खड़ी थी, जिसकी वाणी ही महा को विश्वानंद के चरम पर ला बैठाती थी। यह वही नंग-धड़ंग दिव्य देह थी जिसका दर्शन महा को प्रयाग में हुआ था एवं उस दर्शन के पश्चात् ही महा ने स्वयं के संपूर्ण अस्तित्व को जस का तस स्वीकार कर आलिंगन में भर लिया था।

शिखर पर खड़े वे दिव्य महात्मा स्वर उठा रहे थे-

''महा इधर आओ, मैं तुम्हारी ही प्रतीक्षा कर रहा था।''

संदिग्ध मन एवं अज्ञात के मद में महा द्रुत गति से अपने पग उनकी ओर बढ़ाने लगा था। प्राणवायु की निम्नता में अब उसकी साँसें उखड़ रही थीं एवं

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अंततः वे महात्मा के समक्ष आ स्थिर हो गया था। महात्मा के मुखमंडल पर एक स्निग्ध स्मित फैला था एवं दृष्टि एक असीम शांति और अखिल ब्रह्मांड के प्रति प्रेम को दर्शा रही थी।

महात्मा की भव्यता के समक्ष मानो महा का संपूर्ण अस्तित्व खंडित हो गया था एवं घड़ी भर में एक कलुषित भाव ने उसे आ घेरा। वह सोच बैठा कि एक गंदी नाली से जन्म लेता वह कीट रूप में भले ही शिवभक्ति में लीन था, परंतु यह शिवभक्ति भी उसने सर्वतिरस्कृत एवं घृणास्पद चांडाल का रूप धर चिताग्नि में शवों को जलाकर की थी। न जाने कितने शवों के नरमुंड को उसने स्वयं के कर से चिताग्नि में समर्पित किया था एवं चिता की भस्म को मलकर ही उसने शिवध्यान किया था, तो इन करों से वह इस दिव्यात्मा के चरण स्पर्श कैसे कर सकता है?

भाव उठते ही महा ने दूर से महात्मा को साष्टांग दंडवत् किया ही था कि अचानक महात्मा के क्रोधित स्वर उसके कर्णपटल पर गूँज उठे-

''अब भी तेरा 'मैं' तेरे साथ ही विचर रहा है। अहंकार को रखने वाला कभी काया रूपी शिवालय में प्राणप्रतिष्ठित शिव रूपी आत्मलिंग के दर्शन को उपलब्ध नहीं हो सकता। अरे मूर्ख पशु! इस अहंकार के पाश में ही तो बँध तू पशुपति से विमुख हो रहा है। घड़ी का जागरण सोए पशु को शिव रूपी आत्मलिंग के दर्शन नहीं देता। तू अपने अहंकार में ही उस शंकर की पिंडी को गोमुख की गंगा में विसर्जित कर बैठा।''

महा का हृदय तीव्र गति से स्पंदित हो रहा था एवं शरीर पत्तों की तरह काँप रहा था। इस प्रचंड शीत में भी उसके ललाट पर स्वेद बिंदु छलक आए थे। महात्मा के क्रोधित नेत्र मानों अग्नि की वर्षा कर रहे थे। इसी क्रोध में महात्मा पुनः बोल उठे-

''उस परम शिव के अनुग्रह से ही कबीर एवं तुलसी तुझ पर निराकार एवं साकार का रहस्य उद्घाटित कर रहे थे, परंतु तू स्वयं के अहंकार में उनके एक शब्द के ज्ञान को भी अर्जित न कर पाया। यदि उस शंकर की पिंडी का गंगा में ही विसर्जन होना था, तो भला मैं संगम से उसे निकाल पुनः तेरे कर में क्यों

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

धरता?''

महा के नेत्रों से अश्रुधार बह रही थी एवं उसे प्रतीत हो रहा था जैसे प्रयाग के पश्चात् होलिया एवं गोमुख तक की यात्रा में जिस परिपूर्ण अस्तित्व रूपी अमूल्य निधि को उसने अर्जित किया था, उसे आज इस घड़ी वह पूर्णत: खो बैठा था।

महात्मा अब भी उच्च स्वर में बोल रहे थे- ''साकार ही ब्रह्मानंद निराकार का प्रवेश द्वार है। शिव ही निराकार परब्रह्म हैं एवं उन्होंने ही स्वयं की लीलाशक्ति में सर्वप्रथम अपनी मूर्ति की कल्पना की। उनकी वही मूर्ति तो संपूर्ण ऐश्वर्य-गुणों से संपन्न सबकी एकमात्र वंदनीया, शुभ स्वरूपा, सर्वरूपा एवं समस्त संस्कृतियों का केंद्र है। इसी मूर्ति की कल्पना करते स्वयं अद्वितीय ब्रह्मशिव उसमें अंतर्हित हो गए। शिव ही मूर्तिरहित निराकार परब्रह्म रुद्र हैं एवं उनका ही चिन्मय आकार सदाशिव है।''

महा को प्रतीत हो रहा था कि इस क्रोधाग्नि में वह घड़ी भर में ही मूर्च्छित हो जाएगा, तथापि महात्मा के क्रोधित स्वर उसके कर्णपटल पर गूँज रहे थे-

''अरे मूर्ख पशु! शिव खप्पर में खाते हैं, खप्पर नहीं खाते एवं तू स्वयं का खप्पर खाता यह सोच रहा था कि शवों को जलाने वाला मैं चांडाल इनके चरण स्पर्श कैसे करूँ? यदि तेरी छाया भी मेरा धर्म भ्रष्ट करती है तो तुझे यह क्यों ध्यान न रहा कि प्रयाग में किसने तुझे स्पर्श कर संगम में धक्का दिया था एवं किसने स्वयं के कर से तेरे कर पर उस शंकर की पिंडी को धरा था? साकार की साधना में निराकार शिव स्वयं को छिपाते मुस्करा रहे हैं। तेरी यह काया भी तो साकार है एवं यदि तुझे उसमें शिव रूपी आत्मलिंग का आभास हुआ, तो फिर मूर्ति की अपेक्षा स्वयं को तूने गंगा में क्यों विसर्जित नहीं किया? जा, पुन: गोमुख जा, वह मूर्ति तुझे वहीं स्थित मिलेगी जहाँ तूने उसे विसर्जित किया था। वहाँ से लौटने के पश्चात् मैं तुझे यहीं मिलूँगा। तेरी मुक्ति की आस ही तुझे माया रूपी पाश में बाँधती पशु बना रही है एवं तू उससे बँधकर उस पशुपति को विसर्जित कर बैठा। मात्र वे ही तो इस पाश को काट तुझे पशुत्व से मुक्ति दे

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सकते हैं।''

मध्याह्न में अब भी समय शेष था। अभी महा गोमुख की ओर पुन: जाने को पलटता उससे पूर्व ही नाभि तक फैली रुद्राक्ष की माला को स्वयं के कर से टटोलते, वह दोहरी काया वाले नंग-धड़ंग महात्मा पुन: बोल उठे-

''श्मशान में रहकर भी तुझे ज्ञात न हुआ कि अग्नि स्वयमेव उपलब्ध नहीं होती। काष्ठ एवं घास का सहारा लेकर ही अग्नि अपने स्वरूप को प्रकट करती है। उसी के सदृश शिव भी मूर्त्यात्मा में आरूढ़ हुए बिना उपलब्ध नहीं होते। शिव स्वयं अनुग्रह करते लिंग का आश्रय लेते हैं एवं उसी लिंग के माध्यम से वे पशु पर अनुग्रह कर, उसे स्वरूप पशुपति के मार्ग पर प्रशस्त करते हैं।''

अब महात्मा भी स्वयं की काया घुमाते विपरीत दिशा में पग बढ़ाने लगे थे एवं महा भी गोमुख जाने के लिए पलट ही रहा था कि घड़ी को स्थिर होते महात्मा, अपना मुखमंडल महा की ओर घुमाते पुन: बोल उठे-

''साकार पर ध्यान केंद्रित होते ही प्रज्ञा की किसी घड़ी यह भान होता है कि शक्तिस्वरूप परमेश्वर शिव ही अहम् पद के अर्थभूत हैं। 'अ' कार परम प्रकाश शिवरूप है। 'ह' कार शक्तिरूप को दर्शाता है एवं शिवशक्ति के संयोग से ही उदित होता परमानंद 'म' कार को दर्शाता है। शिवशक्ति की सर्वरूपता ही ब्रह्म है।''

''घड़ी के जागरण में ही पशु शिवशक्ति रूपी ब्रह्म के ज्ञान को उपलब्ध हो सकता है एवं साधना की निरंतरता में, सतत जागरण की अवस्था में, किसी घड़ी पशुपति से एकाकार करता वह इस अमर अनाहत नाद को निनादित करता है, 'अहं ब्रह्मास्मि'। इस नाद के निनादित होते ही जीव, शिव से एकाकार करता इस ज्ञान को उपलब्ध होता है कि 'संपूर्ण ब्रह्मांड में एक भी कण ऐसा नहीं, जिसमें मैं शिव विराजमान नहीं।' अत: जा, उस मूर्ति को पुन: ला। उस साकार की साधना में ही तुझे निराकार के राज्य का द्वार मिलेगा, अन्यथा जन्म-जन्मांतर पशु की भाँति भटकता मात्र यही सुनेगा-

'पर याद रख मैं तेरा गुरु नहीं।' ''

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अध्याय-४७

आज महाश्मशान मणिकर्णिका पर सर्वशस्त्रप्रभन्जन, सर्वर्तुपरिवर्तक, चन्द्रमौलि काशी विश्वनाथ वेदान्त के सारतत्त्व सच्चिदानंदमय ब्रह्म की साकार मूर्ति का स्वरूप धर अमर अनाहत नाद निनादित कर रहे हैं-

''मैं शिव ही प्रलय की घड़ी संपूर्ण ब्रह्मांड को भस्म कर स्वयं के निराकार लिंग में समाहित कर लेता हूँ एवं अपनी ही लीलाशक्ति में सर्वप्रथम मैं स्वयं के ही साकार लिंग की कल्पना करता, सृष्टि का सृजन करता हूँ।''

''मैं ईश्वर शिव ही शर्व के रूप में पृथ्वी को सृजित करता स्वयं के आकार 'शार्वी' रूप में ध्यानमग्न हूँ। जल का नियामक मैं भव, समस्त प्राणों का नियमन कर 'भावी' रूप में मदमस्त हूँ। अंतराग्नि एवं बाह्याग्नि का अध्यक्ष मैं रुद्र, सृष्टि के देवालय में 'रौद्री' रूप में प्राणप्रतिष्ठित हूँ। अखिल विश्व को गति प्रदान करती जीवनदायी वायु को सृजित करता मैं उग्र, विश्व में 'औग्री' रूप में विचरता हूँ। सर्वस्व को अवकाश देता आकाश का प्रधान मैं भीम, स्वयं के 'भैमी' स्वरूप में उसे देख स्मित फैलाता हूँ। मैं परमात्मा 'पशुपति' ही सर्वात्मा में स्थित हो परमानंद के गीत उठाता हूँ।''

''आदित्य भी मुझ 'ईशान' से उठती अनंत प्रकाश फैलाती रश्मियों के प्रकाश से स्वयं की दिव्यता उठाता है। मुझ 'महादेव' से ही अमृत का पान कर चंद्र- किरणें अखिल विश्व में सुधा-सलिल को प्लावित करती हैं, अर्थात् ब्रह्मांड का कण-कण मुझ शिव के ओज से ही ओजस्वी है।''

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

भावावेग हो, उच्छ्वास हो या चाहे जो भी हो महा का हृदय अद्भुत आनंद में हिलोरें ले रहा था। गोमुख से लौटते हुए हिमाच्छादित पर्वतों की बर्फ़ीली चोटियों पर दृष्टि पड़ते ही कर्णपटल पर मात्र यही शब्द गुंजायमान थे-

''वहाँ से लौटने के पश्चात् मैं तुझे यहीं मिलूँगा।''

ये शब्द गूँजते ही महा को प्रतीत हो रहा था मानो देवाधिदेव, जगत्पति काशी विश्वनाथ ने ही इस दीन भिक्षु पर अपार करुणा की वृष्टि की थी।

शंकर की पिंडी उसके करों में स्थित थी एवं प्रणव का उच्चारण करते हुए रह-रह कर उसकी दृष्टि के समक्ष उन दिव्य नंग-धड़ंग महात्मा का मुखमंडल आकार लेता घूम जाता था। हिमगिरि के उत्तुंग शिखर पर वे महात्मा किसी तपस्वी की तरह इस भीषण हिमपात में भी नंग-धड़ंग स्थिर हो उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे। महात्मा पर दृष्टि पड़ते ही उनका स्निग्ध स्मित महा के अंतरतम के लिए एक अमूल्य निधि हो चला था।

महात्मा के चरण-कमल पर शीश धरते ही महा के लिए जैसे कोई ईशकृपा धरा पर उतर आई थी। जीवन स्वयं, स्वयं के प्रति गहरे भाव को झलकाने लगा था। जागरण की इस घड़ी भीतर भाव गहराकर श्रद्धा में परिणत हो गया था एवं महात्मा की अगाध प्रेम झलकाती वाणी में जैसे अखिल ब्रह्मांड महामंत्रों के जाप से गूँज उठा था। महात्मा ने मात्र इतना कहा था-

''इन घड़ियों में मात्र मेरा अनुसरण करते पग बढ़ाते रहो।''

हृदय-गोमुख से महा के लिए मानो भाव रूपी गंगा बहने लगी थी। किसी अनुयायी का रूप धर श्वेत आवरण से लिपटी प्रकृति में महा, हिमाच्छादित शिखरों में फैले दुर्लभ रहस्यों को आत्मसात् करता हिम से ढँकी पगडंडियों पर उन दिव्य महात्मा का अनुसरण करता, पग बढ़ा रहा था।

पहर बीतने से कुछ घड़ियों पूर्व अब वे दोनों एक कंदरा के समक्ष आ खड़े थे। अत्यधिक शीत से महा काँप रहा था कि महात्मा के दिव्य स्वर इस सुसघन नीरवता में पुनः गूँज उठे-

''आओ मेरे साथ इस कंदरा में प्रविष्ट हो जाओ।''

एक स्वर्गालिंगनकारी ज्ञान की अनुभूति में महा, महात्मा का अनुसरण

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

करता उस कंदरा में प्रविष्ट हुआ।

दीये की मद्धिम लौ में कंदरा प्रकाशित हो रही थी। मध्य में एक व्याघ्रचर्म स्थित था जिस पर एक ऊनी कंबल एवं कमंडलु रखे हुए थे। महा को कंबल ओढ़ाकर अब वे महात्मा सूखे काष्ठ के टुकड़ों से अग्नि प्रज्वलित कर रहे थे। महा अब भी ठिठुर रहा था। अग्नि के प्रज्वलित होते ही महात्मा ने अपने नेत्रों के इशारे से महा को अग्नि के समीप बैठने को कहा। महा अब प्रज्वलित अग्नि के समक्ष बैठा था और काया में उष्णता आने लगी थी। शंकर की पिंडी उसके समीप ही धरा पर स्थित थी।

अग्नि के दूसरे छोर पर महा के समक्ष स्थिर हो, अब महात्मा अपनी दिव्य दृष्टि से मानो महा का ललाट पढ़ रहे थे एवं घड़ी भर में ही कंदरा उनके दिव्य स्वर से गुंजायमान होने लगी-

''चिताग्नि के समीप अपने जीवन की प्रथम साँसों को लेते हुए तूने जिस उष्ण गोद का अनुभव पाया था, वही आद्यशक्ति के एक अंश मातृशक्ति से तेरा प्रथम परिचय था। काशी विश्वनाथ के आवाहन से ही तुझे काशीवास उपलब्ध हुआ था, जहाँ सुरों को साधते उस मुसलमान वृद्ध से तूने उन पौराणिक कथाओं को सुना था जिनका रहस्य तेरे भावी की कोख में छिपा है।

दो वर्ष की आयु में पंचक्रोशी यात्रा एवं मात्र तीन वर्ष की आयु में महाश्मशान मणिकर्णिका की चिताभस्म को स्वयं की काया पर मलना शिव के अनुग्रह के बिना संभव नहीं। कभी स्वप्न में कबीर से जीवन के ज्ञान का पाठ, तो कभी तुलसी के माध्यम से कामवासना का भस्म होना भी शिव की अनुकंपा ही थी। अरे मूर्ख! रामलीला में हनुमान के स्थान पर जिस ब्राह्मण के तूने दर्शन किए थे उसे भले तू स्वयं का भ्रम मान रहा था, परंतु वह तुलसी रूपी हनुमान नहीं अपितु 'भृत्यमर्कटरूपधृक्' अर्थात् श्रीराम के सेवक वानर हनुमान का रूप धारण करने वाले साक्षात् शिव थे।''

महा को प्रतीत हो रहा था कि महात्मा का प्रत्येक शब्द मन-मस्तिष्क पर बिखरता उस कोहरे की चादर को निर्मित कर रहा है, जिसमें काशी के समस्त घाट छिपते रहस्यमय हो उठते हैं। अब भी यह उसकी समझ के परे था कि ये

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

महात्मा उसके अतीत को एक खुली पुस्तक की तरह शब्द-दर-शब्द कैसे पढ़ रहे हैं?

महात्मा का स्वर अब भी उसके कानों में गूँज रहा था-

''शव पर बैठ अघोर तंत्र की साधना तेरा पथ नहीं था इसलिए उस अघोरी ने भी तुझे मार भगाया था। अखाड़ा, कबीर चौरा एवं बुढ़वा मंगल तेरा गंतव्य नहीं थे, वहाँ तो काशी विश्वनाथ की लीला तुझे भटका रही थी। उन महात्मा के मुखश्री से मुखरित गंगा के स्वरूपों का जिस दिवस तुझे भान होगा, उस दिवस तो तेरे इस खोखले अस्तित्व का कण मात्र भी न बचेगा। माँ काली के चरणों में निपतित शव का रूप धारण करते शिव को वह कभी नहीं जान सकता, जो माँ के मुख से मात्र इतने शब्द सुन कि 'तू मेरा पुत्र नहीं', स्वयं को कीट के समान रेंगता-घसीटता मान ले। काया पर लगा वह चिपचिपा कलंक ही तो शिव का तुझ पर परम अनुग्रह था। उस घड़ी के उन शब्दों के कारण ही तू आज यहाँ मेरे समक्ष है। जब काशी विश्वनाथ भी चांडाल का रूप धर सकते थे, तो तू क्यों स्वयं के उस रूप को घृणास्पद मान रहा था?''

एक तीव्र अश्रुधारा महा के नेत्रों से बह रही थी एवं उसे प्रतीत हो रहा था मानो अतीत का अंधकार आज लावे का रूप धर उसे पिघला देगा। महात्मा अब भी धाराप्रवाह बोल रहे थे-

''तत्त्वमसि एवं भस्म त्रिपुंड का रहस्य तो एक साधना के पश्चात् ही खुलता है। जिस तिरछे मंदिर पर तू स्वयं के उद्गम स्थान को गंदा नाला समझ रहा था, उसको आज अच्छी तरह जान ले कि जगत् में प्रत्येक माँ, गंगा से भी अधिक पवित्र होती है। तेरी जननी भी यशोदा के समकक्ष ही शिवभक्त योगिनी थी और उसी का अंश तू उसे कोस रहा था। महाश्मशान मणिकर्णिका पर उन फ़क़ीर ने ठीक ही कहा था कि ''जो मातृशक्ति को नहीं पहचान सकता वह परम आद्यशक्ति को क्या जानेगा?''

महा को प्रतीत हो रहा था जैसे महात्मा का प्रत्येक शब्द उसके मानस घोड़े पर चाबुक की तरह पड़ रहा है एवं वह उन्हें सुनता काँप रहा था। महात्मा अब भी बोल रहे थे-

''गुरु की तृष्णा के मायापाश से बँधा तू पशु, पशुपति के सभी अनुग्रहों

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

की उपेक्षा कर रहा था। पशुपति ही बेचारे व्याकुल होते पशु को इस पाश से मुक्ति देने कभी बुद्ध, तो कभी कबीर या तुलसी का रूप धर इस धरा पर अवतरित होते हैं। जब मलेच्छों के आक्रमण से सारे देवालय एवं देवमूर्तियाँ खंडित हो रही थीं, तो हृदय गुहा में कहीं मानव की श्रद्धा बुझती ज्योति के सदृश बुझ न जाए इसलिए कबीर ने आकृतिहीन ईश्वरीय सत्ता को निर्गुण के रूप में गाकर, पुनः श्रद्धा की उस ज्योति को मानव हृदय गुहा में प्रज्वलित किया था।

पर जब मूढ़ मानव ने उस निराकार ईश्वर को थामकर साकार की ओर से मुख फेर लिया एवं अंततः निराकार को भी बिसार उस ज्योति को बुझा दिया, तब धरा पर तुलसी अवतरित हुए एवं 'रामचरितमानस' रूपी गंगा के प्रवाह से पुनः मानव के हृदय में साकार राम की प्राणप्रतिष्ठा की। परंतु तू पशु उनका साक्षात्कार कर के भी उन्हें नहीं समझ पाया। अरे मूर्ख! शिष्य गुरु को नहीं अपितु गुरु शिष्य को खोजता है, गुरु तो वह मेघ है जो शिष्य के हृदय की धरा के दग्ध होते ही बरस पड़ता है। आज स्वयं तेरा गुरु तेरे समक्ष खड़ा है एवं न सिर्फ़ आज अपितु वह तो जन्म-जन्मांतर से तेरे साथ ही था, परंतु तेरे हृदय की धरा इतनी दग्ध न थी कि वह बरस पड़ता।''

महा भाव-विभोर हो उठा था। उसे लग रहा था जैसे स्वयं की समस्त अपूर्णता के बावजूद भी आज उसकी जन्म-जन्मांतर की खोज ख़त्म हो गई हो एवं ईश्वरीय वाणी को गुंजारित करते गुरु अपनी संपूर्ण अनुकंपा के साथ आज बरस रहे हों। हृदय की जन्म-जन्मांतर की दग्धता आज शांत हो असीम तृप्ति को उपलब्ध हो गई थी।

घड़ी भर के मौन के पश्चात् दिव्य गान उठाते महात्मा पुनः बोल उठे-

''इस शंकर की पिंडी के आलोक से अभी तू वंचित है। इस घड़ी भी यह वैदिक ऋचाओं का ज्ञान कराती तेरे पाशों को काट रही है। इस सृष्टि में ऐसा कोई कण नहीं जहाँ शिव नहीं बिराजते। तेरी काया एवं इस पिंडी में कोई भेद नहीं, यह पिंडी ही तो आत्मा का उपलक्षण है। दीक्षा के पश्चात् साधना के पथ पर अग्रसर हो जब तू द्वादश ज्योतिर्लिंग के स्थलों की परिक्रमा करेगा, तब तुझे भी ज्ञात होगा कि शिव संपूर्ण ब्रह्मांड में उसी तरह ओत-प्रोत भाव से स्थित

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हैं जैसे सूत में मनके पिरोए होते हैं। आज तू मात्र इतना जान ले कि क्यों पंचतत्त्व तुझे सखावत् प्रतीत होते थे? ये पंचतत्त्व भी शिव के अतिरिक्त कुछ नहीं, फिर क्या आदित्य, क्या शशि एवं क्या तेरी आत्मा? पाश के कटते ही तू पशु जान लेगा कि संपूर्ण ब्रह्मांड पशुपति के अतिरिक्त कुछ नहीं।''

महा की दृष्टि गुरु के तेजोमय मुखमंडल पर स्थिर थी एवं महात्मा यथावत् धाराप्रवाह बोल रहे थे-

''साधना के पथ पर विचरते हुए तुझे भी ज्ञात होगा कि शिव ही शर्व के रूप में पृथ्वी को सृजित करते स्वयं के आकार 'शार्वी' रूप में ध्यानमग्न हैं। शिव ही जल के नियामक हो समस्त प्राणों का नियमन करते 'भावी' रूप में मदमस्त हैं। अंतराग्नि एवं बाह्याग्नि के अध्यक्ष शिव ही रुद्र के रूप में सृष्टि के देवालय में 'रौद्री' रूप धर प्राणप्रतिष्ठित हैं। अखिल विश्व को गति प्रदान करती जीवनदायी वायु को उग्र शिव ही सृजित करते, विश्व में 'औग्री' रूप में विचरते हैं। सर्वस्व को अवकाश देते आकाश के प्रधान भीम रूप शिव, 'भैमी' स्वरूप में उसे देख स्निग्ध स्मित फैलाते हैं। शिव ही परमात्मा 'पशुपति' बन सर्वात्मा में स्थित हो परमानंद के गीत उठाते हैं।

आदित्य भी 'ईशान' शिव से उठती अनंत प्रकाश फैलाती रश्मियों के प्रकाश से स्वयं की दिव्यता उठाता है। शिव रूपी 'महादेव' से ही अमृत का पान कर चंद्र-किरणें अखिल विश्व में सुधा-सलिल को प्लावित करती हैं, अर्थात् ब्रह्मांड का कण-कण शिव के ओज से ही ओजस्वी है।''

महा के लिए परम अलभ्य जैसे सर्वथा सुलभ हो गया था। स्वयं के कोमल भावों को अपने कर में लिए वह इस कंदरा रूपी शिवालय में अग्नि के समक्ष खड़े नंग-धड़ंग गुरु रूपी शिव के चरणों में अर्पित कर रहा था। आँखों से आनंदातिरेक में अब भी अश्रुधारा बह रही थी कि भाव के बीच एक सूनी घड़ी के मध्य अचानक वह भय से काँप उठा। इस घड़ी महा देख रहा था कि एक सात-आठ फुट लंबा काला नाग कहीं से सरकता कंदरा में आ पहुँचा था एवं इस घड़ी वह महात्मा के पग पर से होता हुआ ऊपर की ओर प्रशस्त होने लगा था।

अभी भयभीत महा कुछ बोल पाता कि महात्मा ने उसे नेत्रों के इशारे

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

से मौन रहने को कहा। अब वह नाग महात्मा के कंठ पर कुंडलियाँ लपेट एवं फन फैलाता महा की दृष्टि में स्वयं की दृष्टि गड़ाता जिह्वा लपलपाते हुए इधर-उधर डोलने लगा था। मौन में महा अब भी काँप रहा था। तभी विद्युत् वेग से मन में विचार कौंधा कि यह तो वही नाग है जिसे उसने मणिकर्णिका महाश्मशान पर अर्द्धरात्रि में लकड़ियाँ हटाते समय देखा था।

अभी वह आगे कुछ सोचता इससे पूर्व ही महात्मा बोल उठे-

''सर्वप्रथम शिव के इन आठों साकार स्वरूपों का साक्षात्कार कर, प्रथमत: जल का सृजन होता है। इसके पश्चात् यज्ञ-कर्म में लिप्त आत्मा, यज्ञ में यज्ञ सामग्री की आहुति अर्पित करती अग्नि को जन्म देती है। शब्द गुण से युक्त व्योम सबको अवकाश देता है, तो वायु प्राणों को फूँकती सभी को प्राणवान् बनाती है एवं बीज इत्यादि को उत्पन्न करने वाली पृथ्वी, आकाश में अवकाश ग्रहण कर सृष्टि सृजन के कार्य को प्रशस्त करती है। आदित्य और शशि, दिवस और रात्रि की भाषा में काल को दर्शाते हैं।''

''सभी कुछ तो तेरी दृष्टि के समक्ष था। शिव स्वयं के रूपों को अनगिनत बार तेरी दृष्टि के समक्ष ला, उनके स्वरूप का भान करवाने का प्रयत्न कर रहे थे। पाँचों तत्त्व सखा बन तेरे घावों पर मरहम लगाते थे। कबीर और तुलसी तुझे अवगत करा रहे थे- 'शिव ही प्रलय की घड़ी संपूर्ण ब्रह्मांड को भस्म कर स्वयं के निराकार लिंग में समाहित कर लेते हैं एवं अपनी ही लीलाशक्ति में सर्वप्रथम स्वयं के ही साकार लिंग की कल्पना करते हैं।' ''

''मुक्तिदायिनी काशी में काशी विश्वनाथ ही तुझे दुलारते महाश्मशान मणिकर्णिका पर जन्म एवं मरण, सगुण एवं निर्गुण इत्यादि रहस्यों का ज्ञान करा रहे थे और तू पशु मात्र एक कथन के पाश में जकड़ पशुपति को भुला बैठा। और तो और काशी विश्वनाथ के समक्ष स्वयं के क्रोध में यह प्रतिज्ञा ले बैठा कि इतना निश्चित जान ले कि अब अपनी अंतिम साँस तक इस धरा पर मैं कभी यह नहीं सुनूँगा-

'पर याद रख मैं तेरा गुरु नहीं।' ''

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

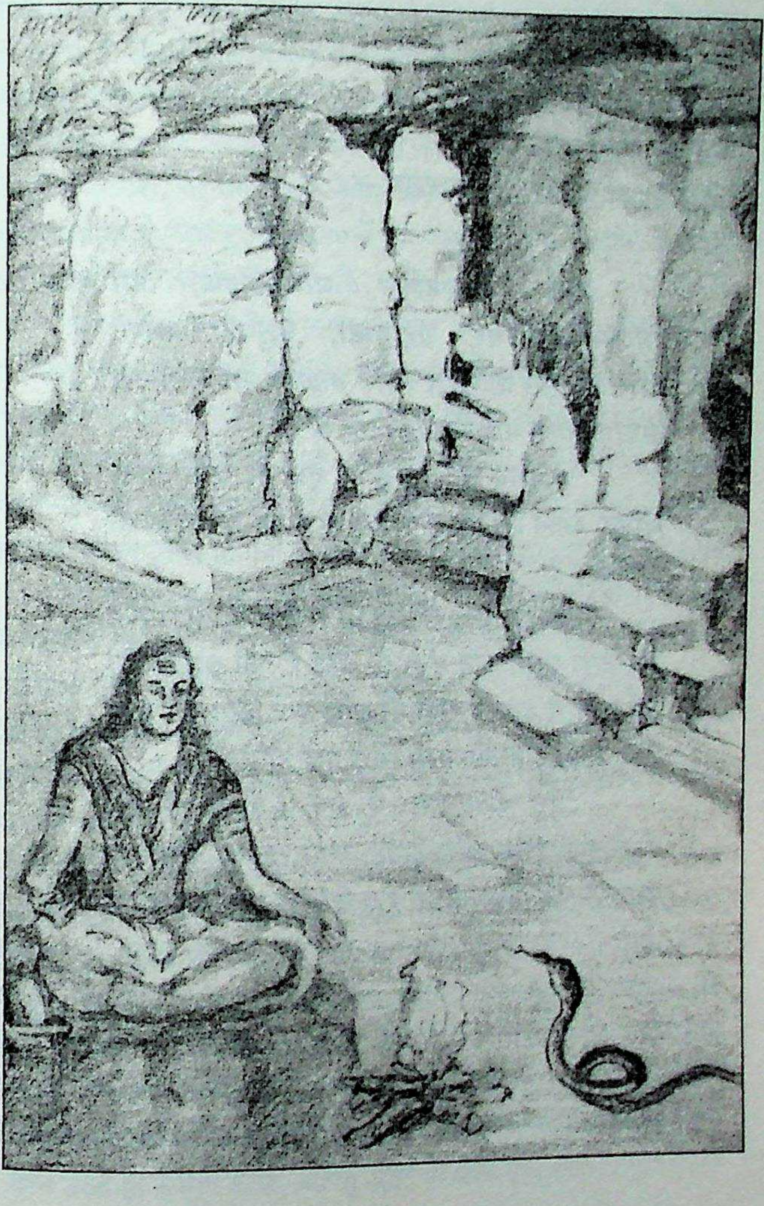

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अध्याय-४८

आज महाश्मशान मणिकर्णिका पर ओजस्तेजोद्युतिधर, ब्रह्मसृष्टा, पशुपति काशी विश्वनाथ हंस के सदृश चलते ब्रह्मानंद रस के प्रेम में अमर अनाहत नाद निनादित कर रहे हैं-

"मैं शिव ही परब्रह्म हूँ एवं मेरे प्रति ज्ञान, भक्ति, ध्यान एवं व्रत ही शिवपूजा है एवं शिवपूजा ही शिवयोग है।"

"मेरे इस योग में पूजा के दो मार्ग हैं, अंत:पूजा एवं बाह्य पूजा। अंत:पूजा ही श्रेष्ठ है, जो बाह्य लिंग की पूजा से उत्पन्न होती है। बाह्य इष्ट लिंग की पूजा किए बिना अंतर्लिंग पूजा सिद्ध नहीं होती।"

"मेरी शिवपूजा में मन एवं प्राणों का निश्चलतापूर्वक इंद्रियनिग्रह करने वाला जीव ही शिवयोग को उपलब्ध हो मुझ शिव से एकाकार करता है।"

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

ऐसा प्रतीत हो रहा था जैसे कोई प्राण-शक्ति महा की काया में आ समाई थी एवं संपूर्ण विश्व के प्रेम स्पंदनों से महा का हृदय धड़क रहा था। गुरु की काया से उठता देदीप्यमान प्रकाश हृदय में आसीन हो चला था। भीषण हिमपात, अत्यधिक शीत, दृष्टि के समक्ष प्रज्वलित अग्नि से प्राप्त उष्णता, नाग का डोलता फन एवं गुरु की ओजमयी वाणी सबके सम्मिश्रण से महा कब निद्रामग्न हो गया, यह उसे ज्ञात न हुआ। कैसी विचित्र क्रीड़ा में मग्न है माया! जन्म-जन्मांतर से जिस गुरु की खोज में प्राण अकुला रहे थे, वे दृष्टि के समक्ष खड़े थे एवं निद्रा नियति हो चली थी।

प्रात: जब नेत्र खुले तो कंदरा के बाहर का प्रकाश कंदरा में झाँक रहा था, परंतु कंदरा में इस घड़ी अंधकार व्याप्त था। रात्रि की प्रज्वलित अग्नि शांत हो गई थी एवं निकट रखे दीये की लौ भी अत्यधिक मंद हो गई थी। दृष्टि के समक्ष इस घड़ी न तो गुरु थे, न ही वह काला नाग। कंदरा में स्वयं को एकाकी पाकर महा की चेतना डगमगा उठी थी। घड़ी को तो उसे ऐसा प्रतीत हुआ जैसे नाड़ी का स्पंदन स्तब्ध हो गया था एवं भयभीत व्याकुल वह उठ खड़ा हुआ था।

गुरु को कंदरा में न पाकर प्रत्येक घड़ी अतिदीर्घ हो चली थी। प्रात: की इस बेला में वह आँख गड़ाए कंदरा के बाहर झाँक रहा था, परंतु सर्वत्र हिम के अतिरिक्त कुछ भी दृष्टिगोचर नहीं हो रहा था। मन में यह भाव प्रवेशित हुआ कि क्या वे प्रयाग के सदृश उसे पुन: अकेला छोड़ गए? यह भाव आते ही स्वत: उसके नेत्र अश्रुओं से भर आए एवं कंबल ओढ़ता वह दौड़कर कंदरा से बाहर आ गया था।

विगत दिवस हुए भीषण हिमपात के कारण सर्वत्र हिम की एक मोटी परत फैली थी। जैसे ही वह कंदरा से बाहर निकल आगे पग बढ़ाने लगा, तो हिमपात पुन: प्रारंभ हो गया। पग आगे धरते ही संपूर्ण पग हिम में धँस रहा था एवं कुछ पग बढ़ाना भी अब उसके लिए दूभर हो चला था। अभी विगत रात्रि ही तो वे दीक्षा के संबंध में कह रहे थे, यह ध्यान आते ही अश्रुधार और तीव्र हो चली थी। क्या नियति नटी काल को माध्यम बना उसे पुन: छल रही थी? क्या काल की लपलपाती ज्वाला ने पुन: उसकी दीक्षा को लील लिया था? मन में प्रश्न उठते ही न मात्र काया, अपितु अंतर भी काँप उठा था।

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कुछ पग आगे धरते ही मानो संपूर्ण पीड़ा को घड़ी भर में ही हर्ष ने हर लिया था। दृष्टि के समक्ष एक हिमाच्छादित चीड़ वृक्ष के निकट ही उसे दिव्यता उठाते नंग-धड़ग गुरु के दर्शन हुए। वे कंदरा की ओर ही लौट रहे थे। शुभ्र आत्मिक स्त्रोत से उसके लिए उठते एक ज्वलंत प्रेम को महा ने उनकी दृष्टि में पढ़ लिया था। उनके कर में किसी वृक्ष के हरित पर्ण थे। महा तेज़ी से उनकी ओर पग बढ़ाता उनके चरणों में जा गिरा। इस घड़ी वह फूट-फूट कर रो रहा था। इस नंग-धड़ंग महात्मा के शीश, स्कंध, कंठ में स्थित रुद्राक्ष की माला एवं बाहर निकले उदर पर हिमकण फैले हुए थे, परंतु आश्चर्य कि शीत का उन पर कोई प्रभाव न था।

अब अत्यंत ही प्रेम से उन्होंने अपने करों को बढ़ाकर महा को उठा, अपने आलिंगन में बद्ध कर लिया था। इस आलिंगन में जैसे महा की जन्म-जन्मांतर की यात्रा पूर्ण हो गई थी। अश्रु अब भी यथावत् बह रहे थे परंतु उनकी गुणवत्ता में अंतर था। भय के स्थान पर अब आनंदातिरेक में अश्रुधार बह रही थी। अब दोनों पुनः कंदरा में लौट आए थे एवं महात्मा ने काष्ठ के टुकड़ों से पुनः अग्नि को प्रज्वलित कर दिया था। अत्यंत स्नेहपूर्ण वाणी में उन्होंने महा के कर में उन हरित पर्णों को धरते हुए कहा-

"ले इसे खा ले, देह में उष्णता आ जाएगी।"

पर्णों का सेवन करते ही अत्यधिक शीत से कँपकँपाता महा अब अपनी काया में उष्णता महसूस करने लगा था।

"इतने महिमामयी होकर भी कितने सरल हैं ये कि इस भीषण शीत में हिमपात के मध्य वे मेरे लिए ये पर्ण लाने गए थे!" यह सोचते महा का हृदय भर आया एवं अगाध श्रद्धा लिए वह गुरु को तकने लगा था।

नित्यकर्म के पश्चात् महात्मा एवं महा कंदरा में एक-दूसरे के समक्ष बैठे थे। दोनों के मध्य प्रज्वलित अग्नि उष्णता प्रदान कर रही थी। व्याघ्रचर्म पर विराजमान महात्मा अब महा की दृष्टि में स्वयं की दृष्टि गड़ाते बोल उठे-

"संकीर्ण चेतना को जीते हुए तूने व्यर्थ ही नित्य गंगा-स्नान को छोड़ एवं काशीवास रूपी तपस्या को भंग कर, उस घड़ी को आगे बढ़ा दिया जब तू जीव, शिव से एकाकार हो सकता था।"

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

"सालोक्य-मुक्ति, सारूप्य-मुक्ति, सान्निध्य-मुक्ति एवं सायुज्य-मुक्ति तेरे निकट ही थी, परंतु तूने घड़ी भर भी उसकी ओर ध्यान न दिया। शिव के लोक में विचरना ही सालोक्य-मुक्ति है एवं शिवरूप होना ही सारूप्य-मुक्ति, शिव के सान्निध्य में रहना ही सान्निध्य-मुक्ति है एवं शिव के साथ एकाकार ही सायुज्य-मुक्ति।"

"मन को ज्ञान से रिक्त करना ही ध्यान है एवं ज्ञान, अतीत के अलावा कुछ नहीं। तू उन अतीत की घड़ियों से चिपटकर ही सारी मुक्तियों को स्वयं से दूर कर बैठा। इस मुक्ति का घड़ी भर भी दर्शन होते ही तुझे स्वत: कबीर की उस पहेली का भान हो जाता है कि-

'आकाश में बिना जड़ के एक वृक्ष फैला है। यही वृक्ष तो निराकार शिव है। इसी वृक्ष पर बिना फूल के फल लगते हैं अर्थात् उनकी कल्पना मात्र से ही यह सृष्टि रूपी फल सृजित हो जाता है। इस अनंत ब्रह्मांड में कोई उस निराकार शिव रूपी वृक्ष की शाखा एवं पत्तियों को नहीं देख सकता, क्योंकि निराकार का कोई आकार नहीं। अत: न तो कोई शाख़ है, न ही पत्ती। इस वृक्ष पर एक पक्षी बिना पाँव के नृत्य कर रहा है और बिना हाथ के ताल देता, बिना जिह्वा के गा रहा है अर्थात् निराकार परमात्मा का अंश आत्मा ही वह पक्षी है जिसकी कोई रूपरेखा नहीं, फिर भी वह परब्रह्म के गान में लीन, ताल देता नृत्य कर रहा है। परमात्मा रूपी शिव-वृक्ष ने ही तो आठों दिशाओं के आकाश को आच्छन्न कर रखा है एवं आत्मा रूपी पक्षी इस अखिल व्योम में मछली के मार्ग को जल में ढूँढ़ रहा है, अर्थात् उसे परमात्मा शिव से आत्मा के एकाकार का कोई मार्ग दृष्टिगोचर नहीं हो रहा है। यह तो स्वयं परमात्मा शिव की ही अनुकंपा है कि वे आत्मा को स्वयं से एकाकार कर लेते हैं।' "

महा की दृष्टि महात्मा को ऐसे तक रही थी मानों ईश्वर स्वयं उसके समक्ष बैठा ब्रह्मांड के रहस्यों को उघाड़ रहा है। स्वयं के भाग्य के दर्पण में कबीर किन रहस्यों को प्रतिबिंबित कर रहे थे, इसका ज्ञान महा को इस घड़ी हो रहा था। कबीर के दृष्टि के समक्ष घूमते ही आत्मलघुता में महा के नेत्रों से अश्रु छलकने को ही थे कि गुरु के क्रोधित स्वर कर्णपटल पर गुंजायमान हो उठे-

"बस! बहुत प्रवाहित हो लिया भाव के जगत् में। भाव कितना भी सत्य

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हो, सीमाबद्ध होता है एवं तुझे सारी सीमाओं को लाँघकर मुक्त होना है। यदि ऐसा न होता तो कबीर एवं तुलसी जैसे महात्मा कभी तेरा परित्याग न करते।''

गुरु के क्रोधित स्वर सुनते ही जैसे किसी शक्ति ने उसे भाव से ऊपर किसी उच्चावस्था में प्रतिष्ठित कर दिया था एवं कबीर का मुखमंडल उसी घड़ी दृष्टि से ओझल हो गया था। अश्रु जस के तस थम गए थे एवं वह नम नेत्रों से गुरु को श्रद्धापूर्वक देख रहा था। कुछ घड़ी के मौन के पश्चात् मानों अदृश्य ईश्वर वाणी पुनः कंदरा में गूँज उठी और महा देख रहा था कि गुरु फिर वाणी उठाने लगे हैं-

''इस माया के जगत् में तू भले ही काशी एवं काशी विश्वनाथ को ठुकरा बैठा, परंतु वे तुझसे एक घड़ी भी विमुख न हुए। कबीर एवं तुलसी तो मात्र तुझमें शिवत्व जगा रहे थे एवं यह भी काशी विश्वनाथ की ही अनुकंपा एवं लीला थी। उन्हीं के अनुग्रह से तुझे वास्तविक काशी के रहस्य का ज्ञान होगा। इसके पश्चात् ही तू जानेगा कि शिव की करुणा क्या है?''

''जीव-पशु कभी ज्ञात नहीं कर सकता कि शिव के तृतीय नेत्र खुलने का अभिप्राय क्या है। वह तो उसे मात्र प्रलय का संकेत ही मानता है।'' महा अब अवाक् गुरु को देख रहा था एवं गुरु की वाणी मानो किसी दिव्य संदेश के आगमन की ओर इंगित कर रही थी।

''जो स्वयं के अंतर की काशीपुरी से अनभिज्ञ है, वह शिव के तृतीय नेत्र को क्या जानेगा? उस परम शिव से एकाकार ही काशी विश्वनाथ को काशी में पुनः प्राणप्रतिष्ठित करना है।

अखिल ब्रह्मांड का प्रत्येक पदार्थ भिन्न प्रतीत होता है। काष्ठ एवं अग्नि तुझे इस घड़ी भिन्न प्रतीत हो रहे हैं एवं इसी अज्ञान नेत्र की क्रियाशीलता के कारण ही इस घड़ी तू द्विनेत्र है। ज्ञान नेत्र के खुलने से सभी पदार्थों की अभिन्नता स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। ज्ञान एवं अज्ञान दोनों ही नेत्र विश्व प्रकृति का दान हैं परंतु इन दोनों नेत्रों के अतीत हो, दोनों का अधिकारी बन जीव त्रिनेत्र पद पर अधिष्ठित होने की पात्रता ग्रहण करता है। निर्विकल्प समाधि ज्ञान नेत्र के खुलने का परिणाम है परंतु उसके भंग होते ही पुनः अज्ञान का प्रादुर्भाव हो जाता है। कभी ज्ञान तो कभी अज्ञान नेत्र की शक्तियों को विकल्पित रूप से स्वयं के

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

व्यवहार में ला जीव, त्रिनेत्र पद पर शोभायमान हो सकता है एवं मैं तुझे उसी पर अधिष्ठित करने का माध्यम मात्र हूँ। पथप्रदर्शक मैं हूँ परंतु पथ तुझे ही तय करना है।''

आज मानो महा का भाग्य ईश्वर के प्रति यज्ञ हो चला था, परंतु इस ईश्वरीय यज्ञ में उतरती वैदिक ऋचाएँ अब भी उसकी समझ से परे थीं एवं वह स्तब्ध अवाक् गुरु की वाणी को सुन रहा था। महात्मा अब भी धाराप्रवाह बोल रहे थे- .

''परम शिव के ज्ञान का एक कण भी तुझे महाज्ञानी बना सकता है एवं सद्गुरु ही परमात्मा शिव का माध्यम बन दीक्षा देकर उस दिव्य ज्ञान का संचार करता है। सारी इंद्रियाँ सदैव विरुद्ध शक्तियों के पाश में बँध सुख-दुःख, मान-अपमान, अपना-पराया, श्वास-प्रश्वास का अनुभव करतीं माया से बद्ध हैं। किसी घड़ी एक शक्ति तो दूसरी ही घड़ी द्वितीय शक्ति स्वयं की ओर आकर्षित करती हैं। मानव के भीतर के पाँचों कोश, यहाँ तक कि सूक्ष्म अणु-परमाणु तक भी इन विरुद्ध शक्तियों की क्रीड़ा में मग्न रहते हैं एवं यही संघर्ष का कारण है। साथ ही साथ प्रेम, शांति, मैत्री इत्यादि सद्गुणों का अभाव भी इसी के कारण है, परंतु दोनों शक्तियों के मध्य बिंदु पर साम्यावस्था अव्यक्त होकर भी मुक्ति का मुख्य मार्ग है।''

''सारनाथ से बहता उत्तरी समीर पंचगंगा घाट पर बुद्ध के इसी मध्य मार्ग का संदेश तुझे ला सुनाता था, परंतु स्वयं के अज्ञान में तू कुछ भी न समझ पाया। वह बौद्ध भिक्षु भी तुझे यह संदेश दे गए थे कि जैसी तेरी गंदी काया है, वैसी मेरी भी। फिर भी तू न जान पाया कि वह किसकी ओर इंगित कर रहे थे।''

अब महा के भीतर एक प्रचंड आँधी उठ रही थी कि ये महात्मा उसके अतीत की हर घड़ी को उससे अधिक जानते हैं, जबकि कुछ घड़ियों को तो वह स्वयं भी भुला बैठा था। कुछ घड़ी के मौन के पश्चात् महात्मा पुनः बोल उठे-

''शिव ही परब्रह्म हैं एवं उनके प्रति ज्ञान, भक्ति, ध्यान एवं व्रत ही शिवपूजा है एवं शिवपूजा ही शिवयोग है। शिवपूजा में मन एवं प्राणों का निश्चलतापूर्वक इंद्रियनिग्रह करने वाला जीव ही शिवयोग को उपलब्ध होता उस मध्य भूमि पर योगी का रूप धर जब विराजता है, तो साम्य की अवस्था में एक

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कल्पनातीत तेज के प्रवाह का उसे अनुभव होता है एवं इस तेजोमयी ऊर्जा का ऊर्ध्वारोहण ही कुंडलिनी जागरण है। इस अग्निमय तेज का प्रवाह तीव्र होने पर भी दोनों पार्श्व विरुद्ध शक्तियाँ इसे अपनी ओर खींचती हैं एवं इसी कारण इसकी चाल सर्पिल हो जाती है। इस महिमामय तेज की शक्ति के समक्ष एवं प्रवाह के तीव्र वेग से दोनों ही पार्श्व शक्तियों का आकर्षण-विकर्षण शनैः-शनैः लुप्त होता जाता है, साथ ही समस्त संस्कार भी शून्य हो जाते हैं। अंततः ये वाम एवं दक्षिण विरुद्ध शक्तियाँ भी शून्य हो जाती हैं। उस घड़ी मध्यमार्ग से ऊर्ध्वारोहित यह तीव्र अग्निमय प्रवाह भी शून्य हो जाता है एवं तृतीय नेत्र खुल जाता है। इसके खुलते ही काया, मन, प्राण, बुद्धि और तो और सभी प्राकृतिक तत्त्व शांत हो, आत्मबोध की इस घड़ी तेजोमयी दिव्यता से चमचमा उठते हैं। अब आत्मा स्वभावतः अनात्मा से पृथक् होकर समस्त प्राकृतिक आवरणों से मुक्त हो, शुद्ध चैतन्य स्वयं के शिव स्वरूप में प्रतिष्ठित हो जाता है। इस घड़ी ज्ञानोदय में देह बोध लुप्त हो जाता है अर्थात् देह मरण को उपलब्ध हो जाती है। यही काशी मरणान्मुक्ति है क्योंकि भ्रूमध्य तक षट्चक्र का विस्तार ही काशी है।''

''परमात्मा की अनुकंपा से सद्गुरु अनंत करुणा से प्रेरित होकर देह रूपी काशी में कुंडलिनी के ऊर्ध्वगमन रूपी काशीवास की तपस्या के फल के रूप में, पूर्ण ज्ञान एवं क्रियाशक्ति के प्रभाव से जन्म-जन्मांतर के पाश में बद्ध जीव पशु के पाश को काटकर, उसे पशुपति के पद पर प्राणप्रतिष्ठित करते हैं, जो काशी मरणान्मुक्ति के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है।''

''अब तेरी भी दीक्षा का समय निकट ही है। साधना के पथ पर शिवयोग में लीन होता तू भी जान सकता है कि अद्वैत भूमि पर देखना एवं दिखाना एक ही है। गुरु का दिखाना, शिष्य का देखना और दृश्य का अंत हो जाना, एक ही अखंड दिव्यता में चिद्-उज्ज्वल महासत्ता की तीन दिशाएँ हैं एवं यही काशी में काशी विश्वनाथ की प्राणप्रतिष्ठा है। अद्वैत के इस आँगन में आत्मा जो दृश्य देखती है, वह स्वयं भी वही होता है। जब अद्वैत के आँगन में शिव, गुरु और शिष्य सब अद्वैत हैं तो कभी सद्गुरु शिष्य से भिन्न नहीं, इसलिए वह मात्र इतना कहेगा-

'पर याद रख मैं तेरा गुरु नहीं।' ''

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

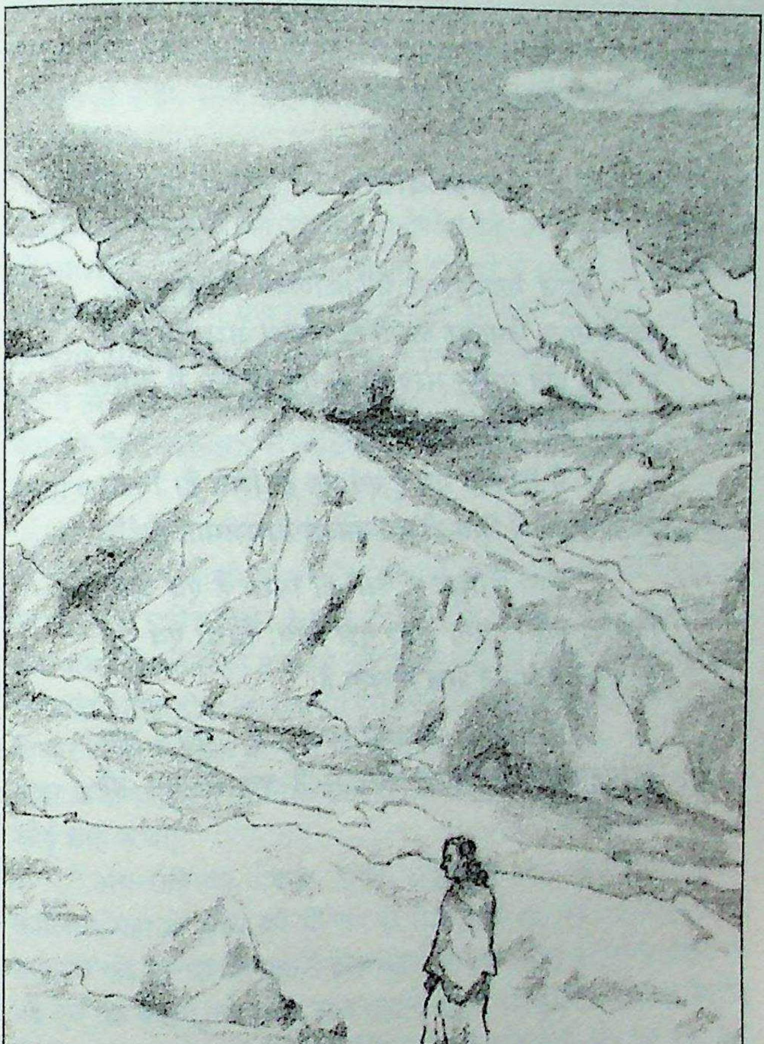

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अध्याय-४९

आज महाश्मशान मणिकर्णिका पर महारूप, वर्णाश्रमगुरु, जगद्गुरु काशी विश्वनाथ अध्यात्म योग में स्थित होते समस्त संस्कारों के गुरु के रूप में अमर अनाहत नाद निनादित कर रहे हैं-

''मैं शिव ही गुरु हूँ एवं गुरु ही शिव हैं। विद्या के स्वरूप में मैं शिव ही गुरु बनकर विराजमान हूँ।''

''जैसा मैं शिव हूँ वैसी ही विद्या है एवं जैसी विद्या है वैसे ही गुरु, अतः मुझ शिव, विद्या एवं गुरु के पूजन से समान फल मिलता है।''

''मैं शिव सर्वदेवात्मक हूँ एवं गुरु सर्वमंत्रात्मक, शुद्धि ही संस्कार है एवं संस्कार ही दीक्षा।''

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

गोमुख से कुछ ही कोस की दूरी पर स्थित महा के भाव अब वह चील बन चले थे, जो किसी भी घड़ी हृदय के घोंसले से उड़ती अनंत व्योम में विचरने लगती थी। जीवन का महान गहन उद्देश्य अब उसकी दृष्टि के समक्ष था। जीवन की समस्त पीड़ा, शोक एवं क्लेश को मानो गुरु ने अपने आलिंगन में बद्ध कर ही हर लिया था।

विगत दो दिवसों से महा मात्र यही देख रहा था कि गुरु केवल उसी घड़ी कंदरा में होते जब वे महा को कोई ज्ञानोपदेश देते, अन्यथा भले ही अर्द्धरात्रि हो या भीषण हिमपात, गुरु कहाँ अदृश्य हो जाते थे महा को ज्ञात नहीं होता था। इन दो दिवसों में मात्र एक घड़ी ही महा को बुद्धेश का विचार आया था, अन्यथा आनंदातिरेक की इन घड़ियों में मन की रिक्तता में कहीं कुछ शेष न था। न तो अब उसे माँ का ध्यान आता था, न ही इस्माइल चाचा एवं भूतू चाचा का। गुरु के भव्य ललाट से उठती दिव्यता ने मानो उसके संपूर्ण अतीत को हर लिया था।

आज तृतीय दिवस प्रात: से संध्या होने को आई थी, परंतु कंदरा में गुरु के दर्शन महा को घड़ी भर के लिए भी नहीं हुए थे। हिमपात अब भी हो रहा था। हृदय के प्रत्येक स्पंदन के साथ महा की दृष्टि कंदरा के मुख पर चली जाती थी। अब रात्रि भी घिरने लगी थी एवं प्रत्येक घड़ी बीतने के साथ महा के हृदय का स्पंदन तीव्र होता जा रहा था। इस अति सँकरे स्थल पर महा के प्राण इस विचार से ही व्याकुल हो जाते कि कहीं गुरु पुन: न लौटे तो? प्रश्न उठते ही श्रद्धा के उच्च्च शिखर पर विराजित महा उस गहरी खाई में लुढ़क जाता जिसकी कोई थाह न थी।

अब रात्रि का अंधकार पूर्णत: व्याप्त हो गया था एवं उससे उठती कालिमा महा के हृदय को भी तम से घेरने लगी थी। एक रहस्य हृदय को आक्रांत कर रहा था कि महा ने देखा कंदरा में सर्वत्र चंदन की सुगंध व्याप्त हो गई एवं वह काला नाग रेंगता हुआ महा के समक्ष आ कुंडली मार फन फैलाए बैठ गया। काष्ठ के टुकड़ों से प्रज्वलित अग्नि के प्रकाश में अब वह नाग फन फैलाता अपनी दृष्टि को महा की दृष्टि में गड़ाए डोलने लगा था, यदा-कदा वह अपनी जिह्वा भी लपलपा रहा था। उसकी दृष्टि से मानो कोई मद झरता महा को मदमस्त कर रहा था।

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

महा का मन पुनः रिक्त हो चला था। अत्यधिक शीत, अग्नि से प्राप्त उष्णता, सर्वत्र फैली चंदन की सुगंध एवं नाग की दृष्टि से झरते मद से तंद्रामग्न होता महा कब निद्रा में लीन हो गया, उस घड़ी का महा को ज्ञान न था। स्वप्न में आज न जाने कितने दिवसों के पश्चात् उसे पुनः कबीर के दर्शन हुए थे। पंचगंगा घाट के समक्ष बहती निर्मल गंगा में लगभग कमर तक जल में खड़े वे असीम दिव्यता उठा रहे थे। माघ मास की प्रातः थी एवं व्योम में सर्वत्र मेघ आच्छादित थे। शीतल समीर काया से टकरा रहा था एवं महा पंचगंगा घाट की सीढ़ी पर स्थित हो अत्यंत ही आशापूर्ण नेत्रों से कबीर की दिव्य देह को तक रहा था। इस घड़ी महा को प्रतीत हो रहा था कि कबीर के सदृश पुण्य महात्माओं के गंगा में स्नान करने से ही गंगा इतना सामर्थ्य प्राप्त करती है कि वह जीव मात्र को चार पुरुषार्थों का दान दे, दात्री का स्वरूप धर सके।

महा की ओर अत्यंत स्निग्ध भाव से देखते कबीर जल से निकल गंगा के बाहर आ रहे थे। गंगा से निकलने से पूर्व उन्होंने अपनी एक अँगुली को जल में डुबोया था। तत्पश्चात् घाट की सीढ़ी चढ़कर वे महा के समक्ष आ खड़े हुए थे एवं जल की एक बूँद को घाट की सीढ़ी पर टपका, उन्होंने अत्यंत स्नेहपूर्ण वाणी में कहा-

''ध्यान से इस बूँद को निहार एवं इस शून्य के आसन के ज्ञान को अर्जित कर। इस आसन पर आसीन होकर जो अगम के रस के प्याले का पान करता है, वह योग की मूल युक्ति को प्राप्त कर लेता है। इसके पश्चात् वह बेग़मपुर शहर का बाशिंदा हो जाता है जहाँ लेश मात्र भी ग़म नहीं, मात्र आनंद परिपूर्ण आनंद। यह तुझ पर जगदेव जगदीश्वर की अनुकंपा है कि अब तक किसी पंथ अथवा संप्रदाय से रहित तू उस शहर की ओर पग बढ़ा रहा था, जहाँ नेत्रों की अनुपस्थिति होते हुए भी मात्र ध्यान में अगम-अगाध दृष्टिगोचर होता है। इस शहर की ओर यात्रा करना अत्यंत दुरूह है, परंतु अब तुझे इसका पथ ज्ञात होने को है।''

आज महा को प्रतीत हो रहा था कि वह निद्रा में भी स्वप्न देख रहा है। कितने दीर्घकाल के पश्चात् आज उसने कबीर को पुनः सखावत् पाया था। अब वह कबीर के अंतिम कथन को सुनने के लिए तत्पर था तभी स्वप्न में उसने देखा कि अचानक कबीर पुनः घूमकर गंगा में उतर चले एवं अगली ही घड़ी

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

उन्होंने गंगा के जल में डुबकी लगा दी। अभी महा कुछ समझ पाता उससे पूर्व ही उसे दृष्टिगोचर हुआ कि जिस स्थान पर कबीर ने गंगाजल में डुबकी मारी थी, उसी स्थान से दूसरी ही घड़ी उसके गुरु जल से बाहर निकल रहे थे। कितना महान आश्चर्य था! इसी आश्चर्य में महा का स्वप्न टूट गया, साथ ही निद्रा भी एवं निद्रा टूटते ही जब नेत्र खुले तो दृष्टि के समक्ष गुरु कंदरा में पुनः खड़े थे।

स्वप्न में कालक्षेत्र का कैसा अद्भुत दृश्य था महा की दृष्टि के समक्ष! जैसे कबीर एवं गुरु की सूर्यकांतिमय स्वर्णिम काया में कोई भेद न था। अब भी वह उस दृश्य से प्राप्त अतिशय सुख में ग़ोते लगा रहा था एवं जैसे ही वह पुनः भाव में उतरने को हुआ, तो विगत दिवस के गुरु के क्रोधित स्वर जैसे अंतर में स्वतः गूँज उठे-

"बस! बहुत प्रवाहित हो लिया भाव के जगत् में। भाव कितना भी सत्य हो, सीमाबद्ध होता है एवं तुझे सारी सीमाओं को लाँघ मुक्त होना है।"

अंतर में स्वर गूँजते ही स्वयं को थाम कर उसने मन को कड़ा कर लिया था एवं अंब उसकी दृष्टि गुरु के मुखमंडल को देखती श्रद्धा से भर उठी थी। गुरु की दिव्य वाणी कंदरा में गूँज उठी-

"भले ही अब तक सहज ही तूने बेग़मपुर का पथ पाया था परंतु वह सहज नहीं था। महाश्मशान मणिकर्णिका पर कार्य करते हुए तू स्वतः ही शिवज्ञान, शिवभक्ति, शिवध्यान एवं शिवव्रत रूपी शिवपूजा में लीन हो चला था एवं काशी विश्वनाथ के अनुग्रह से ही तू शिवपूजा रूपी शिवयोग की साधना में लीन था। साक्षात् शिव का तुझ पर अनुग्रह है एवं इसी को शक्तिपात कहते हैं। काशी एवं काशी विश्वनाथ से तेरा प्रेम मुझसे छिपा नहीं है। अब उन्हीं के अनुग्रह से तेरी समय-दीक्षा की घड़ी निकट आ पहुँची है एवं इसके पश्चात्..."

अभी महात्मा स्वयं की वाणी को आगे विस्तारित करते उससे पूर्व ही उनकी दृष्टि महा की संपूर्ण काया पर सिर से नख तक घूम गई एवं उन्होंने मौन ले लिया। महा सोच रहा था कि अवश्य ही वे आगे भी कुछ कहना चाहते थे, परंतु वे एक ही क्षण में मौन हो गए। क्या कहना चाहते थे वे? अभी महा यह सोच ही रहा था कि गुरुवाणी पुनः उसके कर्णपटल पर गूँज उठी-

"ब्रह्म मुहूर्त से पूर्व ही तुझे गोमुख पहुँचना है एवं ब्रह्म मुहूर्त में वहाँ

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

स्नान कर, तुझे पुन: यहीं लौटना है। इसके पश्चात् हमें यहाँ से आगे जाना है वहीं तेरी समय-दीक्षा होगी। अत: अभी थोड़ा और विश्राम कर ले एवं गोमुख जाने की घड़ी वह हरित पर्ण साथ ले जाना मत भूलना।''

गुरु के आदेश पर महा नेत्र बंद कर विश्राम के लिए लेट तो गया, परंतु निद्रा अब कोसों दूर थी। मन मानो दीक्षा के लिए व्याकुल हो रहा था एवं साथ ही साथ उतावला भी। कंदरा की धरा अब उसकी नाड़ियों में रक्त के वेग को आधिक्यता प्रदान कर रही थी। स्वयं की इस अस्थिरता में जैसे ही उसने करवट ली तो उसे महसूस हुआ कि कंदरा में सर्वत्र व्याप्त चंदन की सुगंध शनै:-शनै: लुप्त हो गई थी एवं उसके पूर्णत: लुप्त होते ही स्वयं के भीतर के आघात से वह एक झटके से उठकर बैठ गया।

कंदरा में इस घड़ी कोई नहीं था, न ही गुरु एवं न ही वह काला नाग। और अब उसे पूर्णत: स्मरण हो आया था कि यह चंदन की सुगंध तो निश्चित ही वही थी, जिसे उसने उस दिवस महसूस किया था जिस दिवस महाश्मशान मणिकर्णिका पर अर्द्धरात्रि में कबीर उसके भाव में अंतिम बार आए थे एवं उसे उलटे वृक्ष की पहेली दे बोले थे-

''आज तक तूने मुझसे क्या ख़ाक जीना सीखा है? अब तो तू मुझे भी उसी दिन देख पाएगा, जिस दिवस तू उस गुरु को खोज लेगा जो तुझे इस पहेली का ज्ञान देगा।''

उस दिवस की काले नाग की फुफकार भी अब महा की दृष्टि के समक्ष आ खड़ी थी एवं वह पूर्णत: इस निष्कर्ष पर आ पहुँचा था कि निश्चित ही गुरु उस दिवस भी महाश्मशान मणिकर्णिका पर ही उपस्थित थे। फिर उस घड़ी वे दृष्टि के समक्ष क्यों नहीं आए? यह कैसी क्रीड़ा थी? पहेली का उत्तर मिलते ही कबीर आज पुन: स्वप्न में आ खड़े थे। सोचता महा अब हरित पर्ण लेकर गोमुख जाने के लिए कंदरा के बाहर निकल आया था एवं भीषण शीत में ठिठुरता वह हिम रजतराशि में आगे पग बढ़ाता जा रहा था।

गुरु की क्रीड़ा ने मानो संपूर्ण अतीत को उसके समक्ष ला खड़ा कर दिया था। दृष्टि के समक्ष अब चलचित्र की भाँति सारे दृश्य घूम रहे थे- रामलीला, माँ का उसे चांडाल बनने की अनुमति देना, इस्माइल चाचा से भोर में सुनी काशी से काशी विश्वनाथ के विलग होने की कथा, माँ की मृत्यु की रात्रि शंकर की

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पिंडी को अपने हृदय पर स्थित कर उनकी गोद में लेटकर प्रणव का उच्चारण, माँ का अग्नि संस्कार, भूतू चाचा का पितृतुल्य स्नेह, ठगी प्रथा इत्यादि। इन चलचित्रों के चलते वह कब गोमुख आ पहुँचा, उसे ज्ञात न हुआ। अत्यधिक शीत से लगभग काँपते हुए भी महा का मन अतीत की स्मृतियों से भारी हो चला था एवं चिता पर माँ की सजी योगिनी सी दमकती देह का स्मरण आते ही महा के नेत्रों से अश्रुधार बह चली थी। सत्य ही है कि जगत् में माँ के निर्मल स्नेह के समक्ष जन्म-जन्मांतर की पीड़ा से मुक्ति भी तुच्छ प्रतीत होती है।

अब जैसे ही उसने इस ब्रह्म मुहूर्त की बेला में गंगा की धार में एक चट्टान को पकड़ डुबकी लगाई, घड़ी भर को तो लगा जैसे वह सिर से नख तक जम गया है एवं मानो समस्त शिराओं में रक्त का संचार बंद हो गया है। साथ लाए हरित पर्णों को चबाते ही शरीर उष्णता से भर गया और गंगा की धारा पर दृष्टि पड़ते ही उन महात्मा का चेहरा महा की दृष्टि के समक्ष आ खड़ा हुआ, जिन्होंने उसे गंगा के स्वरूपों से परिचित करवाया था। साथ ही इस ऊर्मिला गंगा की धार पर नेत्रों को टिकाए ऐसा लग रहा था, जैसे सत्य ही यह घड़ी भर में भक्तों के शोक, मोह, जरा, मृत्यु, क्षुधा एवं पिपासा को हर लेती है। महा का मन अब पुनः रिक्त हो चला था। वह जैसे ही लौटकर पुनः कंदरा की ओर आया, उसने देखा कि कंदरा के मुख पर ही खड़े गुरु उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे। उनके चरण-कमल पर ललाट को स्पर्श कर जैसे ही महा ने उन्हें नमन किया तो उसे लगा जैसे चित्त स्थिर हो गया हो। उसे आशीर्वाद देकर महात्मा बोल उठे-

''चलो हमे यहाँ से कई कोस की यात्रा करनी है। वहीं तुम्हारी समय-दीक्षा होगी।''

कई कोस की विकट चढ़ाई के पश्चात् जैसे महा की दृष्टि के समक्ष एक स्वर्गिक सौंदर्य चित्रारोपित था। तभी महात्मा ने कहा-

''देखो वह सामने हिमाच्छादित पर्वत ही शिवलिंग पर्वत है। इन्हीं की साक्षी में तुम्हारी समय-दीक्षा होगी।''

महा का हृदय निर्जनता में स्थित इस अपूर्व सौंदर्यमय पर्वत को देख शांत हो चला था एवं उसे प्रतीत हो रहा था कि आत्मा की नीरवता में वह मुक्त हो गया है। इस अचल आनंद क्षेत्र में प्रकृति ने ही संपूर्ण श्रद्धा से भर, साक्षात् पर्वत के रूप में इस विशाल हिमाच्छादित शुभ्र शिवलिंग को प्राणप्रतिष्ठित

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

किया है। आदित्य ने मेघों की केशराशि में अपने मुखमंडल को छिपा रखा था।

प्रकृति के इन विविध रूपों में खोया महा तब आश्चर्यचकित हो स्तब्ध रह गया, जब उसने देखा कि कुछ पग आगे चलते ही एक हिमाच्छादित समतल मैदान में एक वेदी निर्मित थी एवं आठों दिशाओं में लघु कुंडों की स्थापना की गई थी। वेदी के मध्य में लालवर्णीय सुवर्ण आदि के चूर्ण से एक मंडल निर्मित किया गया था। निकट ही दो हस्त के कमल बनाए गए थे एवं कमल कर्णिका के अर्ध भाग में केसर बिछा हुआ था। ईशान कोण में एक और मंडल निर्मित था, जिसे धान, सरसों, तिल, पुष्प एवं कुश से आच्छादित कर एक शिवकलश की स्थापना की गई थी एवं उस कलश पर गंध, पुष्प, अक्षत, कुश, दूर्वा इत्यादि स्थित थे।

अब महात्मा ने कलश को जल से भर उसके मध्य कुछ अर्पित किया तो महा को प्रतीत हुआ मानो उन्होंने उसमें स्वर्ण मुद्राओं को डाला था। वह अब भी आश्चर्यचकित था कि इस निर्जन स्थान पर जहाँ उनके अतिरिक्त कोई नहीं था, वहाँ किसने इन वेदी एवं कुंडों को निर्मित किया था! जब नंग-धड़ंग गुरु ख़ाली कर से उसके साथ यहाँ पहुँचे थे, तो इस घड़ी ये स्वर्ण मुद्राएँ उनके कर में कैसे आ गई थीं?

किसी ईश्वरीय ऊर्जा से संचारित होते गुरु अब अत्यधिक प्रसन्न होकर मंडल के मध्य भाग में महेश्वर की महापूजा में मग्न हो गए। अब स्वयं के शरीर से मानो कोई दिव्यता उठाते गुरु, शिवकलश पर साक्षात् शिव का आवाहन करते आत्मलीन हो चले थे। किसी दिव्य गुंजन से मंत्रमुग्ध महा पर उस घड़ी जैसे कोई पाषाण शिला आ गिरी थी, जब उसने देखा कि शिव की स्तुति में लीन गुरु जब साक्षात् शिव का आवाहन कर रहे थे, उसी घड़ी एकाएक न जाने कहाँ से वह काला नाग शिवकलश के निकट आकर उस पर सर्वत्र कुंडली मार फन फैलाता कलश पर डोलने लगा। इस अल्पकालिक घड़ी में महा विश्व के संपूर्ण चमत्कारों को एक साथ खुली दृष्टि से तक रहा था। अब वह देख रहा था कि गुरु स्वयं की संपूर्ण शक्ति को किसी महान योजना पर केंद्रित करते, शास्त्रोक्त विधि से शिवाग्नि की स्थापना कर, होम करते हुए इस मंत्रोच्चारण में लीन हो गए थे-

"प्रसीद देवदेवेश देहमाविश्य मामकम्।
विमोचयैनं विश्वेश घृणया च घृणानिधे।।"

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

महात्मा के इस श्लोक का उच्चारण ज्ञात होते ही महा हर्षोन्माद में जैसे विक्षिप्त हो रहा था। गुरु अब तीव्र स्वर उठा रहे थे-

''हे दयानिधे विश्वनाथ! प्रसन्न हो मेरी काया में प्रवेश कर आप स्वयं के अनुग्रह से इस शिष्य को बंधन मुक्त कीजिए।''

इस घड़ी महा स्पष्ट देख रहा था मानो गुरु नहीं, अपितु साक्षात् शिव दिगंबर अवस्था में उसके समक्ष स्थित हो होम कर रहे हैं। कुछ घड़ी पश्चात् जैसे गुरु की संपूर्ण वाणी के स्वर ही परिवर्तित हो गए थे एवं उन्होंने एक तीव्र दिव्य स्वर उठाते हुए कहा-

''मैं ऐसा ही करूँगा।'' जैसे शिव साक्षात् गुरु के शरीर में प्रवेश कर स्वर उठा रहे थे।

इसके पश्चात् महात्मा उठ खड़े हुए एवं महा के निकट आकर उसे स्वयं के साथ ले, मंडल के पास आ स्थिर हो गए। महा को उन्होंने उत्तर दिशा में मुख रखने को कह मंडल के बाहर ही कुश के आसन पर आसीन कर दिया एवं स्वयं पूर्व की ओर मुख कर खड़े हो गए। महा दोनों कर जोड़कर गुरु को वंदन कर रहा था। इसके पश्चात् महा को जल के छिड़काव से शुद्ध कर उन्होंने उसके ललाट पर अस्त्र मुद्रा द्वारा पुष्प फेंककर आघात किए। अब उन्होंने महा को नवीन वस्त्र धारण करवा एक दुपट्टे के माध्यम से महा के नेत्रों को बाँध दिया था। इसके पश्चात् वे उसे साथ ले मंडल के भीतर प्रविष्ट हुए एवं शिवकलश की तीन प्रदक्षिणा करवाई। तत्पश्चात् उन्होंने महा को उत्तर दिशा में साष्टांग नमन करने को कहा था।

इन क्रियाओं के बाद अब महात्मा ने पुनः मूल मंत्र का उच्चारण कर महा पर जल का छिड़काव किया। साथ ही पुनः अस्त्र मंत्र के द्वारा महा के ललाट पर पुष्प का आघात कर उन्होंने उसके नेत्रों के बंधन को खोल दिया। उसी घड़ी मेघों की केशराशियों को हटाकर सूर्य प्रकाशित हो उठा एवं इस प्रकाश में शिवलिंग पर्वत स्वर्णिम आभा से दमक उठा था।

अब महात्मा उच्च स्वर में बोले-

''मैं शिव हूँ'',

कहने के साथ ही उन्होंने महा के शीश पर स्वयं का कर रख दिया। महा धरा पर लेट गुरु को साष्टांग प्रणाम करने लगा। तत्पश्चात् महात्मा ने शिवाग्नि

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

में महा से पूजन करवाया एवं महा की नाड़ी को स्वयं की नाड़ी में मिलाने की क्रिया में व्यस्त हो गए। अब वे अपने प्राणों को स्वयं की काया से बाहर निकाल, महा की देह में प्रवेश करने की भावना करने लगे थे। इसी भावना के अंतर्गत सर्वप्रथम उन्होंने महा की काया में स्थित वैश्यत्व को निकाल, उसमें क्षत्रियत्व की उत्पत्ति की। तत्पश्चात् क्षत्रियत्व का उद्धार कर उन्होंने महा की काया में ब्राह्मणत्व की उत्पत्ति की। इस जगत् में परमात्मा एवं जननी को छोड़, मात्र ये नंग-धड़ंग महात्मा ही जानते थे कि महा का जन्म कैसे हुआ था। वास्तव में एक वैश्य ने शिवभक्त ब्राह्मण युवती का बलात्कार कर, स्वयं के बीज को ब्राह्मण युवती की कोख में डाल दिया था एवं महा उसी का परिणाम था। इसी कारण महात्मा रूपी गुरु ने प्रारब्ध भोगते महा की देह में जाति का उत्कर्ष किया था।

महात्मा रूपी गुरु को ज्ञात था कि काया का निर्माण रज: एवं वीर्य के संयोग से होता है। रजोवीर्य शुद्ध न होने पर देह भी शुद्ध नहीं होती। पिता ने चित्त की चंचलता में बलात् ही बीज ब्राह्मण युवती की कोख में डाल दिया था। अत: देह विशुद्ध न थी एवं समय-दीक्षा के पूर्व काया शुद्धि के लिए ही इन महात्मा रूपी गुरु ने मंत्र शक्ति द्वारा बीज का संशोधन कर, देहगत अशुद्धि को दूर कर दिया था। शिवभक्त माँ होने से स्वत: ही शिवभक्ति महा में आ समाई थी।

अब साक्षात् महात्मा रूपी गुरु ने भगवान् शिव के सदृश स्वयं का तृतीय नेत्र खोल दिया था। पुन: उन्होंने महा पर जल का छिड़काव कर पुष्प से आघात किया एवं अब वे इस भावना में मग्न हो गए थे कि महा की दिव्यमान शिवस्वरूप आत्मा उनमें आकर स्थित हो जाए। जैसे ही महा की आत्मा उनकी काया में स्थित हुई, वे महा की आत्मा में रुद्रत्व की स्थापना करने लगे। तत्पश्चात् दिव्य मंत्रोच्चारण उठाते हुए उन्होंने प्राणायाम द्वारा स्वयं की नाड़ी से खींची हुई साँस को अपनी काया से बाहर कर, नाड़ी के द्वारा ही महा की काया में प्रवेश किया। काया में प्रवेश कर हृदय में स्थित हो, अब वे चैतन्य के नील बिंदु के चिंतन में मग्न हो गए। साथ ही इस घड़ी वे इस भावना में लीन हो गए-

''मुझ शिव के तेज से इस जीव रूपी पशु का सारा मल नष्ट हो गया है एवं अब यह पूर्णत: प्रकाशवान् हो रहा है।''

इन क्रियाओं के पश्चात् उन्होंने महा के जीव चैतन्य को स्वयं के साथ

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

लेकर प्राणायाम द्वारा नासिका से साँस खींचकर अंदर ला, महा के जीव चैतन्य को स्वयं की आत्मा से एकीभूत करने के लिए उस जीव चैतन्य को स्वयं की आत्मा पर आसीन किया। इसके बाद प्राणायाम करते हुए कुछ घड़ी साँस को रोककर पुन: उन्होंने महा के जीव चैतन्य को स्वयं की आत्मा से उठा, नाड़ी के माध्यम से ही पुन: महा के हृदय में स्थापित कर दिया। तत्पश्चात् महा को स्पर्श कर शिव से उपलब्ध हुआ यज्ञोपवीत उसे दे, तीन आहुति डालकर पूर्णाहुति होम किया।

इस क्रिया के माध्यम से उन्होंने महा के चैतन्य को विश्लेषण क्रिया द्वारा काया से अलग कर शिथिल कर दिया। इस संपूर्ण क्रिया के पश्चात् महा के जीव का स्वयं की देह के साथ एक सूक्ष्म सूत्र या राशि मात्र संबंध रह गया था एवं वे अब इस सूत्र को भी तोड़ने जा रहे थे कि एकाएक वे रुक गए। समय-दीक्षा की लगभग संपूर्ण क्रिया समाप्त हो चुकी थी, मात्र बीजमंत्र देना शेष रह गया था। अत: उसे देने के लिए उन्होंने महा का अभिषेक कर, स्वयं के कर में भस्म ले महा के अंगों पर भस्म से त्रिपुंड खींचे एवं महा को अब सन्यास मार्ग पर प्रशस्त कर, उसके मस्तिष्क पर शिव के आसन का ध्यान कर मानसिक पूजा में मग्न हो वे बोल उठे-

''हे दयानिधे! हे विश्वनाथ! हे प्रभो शम्भो। अब आप नित्य ही यहाँ विराजमान हों।'' अंतत: जैसे ही महात्मा रूपी गुरु, शिवरूपिणी शैवी की आज्ञा प्राप्त कर महा के कर्ण में बीजमंत्र फूँकने जा ही रहे थे कि न जाने क्या हुआ? एकाएक वे रुक गए एवं अब वे महा के समक्ष खड़े होकर बोले-

''स्वयं के नेत्र बंद कर तुम प्रणव मंत्र 'ॐ'कार का उच्चारण करो एवं हृदय में 'ॐ'कार की भावना स्थित कर स्वर उठाओ। अब यही प्रणव मंत्र तुम्हें तुम्हारी साधना में प्रशस्त करेगा।''

''शिव सर्वदेवात्मक हैं एवं गुरु सर्वमंत्रात्मक। शुद्धि ही संस्कार है एवं संस्कार ही दीक्षा। वास्तव में तो इस अखिल जगत् में शिव ही एकमात्र गुरु हो जगद्गुरु कहलाते हैं। जैसे शिव हैं वैसी ही विद्या है एवं जैसी विद्या है वैसे ही गुरु। अत: शिव, विद्या एवं गुरु के पूजन से समान फल मिलता है।''

अब मानो महा की काया पर साक्षात् बिजली आ गिरी हो इस प्रकार वह सिर से पाँव तक काँप उठा था, क्योंकि अब गुरु ने उसके कर में शंकर की

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

वह पिंडी धर दी थी जो माँ ने उसे दी थी। कंदरा से यहाँ तक पहुँचने के पूरे मार्ग में गुरु के कर ख़ाली थे एवं वे नंग-धड़ंग थे, फिर यह पिंडी इस घड़ी उनके पास कैसे आ पहुँची थी? शंकर की पिंडी को कर में धरते महात्मा रूपी गुरु पुनः दिव्य वाणी उठाते बोल उठे-

"शिवपूजा रूपी शिवयोग में शिव की पूजा के दो मार्ग हैं, अंत: पूजा एवं बाह्य पूजा। अंत: पूजा ही श्रेष्ठ है जो बाह्य लिंग की पूजा से उत्पन्न होती है। बाह्य इष्ट लिंग की पूजा किए बिना अंतर्लिंग की पूजा सिद्ध नहीं होती। अत: आज से यह शंकर की पिंडी तेरे लिए बाह्य इष्ट लिंग है एवं इसी की पूजा के माध्यम से अंतर्लिंग की पूजा सिद्ध होगी। अत: अब एक प्रतिज्ञा ले कि मेरे लिए प्राणों का परित्याग करना अथवा शीश कटा लेना भी श्रेयस्कर होगा, किंतु अब मैं इस भगवान् त्रिलोचन की पूजा के बिना अन्न तक ग्रहण नहीं करूँगा।"

प्रतिज्ञा लेने के पश्चात् जैसे ही महा ने साष्टांग कर गुरु के चरणों में स्वयं का ललाट स्पर्श किया तो एक तीव्र ऊर्जा के संचरण से उसकी काया काँप उठी। तत्पश्चात् खड़े हो जब उसकी दृष्टि संपूर्ण वातावरण पर पड़ी तो घड़ी को यह आभास हुआ कि गुरु, उनके पीछे स्थित दमकता शिवलिंग पर्वत एवं सर्वस्व को आच्छादित करता व्योम, एक ही है। इस अभिन्नता में अब उसे कोई भेद प्रतीत नहीं हो रहा था। ऊर्जा के इस दिव्य संचरण में कर्णपटल पर गुरु के स्वर गूँजते ही वह ठिठक गया था।

"अब चार दिवस कंदरा में विश्राम कर तुझे द्वादश ज्योतिर्लिंग की पदयात्रा करनी है। इन चारों दिवसों में मैं जो कुछ कहूँगा वह तेरी साधना में सहायक होगा। अब तुझे बेग़मपुर के पथ का ज्ञान हो गया है। इस पथ पर चलकर गंतव्य पर पहुँच जब तू उसके मालिक शिव से एकाकार होगा, तब तुझे ज्ञात होगा कि पंचगंगा घाट पर डुबकी लगाई कबीर ने एवं निकले तेरे ये गुरु अर्थात् अद्वैत में कुछ भी भिन्न नहीं। इसलिए तो मैं अक्खड़ तेरा गुरु एवं वे फक्कड़ कबीर या वे अक्खड़ कबीर और ये फक्कड़ तेरा गुरु, कहाँ क्या भेद है? जब कोई भेद ही नहीं तो जो बोलेगा, मात्र इतना बोलेगा-

'पर याद रख मैं तेरा गुरु नहीं।' "

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

उत्तरार्द्ध

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अध्याय-५०

आज महाश्मशान मणिकर्णिका पर हिरण्यकवच, देवासुरगुरुर्देव, निराकार काशी विश्वनाथ देवताओं के आराध्य स्वरूप को उपलब्ध श्मशान भूमि में विश्राम करने से पूर्व अमर अनाहत नाद निनादित कर रहे हैं-

''मैं परब्रह्म स्वरूप शिव ही सुरश्रेष्ठ से 'ॐ' का शब्दरूप नाद प्रकट करते परमलिंग के रूप में साक्षात् प्रकट होता हूँ, जिसके दक्षिण पार्श्व में प्रकट सूर्यमंडल के समान तेजोमय मेरे प्रणव मंत्र का 'अ'कार स्थित है, उत्तरी पार्श्व में अग्नि के सदृश दीप्तिशाली 'उ'कार वर्ण दृष्टिगोचर होता है एवं मध्य में चंद्रमंडल के समान उज्ज्वल कांति से प्रकाशवान् 'म'कार स्थित है। इसके ऊपर मैं आदि, मध्य और अंत रहित सबका परमाश्रय निराकार अमृत स्वरूप परब्रह्म स्थित हूँ।''

''मेरी ही महामाया में श्रीहरि एवं श्री ब्रह्मा सनातन पुरुष के रूप में मेरी ही काया में उत्पन्न हुए हैं। लोकपितामह ब्रह्मा मेरे दाहिने हाथ हैं एवं नित्ययुद्ध में स्थिर रहने वाले श्री विष्णु मेरे बाएँ हाथ हैं। इसी महामाया में वे विविध प्रकार की प्रजाओं की सृष्टि करते स्थिति प्रदान करते हैं।''

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

माया जब देवताओं को भी ग्रस लेती है तो उसके समक्ष मानव की बिसात ही क्या है? गोमुख से लौटते समय सहसा प्रकृति ने ही बाधा डालकर बुद्धेश को महा से अलग कर दिया था। गंगोत्री स्थित माँ गंगा के देवालय से कुछ दूर स्थित एक चाय वाले की टपरी में बैठा बुद्धेश अब भी गोमुख की ओर हिमगिरि के उत्तुंग शिखर पर दृष्टि गड़ाए महा की राह तक रहा था। आठवाँ दिवस था एवं विगत सात दिवसों में महा की इस तरह प्रतीक्षा ही बुद्धेश का एकमात्र दैनिक कर्म हो चला था।

भीषण हिमपात में भी वह नित्य ही प्रात: यहाँ आकर बैठता था एवं सायं में अँधेरा घिरने के पश्चात् ही वह वहाँ से उठता था। इसके मध्य यदि वह उठता, तो मात्र भोजन ग्रहण करने अथवा अग्नि प्रज्वलित करने हेतु काष्ठ के टुकड़े लाने के लिए। अन्यथा कई बार तो वह लघुशंका के लिए भी इधर-उधर न होता था। हृदय हिम के समान स्तब्ध हो चला था एवं अतीत में महा के साथ बिताई सुखद घड़ियों का स्मरण करते ही उसका हृदय हिम के सदृश ही द्रवित हो जाता था। महा के व्यक्तित्व का उस पर एक अत्यंत गहन प्रभाव था, इसलिए कोई भी शंका-कुशंका उसे घेर नहीं पाती थी। वह जानता था कि महा जैसे संत के समक्ष प्रकृति स्वयं समर्पित हो उसके भविष्य के मार्ग को निर्मित करती है। अत: वह पूर्णरूपेण निश्चिंत था। साथ ही वह यह भी जानता था कि महा अवश्य ही लौटेगा।

आज भी जब वह नित्य के सदृश प्रतीक्षारत बैठा था तो एकाएक उसकी दृष्टि ने जो दृश्य देखा वह उसकी कल्पना से परे था। इस हिमवर्षा में जैसे दूर से कोई प्रकाशपुंज उसकी ओर पग बढ़ाता उसके निकट आ रहा था। घड़ी भर को नेत्रों को मलने के पश्चात् जब उसने ग़ौर से देखा तो वह प्रसन्नता से खिल उठा। एक अपूर्व दिव्यता उठाता महा ही उसकी ओर अग्रसर हो रहा था। महा के लंबे केश खुले थे जिन पर हिम रजतराशि के शुभ्र कण चमक रहे थे। उसका चौड़ा-चकला सीना पूर्णरूपेण नग्न था। मात्र धोती पहने नंगे पाँव वह उसकी ओर बढ़ रहा था।

आज बुद्धेश ने उसकी देह पर यज्ञोपवीत को देखा था, जो आज से पूर्व महा की काया पर कभी नहीं देखा था। भस्म से लिपटी महा की काया आज

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

एक अपूर्व तेज से दमक रही थी। यह साक्षात् चमत्कार ही था कि मात्र सात दिवस में किसी मानव की काया का आभामंडल इतना दीप्तिमान् हो उठे। किसी महिमा का अधिराज जैसे स्वयं की काया से स्वयं का महिमागान उठा रहा हो। एक अपूर्व आनंद के प्रवाह में बुद्धेश के हृदयकमल की सारी पँखुड़ियाँ फूट पड़ी थीं एवं प्राण चतुर्दिक् दौड़ते, नृत्य करने लगे थे। क्षण को तो उसे लगा कि इन दौड़ते नृत्य करते प्राणों के मध्य स्वयं भी दौड़कर महा को अपने आलिंगन में बद्ध कर ले, परंतु महा की काया के दिव्य प्रभामंडल को देख वह यह साहस नहीं कर पाया। अभी वह सोच ही रहा था कि महा ने उसके निकट आ उसे अपने भुजपाश में बाँध लिया।

महा के आलिंगन में उसे ऐसा प्रतीत हुआ जैसे साक्षात् बाबा रामकृष्ण परमहंस उसे गले लगा रहे हैं। पास प्रवाहित होती गंगा पर दृष्टि पड़ते ही उसे प्रतीत हुआ जैसे वह इस घड़ी दक्षिणेश्वर की सीढ़ियों पर बैठा सामने बहती माँ गंगा को निहार रहा है एवं पीछे की ओर माँ काली एवं द्वादश ज्योतिर्लिंग के देवालय स्थित हैं।

महा के प्रति निश्छल अनुराग होते हुए भी वह महा की दिव्यता को देखकर यह साहस न कर पाया था कि महा से यह प्रश्न करे कि इतने दिवस वह कहाँ था? जब आत्मिक बंधन हो तो कैसा प्रश्न एवं कैसा उत्तर? इस घड़ी महा के आलिंगन में बद्ध वह मात्र एक असीम शांति का अनुभव कर रहा था। अध्यात्म के प्यासे पथिक को इस घड़ी उपलब्ध देवालय की इस छाया के अतिरिक्त और क्या चाहिए था? स्वयं की भाग्यरेखा उसे ऐसी आत्मिक मित्रता के द्वार ले आएगी, यह बुद्धेश ने स्वप्न में भी न सोचा था।

दोनों मित्र एक-दूसरे के अतीत का लेश मात्र भी न जानते थे, परंतु अब मानो एकात्म हो विचर रहे थे।

अब बुद्धेश को स्वयं के आलिंगन के बंधन से मुक्त कर, उसकी दृष्टि में झाँकते हुए महा ने कहा-

"बाज़ार में जाकर कुछ आलू एवं लिंगड़ा इत्यादि की पत्तियाँ ले आओ। मैं मात्र तुम्हें साथ लेने ही यहाँ पुनः लौटा हूँ। द्वादश ज्योतिर्लिंग की यात्रा तो अब मेरी भी नियति है, परंतु मैं तुम्हारे हृदयाकाश में गूँजी उन महात्मा

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

की दिव्य वाणी की अवज्ञा कैसे कर सकता हूँ, जिन्होंने तुम्हें भी इसी यात्रा की आज्ञा दी थी। अब वह दिवस निकट ही है जब स्वयं की इस महायात्रा का प्रथम चरण तुम समाप्त कर लोगे। जाओ, बाज़ार जाकर खाद्य सामग्री ले आओ। केदारेश्वर तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं। हम प्रातः ही गोमुख की ओर पुनः प्रयाण करेंगे एवं वहाँ से तपोवन होकर हम केदारनाथ की ओर प्रशस्त होंगे।''

समय-दीक्षा की घड़ी महा पर बिजली गिरी थी तो इस घड़ी वह बुद्धेश पर गिर आघात कर रही थी। अवाक् बुद्धेश कुछ घड़ी मौन हो गया था एवं प्रतीत हुआ जैसे किसी गहरे आघात ने मन को रिक्त कर दिया था। इन घड़ियों के बीतते ही बुद्धेश इस प्रश्न से व्याकुल हो उठा कि महा को यह कैसे ज्ञात हुआ कि बाबा रामकृष्ण परमहंस ने ही उसके अंतर में गूँज, उसे द्वादश ज्योतिर्लिंग के दर्शन की आज्ञा दी थी? महा की दृष्टि की दिव्यता उसे आभास दे रही थी कि निश्चित ही विगत सात दिवसों में महा के साथ कोई दिव्य घटना घटी थी, अन्यथा काया में इतनी आभा संभव नहीं। बुद्धेश ने महा की दृष्टि में उस असीम शांति को भी पढ़ लिया था, जो मात्र जन्म-जन्मांतर की किसी खोज के मिटने पर ही प्राप्त होती है।

तपोवन से केदारनाथ कुछ कोस आगे ही स्थित है परंतु मार्ग अत्यंत विकट होने से कोई ऐसा महात्मा ही इस मार्ग को चुनता है, जिसे स्वयं के मरण का भय नहीं, अर्थात् जो जनम-मरण के द्वंद्व से ऊपर हो चला हो।

जीव मात्र के साक्षी, जनाध्यक्ष काशी विश्वनाथ, भगवान् रुद्र की जटा में रमण करने वाली रुद्ररमणी गंगा एवं समस्त कर्मों का कर्षण करने वाली काशी, तीनों अखिल ब्रह्मांड में मात्र शिव की इस वाणी से ही कण-कण को संचारित करते हैं कि मात्र तीर्थों के तीर्थ काशी में ही जीव मरण को पाकर, मुझ शिव की असीम शक्ति से अमरत्व धारण कर शिवरूप हो जाता है।

महा को भी ज्ञात न था कि प्रातः की इस घड़ी भी वह केदारनाथ की ओर पग बढ़ाता, मात्र काशी की ओर ही बढ़ रहा है, जहाँ कलियुग में शिव नित्य रमण करते हैं। पुनः विकट चढ़ाई, जीवन-मरण का साक्षात्कार, भीषण हिमपात एवं अत्यधिक शीत दोनों की दृष्टि के समक्ष थे।

मार्ग में दो रात्रि विश्राम कर जब दोनों तपोवन पहुँचे, तो बुद्धेश को

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

प्रतीत हुआ जैसे समस्त ऋषियों के तप के परिणाम से यह स्थल स्वर्ग से भी अधिक सुंदर हो चला हो। यहाँ का कण-कण वह दिव्य मंगलगान उठा रहा था जिस गान के माध्यम से शिव स्वयं दबे पाँव हृदय में प्रविष्ट होते, आत्मा को स्वयं परमात्मा से एकाकार होने का निमंत्रण दे जाते हैं। निश्चित ही महा में ऐसी कोई महान शक्ति क्रियाशील है जो उससे इन दुर्गम मार्गों को भी सहजता से पार करवा देती थी। वह तो दो कंबल ओढ़कर भी शीत में ठिठुरता है जबकि महा देह पर मात्र भस्म धारण कर, एक धोती में पूर्ण शांत हो विचरता है। दृष्टि के समक्ष खड़े शिवलिंग पर्वत को देख बुद्धेश को यह प्रतीत हो रहा था कि मानो स्वयं श्मशानाधिपति शिव, कंठ में नाग को धारण कर साक्षात् विराजित हैं। इसी मार्ग से तो पांडवों ने स्वर्ग की ओर आरोहण किया था।

आज चेतना के इस उच्च स्तर पर महा, शिवलिंग पर्वत की ओर देखकर जान गया था कि निर्लिप्त भाव से शवों को जलाने वाला चांडाल सर्वतिरस्कृत एवं घृणास्पद नहीं, अपितु परम शिवभक्त है। वही सच्चा ज्ञानी, ध्यानी एवं व्रती भी है। यदि संसार का प्रत्येक चांडाल स्वयं की इंद्रियों को वश में कर चिताग्नि में शवों को जलाता है, तो इससे बढ़कर इस जगत् में कोई शिवयोग नहीं है। आज गुरु के प्रसाद से उसे पुन: काशीवास रूपी शिवसालोक्य प्राप्त हो रहा था।

आज चतुर्थ दिवस संध्या से पूर्व ही वे अनादि क्षेत्र केदारनाथ आ पहुँचे थे। शिव का नित्य सान्निध्य मात्र यहीं प्राप्त होता है। पांडवों की तपस्थली पर पग धरते ही मानो व्योम से उतरती अनेक वैदिक ऋचाएँ महा के कर्णपटल पर गूँज रही थीं।

"बद्रीकाश्रम में नर एवं नारायण की तपस्या से प्रसन्न होकर ही शिव इस केदार तीर्थ पर ज्योतिर्लिंग के रूप में प्राणप्रतिष्ठित हो गए। देवालय में कोई शिवमूर्ति नहीं अपितु बड़ा त्रिकोणीय पर्वत खंड है, जहाँ लोग इस श्रद्धा से शिवजी पर कड़ा चढ़ाते हैं कि वे शिव के दिव्य वलययुक्त स्वरूप का दर्शन कर पाप से मुक्त हो सकें।"

महा देवालय से दूर ही खड़ा हो गया था एवं उसने बुद्धेश से कहा-

"ज्योतिर्लिंग पर कड़ा चढ़ाने के पश्चात् तुम्हारी इस महायात्रा का प्रथम

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

चरण पूर्ण हो जाएगा।''

तब बुद्धेश ने आज अत्यंत ही साहस से महा से यह प्रश्न किया-

''क्यों किसी देवालय में पग नहीं धरते एवं मात्र शिखर दर्शन से ही संतुष्ट हो जाते हो?''

तब मुख पर स्निग्ध स्मित फैलाते महा ने उत्तर दिया-

''वस्त्र अशुद्ध होने से चांडाल स्वेच्छा से मंदिर के भीतर नहीं जाते।''

चांडाल शब्द सुन बुद्धेश चौंक उठा था एवं उसकी दृष्टि में भय एवं श्रद्धा के मिश्रित भाव स्पष्ट झलक रहे थे।

अब वह पुनः प्रश्न पूछने जा ही रहा था कि महा ने हँसकर कहा-

''भविष्य में हमें दीर्घकाल तक साथ रहकर इस यात्रा को पूर्ण करना है, सो अत्यधिक समय शेष है। तुम मेरे बारे में सब जान जाओगे। जाओ, प्रथमतः ज्योतिर्लिंग पर कड़ा चढ़ाओ एवं प्रथम गंतव्य को तय कर लो।''

हिमपात पुनः आरंभ हो गया था एवं बुद्धेश देवालय की सीढ़ियाँ चढ़ रहा था। उसे सीढ़ियाँ चढ़ता देख दूर खड़ा महा मुस्करा रहा था।

किसी ऋषिसमाधि में मग्न ज्ञानशून्य एवं निश्चल हो महा मंदिर के शिखर को तक रहा था, परंतु माया के सूत्र ने उसे अपनी लपेट में लपेट ही लिया था। स्वयं के प्रति श्रद्धा काँप उठी थी एवं स्वयं की त्रस्त होती प्रकृति के मध्य माया ने क्रीड़ा कर अंतःकरण में स्फुरण जगा दिया। अंतःकरण के अधिदेव विष्णु स्फूर्ति जगा गए एवं स्फुरण रूपी अधिभूत उठते ही अंतःकरण रूपी अध्यात्म डोल उठा। अब मन के सुप्त अधिदेव चंद्रमा जागकर आंदोलित हो उठे एवं मन रूपी अध्यात्म को हिलाते संकल्प-विकल्प रूपी अधिभूत को जगा गए।

महा के मन में विचार उठा कि जब दीक्षा के पश्चात् काया शुद्ध हो गई है, तो ब्राह्मणत्व को उपलब्ध मैं मंदिर में क्यों नहीं जा सकता? विचार उठते ही जैसे अब तक सोए अधिदेव ब्रह्मा जाग उठे एवं निश्चय रूपी अधिभूत को हिलाकर, उन्होंने अध्यात्म रूपी बुद्धि को झकझोर दिया। तब भला अधिदेव नारायण मुस्कराकर अपने मित्रों का सहयोग कैसे न करते? चित्त रूपी अध्यात्म को प्रेरणा दे अब वे चिंतन रूपी अधिभूत को प्रेरित करने लगे। इस घड़ी माया

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

के सूत्रों ने महा को संपूर्ण रूप से लपेट लिया था एवं इसी घड़ी मंदिर के भीतर बुद्धेश ज्योतिर्लिंग पर कड़ा अर्पित कर रहा था।

जब माया ने संपूर्ण रूप से महा को जकड़ ही लिया था तो भला अधिदेव रुद्र कैसे शांत रहते? उन्होंने महा के शीश पर तांडव करना शुरू कर दिया। इस क्रिया में अहंकार रूपी अध्यात्म महा के शीश पर डोलने लगा एवं अधिभूत अभिमान महा के सिर चढ़ स्वर उठाने लगा-

"हाँ जाऊँगा, आज अवश्य ही मैं भी मंदिर के भीतर जाऊँगा।" कहते हुए महा ने जैसे ही देवालय की ओर पग बढ़ाए, दृष्टि के समक्ष दृश्य को देख वह काँप उठा।

सीढ़ियों पर नंग-धड़ंग क्रुद्ध गुरु उसे स्वयं के लाल नेत्रों से ऐसे देख रहे थे मानो आज शिव रूपी गुरु ने अपना तृतीय नेत्र खोल, महा को भस्म करने का निश्चय ले लिया था। उन क्रुद्ध नेत्रों को देखकर महा को मूर्च्छा आने लगी थी एवं मूर्च्छित होने से पूर्व दृष्टि के समक्ष तीनों लोकों में व्याप्त अंधकार आ खड़ा था। इस अंधकार के साम्राज्य में उसे ऐसा आभास हुआ जैसे सहस्र शीश, नेत्र, एवं चरण धारण किए शंख, चक्र, कमल एवं गदा को धारण कर स्वर्णिम दिव्यता उठाते एक दिव्य पुरुष शेषनाग की शय्या पर शयन कर रहे हैं। उनके समक्ष अत्यंत प्रभा से युक्त, उन्हीं के सदृश देदीप्यमान कृष्ण चर्म एवं कमंडल से सुशोभित, असंख्य कोटि आदित्यों का प्रकाश उठाते एक योगी खड़े हैं। दोनों इस विवाद में मग्न हैं कि उनमें से सर्वश्रेष्ठ कौन है? परस्पर जय को प्राप्त करने की अभिलाषा में वाद-विवाद करते श्री विष्णु एवं श्री ब्रह्मा के मध्य, उत्तर दिशा से अग्नि उठाती एक परम उज्ज्वल ज्योत, तीव्र गति एवं वेग से ऊर्ध्वारोहण करने लगी।

दोनों अवाक् से इस परम दिव्य ज्योत के अंत को देखने को उत्सुक होते व्याकुल हो उठे। वह ज्वालामाला त्रिलोक को पार करती अनंतता में फैलती जा रही थी। इस ज्वाला के वलय के मध्य एक अस्पष्ट शिवलिंग दृष्टिगोचर हो रहा था, न तो वह शिवलिंग स्वर्ण निर्मित था, न ही रजत निर्मित एवं न ही पाषाण निर्मित।

अब दोनों को प्रतीत हो रहा था कि अगली ही घड़ी यह भयंकर

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

शिवलिंग गगन को छेदता उस पार चला जाएगा। दोनों ने निर्णय लिया कि जो भी सर्वप्रथम इसके ओर-छोर को ज्ञात कर लेगा वही सर्वश्रेष्ठ होगा। ब्रह्मा ऊर्ध्व प्रदेश की ओर गमन करने लगे, तो विष्णु निम्न प्रदेश की ओर। जब सहस्र वर्ष गमन करने के पश्चात् भी कोई उसके ओर-छोर की थाह न पा सका, तो दोनों का ही अहंकार खंडित हो गया। अब श्री विष्णु एवं श्री ब्रह्मा द्वारा प्रार्थना एवं वंदना करने पर विश्वत्वमुख, अव्यय, महाभैरव नाद ''ॐ कार'' का उच्चारण कर श्री शिव दोनों के सम्मुख आ खड़े हुए। श्री विष्णु और श्री ब्रह्मा की वंदना से प्रसन्न हो शिव नाद निनादित करने लगे-

''मैं परब्रह्म स्वरूप शिव ही सुरश्रेष्ठ से 'ॐ' का शब्दरूप नाद प्रकट करते हुए परमलिंग के रूप में साक्षात् प्रकट होता हूँ, जिसके दक्षिण पार्श्व में प्रकट सूर्यमंडल के समान तेजोमय मेरे प्रणव मंत्र का 'अ'कार स्थित है, उत्तरी पार्श्व में अग्नि के सदृश दीप्तिशाली 'उ'कार वर्ण दृष्टिगोचर होता है एवं मध्य में चंद्रमंडल के समान उज्ज्वल कांति से प्रकाशवान् 'म'कार स्थित है। इसके ऊपर मैं आदि, मध्य और अंत रहित सबका परमाश्रय निराकार अमृत स्वरूप परब्रह्म स्थित हूँ।''

एकाएक महा की दृष्टि से पूर्ण दृश्य लुप्त हो गया एवं मूर्च्छा आने से घड़ी भर पूर्व ही दृष्टि के समक्ष खड़े नंग-धड़ंग गुरु क्रोधित स्वर उठा रहे थे-

''अरे मूर्ख जीव! जो रहस्य देव भी ज्ञात नहीं कर पाते उसे तू मानव अहंकार से क्या जानेगा? योग था कि समय-दीक्षा के पश्चात् ही अल्पकाल में तू मुक्ति पा जाता, परंतु घड़ी भर के इस अहंकार ने उसे कई वर्ष आगे धकेल दिया। अब मात्र कड़ी साधना के पश्चात् ही तू जीव उस शिव से एकाकार कर पाएगा। जो दिवसों में हो सकता था, वह वर्षों में परिवर्तित हो गया। अब तो यह योग तेरी अंतिम साँस की घड़ी ही निर्मित होगा। आज मात्र इतना ध्यान रख कि घड़ी भर का अहंकार भी तुझे शिव से दस वर्ष दूर कर गया। यदि पुनः ऐसा हुआ तो अनेक जन्म धारण करने के पश्चात् भी तू गर्भवास की यंत्रणा से मुक्त नहीं हो पाएगा एवं साथ ही तेरे कर्ण जन्मों-जन्म तक यह सुनने के लिए भी तरस जाएँगे, फिर भी नहीं सुन पाएँगे-

'पर याद रख मैं तेरा गुरु नहीं।' ''

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अध्याय-५१

आज महाश्मशान मणिकर्णिका पर तीर्थदेवशिवालय, देवदेवमय, धर्मचारी काशी विश्वनाथ परम सृष्टि के गोपनीय रहस्य को उघाड़ते शाश्वत अनाहत नाद निनादित कर रहे हैं-

"मुझ परमात्मा की आद्यशक्ति ने ही समुद्र रूपी अनंत व्योम के अंधकार में प्रकृति रूपी स्वधा-सलिल अवस्था में तेज को जन्म दिया और सृष्टि रचना का आरंभ हुआ। घोर नाद उठाती शक्ति ही अद्वैत से द्वैत और द्वैत से अद्वैत को जन्म देती शाश्वत साम्यावस्था को आधार देकर, मुझ शाश्वत परमात्मा की ओर इंगित करती है।"

"मुझ परमात्मा से तीन अहंकार जन्म लेते, मुझ ब्रह्मा, विष्णु और शिव को सृजित करते हैं एवं सृष्टि, स्थिति एवं संहार के कार्य को पूर्ण कर वर्तुल को जन्म देते हैं, जिसे देख मैं खड़ा मुस्कराता हूँ।"

"मुझ शिव की आत्मा में श्रीहरि का दर्शन होता है, तो श्रीहरि की आत्मा में मुझ शिव का और ब्रह्मा की आत्मा में हम दोनों का। इस एकात्म का गूढ़ रहस्य जीव को मुझ शिव से एकाकार करने के पश्चात् ही ज्ञात होता है।"

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

परमात्मा धर्माधर्म से ऊपर बसता है। उसकी कोई जाति नहीं है। वही कभी तो सृजन और स्थिति करता स्वयं को श्री विष्णु के रूप में प्रकट करता है, तो कभी संहार को उठाते श्री शिव का रूप धर समक्ष आ खड़ा होता है। संस्कारों के धूल-धमास रूपी अज्ञानता में जीव मानव जाति को जन्म देता है और फिर हिन्दू या मुसलमान या फिर वैष्णव और शैव जाति बनाकर माया के अरण्य में यहाँ-वहाँ पशु की भाँति ठोकरें खाता भटकता रहता है।

सृजन की भाषा कमललोचन श्रीहरि की नाभि में स्थित ब्रह्माजी की है, परंतु उनके आधार स्वयं श्रीहरि हैं। अत: संपूर्ण सृष्टि को आश्रय देने के कार्य का दायित्व भी श्री विष्णु के हाथ आया और चूँकि परमात्मा कभी संतुलन नहीं खोता, इसलिए सृजन की दूसरी अति संहार के कार्य का दायित्व श्री शिव को दिया गया।

पंचगंगा घाट पर भोर अँधेरे सीढ़ी पर लेटे कबीर ने श्री रामानंद से बीजमंत्र "राम" को पाया। कबीर जुलाहे थे अत: सृजन की भाषा से वे भली-भाँति अवगत थे एवं सृजन का कर्म उनका दायित्व था। विरासत में प्राप्त सृजन के कर्म को आगे बढ़ाने वाला श्रीहरि के अंशावतार श्री रामानंद का शिष्य ही हो सकता था। कबीर प्रख्यात थे क्योंकि कबीर के हिस्से सृजनकर्ता परमात्मा का वह दायित्व आया था, जिसे पूरा करते कबीर सृजन को उसकी अनंतता की ओर प्रशस्त कर रहे थे। सभी जातियों से ऊपर कपड़ा बुनने वाला यह बुनकर, किस तरह कपड़ा बुनकर अनंत की ओर पग बढ़ा चला और किस तरह परमात्मा का ही अंशावतार बन बैठा, उसे भी ज्ञात न हुआ।

संतुलन को आधार देने के लिए संहार भी आवश्यक है। अत: इस संतुलन को यथावत् रखने के लिए काशी विश्वनाथ नन्हे महा को मणिकर्णिका महाश्मशान पर ले आए थे और स्वयं के विनाश कर्म को पूरा करने के लिए उसे चांडाल बना, इस कार्य का दायित्व उसे सौंप दिया था।

चाहे सृजन हो या विनाश, दोनों ऐसे पूर्ण हैं कि पूर्ण में से पूर्ण घटा लेने

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पर भी सदैव ही पूर्ण रहते हैं। तो फिर भला परमात्मा के विनाश कार्य को पूर्णता प्रदान करने वाला महा कैसे अपूर्ण रह सकता था? श्मशानाचारी शिव के अंशावतार गुरु कब जीवन में आ उसे दीक्षा दे गए, यह उसे ज्ञात होकर भी ज्ञात न हुआ था।

परमात्मा के सृजन की शक्ति के सामने संहार की शक्ति को किसी भी तरह अपूर्ण नहीं आँका जा सकता। यदि संहार, सृजन के समान महत्त्वपूर्ण नहीं होता तो परमात्मा का वर्तुल भी पूरा नहीं होता। अर्थात् फिर यह कहना असंभव होता कि परमात्मा ऐसा पूर्ण है जिसमें से पूर्ण को घटा लेने पर भी वह सदैव पूर्ण ही रहता है।

सूक्ष्मता से देखा जाए तो जिस द्रुत गति से परमात्मा सृजन को अनंतता की ओर प्रशस्त करता है, संहार भी उसी गति से सृजन के गले में गलबाहीं डाल परस्पर ही चलता है। ये दोनों ही परमात्मा की कला का रूप धर सृष्टि के संतुलन को साधते हैं। श्री विष्णु, श्री शिव के गले में गलबाहीं डाल परमात्मा के वर्तुल को पूर्णता प्रदान करने के अपने दायित्व से विमुख नहीं होते। इसी तरह श्री शिव भी श्री विष्णु से अभिन्न मित्रता कर परमात्मा की उसी पूर्णता की ओर इंगित करते हैं। यही कारण था कि परम वैष्णव कबीर, परम शैव महा के स्वप्न में सदैव मित्र बन आते थे।

अतः श्री विष्णु की पूजा करने वाले यदि श्री शिव को कम आँकें एवं श्री शिव को पूजते यदि श्री विष्णु के प्रति विमुखता हो, तो पूजने वाले जीव, पशु मात्र हैं। मूर्ति पूजा के रूप में सगुण की उपासना करने वाले हिन्दू, यदि निर्गुण की उपासना करने वाले मुसलमान को दूसरी जाति का समझें और मुसलमान, हिन्दू को दूसरी जाति का समझ उनसे विमुख हों, तो दोनों ईश्वर या अल्लाह से कोसों दूर हैं। क्योंकि यदि सगुण ही सब कुछ है तो हिन्दू यह क्यों नहीं जानता कि शव बनने के पश्चात् चिता में भस्म हो, वह भी निर्गुण के साम्राज्य में विचरेगा और यदि निर्गुण निराकार ही सब कुछ है तो इबादत करता मुसलमान यह क्यों नहीं जानता कि वह जन्म लेकर, क्यों आकार धारण कर

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

इबादत कर रहा है?

यदि कबीर और महा में कोई अंतर है तो मात्र परमात्मा के स्वयं की कार्य भिन्नता का। कबीर परमात्मा के सृजन कार्य को कपड़ा बुनकर अनंतता प्रदान करते सृजनकर्ता के सदृश दिग्दिगंत ख्यात् हो चले। वहीं दूसरी अति पर महा का संसार, सृजन को संहार में सिमटाते शव जला श्मशान तक ही सीमित हो गया था, इसलिए महा सदैव अज्ञात ही रहा। कबीर, लक्ष्मीपति विष्णु के शरीर पर स्थित स्वर्ण आभूषणों से दमकते हैं, तो महा, उमापति शिव के श्री विग्रह पर मली गई राख सा निस्तेज है।

पुष्प से उठती सुगंध और सौंदर्य तो समस्त दिशाओं में फैलते हैं परंतु काँटे के त्याग को कौन जानता है? नवजात शिशु की ओर तो सभी लालायित हो पग बढ़ाते हैं जबकि दुर्गंध उठाते शव से हर कोई मुँह फेर लेता है।

कहानी एक ही है और नायक भी एक। किंतु एक ही नायक के ये दो रूप- एक जगत् में ख्यात, तो दूसरा अनजाना अज्ञात। एक फूलों से उठती सुगंध, तो दूसरा चिता में जलते मुर्दों से उठती दुर्गंध। एक सूर्य से उजला दिन, तो दूसरा चंद्रविहीन अमावस्या की अँधेरी रात। एक विवाह के मंडप में सजी दुलहन की चुनरी का रचयिता, तो दूसरा जीर्ण-शीर्ण मल-मूत्र से भरी मृत काया का दाहकर्ता। एक श्री विष्णुरूप रामानंद का शिष्य, तो दूसरा श्री शिवरूप गुरु का चेला।

कबीर को समझने वाले यदि महा को न समझें, तो परमात्मा के रहस्य को नहीं समझ सकते। कबीर को चाहने वाले यदि महा को न चाहें तो मुक्ति कोसों दूर है। श्री विष्णु, श्री शिव के बग़ैर तो श्री शिव, श्री विष्णु के बिना कितने अधूरे हैं, जो यह न जान पाया वह जीवन-मृत्यु को क्या जान पाएगा? जीवन, मृत्यु पर आधारित है तो मृत्यु, जीवन का पर्याय। जीवन को समझने के लिए कबीर सा जीना ही पड़ता है और मृत्यु के ज्ञान के लिए महा के समान मुर्दों के ज्ञान की भाषा को सीखना ही पड़ता है। जीवन और मृत्यु के गहन अर्थ को

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

जानने वाला कबीर ही महा से मित्रता कर सकता है।

स्वयं जीवन जीकर जीवन तो सीख सकते हैं, दूसरों को सिखा भी सकते हैं और साथ ही मृत्यु से मित्रता भी कर सकते हैं, परंतु किसी को मृत्यु ऐसे नहीं सिखा सकते, जैसे जीना।

जीवन जीने वाला, मृत्यु को जानने वाले का गुरु नहीं हो सकता। श्री विष्णु को आधार बनाकर उनकी आत्मा में श्री शिव के दर्शन पाना एक बात है, परंतु वह श्री शिव को आधार बना उनकी आत्मा में श्रीहरि के दर्शन को पाने वाले का गुरु नहीं हो सकता, क्योंकि स्वभावत: दोनों अभिन्न होकर भी भिन्न हैं। सृजन भला विनाश का गुरु क्या बनेगा? दोनों एक-दूसरे का पर्याय होकर भी विपरीत धुरी पर खड़े हैं।

कबीर ने जीकर मृत्यु की ओर पग बढ़ाते हुए मृत्यु को सीखा था और महा, मृत्यु को जीकर जीवन की ओर पग बढ़ा रहा था। कबीर की यात्रा भोर के अँधेरे से दिन के उजाले की ओर थी, जबकि महा की यात्रा साँझ के अँधेरे से रात्रि के अंधकार की ओर है। कबीर का तेज सूर्य के प्रकाश के समान जगत् को प्रकाशित करने वाला है, जबकि रात्रि के अंधकार में किसी निर्जन में जलती चिता के प्रकाश को कौन जानता है? इसलिए अब तक इस उपन्यास को पढ़ने वाला यदि यह नहीं समझ पाया हो तो अच्छी तरह समझ ले कि कबीर पूर्ण होकर भी बार-बार महा से यह क्यों कहते थे-

'पर याद रख मैं तेरा गुरु नहीं।'

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अध्याय-५२

महाश्मशान मणिकर्णिका पर अप्रतिमाकृति, लोकशल्यधृक्, केदारेश्वर काशी विश्वनाथ पराए कार्य को सिद्ध करने की कला के एकमात्र विद्वान पंडित का रूप धरते, इंद्रियों एवं उनके विषयों से अतीत अमर अनाहत नाद निनादित कर रहे हैं-

''मैं शिव ही जनार्दन श्री विष्णु हूँ एवं जनार्दन श्री विष्णु ही मैं शिव, भिन्न-भिन्न कुंभों में स्थित जल की भाँति मुझमें और उनमें कोई अंतर नहीं।''

''मेरे एवं श्री विष्णु के निश्चल, अनन्य एवं अलौकिक प्रेम को समझ कर ही ज्ञात हो सकता है कि जो कैलास है वही वैकुंठ है एवं जो वैकुंठ है वही कैलास भी।''

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

केदारेश्वर ज्योतिर्लिंग के पूजन के पश्चात् जैसे ही बुद्धेश देवालय से बाहर आया, तो कुछ लोगों के द्वारा घिरे मूर्च्छित महा को देख वह भयभीत हो उठा था। एक आदमी इस घड़ी महा के मुख पर गर्म पानी के छींटे मार रहा था। कुछ ही घड़ी पश्चात् महा की मूर्च्छा भंग हो गई थी एवं बुद्धेश के यह पूछने पर कि ''क्या हुआ था?'', वह मौन ही था। स्वयं के साथ हुए विचित्र अनुभव का रहस्य मन में दबाए अब महा, बुद्धेश के साथ धर्मशाला की ओर लौट रहा था।

सूर्यदेव के अस्ताचल में लुढ़कते ही तत्काल अंधकार फैल गया था। रात्रि में महा मात्र इतना ही बोला था- ''हम पुन: तपोवन जाएँगे।''

एक अदम्य इच्छा महा के मन में जाग्रत् हो रही थी कि वह उस स्थान पर कुछ दिवस बिताए जहाँ उसकी समय-दीक्षा हुई थी। आज गुरु के क्रोध से भयभीत महा अब यह प्रण कर बैठा था कि आज के पश्चात् वह ऐसा कोई कार्य नहीं करेगा जिससे अहंकार जन्म ले। अब उसे ज्ञात हो रहा था कि क्यों कबीर ने उससे कहा था- ''जो बीच बाज़ार में स्वयं का शीश फुड़वाने के लिए तैयार है, मैं कबीर मात्र उसी के साथ हूँ।''

रात्रि के विश्राम की इन घड़ियों में वह गुरु के द्वारा दिए गए उन ज्ञानोपदेशों पर चिंतन कर रहा था, जो गुरु ने दिए थे जब उसने समय-दीक्षा के पश्चात् कंदरा में चार दिवस बिताए थे। उन दिवसों में भी गुरु उसके समक्ष तभी प्रकट होते थे जब वे ऐसा कोई उपदेश देते थे।

प्रात: पुन: दुर्गम यात्रा शुरू हो गई थी एवं इस दुरूह मार्ग को पुन: विकटता से पार करने के पश्चात् आज वे तपोवन आ पहुँचे थे। एक विशाल शिलाखंड के नीचे एक छोटी सी आड़ थी जहाँ अब वे विश्राम कर रहे थे। गुरु से प्राप्त ज्ञानोपदेशों के चिंतन के लिए महा को यही स्थान सर्वाधिक उपयुक्त लग रहा था। 'स्व' की गतिविधियाँ मानो इस स्थान पर पूर्णत: अनुपस्थित हो चली थीं। ध्यान के क्षण में भी अब महा को ध्यानकर्ता का भान नहीं होता था। भीषण हिमपात में भी मात्र भस्म को काया पर मलकर महा शिवलिंग पर्वत की ओर मुख किए, पद्मासन में स्थित ध्यानस्थ हो जाता था। उस पर दृष्टि पड़ते ही बुद्धेश को सदैव यही प्रतीत होता जैसे बुद्ध स्वयं ध्यान में लीन बैठे हों।

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

जैसे कोई योग पूर्व नियोजित था कि महा को उस सरल गुरुज्ञान की गूढ़ता का भान इसी स्थान पर होना था। ईश्वर प्रदत्त इस काया को धारण करने के पश्चात् भी भाग्य ही उस द्वार पर ले आता है, जहाँ कोई गुरु स्थिर हो शिष्य को अत्यंत सरल किंतु अत्यंत ही गूढ़ उस हंस से साक्षात्कार करवाता है जिसे कोई सामान्य मनुष्य उम्र भर जीने के पश्चात् भी, हर घड़ी उसके संपर्क में रहने पर भी उससे साक्षात्कार नहीं कर पाता। सृष्टि का यह गूढ़ रहस्य प्रकृति कितनी सरलता से मानव को भेंट करती है। इसके पश्चात् भी इस अमूल्य भेंट की ओर जन्म-जन्मांतर से निद्रामग्न मानव ध्यान नहीं देता, अपितु उसकी उपेक्षा ही करता है। ईश्वर प्रदत्त प्राण रूपी हंस की ओर किसका ध्यान होता है?

स्वयं की बोध रूपी शक्ति के माध्यम से ही परमेश्वर ने प्रथमत: विश्वगर्भ को धारण किया था। उसी विश्वगर्भ में अंत:करण रूपी अध्यात्म के अधिदेव श्री विष्णु ने पराकुंडलिनी रूपी स्फुरण द्वारा सृष्टि की रचना के मार्ग को प्रशस्त किया था एवं समस्त वर्ण इसी कुंडलिनी के रूप में आविर्भूत हुए थे। यही कुंडलिनी, प्राण-कुंडलिनी के रूप में भासित होने लगी।

''प्राण ही तो हंस हैं, जो सदैव ऊर्ध्व मार्ग से निम्न मार्ग की ओर प्रशस्त होते हैं।'' गुरु द्वारा दिए गए इस ज्ञानोपदेश को ध्यान की इस घड़ी महा साक्षात् आत्मसात् कर रहा था। गुरु ने ही उसे नेत्र बंद कर साँस ग्रहण करने की घड़ी एवं त्यागने की घड़ी होने वाले स्वर की ओर ध्यान केंद्रित करने को कहा था।

कंदरा में जब गुरु के आदेश से उसने यह कार्य संपन्न किया था, तो उस घड़ी वह स्वत: ही चौंक गया था। साँस ग्रहण करने की घड़ी उसे ''हं'' का नाद सुनाई दे रहा था, तो त्यागने की घड़ी ''स'' का नाद। यही ''हंस'' तो प्राण है, परंतु मूढ़ मानव इतना भी नहीं जानता।

'ह' कार का धर्म, त्याग है एवं 'स'कार का धर्म, ग्रहण है। इसी वर्णोच्चार को माध्यम बना योगी भ्रूमध्य में बिंदु रूप की अनुभूति पाता है। कंदरा में जब वह इस क्रिया में मग्न था, तो क्रिया के पश्चात् गुरु ने उसे प्रणव के प्राकट्य के रहस्य से अवगत करवाया था। 'हंस' को उलटते ही ध्यान में 'सोऽहम्' का नाद गुंजायमान होने लगता है एवं इस 'सोऽहम्' पर से 'स' एवं 'ह' व्यंजनों का त्याग कर दिया जाए तो मात्र 'ॐ' गुंजायमान होता है। यही 'ॐ' तो परमात्मा शिव से परिचय करवाता है।

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

'सोऽहम्' का 'स'कार शिव का परिचय देता है अर्थात् 'स'कार का अर्थ ही शिव है। शक्यात्मक शिव ही इस 'सोऽहम्' महामंत्र के शब्दार्थ हैं। जिस घड़ी गुरु शिष्य को इस महामंत्र का ज्ञान देता है, उस घड़ी गुरु की एकमात्र कामना यही होती है कि स्वयं शिष्य को इस शक्यात्मक शिव का बोध हो अर्थात् शिष्य को यह ज्ञान उपलब्ध हो जाए कि ''मैं ही शक्यात्मक शिव हूँ।'' इस घड़ी पशु रूपी जीव.को यह भी ज्ञान हो कि वह शक्यात्मक शिव का अंश है। साधना के पथ पर अग्रसर हो इसी मंत्र के सिद्ध होते ही शिष्य, शिव से स्वयं की एकता को सिद्ध कर लेता है एवं वह भी शिव की समता का भागी हो जाता है।

विश्राम की घड़ी महा को रह-रह कर कबीर का स्मरण हो आता था। स्वप्न अथवा भाव में उन्होंने भी न जाने कितनी बार महा का ध्यान इस 'हंस' की ओर आकर्षित किया था। ध्यान की घड़ी स्वयं के गूढ़ हृदय में महा आत्मसत्ता की ओर पग बढ़ा रहा था, परंतु केदारनाथ के उस विचित्र अनुभव ने महा को जैसे किसी दैविक जगत् में धकेल दिया था। ध्यान की घड़ी यदा-कदा कोई देव स्वर्णिम दिव्यता उठाते उसके समक्ष आ खड़े होते थे।

आज रात्रि जब वह निद्रा में लीन होने का प्रयास कर रहा था, तो रह-रह कर दैविक जगत् उसकी दृष्टि के समक्ष घूमने लगता था। इस स्वर्णिम आभा से दमकते प्रदेश से मुक्त हो, भोर होने से कुछ घड़ी पूर्व ही वह निद्रा में लीन हुआ था कि स्वप्न में पुनः दैविक जगत् दृष्टि के समक्ष आ खड़ा था।

स्वप्न में वह वैकुंठ लोक में विचरता देख रहा था कि शेषनाग की शय्या पर निद्रामग्न श्री विष्णु भी एक स्वप्न में लीन हैं। संपूर्ण प्राणियों के महान ईश्वर शरीरभूतभृत्, धर्माविद्वत्तम श्री विष्णु स्वप्न में देख रहे थे कि कोटि-कोटि चंद्रमाओं की कांति वाले स्वर्णाभरण-भूषित, अणिमादि, त्रिशूल-डमरूधारी भगवान् शिव प्रेम के आनंदातिरेक से मग्न होकर उनको आह्लादित करने के लिए उनके समक्ष नृत्य कर रहे हैं एवं उनके इस नृत्य को देखते ही जनार्दन श्रीहरि का स्वप्न टूट गया।

नेत्र खुलते ही श्री शिव के नृत्य का स्मरण करते श्रीहरि ध्यानमग्न हो गए। ध्यान टूटते ही उन्हें गद्गद भाव-विभोर देख जब लक्ष्मीजी ने इसका कारण पूछा, तो उन्होंने कहा-

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

"स्वप्न में मैंने भगवान् त्रिलोचन महादेव के दर्शन किए हैं। सो आज ही हम उनके साक्षात् दर्शन करने के लिए कैलास की ओर प्रस्थान करेंगे।"

इसके पश्चात् श्री विष्णु लक्ष्मीजी को साथ ले कैलास की ओर प्रस्थान कर गए थे।

अभी अर्ध मार्ग ही तय हुआ था कि दोनों की दृष्टि एकाएक सामने से आते उमापति महेश एवं उमा पर पड़ी, क्योंकि जिस घड़ी श्री विष्णु, श्री शिव का स्वप्न देख रहे थे, उसी घड़ी श्री शिव ने भी स्वयं के स्वप्न में श्री विष्णु के दर्शन किए थे एवं वे भी भाव-विभोर हो उमा को साथ ले वैकुंठ की ओर श्री विष्णु के साक्षात् दर्शन के लिए चल दिए थे।

अर्ध मार्ग पर श्री शिव एवं श्री विष्णु की दृष्टि आपस में टकराते ही दोनों के नेत्रों से आनंदाश्रु बहने लगे थे एवं काया पुलकित हो उठी थी। साथ ही साथ आनंदातिरेक में दोनों आलिंगनबद्ध हो चले थे। उनके मिलन की इस घड़ी में मानो संपूर्ण ब्रह्मांड एक असीम शांति को उपलब्ध हो मौन हो चला था।

अब दोनों ही एक-दूसरे को स्वयं के धाम में ले जाने को आतुर हो उठे थे। अंततः इसका निर्णय भगवती उमा पर छोड़ दिया गया था कि जो वे कहेंगी उन्हें स्वीकार होगा। तब माँ भगवती उमा ने शिव एवं नारायण पर दृष्टि डाल कहा-

"आपके एवं श्री विष्णु के इस निश्चल, अनन्य एवं अलौकिक प्रेम को देख यह ज्ञात होता है कि जो कैलास है वही वैकुंठ है एवं जो वैकुंठ है वही कैलास भी। आप देह से तो दो हैं, परंतु आत्मा से एक एवं आप ही की भाँति मैं और लक्ष्मीजी भी भिन्न नहीं। फिर कैलास एवं वैकुंठ में कैसा भेद? यदि कोई मानव शिवपूजा में लीन हो श्री विष्णु की पूजा नहीं करता तो उसकी पूजा व्यर्थ है। साथ ही जो श्री विष्णु की पूजा करता है परंतु श्री शिव की नहीं, उसकी पूजा का भी कोई मूल्य नहीं। अतः आप दोनों स्वयं अपने धाम पर पुनः यह सोचकर लौट जाइए कि श्री शिव वैकुंठ को जा रहे हैं एवं श्री विष्णु कैलास को।"

इतना सुनने के पश्चात् महा का भी स्वप्न टूट गया था एवं नेत्र खुलते ही वह भी भाव-विभोर हो अश्रुधार बहाने लगा था। इस घड़ी उसकी दृष्टि के समक्ष गंगा एवं वरणा के संगम के निकट स्थित पूर्वाभिमुख आदिकेशव का देवालय आ खड़ा था।

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अ़ब दृष्टि के समक्ष एक और विचित्र एवं अपूर्व दृश्य घूम गया। उसे दिखाई दिया कि जैसे काशी में काशी विश्वनाथ के मंदिर में ज्योतिर्लिंग के स्थान पर आदिकेशव की मूर्ति प्राणप्रतिष्ठित है एवं आदिकेशव के मंदिर में आदिकेशव की मूर्ति के स्थान पर काशी विश्वनाथ का ज्योतिर्लिंग दिव्यता उठा रहा है।

इस दृश्य को देखते ही भाव में घड़ी भर को 'रामचरितमानस' का गान उठाते तुलसी आ खड़े थे एवं अब उसने जो देखा वह कल्पनातीत था। तुलसी के भाव में आते ही साकार राम की मूर्ति दृष्टि के समक्ष आ खड़ी हुई, जिसके हृदय स्थल पर काशी विश्वनाथ का ज्योतिर्लिंग दिव्यता उठाता चमचमा रहा था। अब इस ज्योतिर्लिंग से उठती ज्योतिर्मय दिव्यता में साकार राम की मूर्ति लुप्त होती समा गई थी एवं ज्योतिर्लिंग भी अब उस अपूर्व ज्योति में समाता लुप्त हो गया था। सर्वत्र फैले इस प्रकाश के मध्य कबीर खड़े मुस्करा रहे थे।

महा के हृदय का स्पंदन बढ़ गया था एवं वह स्मृतिलोप की अवस्था में आ पहुँचा था। अब उसने बुद्धेश को जगाकर कहा- ''शीघ्र ही तैयारी कर लो, हमें बदरी विशाल के दर्शन के लिए जाना है।''

यात्रा में किसी पर्यटक सी मौज नहीं थी, अपितु मानो महा के पग ध्यान की अद्‌भुत घटनाओं के द्वारा संचालित हो रहे थे।

कलियुग की इस काशी में मृत्यु के साम्राज्य में जलते शव उसकी दृष्टि के समक्ष नहीं थे, परंतु मृत्यु के पीछे झाँकते अमरत्व का दर्शन यदा-कदा दृष्टि के समक्ष आ खड़ा होता था। यात्रा का ध्येय स्पष्ट नहीं था, फिर भी एक अतिस्पष्ट ध्येय स्वयं आमंत्रित करता उनसे यह यात्रा करवा रहा था।

भीषण शीत से भरे इस मृत्यु को आमंत्रित करते मार्ग पर सीता हिमानी एवं चतुरंगी हिमानी पर दो रात्रि के विश्राम के पश्चात् अब वे अरवा नदी के किनारे-किनारे आगे पग बढ़ाते, एक छोटे से गाँव को पार करते बदरीनाथ आ पहुँचे थे।

रात्रि के विश्राम के पश्चात् गर्म जल के कुंड में स्नान कर बुद्धेश मंदिर में दर्शन के लिए चला गया था एवं महा अलकनंदा नदी के दूसरे किनारे बैठा दूर स्थित मंदिर की ओर दृष्टि गड़ाए सोच रहा था कि स्वयं की अनभिज्ञता में

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

ही वह काशी में स्थित श्री शिव के एकात्म श्रीहरि की उपेक्षा कर रहा था। इसके विपरीत श्रीहरि ही कबीर एवं तुलसी की सहायता से निर्गुण एवं सगुण राम के गूढ़ रहस्य को उस पर उघाड़ने का अनुग्रह कर रहे थे।

वेदों के तुल्य यह स्थल श्री अनादि सिद्ध कहा गया है। यह बद्रीकाश्रम तपोवन साक्षात् परस्पर ब्रह्म है जहाँ सनातन देव परमात्मा नारायण साक्षात् विराजमान हैं। मंदिर को तकते महा के नेत्र स्वत: बंद हो चले एवं ध्यानमग्न वह पद्मासन में बैठा श्रीहरि की स्तुति में लीन हो गया। बुद्धेश इस घड़ी मंदिर में वन-तुलसी की माला, चने की कच्ची दाल, मिश्री इत्यादि का प्रसाद अर्पित कर रहा था एवं उसी घड़ी महा की दृष्टि के समक्ष एक छोटी नीलवर्णीय सालग्राम शिला से निर्मित बदरीनाथजी की मूर्ति आ खड़ी थी। उनके इस दर्शन मात्र से ही महा भाव-गद्गद हो उठा था।

इस भाव-विभोरता में गोमुख के निकट कंदरा में गुरुमुख से सुनी कथा कर्णपटल पर पुन: गुंजायमान हो उठी। गुरु ने कहा था-

''जब श्री लक्ष्मीजी ने श्री विष्णु से यह प्रश्न किया कि इस अखिल ब्रह्मांड में आपको सर्वाधिक प्रिय कौन है? तब उत्तर में मुखमंडल पर स्निग्ध स्मित फैलाते श्रीहरि ने कहा- 'मेरे प्रियतम तो मात्र शंकर हैं। जैसे समस्त देहधारियों को स्वयं की देह से प्रिय अन्य कुछ नहीं, उन्हीं की भाँति भगवान् शिव मुझे अकारण ही प्रिय हैं। काल की एक घड़ी मैं एवं शिव, पृथ्वी पर अलग-अलग विचरते इस भाव से अपने अत्यंत प्रियजन को खोज रहे थे कि जिस तरह मैं अपने एकात्म प्रियतम की खोज में भटक रहा हूँ, वैसे वह भी इसी खोज में मेरी ही तरह देश-देशांतर में भटक रहा होगा जो मुझे अकारण ही प्रिय है।' ''

''इसके पश्चात् इस खोज में जब मेरी दृष्टि के समक्ष श्री शिव आए एवं हमारे नेत्र चार हुए तो पूर्वजन्मार्जित विद्या की भाँति हम एक-दूसरे के प्रति आकर्षित होते आलिंगनबद्ध हो गए। तब दोनों के हृदय में मात्र एक ही भाव धड़क रहा था-

'मैं शिव ही जनार्दन श्री विष्णु हूँ एवं जनार्दन श्री विष्णु ही शिव। भिन्न-भिन्न कुंभों में स्थित जल की भाँति हममें कोई अंतर नहीं।' ''

अंत में श्री विष्णु ने लक्ष्मी जी से कहा था ''जो भक्त शिव उपासना में लीन है वह मुझे अत्यंत प्रिय है। ''

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

महा के कर्णपटल पर अब गुरु के स्वर गूँजना बंद हो गए थे एवं पर्वतों की स्वर्ण के समान दमकती चोटियों पर ध्यान पड़ते ही महा को प्रतीत हुआ कि कहाँ क्या भेद है!

देवालय में स्थित बुद्धेश अब महा के द्वारा बताए अल्प अतीत के बारे में सोचते हुए महा के प्रति और अधिक श्रद्धा से भर गया था; क्योंकि केदारनाथ से पुन: तपोवन एवं तपोवन से यहाँ तक की यात्रा में महा ने किसी हद तक स्वयं के अतीत को बुद्धेश के समक्ष उघाड़ा था, परंतु अब भी बुद्धेश, महा के संपूर्ण अतीत से अनभिज्ञ था। उसे तब आश्चर्य हुआ था जब तपोवन से यहाँ की यात्रा प्रारंभ करते समय महा ने उससे कहा था-

"अब हम द्वादश ज्योतिर्लिंग के साथ चार धाम की यात्रा भी करेंगे। "

बाहर पद्मासन में स्थित स्वर्णिम चोटियों को तकता महा मुस्करा रहा था एवं स्वयं से ही कह रहा था- सत्य ही श्री शिव, श्री विष्णु के बिना एवं श्री विष्णु, श्री शिव के बिना पूर्णता को उपलब्ध नहीं होते। शायद इसलिए जब वह महाश्मशान मणिकर्णिका पर शवों को जलाता शिवपूजा में मग्न था, तभी कबीर एवं तुलसी उसे राम की ओर इंगित करते थे। यह काशी विश्वनाथ का ही उस पर अनुग्रह था कि वे उसे स्वयं की पूर्णता का ज्ञान देने हेतु कबीर एवं तुलसी को माध्यम बना राम का ज्ञान देते थे।

स्वयं के भीतर के मल में भले ही गहरे वह कभी श्री विष्णु की पूजा में लीन नहीं हुआ, परंतु श्री विष्णु भी श्री शिव के सदृश ही भोले भंडारी हैं, जो काशी विश्वनाथ की भाँति ही उसे पूर्णता प्रदान करने के लिए स्वत: कबीर एवं तुलसी को माध्यम बना यह संदेश उस तक पहुँचा रहे थे, "जो भक्त शिव उपासना में लीन है वह मुझे अत्यंत प्रिय है।"

मात्र मार्ग भिन्नता एकात्म में भेद उत्पन्न नहीं कर सकती। आज महा को गुरु मिलने के पश्चात् प्रथमत: यह संकेत मिल रहा था कि भले ही श्री शिव एवं श्री विष्णु एकात्म हों, फिर भी मार्ग भिन्नता के कारण ही गुरु रामानंद से बीजमंत्र प्राप्त कबीर उसे ज्ञान के मार्ग पर प्रशस्त करते हुए भी अंत में सदा यह कह जाते थे-

'पर याद रख मैं तेरा गुरु नहीं।'

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अध्याय-५३

आज महाश्मशान मणिकर्णिका पर ब्रह्मवेदनिधि, सकलाधार, स्निग्धाकृति काशी विश्वनाथ संपूर्ण सिद्धियों के आश्रय हो, संपूर्ण कर्मों के आश्रय स्थान का स्वरूप धरते, अमर अनाहत नाद निनादित कर रहे हैं-

''मैं परमात्मा स्वयंभू शिव ही भूमि, जल, अग्नि, वायु, आकाश, आत्मा, सूर्य एवं चंद्रमा का प्रधान इन्हीं की मूर्तियों में प्राणप्रतिष्ठित हो, क्रमश: शर्व, भव, रुद्र, उग्र, भीम, पशुपति, ईशान एवं महादेव के नाम से जाना जाता हूँ।''

''मैं शिव अणु से भी अणु एवं महान से भी महान हूँ। यह विचित्र विश्व मुझ शिव का ही स्वरूप है। मैं ही पुरातन पुरुष हूँ, ईश्वर भी एवं हिरण्य पुरुष ब्रह्मा भी मैं ही हूँ।''

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बदरीनाथ में बिताए इन दिवसों में महा को सदैव यह लगता था मानो यहाँ सारे तीर्थ, संपूर्ण आयतन तथा जगत् को ही प्रस्तुत मानना चाहिए, परंतु इसके पश्चात् भी काशी का स्मरण सदैव बना ही रहता था। मणिकर्णिका घाट एवं वहाँ जलते शव जस के तस महा की दृष्टि के समक्ष आ खड़े होते थे। प्रकृति अब तत्त्वज्ञान की कड़ियाँ मिलाते हुए उसे यह स्पष्ट कर गई थी कि क्यों पंचमहाभूत उसे मित्रवत् प्रतीत होते थे। गुरु के सान्निध्य में बिताए समय ने उसे यह और स्पष्ट कर दिया था कि शिव की पूजा ही शिवयोग है एवं जब वह शिवयोग उसके समक्ष खड़ा था, तो शिव के ही स्वरूप भूमि, जल, अग्नि,वायु एवं आकाश उसकी सहायता क्यों न करते?

गुरु, काशी विश्वनाथ, जनार्दन श्री विष्णु, कबीर एवं तुलसी ही तो उसकी अँगुली थाम इस माया रूपी काशी की गलियों से निकाल उसे ध्यान रूपी दशाश्वमेध घाट पर लाए थे, जहाँ यह चांडाल भी प्रणव मंत्र की साधना में लीन होता, मृत्यु के राज्य की सीमा को लाँघता अमरत्व के राज्य की सीमा की ओर पग बढ़ा रहा था। मृत्यु एवं अमृत के इस अंतराल में खड़ा होकर वह अपने अतीत की उस स्मृति में विचर रहा था, जहाँ मणिकर्णिका घाट के महाश्मशान पर शवों को जलाते हुए सदैव उसकी दृष्टि गंगा पार फैले मैदान पर चली जाती थी जहाँ सरसों के फूल खिलते जीवन गान उठाते थे।

बुद्धेश को महा के साथ यात्रा करते हुए अब पूरा एक वर्ष हो चला था। महा के साथ इस यात्रा में अब बुद्धेश को तो सदैव ही यह लगता था कि जैसे महा के साथ वह यह यात्रा मात्र कुछ मासों से नहीं अपितु युग-युगांतर से कर रहा है। कई बार ध्यानस्थ महा को देख बुद्धेश को यह प्रतीत होता था कि कलियुग का यह दृश्य वह मानों सतयुग में भी देख चुका था।

मांत्र बुद्धेश ही साक्षी था कि भले ही हरिद्वार से गोमुख, केदारनाथ एवं बदरीनाथ की यात्रा तो शीघ्र हो चली थी, परंतु बदरीनाथ के पश्चात् इस हिमालय क्षेत्र में ही महा ने छः मास ऐसे बिताए थे, जैसे वह इस काशी की प्रत्येक गली से चिर-परिचित होना चाहता था।

ईश्वर स्वसृजित प्रकृति सूत्रों में उधेड़-बुन करता कैसे किसी चांडाल को

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

योगी के पद पर आसीन कर देता है! कल तक जो पंचतत्त्व निस्तेज हो काया को चांडाल का रूप दे महाश्मशान की ओर धकेल देते थे, वही पंचतत्त्व मात्र शिव रूपी गुरु के एक स्पर्श से दमक कर निखर उठे हैं एवं उसी काया को ईश्वर के स्वर्णिम राजमार्ग पर धकेलने के लिए उसे ध्यानी का रूप दे रहे हैं। यह काल की इस घड़ी मात्र बुद्धेश ही समझ सकता था, परंतु यह समझ स्वयं उसके लिए भी शब्दातीत थी।

जब बुद्धेश को महा के गुरु के संदर्भ में ज्ञात हुआ था, तो उस घड़ी वह भी चौंक उठा था कि सारे संत काया से भिन्न होने पर भी मात्र दूसरों के आत्मिक उत्थान के लिए एक से कार्यरत होते हैं। ये वही गुरु थे जिन्होंने रामकृष्ण परमहंस द्वारा प्रदत्त ढाई मन चावल की बनी खीर खाई थी एवं जिन्हें रामकृष्ण परमहंस ने काशी के 'सचल विश्वनाथ' की उपाधि से अलंकृत किया था।

माँ की मृत्यु के पश्चात् महा सा एकाकी बुद्धेश भी आत्मिक शांति की खोज में सदैव दक्षिणेश्वर पर आ, माँ काली की मूर्ति के समक्ष बैठ आराधना में लीन रहता था एवं मन ही मन उसने बाबा रामकृष्ण परमहंस को अपना गुरु मान लिया था। यदा-कदा माँ काली की आराधना में लीन बुद्धेश के अंतर में भी जैसे बाबा रामकृष्ण परमहंस गूँज उठते थे। कभी स्वर उठता-

"नाव पानी में रहे तो कोई हर्ज नहीं, पर नाव के अंदर पानी न रहे, वरना नाव डूब जाएगी। साधक संसार में रहे तो कोई हर्ज नहीं, पर साधक के भीतर संसार न रहे।"

तो कभी स्वर उठता-

"साधुसंग धर्म-साधना का एक प्रधान अंग है।"

तो कभी वे भीतर गूँज उठते-

"वास्तव में सच्चा मनुष्य वह है जो जीवित होकर भी मृत है अर्थात् मृत व्यक्ति की तरह जिसकी कामना, वासना आदि प्रवृत्तियाँ संपूर्णतया नष्ट हो गई हैं।"

एक दिवस जब वह दक्षिणेश्वर में ही घाट पर बैठा गंगा को निहार रहा

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

था, तो अचानक भीतर से स्वर गूँजे थे-

"माँ काली की आराधना अवश्य ही तेरा पथ है, परंतु इससे पूर्व तुझे द्वादश ज्योतिर्लिंग की यात्रा करनी चाहिए।"

पिता की बचपन में ही मृत्यु, अथक परिश्रम से रुग्ण माँ की सेवा एवं माँ की मृत्यु के पश्चात् एक अविरत व्याकुलता ही बुद्धेश को खींचकर दक्षिणेश्वर तक ले आती थी। इसके अतिरिक्त उसके अतीत में कुछ शेष न था।

महा के मिलने के पश्चात् वह उससे एकात्म अवश्य अनुभव करता था, परंतु जिस दिवस हिमालय में विचरते हुए महा ने अपने गुरु का वर्णन दिया था तो उसे एक गहरा आघात लगा था, क्योंकि उनका वर्णन सुनते ही बुद्धेश की दृष्टि के समक्ष वह चित्र आ खड़ा था जिसमें बाबा रामकृष्ण परमहंस एवं महा के गुरु साथ-साथ बैठे थे। उन्हीं के लिए तो स्वयं की काशी यात्रा में बाबा रामकृष्ण परमहंस ने कहा था-

"इसी को ठीक-ठीक परमहंस अवस्था कहते हैं।"

पूर्वोत्तर में ही पग बढ़ाते हुए वे अब जगन्नाथपुरी की ओर बढ़ चले थे। गुरु दीक्षा के पश्चात् महा को यह स्पष्ट हो गया था कि नियति की विशाल परतों में मानव स्वयं के मल के कारण ही पशु का रूप धरता, निद्रामग्न है एवं सुख-दुःख, मान-अपमान, अपना-पराया इत्यादि द्वंद्व रूपी अंधड़ों में भटकता दर-दर ठोकरें खा रहा है।

महा की दृष्टि में अब मरण की शाश्वतता स्पष्ट हो चली थी। किसी भी गाँव में श्मशान दृष्टिगोचर होते ही वह उसमें प्रविष्ट हो किसी बुझी चिता की भस्म को उठाकर स्वयं के अंगों पर उससे त्रिपुंड खींच देता था एवं थोड़ी राशि में भस्म को पुड़िया में बाँध, उसे पोटली में रख लेता था। श्मशान में कबीर के ये शब्द सदैव उसके कर्णपटल पर गूँज उठते-

"साधो ये मुर्दों का गाँव।"

न मात्र श्मशान में जलते शव, अपितु जीवित व्यक्ति भी अब महा को मुर्दों से ही प्रतीत होने लगे थे।

महा का संपूर्ण जीवन वृत्तांत अब चित्र-दर-चित्र बुद्धेश के समक्ष आ

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

खड़ा हुआ था। इस यात्रा में बुद्धेश के लिए महा की अब तक की जीवन-पुस्तक के एक पृष्ठ को छोड़ सारे पृष्ठ खुलकर सामने आ गए थे। महा ने बुद्धेश को मात्र यह नहीं बताया था कि वह राघव एवं यशोदा का पुत्र नहीं। महा के दाहिने पग अंगुष्ठ पर जले के दाग़ के बारे में प्रश्न पूछने पर बुद्धेश ने महा के मुख पर मात्र एक स्निग्ध स्मित के अतिरिक्त कुछ न पाया था।

यात्रा में मन की निश्चलता एवं मस्तिष्क के संपूर्ण मौन में महा, दरिद्र एवं भूख से पीड़ित मानवों को देखकर भी विचलित न होता था। बुद्धेश सदैव यह देखता कि इन पीड़ित मानवों की सेवा के लिए महा सदैव ही तत्पर रहता था। इसके पश्चात् भी वह निर्लिप्त रह उनके दुःखों से दुःखी न होता था।

उनकी सेवा करते हुए महा को सदैव प्रतीत होता था कि वह इन क्षुधा एवं दरिद्रता से पीड़ित नारायणों के हृदय में स्थित आत्मा रूपी पशुपति श्री शिव की पूजा में लीन है। पशुपति श्री शिव का अगाध प्रेम तो समस्त जीवों पर एक सा ही बरसता है एवं उनकी अनुकंपा में भी किसी से भिन्नता नहीं, परंतु जीव स्वयं के मल से घिरने के कारण ही पशु बन क्षुधा की पीड़ा एवं दरिद्रता को भोग रहा है।

उनकी सेवा करते महा के कर्णपटल पर सदैव यह गुरुवाणी गूँज उठती-

"ईश्वर श्री शिव की माया ने ही नियति की परतों को निर्मित किया है एवं ईश्वर श्री शिव ने ही सभी जीवों पर अपनी दयादृष्टि एक रख सभी को वह ज्ञान प्रदत्त किया है कि वे सुख-दुःख रूपी मल को त्यागकर स्वयं की आत्मा में स्थित पशुपति से एकाकार कर सकें। परंतु अमृत साधने की अपेक्षा अपने ज्ञान की उपेक्षा करता जीव ही मलों से घिरता मृत्यु का ग्रास बनता है।"

बुद्धेश देखता कि जब कभी महा ऐसे किसी व्यक्ति की सेवा करता, तो उसके मुखमंडल पर एक दिव्यता झलकने लगती। बुद्धेश नहीं जानता था परंतु महा उस घड़ी प्रणव मंत्र 'ॐ'कार का जाप करते हुए पीड़ित व्यक्ति की आत्मा में स्थित पशुपति श्री शिव के ध्यान में मग्न होता था।

महा का जीवन अब काशी की सँकरी-आड़ी-तिरछी गलियों से होता हुआ उस विस्तृत दशाश्वमेध घाट पर आ स्थित हो गया था, जहाँ दृष्टि के

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

समक्ष इंद्रियों को वश में रखने वाली दान्ता गंगा बह रही थी एवं इस दान्ता गंगा ने जैसे उसकी समस्त इंद्रियों को वश में कर लिया था। अब महा पर शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध इत्यादि का कोई प्रभाव नहीं पड़ता था। भीषण दुर्गंध उठाती किसी कुष्ठ रोगी की काया से निकलते मवाद को भी महा सहज ही साफ़ कर ऐसे पट्टी बाँधता, जैसे कोई ब्राह्मण शिवलिंग का जलाभिषेक कर उस पर पुष्प की माला चढ़ा रहा हो।

आज उड़ीसा के इस प्रांत में महा को दरिद्र नारायणों की सेवा में रत देख बुद्धेश को प्रतीत हो रहा था कि महा ही वह साधक है जो संसार में रह रहा है, परंतु उसके भीतर संसार नहीं है।

इस घड़ी बुद्धेश यह भी समझ रहा था कि मात्र महा जैसा चांडाल ही मरण को इतनी निकटता से देख, जीवित होकर भी मृत होता है अर्थात् मृत व्यक्ति की तरह महा की कामना, वासना आदि प्रवृत्तियाँ संपूर्णतया नष्ट हो गई थीं।

अब उसे स्वयं के गुरु बाबा रामकृष्ण परमहंस की अनुकंपा का भान हो रहा था क्योंकि धर्म साधना का एक प्रधान अंग साधुसंग है एवं वह विगत एक वर्ष से एक साधु के संग ही तो विचर रहा था।

आज बुद्धेश को ज्ञात हो रहा था कि क्यों बाबा रामकृष्ण परमहंस ने उसे द्वादश ज्योतिर्लिंग की यात्रा की आज्ञा दी थी। जिस तरह शिव, शक्ति के बिना अधूरे हैं उसी तरह शक्ति भी शिव के बिना। यह बाबा रामकृष्ण परमहंस का उस पर असीम अनुग्रह ही था कि शक्ति की आराधना से पूर्व वह शिव को जान ले। कोई गुरु अपने शिष्य को मझधार में नहीं छोड़ता, इसलिए बाबा रामकृष्ण परमहंस ने भी स्वयं से एकात्म महा के गुरु को माध्यम बना, स्वयं के शिष्य की सहायता के लिए अपने से एकात्म महात्मा के शिष्य के रूप में महा को उसकी यात्रा को पूर्णता प्रदान करने उसके साथ जोड़ दिया था।

जीवन के गीतों का अर्थ समझते हुए बुद्धेश भी अब प्रकृति की भाषा को समझने लगा था। महा की तरह वह भी संपूर्ण सृष्टि को शिव का शिवालय मान ना कभी जल में मूत्र विसर्जन करता, न ही थूकता था। यहाँ तक कि वह

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

महा के सदृश जल में नग्न स्नान भी न करता था। जल को भी शिवरूप मान वह महा से यह जान चला था कि जल ही जीव का संभव मात्र है एवं संपूर्ण भूत जगत् की उत्पत्ति का स्थान भी।

महा को ज्ञात था कि श्री शिव ने ही स्वयं के इस भवरूप में स्वयं का अंतर-रस मिश्रित कर 'भावी' मूर्ति का रूप धारण किया है। उसी ने बुद्धेश से कहा था-

''परमात्मा स्वयंभू शिव ही भूमि, जल, अग्नि, वायु, आकाश, आत्मा, सूर्य एवं चंद्रमा के प्रधान इन्हीं की मूर्तियों में प्राणप्रतिष्ठित हो क्रमश: शर्व, भव, रुद्र, उग्र, भीम, पशुपति, ईशान एवं महादेव के नाम से जाने जाते हैं।''

बाबा रामकृष्ण परमहंस के चरणों में स्वयं को सौंपने के पश्चात् बुद्धेश भी भय, चिंता, लालच एवं तमाम विकृतियों से जैसे विमुख हो चला था। अब तो महा के रूप में मानो बाबा रामकृष्ण परमहंस ही शिव के सभी रूपों से उसे परिचित करवा रहे थे।

प्रकृति के स्वरों से स्वयं के स्वर की लयबद्धता में अब बुद्धेश, महा के समान ही स्वयं की साँसों को भी लय प्रदान कर रहा था। यदा-कदा बाबा रामकृष्ण की वाणी का स्मरण हो आता-

''जिसमें विश्वास है उसमें सब है एवं विश्वास नहीं तो कुछ भी नहीं।''

अब इस वाणी पर पूर्ण विश्वास करता बुद्धेश प्रकृति के समस्त पदार्थों पर विश्वास करने लगा था। जब कभी उसे वायु स्पर्श करती तो लगता कि शिव ही स्वयं के उग्र स्वरूप में काया के प्राणों में नियंता हैं एवं वायु ही उनकी 'औग्री' मूर्ति रूप है।

अब न मात्र महा एवं श्री शिव, अपितु स्वयं गुरु बाबा रामकृष्ण परमहंस अपना स्वरूप बुद्धेश के समक्ष उघाड़ने पर उतर आए थे। किसी नारी पर दृष्टि पड़ते ही बुद्धेश के अंतर में साक्षात् बाबा रामकृष्ण परमहंस स्वर उठाते बोल उठते-

''नारी मात्र ही भगवती जगज्जननी का अंश है। अत: सभी स्त्रियों की

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

ओर मातृदृष्टि से देखना चाहिए।''

धरा पर दृष्टि पड़ते ही बुद्धेश को शिव की 'शार्वी' मूर्ति का ध्यान तो अवश्य आता परंतु उस घड़ी माँ काली भी उसकी दृष्टि के समक्ष घूम जातीं। अब वह स्वयं से कह उठता कि धरा से बड़ी जननी इस जगत् में कौन है? यहाँ उसके भीतर शिव की अपेक्षा शक्ति का प्राबल्य अधिक हो उठता था, अत: वह बहुत ही सधे क़दमों से पग बढ़ाता। मल-मूत्र विसर्जन के लिए भी वह धरा पर सदैव सूखे पत्तों अथवा सूखी घास को बिछा देता था, परंतु सधे क़दमों से आगे बढ़ते महा का हृदय इस घड़ी यह स्वर उठाता कि जैसे ब्रह्मांड की समस्त भूमि साक्षात् शिव के आकार स्वरूप 'शर्व' की अस्थियों में जा समाई हैं एवं भूमि ही शिव की 'शार्वी' मूर्ति को अभिलक्षित करती है।

किसी भी अग्नि पर दृष्टि पड़ते ही महा को प्रतीत होता था, जैसे संपूर्ण ब्रह्मांड की समस्त अग्नि शिव की काया की उष्णता में समातीं 'रौद्री' मूर्ति का आकार ले रही हैं।

अंतर्दर्शन के इस आनंद में अब महा के लिए स्वयं का अंत: आकाश एवं बाह्य आकाश शिव की ''भैमी'' मूर्ति के अतिरिक्त कुछ न होता था। इस घड़ी उसे प्रतीत होता था जैसे संपूर्ण आकाश भी शिव के हृदयाकाश में अवकाश ग्रहण कर रहा है।

विशाल विश्व को प्रकाशित करते आदित्य पर दृष्टि पड़ते ही महा के दोनों कर जुड़ते स्वत: ही उसके वंदन में लीन हो जाते एवं हृदय में यह भाव उठता कि आदित्य भी धरा स्वरूप शिव की 'शार्वी' मूर्ति के वंदन में प्रकाश फैलाता यह प्रार्थना कर रहा है कि उसके प्रकाश को काशी विश्वनाथ अपने प्रकाश में लीन कर, उसे उनकी 'ईशान' मूर्ति का रहस्य बतलाएँ।

रात्रि की चंद्र-किरणों को आँखों में भर महा इस भाव में लीन हो जाता कि जैसे साक्षात् 'महादेव' स्वयं के स्वरूप को चंद्रमूर्ति का रूप देकर उस अमृत की वर्षा कर रहे हैं, जिसे आत्मसात् कर उनकी समस्त आकारमयी मूर्तियाँ आत्मज्ञान को उपलब्ध 'पशुपति' के निराकार रूप से एकाकार कर लें।

'ॐ' का प्रणव मंत्र अब महा के लिए किसी अमृत से कम न था एवं

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अहर्निश उसी के पान में लीन होकर भी इस घड़ी उसे यह ज्ञात न था कि 'ॐ'कार की यात्रा का पथ क्या है? महा कृष्ण चतुर्दशी के अँधियारे में अंध पग बढ़ाता शिवाराधना में लीन इस शिवरात्रि में मात्र 'अ'कार के साम्राज्य की बाह्य दीवारों से टकरा रहा था। अभी तो स्वयं के साकार स्वरूप का दर्शन भी इस यात्रा में उससे वर्षों दूर था एवं यही एकमात्र कारण था कि जैसे ही उसने पुरी की सीमा में पग रखा तो स्वत: ही 'ॐ' के स्थान पर 'श्रीकृष्ण' का मानसिक जाप उठता कर्णपटल को गुंजारित करने लगा।

तुलसी ने ही तो महा के कर्णपटल पर नवविधा भक्ति को फूँका था एवं जैसे ही वह पुरी की सीमा में प्रविष्ट हुआ तो पार्श्व से गुज़रते जनसमूह के भजन-कीर्तन के स्वरों से माँ का मुखमंडल, महा की दृष्टि के समक्ष घूम गया था। आज उसे ज्ञात हो रहा था कि कितनी अगाध श्रद्धा थी माँ की इस नवविधा भक्ति में-

"श्रवणं कीर्तन: विष्णो: स्मरणं पाद सेवनम्
अर्चनं वंदनं दास्यम् सख्यम् आत्म निवेदनम्।"

भजन-कीर्तन करते जनसमूह को देखते ही महा की दृष्टि उन दो बालको पर चली गई, जो अपनी छोटी बहन की अँगुली थामे यात्रा में पग बढ़ा रहे थे एवं उन पर दृष्टि पड़ते ही महा के भाव में श्रीकृष्ण, बलरामजी एवं उनके मध्य सुभद्राजी की साकार मूर्तियाँ आ खड़ी हुईं जो मंदिर में स्थित हैं।

सदा की तरह अब बुद्धेश दर्शन के लिए मंदिर में प्रविष्ट हो चुका था एवं मंदिर के बाहर विश्राम कर रहे महा के समक्ष भजन-कीर्तन करते लोगों का समूह पुन: आ खड़ा था। पार्श्व में होते हरि-कीर्तन के कर्णपटल पर गूँजते ही आत्मनिवेदन में महा के भीतर सखा एवं दास का भाव उमड़ आया था। मानो इस हरि-कीर्तन के श्रवण में वह भगवान् श्रीकृष्ण, सुभद्राजी एवं बलरामजी के पदों की सेवा करता जैसे पूजन-अर्चन कर वंदन कर रहा था एवं ढोलक, मृदंग और मँजीरों से उठते स्वरों में भाव-विभोर वह भगवान् जगन्नाथ के नाम का स्मरण करता नृत्य कर रहा था। इस घड़ी उसे प्रतीत हो रहा था जैसे श्रीहरि विष्णु स्वयं भाव-विभोर होकर राजा दिवोदास से कह रहे हैं-

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

''जिस तरह श्री के बिना श्रीमंत नहीं होता वैसे ही काशी विश्वनाथ के बिना काशी भी नहीं। उन्हीं की पुनः प्राणप्रतिष्ठा मुक्ति का एकमात्र उपाय है।''

श्री विष्णु एवं श्री शिव के इस एकात्म का भाव सधते ही महा की दृष्टि के समक्ष कबीर पुन: आ खड़े हुए थे, जबकि इस घड़ी वह मंदिर की ओर मुख किए भाव में स्थित श्रीकृष्ण, सुभद्राजी एवं बलरामजी की मूर्तियों को साष्टांग नमन कर रहा था। कबीर के दृष्टि के समक्ष आते ही अब सर्वत्र एक प्रकाश के अतिरिक्त कुछ भी नहीं था, कबीर भी नहीं। दूसरी ही घड़ी उसी प्रकाश से निकलते तुलसी उसकी ओर स्निग्ध स्मित फैला रहे थे एवं तुलसी के प्रकट होते ही पुन: भगवान् जगन्नाथ की मूर्ति दृष्टि के समक्ष आ खड़ी थी।

प्रांत: से मध्याह्न तक इस भाव-विभोरता में उसे अन्न ग्रहण करने तक की सुध न थी। भाव का पल टूटते ही जब नेत्र खुले तो दृष्टि के समक्ष देवालय के परकोटे की दीवार से टिके नंग-धड़ंग गुरु थे। अब वे उसके पास आकर बोल उठे-

''तुझसे पहले भी कहा था कि बहुत प्रवाहित हो लिया भाव के जगत् में। जो शिव अणु से भी अणु है एवं महान से भी महान है, यह विचित्र विश्व उसी शिव का साकार स्वरूप है। वे ही पुरातन पुरुष हैं एवं ईश्वर भी। उनके निराकार स्वरूप का भान यों भाव जगत् में प्रवाहित होकर नहीं हो सकता। तूने भले ही इस भाव में प्रवाहित हो अन्न ग्रहण नहीं किया, परंतु तूने आज उस शंकर की पिंडी को भी देवभोग अर्पित नहीं किया। अपने इस कर्तव्य से ऐसे विमुख न हो। तुझे पहले भी कहा था कि सगुण की उपासना ही निर्गुण के जगत् का द्वार है। यदि ऐसा न होता तो कबीर कभी तेरा त्याग न करते एवं न ही तुझसे यह कहते-

'पर याद रख मैं तेरा गुरु नहीं।' ''

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अध्याय-५४

महाश्मशान मणिकर्णिका पर नियतात्मा, भस्मोद्धूलितविग्रह, महाकाल काशी विश्वनाथ स्वयं के श्री अंगों में चिताभस्म को रमाते अमर अनाहत नद निनादित कर रहे हैं-

"मैं त्रिनेत्र शिव ही स्वयं की इच्छा, ज्ञान एवं क्रिया रूपी दृष्टियों को जीवों के मन में स्थित करता हूँ, जो जीव-काया में प्रवेश कर जीवरूप हो, जानती एवं करती हैं।"

"मैं शिव ही पुरुष को जन्म देता उसी के द्वारा मेरे प्रणव रूपी महामंत्र 'ॐ' का परिचय करवाता हूँ।"

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अत्यधिक क्षुद्र हृदय को लेकर महा ने काशी को छोड़ा था, जबकि वह परम हर्ष एवं उल्लास से भरी काशी तो उसे मृत्यु के साम्राज्य में भी अमरत्व का गान सुना रही थी। कितना समय व्यतीत हो चला था उसे काशी छोड़े हुए, परंतु आज भी कोई ध्वनि या आहट उसके समक्ष पुनः काशी के स्मरण को ला खड़ा करती थी।

तीन वर्षों की इस पगयात्रा में महा अब यह स्पष्ट जान चला था कि किस उच्च धरा को उसने स्वयं के मिथ्या अहंकार में त्याग दिया था। अब उसका इस सत्य से साक्षात्कार हो चला था कि मात्र काशी ही वह धरा है, जहाँ के कण-कण में शिव दिव्यता लेकर प्रकट होते हैं। 'ॐ' मंत्र के मानसिक जाप ने अब उसे काशी की भव्य महिमा से पूर्णरूपेण परिचित कर दिया था।

सनातन शांति से संबंध स्थापित होने के पश्चात् उसे काशी त्यागने का कोई दुःख नहीं सालता था, परंतु हृदय किसी सांसारिक क्षण में काशी के भाव से भर उठता था। गोधूलि में वापस लौटती गायों के गले में बँधी घंटियों से उठती गूँज उसे काशी में प्रातः एवं सांध्य में होते अविरत घंटनाद का स्मरण करा देती थी।

तन आगे की यात्रा में बढ़ रहा था तो मन पुनः उसे काशी लौटने का आदेश देने लगा था। ये मस्तिष्क से उठते विचार थे या फिर हृदय से उठती वाणी? परंतु यह सत्य था कि पुरी के पश्चात् काशी को छोड़ महा ने अपने पग अवंतिका की ओर बढ़ा दिए थे, फिर भी उसे लगता जैसे पग अब भी काशी की ओर ही प्रशस्त हो रहे हैं। न कोई मोह था न ही कोई शोक, फिर ये कैसे स्वर थे जो उसे पुनः काशी लौटने को कहते थे? अंतर में कोई द्वंद्व न था एवं मन भी मृतप्राय हो चला था। यदि कुछ शेष था तो मात्र स्तब्धता, प्रेम एवं सौंदर्य, परंतु काशी जस की तस बढ़ते पगों के साथ-साथ विचर रही थी। ध्यान के टूटते ही यदा-कदा जब दृष्टि के समक्ष काशी आ खड़ी होती थी, तो मात्र यह प्रश्न घड़ी को उठ पुनः शांत हो जाता कि क्या यह भी गुरु का कोई इंगित है जिसे वह समझ नहीं पा रहा?

महा के साथ रहते हुए अब बुद्धेश भी उस साधक भाव की सीमा पर

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

आ खड़ा था, जिस भाव में बाबा रामकृष्ण परमहंस कहते-

'मुझे दाल-रोटी प्राप्त कराने वाली विद्या नहीं चाहिए। मुझे तो वही विद्या चाहिए जिससे हृदय में ज्ञान का उदय होता है'. परंतु जैसे महा उसे किसी और रूप में ही देखना चाहता था।

बुद्धेश भले ही उसके साथ ध्यान में बैठता था, परंतु महा उससे सदैव ही कहता था-

"तुझे भावमुखी रहना है। माँ की साधना भाव के साथ ही होती है।"

उस घड़ी बुद्धेश के हृदय में भी यह प्रश्न उठता कि क्यों महा के गुरु उसे भाव जगत् से बाहर ला खड़ा करना चाहते हैं? इन दो वर्षों में भी बुद्धेश, महा के मुखमंडल के पीछे के भावों को नहीं पढ़ पाया था।

कालों के काल महाकाल की इस पौराणिक नगरी अवंतिका में पग धरते ही जैसे महा को प्रतीत हुआ कि वह पुन: काशी के सदृश महाश्मशान में आ पहुँचा है। महा जानता था कि यह महाकाल वन भी शिव को अतिशय प्रिय है एवं यह भी काशी की ही तरह विमुक्ति क्षेत्र कहलाता है। अपने भक्त वेदप्रिय एवं उनके पुत्रों की जीवन रक्षा हेतु ही भगवान् शिव ने महाकाल का रूप धरकर, असुर सम्राट दूषण का वध कर स्वयं को ज्योतिर्लिंग के रूप में यहाँ प्राणप्रतिष्ठित किया था।

रात्रि विश्राम के पश्चात् प्रात: बुद्धेश महाकाल के ज्योतिर्लिंग की भस्म आरती के दर्शन के लिए मंदिर में चला गया था। मंदिर के शिखर दर्शन कर जैसे ही महा पद्मासन में बैठ ध्यानस्थ हुआ, तो दृष्टि के समक्ष वह भयावह दृश्य था जिसे देख वह काँप उठा था। डमरू, झाँझ, शंखों एवं नगाड़ों के भीषण नाद के मध्य काशी में महाश्मशान मणिकर्णिका पर काशी विश्वनाथ ध्यानस्थ बैठे हैं एवं असंख्य भूत-पिशाच उनके गण के रूप में घोर नाद उठाते एवं नृत्य करते काशी विश्वनाथ के श्री विग्रह पर चिताभस्म को मलते चीत्कार कर रहे हैं।

घड़ी भर में ही दृश्य परिवर्तित हुआ एवं महा ने देखा कि काशी विश्वनाथ के स्थान पर अब वहाँ रजत से बनी एक दीर्घ सर्पयुक्त योनि में स्थित विशाल ज्योतिर्लिंग है और एक साधु भस्म की पोटली से ज्योतिर्लिंग का शृंगार

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कर रहा है। डमरुओं एवं मँजीरों की तुमुल ध्वनि में अब गर्भगृह में मात्र आरती के दीये के प्रकाश में भस्म शृंगारित यह ज्योतिर्लिंग दिव्यता उठा रहा है। ध्यान में जो दृश्य महा ने उत्तरार्द्ध में देखा था उसी का साक्षात्कार मंदिर के गर्भगृह में खड़ा बुद्धेश इस घड़ी कर रहा था।

आरती के पश्चात् बुद्धेश के लौटने पर अब दोनों कालभैरव के मंदिर आ पहुँचे थे। कालभैरव को मदिरा का प्रसाद चढ़ा जब बुद्धेश लौटा था तो उसे ऐसा प्रतीत हो रहा था, जैसे महा ने मदिरा का सेवन किया हो एवं उसकी मस्ती में उसके पग लड़खड़ा रहे हों।

रात्रि विश्राम के लिए आज महा ने कालभैरव के मंदिर के पीछे प्रवाहमयी क्षिप्रा नदी के दूसरे किनारे स्थित श्मशान को चुना था। आज बुद्धेश, महा की दृष्टि में एक विचित्र भाव को पढ़ रहा था। संध्या के बीतते ही सर्वत्र अंधकार का साम्राज्य व्याप्त हो चला था एवं महा, बुद्धेश की दृष्टि में अपने नेत्र गड़ाए बोल उठा था-

''मानव समझता है कि मृत्यु मात्र साँस छूट जाने का नाम है, परंतु मरण तो जीवन की सर्वोच्च कला है। मरण को कैसे प्राप्त हों? यह सत्य जानने पर मानव जीवन के गहनतम सत्य से साक्षात्कार कर लेता है।

''मरण को कैसे प्राप्त हों का तात्पर्य?'', बुद्धेश ने प्रश्न किया।

''मरण की कला को जानकर मरण को प्राप्त करना'', महा ने हँसकर उत्तर दिया।

श्मशान में जलती चिता अब बुझ चुकी थी एवं उसकी भस्म से ललाट, कंठ, भुजा एवं छाती पर त्रिपुंड खींचता महा बुद्धेश को देख कह उठा-

''आज तुम भी इस ज्ञान को प्राप्त कर लो कि मरण को कैसे प्राप्त हुआ जाता है।''

कहते हुए महा ने धरा पर एक श्वेत वस्त्र बिछा दिया और उस पर शवासन में लेट गया। उसे इस तरह देख बुद्धेश अत्यंत ही भयभीत हो उठा था एवं लगभग काँपते स्वर में बोल उठा-

''नहीं, ऐसे शब्दों का उच्चारण मत करो। तुम मुझे यों नहीं त्याग

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सकते।''

''मेरी ओर दृष्टि डालो एवं जो ज्ञान दे रहा हूँ उसे आत्मसात् कर लो, तो मरण को कैसे प्राप्त हुआ जाता है यह तुम्हें भी ज्ञात हो जाएगा। भयभीत मत होओ। यदि कल अर्द्धरात्रि तक मैं पुन: अपने नेत्रों को न खोलूँ, तो मुझे भी महाकाल की इस पुरी में चिताग्नि दे भस्म कर देना। यदि मेरी भस्म महाकाल पर अर्पित हो गई तो इससे अधिक सौभाग्य, वह भी मेरे जैसे चांडाल के लिए क्या हो सकता है!'' महा ने कहा।

बुद्धेश के नेत्रों से अश्रुधार बह चली थी एवं लगभग सुबकियाँ लेता वह बोल उठा था-

''आज ऐसा विचित्र व्यवहार क्यों कर रहे हो? नहीं तुम यों मुझे अकेला छोड़कर नहीं जा सकते।''

एक स्निग्ध स्मित मुख पर ला महा बोल उठा-''अरे बावले! तुम्हें ऐसे कैसे छोड़ दूँगा? अभी तो तुम्हारे साथ और ज्योतिर्लिंगों की यात्रा शेष है, परंतु आज इतना अवश्य जान लो कि मरण को कैसे प्राप्त हुआ जाता है'', कहते हुए महा ने अपनी धोती जंघा तक ऊपर खींच ली थी।

अवाक् बुद्धेश अब भी अश्रुधार बहा रहा था एवं महा ने उसे देख कहा-

''मेरे पग पर हाथ रखो।'' बुद्धेश ने जैसे ही अपना कर महा के पग पर रखा, महा बोल उठा-

''देखो पग ठंडे हो रहे हैं।''

बुद्धेश को अनुभव हुआ कि वास्तव में महा के पग ठंडे पड़ गए थे।

''अब जंघा पर हाथ रखो'', महा ने कहा।

जैसे ही बुद्धेश ने जंघा पर अपना कर रखा, महा पुन: बोल उठा-

''देखो जंघाएँ भी ठंडी पड़ चुकी हैं'', बुद्धेश ने देखा कि वास्तव में जंघाएँ भी ठंडी पड़ चुकी थीं।

अब महा ने कहा- ''मेरे उदर पर हाथ रखो।''

बुद्धेश के हाथ रखते ही महा बोल उठा- ''देखो उदर भी ठंडा हो गया है।''

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बुद्धेश ने देखा कि महा जैसा बोल रहा था ठीक वैसा ही हो रहा था, उसके मन में हाहाकार मच रहा था। न वह महा को रोक सकता था एवं न ही वह चाहता था कि महा यों मरण का साक्षात्कार करे। हर घड़ी जैसे मृत्यु का देवता पग बढ़ाता उससे महा को छीन रहा था। स्वयं के हृदय का स्पंदन अब उसके क़ाबू में न था एवं दृष्टि एक कातर याचना के भाव से महा को देख रही थी। अविरल अश्रुधार में अब वह महा का मुख भी स्पष्ट नहीं देख पा रहा था कि महा ने पुनः कहा-

''अब मेरे सीने पर हाथ रखो तो पाओगे कि वह भी ठंडा हो रहा है।''

बुद्धेश यंत्रवत् वैसा ही कर रहा था, जैसा महा उसे निर्देश दे रहा था। महा के सीने पर कर रखते ही उसे प्रतीत हुआ कि वास्तव में सीना ठंडा हो गया था। कभी स्वप्न में भी कल्पना न की थी कि उसका किसी ऐसी घड़ी से सामना होगा।

अब भय से उसके कर काँप रहे थे एवं हृदय में निर्मम महासमर लड़ते उसके प्राण भी छटपटाने लगे थे कि पुनः महा के स्वर उसके कर्णपटल पर गूँजने लगे। इस घड़ी गूँजते स्वर जैसे महा के नहीं अपितु यम रूपी काल के देव के थे-

''अब स्वयं का कर मेरे कंठ पर रखो। कंठ ठंडा होने के पश्चात् मेरे स्वर रुद्ध हो जाएँगे, अतः मैं आगे बोल नहीं पाऊँगा। कंठ के पश्चात् मुख एवं ललाट भी ठंडे पड़ जाएँगे। अब उस सत्य से साक्षात्कार करो जिसका ज्ञान मैं तुम्हें दे रहा हूँ कि यह मैं स्वयं देख रहा हूँ कि जो ठंडी हो रही है, वह मात्र देह है एवं तुमसे मैं पुनः यह कह रहा हूँ कि यह मैं स्वयं देख रहा हूँ।''

महा के मुखमंडल पर अत्यधिक ओज उतर आया था एवं इस घड़ी में उसके अंतिम शब्द थे-

''मात्र इसे मनन करते रहना कि जो ठंडी हो रही है वह मात्र देह है, तो मरण की कला तुम्हें भी ज्ञात हो जाएगी।''

अब बुद्धेश के कर महा के कंठ पर थे एवं दो घड़ी में ही महा के नेत्र बंद हो गए थे। मुखमंडल एक असीम दिव्यता से भर उठा था एवं एक स्निग्ध

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

स्मित उसके सौंदर्य को बढ़ा रहा था।

बुद्धेश की दृष्टि के समक्ष जैसे उसकी माँ की मृत्यु का दृश्य आ खड़ा था। उसे प्रतीत हो रहा था जैसे कि अब उसकी प्राणवायु भी रुकने ही को है। हृदय में मचते हाहाकार में अब वह महा की काया से ऐसे लिपटता फूट-फूट कर रो रहा था, जैसे आज उसका सर्वस्व छिन गया था। तभी उसे महा के शब्दों का स्मरण हो आया-

''अरे बावले! तुम्हें ऐसे कैसे छोड़ दूँगा? अभी तो तुम्हारे साथ और ज्योतिर्लिंगों की यात्रा शेष है।''

ये शब्द स्मरण आते ही बुद्धेश के हृदय में क्षणिक आशा का संचार हुआ ही था कि उसे पुन: स्मरण हो आया-

''यदि कल अर्द्धरात्रि तक मैं पुन: अपने नेत्रों को न खोलूँ, तो मुझे भी महाकाल की इस पुरी में चिताग्नि दे भस्म कर देना। यदि मेरी भस्म महाकाल पर अर्पित हो गई तो इससे अधिक सौभाग्य, वह भी मेरे जैसे चांडाल के लिए क्या हो सकता है!''

यह स्मरण आते ही अब ढाढ़स टूट चुका था एवं बुद्धेश किसी विक्षिप्त की तरह दहाड़ मारकर रोने लगा था।

रात्रि की प्रत्येक घड़ी बुद्धेश के लिए एक युग जैसी हो गई थी। अब उसने महा का शीश स्वयं की गोद में रख लिया था। इस समय महा को देख ऐसा लग रहा था, जैसे कोई यति चिरनिद्रा में लीन भवसागर से पार हो गया हो।

रात्रि व्यतीत होते ही प्रात: से लेकर सायं तक बुद्धेश, महा को एकटक देखता रहा। किसी विक्षिप्त मानव के समान उसने पल को पलक भी नहीं झपकाई थी। कई लोग महा को योगी मान उसके चरण स्पर्श करने के लिए जैसे ही पग आगे बढ़ाते, तो बुद्धेश के क्रोधित नेत्रों को देख वे सिहरकर वहीं थम जाते थे। और तो और क्षुधा एवं पिपासा के प्रति भी बुद्धेश का भान न था। कंठ सूख रहा था पर उसने लार को भी न निगला था। घड़ी भर को भी उसने महा को न छोड़ा था।

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कैसी विचित्र स्थिति थी! हर घड़ी मात्र एक प्रश्न ही बुद्धेश के लिए जीवन हो चला था कि यदि अर्द्धरात्रि में महा ने नेत्र न खोले तो?

अर्द्धरात्रि में जैसे ही महा ने अपने नेत्र खोले तो हर्षातिरेक में बुद्धेश को प्रतीत हुआ, जैसे प्रकृति ने उसे साक्षात् प्राणवायु भेंट की हो। माँ काली का स्मरण कर अब वह कृतार्थ भाव से बाबा रामकृष्ण परमहंस का स्मरण करता महा से लिपट फूट-फूट कर रोने लगा था। इस घड़ी उसकी दृष्टि महा के दाहिने पग अंगुष्ठ पर थी जिसमें वह बाबा रामकृष्ण परमहंस के चरण-कमलों की छवि देख रहा था।

महा की दृष्टि अब सामने प्रज्वलित चिताग्नि पर स्थिर थी एवं शून्य के जगत् में विचरण करता उसका अंतर गुरुवाणी से गूँज उठा था-

''त्रिनेत्र शिव ही स्वयं इच्छा, ज्ञान एवं क्रिया रूपी दृष्टियों को जीवों के मन में स्थित करते हैं, जो जीव-काया में प्रवेश कर जीवरूप हो, जानती एवं करती हैं।''

गुरुवाणी के अंतर में उठते ही महा के मस्तिष्क में प्रश्न उठा- ''वह मैं कौन था, जो करते हुए भी यह जान रहा था कि मैं केवल देख रहा हूँ एवं जो ठंडी हो रही है वह मात्र देह है?''

प्रश्न उठते ही उत्तर में गुरुवाणी फिर अंतर में गूँज उठी-

''शिव ही पुरुष को जन्म देते, उसी के द्वारा उनके प्रणव रूपी महामंत्र 'ॐ' का परिचय करवाते हैं।''

''यह पुरुष कौन है, क्या वह मैं हूँ?''

इस प्रश्न मात्र से जैसे किसी महान यात्रा का पथ महा को दृष्टिगोचर होने लगा था। काया की ऊर्जा जैसे निर्मुक्त हो गई थी। महा के चरणों में बाबा रामकृष्ण परमहंस के चरण-कमलों की छवि को निहारते बुद्धेश के हृदय में ये भाव उठ रहे थे-

''जिसके चरण-कमलों में साक्षात् किसी परमहंस की झलक मिलती हो, मात्र उसी से तो कबीर यह कह सकते हैं-

'पर याद रख मैं तेरा गुरु नहीं।' ''

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अध्याय-५५

आज महाश्मशान मणिकर्णिका पर योगीयोग्य, विश्वश्वोत्पत्ति, नानाभूतरत काशी विश्वनाथ तीनों लोकों के द्रष्टा हो ब्रह्मांड रूपी भवन का निर्माण करते अमर अनाहत नाद उठा रहे हैं-

"मैं शिव ही सर्वपिता स्वरूप महद्‌ब्रह्म अर्थात् प्रकृति रूपी योनि में बीज स्थित करते समस्त भूत मूर्तियों को जन्म देता हूँ।"

"मैं शिव ही स्वयं की कला से उस नर्मदा नदी का सृजन करता हूँ जिस महाभागा, महापुण्या, अमृता के तट पर मैं सदैव निवास करता हूँ एवं इसके तटवर्ती पाषाण मुझ शिव के भाव को ही प्राप्त होते हैं। मेरी यह पुत्री केवल तन को ही नहीं, अपितु मन एवं आत्मा को भी सुख प्रदान करती है।"

"इस नर्मदा के तट पर रमण ही शिवज्ञान है। इसके तट पर स्थित हो ध्यान करने वाला शिव सालोक्य-मुक्ति को प्राप्त होता है एवं इसके तट पर मृत्यु पाने वाले को शिव सारूप्य-मुक्ति प्राप्त होती है।"

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अब यात्रा की सभी पार्थिव पगडंडियाँ उसी परम राजमार्ग में जा समाती थीं जहाँ शिव नित्य विचरते हैं। अवंतिका में चार मास व्यतीत होने को आए थे। भिक्षा माँगकर अन्न ग्रहण करते एवं क्षिप्रा के किनारे श्मशान में साधना करते हुए महा को यह गुरु ज्ञान स्पष्ट हो चला था कि 'चैतन्य सर्वदा जड़ से भिन्न है।'

आकाश में आषाढ़ के बादल जब धरा पर जल बिंदुओं को बरसाते, तो रज से उठती भीनी-भीनी गंध चैतन्य को आंदोलित करती महा को अवंतिका के दक्षिण की ओर स्थित ममलेश्वर ज्योतिर्लिंग का कोई संदेश ला सुनाती थी।

अब तो भरत खंड की यह पग यात्रा मानो पंचक्रोशी काशी की ही यात्रा हो चली थी। धरा पर प्रत्येक पग आगे बढ़ाते महा को प्रतीत होता था, जैसे वह शीतकाल में कोहरे से आच्छादित प्रात: में इस्माइल चाचा के साथ अस्सी घाट से आदिकेशव मंदिर की नाव यात्रा में प्रशस्त हो रहा है। पग यात्रा में अब प्रत्येक स्थल जैसे काशी का कोई घाट हो चला था एवं रहस्यमय कोहरे की श्वेत चादर से स्वयं के रहस्य को उघाड़ने की चेष्टा में शिव उसे कोई संदेश ला सुना रहे थे।

'ॐ'कार के मानसिक जाप के साथ घड़ी को घाट से छँटते कोहरे में घाट स्वयं की झलक दे जाता था, परंतु स्वयं का रहस्य पूर्णरूपेण न उघाड़ता था। रहस्य को उघाड़ने की माँग में ही शायद मन की रिक्तता लुप्त हो जाती थी एवं रहस्य और अधिक गहरा जाता था।

ओंकारेश्वर की ओर यात्रा में पग बढ़ाते हुए अब रह-रह कर महा की दृष्टि के समक्ष उन महात्मा का मुखमंडल घूम जाता था जिन्होंने उसे गंगा के स्वरूपों से परिचित किया था। आज मानो कोई गंगा उसे स्वयं की ओर पुन: आकर्षित कर रही थी। काशी को त्यागने के पश्चात् आज पुन: शिवसालोक्य उसे आमंत्रित कर रहा था। स्वप्न में अब दैविक जगत् का उतरना सामान्य हो चला था।

ओंकारेश्वर से कुछ कोस की दूरी पर आज उसने पुन: स्वप्न में प्रलय के मध्य मगर पर विराजमान एक देवी के दर्शन किए थे। दृश्य परिवर्तन में उसने

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

देखा कि लोक-कल्याण हेतु भगवान् शंकर तपस्या में लीन हैं एवं उनकी काया से निकली मोती के सदृश स्वेद बूँद ने प्रथमतः नदी का रूप धारण किया, तत्पश्चात् नारी का रूप धारण कर लिया।

अब वह अति सुंदर नारी सहस्र वर्षों की शिव आराधना में लीन हो गई थी। शिव के प्रसन्न होने पर उस नारी ने वरदान माँगा-

"प्रलयकाल में भी मैं अक्षत रहूँ एवं दक्षिण में गंगा-सी महिमा पाऊँ। जीव को मेरे दर्शन मात्र से ही पाप से मुक्ति प्राप्त हो एवं आप और माँ उमा मेरे निकट ही रहें।"

तब श्री शंकर ने वरदान देते हुए कहा था-

"ऐसा ही हो। समस्त देव तुम्हारे उत्तर तट पर निवास करेंगे, दक्षिण में पितृों का श्राद्ध होगा एवं अन्य मेरे साथ यहाँ निवास करेंगे।"

नेत्र खुलते ही जैसे एक दिव्य ऊर्जा महा को ओंकारेश्वर की ओर आकर्षित करने लगी एवं महा ने बुद्धेश को जगाकर यात्रा को प्रारंभ कर दिया।

कुछ कोस चलते ही सर्वपापनाशिनी, रेवा माँ नर्मदा दृष्टिगोचर होने लगी थी। उस पर दृष्टि पड़ते ही महा को प्रतीत हुआ जैसे वह भोर अँधेरे दशाश्वमेध घाट की सीढ़ी पर खड़ा उन महात्मा से गंगा के स्वरूपों का नहीं, अपितु इन माँ नर्मदा के स्वरूपों का परिचय पा रहा था। क्षण को तो उसने स्वयं के नेत्रों को भी मला परंतु हृदय यथावत् था एवं रुद्रोद्भवा, कल्याणदात्री, महापुण्यदा, महावर्णा, विपाशा, कर्मा इत्यादि स्वर गुंजारित करते महात्मा धाराप्रवाह नर्मदा के सभी रूपों का महिमागान कर रहे थे। कैसा विचित्र अनुभव था कि दृष्टि के समक्ष माँ नर्मदा अपने ओजस्वी प्रवाह के साथ प्रवाहित हो रही थीं एवं उसे लग रहा था जैसे वह काशी के दशाश्वमेध घाट पर खड़ा था। घड़ी भर में ही दशाश्वमेध घाट दृष्टि से ओझल हो गया एवं महात्मा का अंतिम कथन महा के कर्णपटल पर गुंजायमान होने लगा-

"मात्र शिव ही स्वयं की कला से उस नर्मदा नदी का सृजन करते हैं जिसके तटवर्ती पाषाण भी शिव के भाव को ही उपलब्ध होते हैं। अतः इसकी परिक्रमा तू अवश्य करना। द्वादश ज्योतिर्लिंग इसके तट पर भी स्थित हैं।"

अब नर्मदा-स्नान की घड़ी महा को प्रतीत हो रहा था, जैसे वह माँ

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

यशोदा की गोद में किलकारियाँ ले रहा है एवं माँ नर्मदा में स्थित प्रत्येक पाषाण बाल शंकर के रूप में उसके साथ क्रीड़ारत है। कहाँ क्या भेद है? सोचते महा को यह ज्ञात न था कि पाषाण में शिवरूप देखना ही भेद है। अभी वह अद्वैत कुछ वर्ष दूर था जहाँ मात्र शिव होते हैं, कोई पाषाण नहीं।

नाव के माध्यम से अब नदी को पार कर, दोनों ही नदी के किनारे-किनारे पग बढ़ाते ओंकारेश्वर आ पहुँचे थे। सायं होने को थी, सो एक वट वृक्ष के नीचे दोनों विश्राम करने लगे।

ऋषि नारद द्वारा तिरस्कृत महसूस कर पर्वतराज विंध्य ने 'ॐ'कार रूपी पर्वत पर शिव के पार्थिव लिंग की तपस्या कर शिव-वरदान स्वरूप अभीष्ट बुद्धि को पाया एवं देवों के आग्रह पर वह पार्थिव लिंग दो भागों में विभक्त हो गया। प्रणव में जो सदाशिव हैं, वे 'ॐ'कार में प्राणप्रतिष्ठित हुए एवं परमेश्वर संज्ञा को प्राप्त शिव ज्योति, पार्थिव मूर्ति में प्राणप्रतिष्ठित होती 'अमलेश्वर' कहलाई।

शंव जलाने की शिवसाधना जीवन के किसी क्षण ऐसी शिवसाधना में परिवर्तित हो जाएगी यह महा ने कभी नहीं सोचा था। प्रात: ध्यान करते महा को प्रतीत हो रहा था जैसे वह शिव के लोक में विचरता, ध्यानमग्न है। अवश्य ही नर्मदा के इस तट पर मृत्यु प्राप्त करने वाला शव, सारूप्य-मुक्ति को प्राप्त होता होगा, यह भाव महा के अंतर में 'ॐ' के प्रत्येक जाप के साथ अँगड़ाई ले रहा था एवं बुद्धेश अब अमलेश्वर ज्योतिर्लिंग के दर्शन के लिए नाव पर सवार था।

ध्यान के इस क्षण महा को लगा जैसे नर्मदा के स्वरूपों को पुन: उजागर करते उन महात्मा ने उसे अपने आलिंगन में भर लिया एवं उसी क्षण उसका ध्यान टूट गया। दृष्टि के समक्ष कोई नहीं था एवं वह आलिंगन उसे माँ नर्मदा की परिक्रमा की ओर इंगित कर गया था।

दो दिवसों के विश्राम के बाद अब यहीं से अमरकंटक की यात्रा आरंभ हो गई थी। कैसा विस्तृत दैविक जगत् था यह! जहाँ प्रत्येक पग पर कोई तीर्थ बैठा जीवों के उद्धार की प्रतीक्षा करता है। तीन शत शिव तीर्थ एवं कई कोटि तीर्थों को समाहित करती यह यात्रा, महा को किस पथ की ओर अग्रसर कर

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
रही थी इससे वह अब भी अनभिज्ञ था। प्रत्येक संगम पर डुबकी अब उसके लिए मात्र 'ॐ' एवं 'ॐ' के अतिरिक्त कुछ न थी। न अब कबीर थे, न तुलसी एवं अब तो जैसे गुरु का मुखमंडल भी लुप्त हो रहा था।

अमरकंटक पर तो मात्र साक्षात् 'ॐ' ही स्थित था। शिव की पाँच कलाओं के रूप में स्थित यह पंचाक्षर, पंचवक्त्र, पंचाभिमुख शिव के रूप में गुरु उसके सम्मुख किस रहस्य को उघाड़ना चाहते हैं, यह अब भी उसकी समझ से परे था। आत्म-मित्र बन पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु एवं आकाश उसे किस दिशा में धकेल रहे थे, यह भी उसे ज्ञात न था। यदि कुछ प्रतीत होता तो मात्र इतना कि प्रत्येक कण मात्र शिव का ही आभास देता था।

जब संपूर्ण ब्रह्मांड शिव का ही रूप है तो क्या मात्र यही शिव का स्वरूप है? इस प्रश्न में भी महा को यह भान न था कि ब्रह्मांड से शिव स्वरूपता नहीं अपितु शिव स्वरूपता से ब्रह्मांड स्वरूप पाता है।

जिन काशी विश्वनाथ के निःश्वास से संपूर्ण ब्रह्मांड का ज्ञान वेदों में समाहित होता धरा पर अवतरित हुआ है, वे काशी विश्वनाथ इस 'ॐ' रूपी प्रणव मंत्र से उसे क्या ज्ञान देना चाहते हैं, मात्र यही ध्यान करता वह इस भाव दशा में कहीं तो एक मास तक टिक जाता, तो कहीं एक ही दिवस में पुनः आगे की ओर यात्रा प्रारंभ कर देता था।

पार्श्व में बहती माँ नर्मदा में माँ यशोदा एवं गंगा को निहारता आज वह पग बढ़ा ही रहा था कि उसने देखा कि सलिला के तीव्र प्रवाह में तैरते उसके नंग-धड़ंग गुरु उसकी ओर देख स्निग्ध स्मित फैला रहे हैं। उन्हें देख जैसे ही वह नर्मदा में छलाँग लगाने को आतुर हुआ तो देखा कि दृष्टि के समक्ष कोई नहीं था।

यात्रा में पड़ते प्रत्येक ग्राम के वासी जैसे यात्रियों की सेवा करते हुए कृतार्थ भाव से भर उठते थे। कैसी पावन धरा है इस देश की! जहाँ भिक्षु को दान देने के पश्चात् दानी, दक्षिणा के रूप में दान ग्रहण करने वाले को धन्यवाद प्रेषित करता है कि भिक्षु ने उसे इस योग्य समझा कि वह उससे दान ग्रहण कर सके।

खंबात की खाड़ी में भरुच के निकट नर्मदा के संगम से पुनः ओंकारेश्वर की ओर लौटते हुए जैसे लघु द्वादश ज्योतिर्लिंग की यात्रा संपूर्ण हो चली थी।

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

किसी भगंवत्-चेतना से आंदोलित हृदय लिए महा को आज पुन: कबीर एवं गुरु का स्मरण हो आया था। उसके लिए तो जैसे यह यात्रा ही बेग़मपुर की यात्रा थी जहाँ सर्वत्र आनंद ही आनंद था, परंतु इस बेग़मपुर के स्वामी शिव के राजमहल का द्वार तो अब भी दृष्टि के समक्ष उपलब्ध न था।

शिव कितने सुंदर हैं एवं सत्य भी, इसका भान बुद्धेश को इस यात्रा से पूर्व न था। शायद यही भान करवाने बाबा रामकृष्ण परमहंस ने उसे द्वादश ज्योतिर्लिंग की यात्रा के लिए आज्ञा दी थी। नर्मदा परिक्रमा के इस एक वर्ष सात माह में अब आकाश से उठती वायु तरंगें मानो उसके कर्णपटल पर भी ''ॐ नम: शिवाय'' का महामंत्र फूँक जाती थीं एवं ''ॐ नम: शिवाय'' के गूँजते ही माँ काली की मूर्ति उसकी दृष्टि के समक्ष घूम जाती थी। शिव से शक्ति हैं या शक्ति से शिव, यह रहस्य शिव और शक्ति के अतिरिक्त कौन जानता है?

महा कहाँ जानता था कि शिव से एकाकार होना न केवल उसकी यात्रा थी, अपितु यह तो स्वयं शिव की भी उससे एकाकार करने की यात्रा थी। परम सृष्टि रूपी शिवालय में बैठे शिव की व्याकुलता को कौन जानता है?

माँ रूपी नर्मदा के तट पर फैले अरण्य में पग बढ़ाते हुए आज वे पुन: ओंकारेश्वर की ओर लौट रहे थे। भाग्य की लेखनी कभी उसे इस परिक्रमा का सौभाग्य प्रदान करेगी, ऐसा विचार महा के हृदय में महाश्मशान मणिकर्णिका पर शवों को जलाते हुए क्षण मात्र के लिए भी नहीं आया था। देह पर मात्र धोती एवं यज्ञोपवीत धारण किए महा की पूरी काया में इस पल एक तीव्र सिहरन उठ रही थी एवं बुद्धेश देख रहा था कि महा की संपूर्ण काया किसी पर्ण की तरह काँप रही थी। महा के ऐसे स्वरूप का दर्शन आज उसे प्रथम बार हो रहा था, जैसे कोई तीव्र शक्ति महा को कँपा रही हो।

पार्श्व में माँ नर्मदा कल-कल, छल-छल करती प्रवाहित हो रही थी एवं तीव्र गति से बहती पूर्वी वायु से अरण्य के वृक्षों के पर्ण अब उड़ने लगे थे। धरा के रजकणों ने इस वायु के साथ बवंडर उठा लिया था। अब भी महा पूर्ववत् काँप रहा था कि एकाएक उसे दृष्टिगोचर हुआ कि सामने की दिशा से एक असीम दिव्यता उठाती देह उनकी ओर पग बढ़ा रही थी। उस दिव्य देह की रूपरेखा किसी शक्तिमान योद्धा से कम न थी। उन पर दृष्टि पड़ते ही महा को

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

प्रतीत हुआ जैसे साक्षात् रुद्र उनकी ओर पग बढ़ा रहे थे। उनकी देह से झरती ज्योति दर्शा रही थी कि ऐसी ही दिव्यात्मा, मानव आत्मा को बंधन से मुक्त करती है।

दृष्टि के समक्ष कोई वैश्विक दृश्य नहीं था अपितु मानो विश्वनियंता शिव किसी स्वरूप में साक्षात् उनकी ओर पग बढ़ा रहे थे। अंधड़ अब और तीव्र हो चला था एवं नेत्रों में रजकणों के प्रविष्ट होने से महा एवं बुद्धेश दोनों की ही दृष्टि धुँधला गई थी। अभी वे नेत्रों को मल ही रहे थे कि वह दिव्य पुरुष उनके समक्ष आ खड़ा हुआ।

कैसे अतिमानवीय महासत्य का साक्षात्कार हो रहा था! यह साक्षात्कार होते ही महा की दृष्टि के समक्ष वह अर्द्धरात्रि घूम गई, जब गोमुख के निकट स्थित कंदरा में गुरु के कंठ पर कुंडली लपेट बैठा नाग फन फैलाकर डोल रहा था।

संपूर्ण वातावरण ने जैसे किसी देवालय का रूप धर लिया था। उस दिव्य पुरुष की देह से सतत झरते प्रकाश से सम्मोहित होता महा उन्हें साष्टांग नमन करने लगा। बुद्धेश के लिए यह दृश्य किसी आश्चर्य से कम न था क्योंकि इतने वर्षों में उसने महा को किसी भी मानव के समक्ष ऐसे नमन करते हुए नहीं देखा था।

"ज्ञानवान् भव।" का आशीर्वाद देते उन दिव्य पुरुष के मुख पर एक स्निग्ध स्मित फैल गया था। बुद्धेश देख रहा था कि उनकी देह पर धोती एवं यज्ञोपवीत के अतिरिक्त कुछ भी न था। पाँव में खड़ाऊँ एवं ललाट पर वस्त्र बाँधे, वे महा के खड़े होते ही बोल उठे-

"मुझे घृत चाहिए।"

महा ने क्षमायाचना के भाव से अपने दोनों कर जोड़ लिए एवं कह उठा-

"घृत तो हमारे पास नहीं है।"

वह दिव्य पुरुष पुनः बोल उठे-

"मिथ्या न कहो। अपनी झोली में देखो, वहाँ घृत रखा हुआ है।"

महा ने जैसे ही अपनी झोली में देखा तो वह एक अपूर्व आश्चर्य से सिहर उठा। पोटली में घृत का पात्र स्थित था। उसे निकालकर उनके करों में

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

रखकर महा पुनः नेत्रों में क्षमायाचना के भाव लिए उन्हें देखने लगा।

न जाने कैसा सम्मोहन था कि बुद्धेश उन्हें नमन कर कुछ पग आगे बढ़ाकर स्थिर हो गया था एवं अब वह देख रहा था कि वे महा से कुछ वार्त्तालाप कर रहे थे। वह भी आश्चर्य में था कि महा की झोली में घृत का पात्र कहाँ से आया? बुद्धेश ने देखा कि महा ने पुनः उन्हें साष्टांग नमन किया एवं घृत का पात्र ले वह तेजस्वी पुरुष आगे की ओर पग बढ़ाने लगे। महा, बुद्धेश की ओर पग बढ़ाता उसके निकट पहुँच चुका था। अंधड़ अब भी तीव्र गति से चल रहा था। सूखे पर्णों एवं रजकणों के उड़ने से अत्यधिक कोलाहल हो रहा था।

अब संध्या होने को थी। आदित्य अस्ताचल की ओर पग बढ़ा रहा था एवं महा के निकट आते ही अति जिज्ञासा से बुद्धेश ने प्रश्न किया-

"कौन थे वे?"

मौन महा आगे की ओर तेज़ी से पग बढ़ा चला। बुद्धेश भी तीव्रता से महा के साथ हो लिया था एवं उसने महा से पुनः वही प्रश्न किया, तो उत्तर में महा ने मात्र इतना कहा-

"अश्वत्थामा।"

आश्चर्य से चौंककर जैसे ही बुद्धेश ने पीछे पलटकर देखा तो उसके नेत्र फटे के फटे रह गए थे। दूर-दूर तक धूल के गुबार एवं उड़ते सूखे पर्णों के अतिरिक्त कुछ न था। कोलाहल यथावत् था एवं हवा की सायं-सायं के मध्य महा के कर्णपटल पर उनके कहे ये वचन गूँज रहे थे-

"जन्म-जन्मांतर के पुण्यों के परिणाम से ही कोई मानव शिवपूजा रूपी शिवयोग को उपलब्ध होता है। तेरा प्रारब्ध दर्शा रहा है कि मोक्ष रूपी परम पद को उपलब्ध हो तू जीव, शिव से एकाकार करता यह रहस्य ज्ञात कर लेगा कि शिव ही सर्वपिता स्वरूप महद्ब्रह्म अर्थात् प्रकृति रूपी योनि में बीज स्थित कर समस्त भूत मूर्तियों को जन्म देते हैं। सृजन हो या संहार, मैं और यह नर्मदा यों ही विचरते रहेंगे। प्रलय के मध्य भी अमरता अपना दिव्य गान उठाती है। हाँ, मैं अश्वत्थामा हूँ। वही अश्वत्थामा जिसके पिता ने ज्येष्ठ कुंती पुत्र कर्ण से वही कहा था, जो तू सदा-सदा ही सुनता आया है-

'पर याद रख मैं तेरा गुरु नहीं।' "

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अध्याय-५६

आज महाश्मशान मणिकर्णिका पर जीवितांतकर, प्रसन्नात्मा, पिंगलाक्ष काशी विश्वनाथ इंद्रियातीत एवं सर्वव्यापी हो समस्त तंत्र शास्त्रों को रचते अमर अनाहत नाद निनादित कर रहे हैं-

''मेरा प्रणव रूपी महामंत्र 'ॐ' ही परब्रह्म है, साथ ही सगुण एवं निर्गुण ब्रह्म भी। इस अक्षर ब्रह्म के ज्ञात होते ही जीव मुझ शिव से एकाकार कर लेता है।''

''चिताभस्म को अपने अंग पर रमाए यदि कोई जीव मेरे इस महामंत्र प्रणव 'ॐ' के जाप में लीन रहता है तो उसे किसी और तरह के यम-नियम, धारणा एवं ध्यान आदि की आवश्यकता नहीं। मात्र मानसिक जाप ही ध्यान का रूप धर जीव को सिद्धि प्रदान करता उसका मुझ शिव से तादात्म्य स्थापित करवाता, जीव को मुझ शिव से एकाकार के मार्ग पर प्रशस्त करता है।''

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

महा के मिलने से पूर्व बुद्धेश का भाग्य जैसे किसी अदृष्ट के कंटक में उलझा हुआ था, परंतु यह बाबा रामकृष्ण परमहंस का उस पर अनुग्रह था या विधि की प्रबल लेखनी कि महा के साथ रहते अब धरा का कण-कण उसके प्राणों को आह्लादित करने लगा था।

किसी विगत जन्म के महान पुण्य कर्मों के कारण ही उसे भी महा के साथ-साथ माँ नर्मदा की परिक्रमा में अश्वत्थामा के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। महा के साथ उसका यों भ्रमण करना उसके लिए शिवलोक में भ्रमण करने से कम न था।

महा के साथ यात्रा करते हुए अब तक उसने कितने पूर्ण चंद्रमाओं के दर्शन किए थे, अब उसे इसका भी भान न था। आज गहन जंगल के मध्य किसी अज्ञात नदी के किनारे-किनारे वे उस क्षेत्र में आ पहुँचे थे, जहाँ एक आदिवासी किसी दूसरे आदिवासी की गर्दन इस तरह काट देता जैसे कोई गाजर-मूली काट रहा हो। नित्य नई धरा एवं नए लोग, धरा के रजकणों से तो परिचय हो जाता था परंतु अनजाने लोगों से परिचय किसी दुरूह कार्य से कम न होता था।

मध्य भारत का यह आदिवासी प्रदेश ऐसे घने अरण्य से घिरा था कि यात्री दिवस के उजाले में भी पाँव धरते काँप उठते थे। भिक्षा मिली तो ठीक, अन्यथा जल ग्रहण करके ही क्षुधा को शांत कर लेना अब उनके लिए आम हो चला था।

बालपुर ग्राम के बाह्य क्षेत्र में फैली पहाड़ियों के मध्य एक पहाड़ी में स्थित कंदरा में अब महा चिता की भस्म को अपने अंग पर रमाए, प्रणव महामंत्र 'ॐ'कार को जपता वहीं टिक गया था। जब भी महा इस प्रणव महामंत्र के जाप में लीन होता तो बुद्धेश को प्रतीत होता, जैसे महा की सारी कामनाएँ तिरोहित हो गई हैं एवं वह किसी सिद्ध पद को प्राप्त हो चुका है।

अश्वत्थामा के दर्शन के पश्चात् तो महा का यह मानसिक जाप जैसे और अधिक सघन हो चला था। जीवन एवं प्रेम एक हो अनंतता फैलाते प्रकृति से एक हो चले थे। कई ग्रामीण समझदार लोगों ने उन्हें समझाया था-

''मरण का वरण करना है तो प्रत्यक्ष आत्मघात क्यों नहीं कर लेते? उस पहाड़ी की कंदरा में रहना अर्थात् किसी भी दिवस ऐसी मृत्यु का वरण करना है

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कि उसके पश्चात् खोजने पर अस्थियाँ भी प्राप्त नहीं होंगी।''

जंगलनुमा इस मायावी जगत् की कौन सी माया ने महा को यहाँ लाकर स्थिर कर दिया था, यह उसे भी ज्ञात न था। वृक्ष, पहाड़, पंछी, टिड्डे, साँप, जीव-जंतु एवं उनसे ऊपर ये अज्ञानी आदिवासी, सभी मानो महा से एक हो चले थे। रात्रि के गहन अंधकार में भी महा कभी भी उठकर अरण्य में भटकने लगता था। बालपुर गाँव के समस्त जन तो महा में किसी योगी को निहारते उसके समक्ष नतमस्तक हो जाते थे।

'ॐ'कार का मानसिक जाप अब महा को स्थूल शरीर अर्थात् 'अ'कार से परिचित कराने लगा था एवं इस 'अ'कार की सीमा में पग धरते ही प्रकृति मानो महा के लिए मित्र हो चली थी। अग्नि, जल, वायु एवं आकाश के अतिरिक्त अब धरा का कण-कण जैसे उसका सामंजस्य सभी जीव-जंतुओं एवं वृक्षों इत्यादि से बैठाने लगा था। नीले नभ के नीचे स्थित शोभित वृक्ष अपनी हरीतिमा एवं सुगंधियों से महा के कानों में जैसे कोई दिव्य रहस्य को उघाड़ते किसी मंत्र को गुंजायमान करने लगे थे।

नर्मदा परिक्रमा के पश्चात् इस सघन वन में महा इतने दिवस क्यों व्यतीत कर रहा था? यह अब भी बुद्धेश की समझ से परे था। प्रकृति अब महा के समक्ष स्वयं के रहस्य उघाड़ने लगी थी। कोयल की कुहक अब इस्माइल चाचा की शहनाई से उठते स्वरों का परिचय देने लगी थी।

कल ही जब बुद्धेश को एक बिच्छू ने अपना दंश दिया था तो महा ने निकट ही फैली झाड़ियों से कुछ पर्णों को तोड़, उन्हें निचोड़कर उनका रस दंश पर मल दिया था, जिससे विष का प्रभाव तुरंत शमित हो गया था।

ग्राम बालपुर में आज भिक्षा ग्रहण करते महा का परिचय सरन नामक उस वणिक् से हुआ था जो अपनी छोटी सी किराने की दु:ख ान से परिवार का गुज़र-बसर करता था। महा एवं बुद्धेश पर दृष्टि पड़ते ही किसी अज्ञात आनंद की पुलकावलियों से उसकी काया सिहर उठी थी। कंपित काया लिए वह महा के चरणों में नतमस्तक हो गया था और महा ने उसे उठा अपने आलिंगन में बद्ध कर लिया था। अपनी विधि के इस अल्पदान में मानो सरन ने समस्त जीवन का आनंद प्राप्त कर लिया था एवं जैसे उसके प्राण भी इस आलिंगन के प्रभाव

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

से मुक्त हो नील गगन में विचरने लगे थे।

आज उसे यह प्रतीत हो रहा था कि अवश्य ही यह महान नवयुवक संत, पशुओं से बदतर आदिवासियों के जीवन का उद्धार करने यहाँ आया है। कैसा बेहाल जीवन था इन आदिवासियों का! न रहने के लिए छत, न भरण-पोषण के लिए पशु एवं खेती। साथ ही साथ शासक वर्ग का ज़ुल्म, शोषण एवं अन्याय। देव का भी कैसा सृजन थे ये आदिवासी! मुख पर अँधियारा छाया था परंतु आँखों में चमक। शायद देव की इस रचना को इंसान का रूप देने ही महा यहाँ अवतरित हुआ था।

इन मासों में आदिवासियों के जीवन की गुणवत्ता में भी एक धनात्मक परिवर्तन आ गया था। सरन की विनती पर भी महा ने उसके घर न रहकर, कंदरा में ही वास किया था।

गुरुं-दीक्षा के पश्चात् 'ॐ'कार की साधना करता महा यह जान रहा था कि जो ब्रह्मांड है वही पिंड भी। किसी ज्योतिर्मय लिंग के द्वारा ही इस ब्रह्मांड लिंग का सृजन हुआ है एवं आत्मलिंग और प्राणलिंग भी इसी से निर्मित हुए हैं। प्राणलिंग के द्वारा ही पंचमहाभूत रूपी इस काया लिंग का निर्माण हुआ है।

काया लिंग के इस राज्य में विचरता महा अब इसके रहस्य को कुछ-कुछ समझने लगा था। 'ॐ'कार के मानसिक जाप में लीन जब वह अपने नेत्रों को बंद कर भ्रूमध्य पर टिका लेता, तो दृष्टि के समक्ष वही महात्मा उतर आते जिन्होंने काशी में उसे त्रिपुंड की महिमा का गान सुनाया था।

अब त्रिपुंड की प्रथम रेखा अपने धुँधलेपन में दृष्टि के समक्ष घूम उसे स्वयं का परिचय देने को आतुर हो रही थी, परंतु अब भी यह रेखा काशी के उस घाट के सदृश थी जो शीतकाल में कोहरे से घिरा रहस्यमय प्रतीत होता था। घड़ी भर को कोहरा अवश्य छँटता एवं घाट के दर्शन भी हो जाते, परंतु अब भी घाट के स्पष्ट दर्शन दुर्लभ थे।

स्वयं की काया रूपी प्रतिमा का दर्शन भी अभी दूर था एवं साधना के इस पथ पर किसी घड़ी अज्ञान की चादर ओढ़, वह शिव पर ही यह प्रश्नचिह्न लगा देता कि जब उनका अनुग्रह सब जीवों पर एक सा है, तो फिर क्यों ये आदिवासी नरक में जीते, मरण-तुल्य कष्टों एवं पीड़ाओं को झेलते हुए इसे

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

स्वयं की नियति मान रहे हैं?

मन में यह प्रश्न उठते ही जैसे माथे पर गुरुवाणी किसी डंडे के सदृश टकराती एवं दर्द से वह कराह उठता था। हृदय में गुरु के शब्द गूँज उठते-

"दो सुंदर पंखों वाले पक्षी साथ-साथ मैत्री भाव से एक ही वृक्ष रूपी काया के आश्रय में रहते हैं। उनमें से एक सुंदर, स्वादिष्ट फलों को खाता है और दूसरा देखता रहता है। परमात्मा के सदृश प्रकृति के आश्रय से रहने वाला जीवात्मा उस वृक्ष के कर्म रूपी फलों का स्वाद ले-लेकर उपभोग करता है एवं अपनी हीन कामनाओं से मोहित हो मल से घिर जाता है। किंतु जब वह उस पक्षी को देखता है, जो फलों का उपभोग न करते हुए मात्र उसे द्रष्टा बन निहारता रहता है, तो जीवात्मा भी परमात्मा से संयुक्त हो द्रष्टा बन मोह से दूर होता, मुक्ति पा जाता है।"

"जीव के अंतर का मल ही उसे औरों से भिन्न करता है। मल एवं कर्म के द्वारा ही पुरुष प्रकृति रूपी माया से संबंध स्थापित कर, पशु हो जाता है। मल को त्यागते ही माया का पाश स्वत: कट जाता है और पशुपति स्वयं प्राणप्रतिष्ठित हो जाते हैं।"

सरन के लिए तो महा के दर्शन जैसे जीवन-कोलाहल से मुक्त किसी विशाल शांति सागर की स्थिरता के सदृश हो चले थे। आज जब महा उसके घर के द्वार पर भिक्षा ग्रहण करने आया था, तो भिक्षा देने की घड़ी सरन की दृष्टि उस वृद्ध संन्यासी पर चली गई जो कुछ दिवस पूर्व ही गाँव के बाहर वाले शंकर के देवालय में आकर ठहरा था।

सभी आदिवासी स्त्री-पुरुष इस वृद्ध संन्यासी को कोई चमत्कारी संत मानते थे एवं सभी की उसमें अगाध श्रद्धा थी। भगवा वस्त्र, उन्नत ललाट एवं श्वेत लंबे केश व दाढ़ी लिए यह वृद्ध संन्यासी, महा को ऐसे तक रहा था जैसे काल की रहस्यमयी शून्यता की उड़ान में वह कुछ खोज रहा हो। सरन से दृष्टि मिलते ही वह संन्यासी घूमकर चल दिया था एवं कुछ पग भरते ही अब वह दृष्टि से ओझल हो गया था।

अब प्रतिदिवस लगभग चार कोस चलकर सरन स्वयं महा के दर्शन हेतु पहाड़ी में स्थित कंदरा पर चला आता एवं दृष्टि में श्रद्धा का भाव लिए वह महा

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

को एकटक निहारता रहता। आज जब सरन ऐसे ही महा को निहार रहा था, तो प्रणव मंत्र के जाप में लीन महा के अंतर में एक स्पष्ट स्वर गूँज उठा-

"इस धरा का ऋण अब समाप्त हुआ। दो दिवस पश्चात् दीवाली की रात मुझे यह स्थान छोड़ देना चाहिए। इस भोले मानव का मुझसे यों बँधना ठीक नहीं।"

आँख खोलते ही उसने सरन को लौट जाने को कहा एवं आज्ञा का पालन कर सरन लौट गया था।

जीवन की नाट्यशाला में मानव मान्यताओं के रूप में कैसे-कैसे अंधविश्वासों को ढोता है, यही दिखाने आज दीवाली की संध्या सरन, महा और बुद्धेश को लेकर उस स्थान पर आ पहुँचा था, जहाँ 'गाय-गोहरी' का पर्व होना था। आदिवासियों का यह पर्व दीवाली की संध्या को ही मनाया जाता है। चारों ओर वृक्षों से आच्छादित एक विशाल मैदान के मध्य सभी आदिवासी स्त्री-पुरुष इकट्ठे हो गए थे। मैदान के एक ओर गाँव के आसपास के सारे गाँव की लगभग पाँच सौ गायों को इकट्ठा किया गया था।

धरा की धूलि पर मानो नियति का अंधदेव मानव को खिलौना बनाकर नचा रहा था। आदित्य अस्ताचल की ओर प्रयाण कर रहा था। समस्त गायों के अपने स्थान पर हिलने-डुलने से धूल आसमान में उड़ रही थी। गायों के कंठ में बँधी घंटियों के नाद एवं उनके रँभाने की ध्वनि से संपूर्ण वातावरण बोझिल हो चला था।

आदिवासी भीलों में यह मान्यता है कि आज ही के दिवस कई आदिवासी पुरुषों में भार प्रकट होता है, अर्थात् कोई माता या देव उनकी काया में प्रविष्ट होते हैं एवं ये पुरुष धुनने लगते हैं। वास्तव में भार प्रकट हुआ है या नहीं, यही ज्ञात करने के लिए इस पर्व को मनाया जाता है।

महा मैदान को एकटक निहार रहा था एवं बुद्धेश उस काल की प्रतीक्षा कर रहा था, जो कुछ ही घड़ियों में अपने काले पंख फैलाकर न जाने कितने भील आदिवासी पुरुषों को लीलने वाला था।

एकाएक सरन की दृष्टि उस संन्यासी पर चली गई जो मैदान में सामने की ओर आदिवासियों के मध्य खड़ा था। वह अब भी एकटक महा को ही

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

निहार रहा था। नग्न पाँव, शरीर पर मात्र धोती, लंबे केश, चौड़ा-चकला सीना एवं गौरवर्णीय काया लिए महा के नेत्रों से आज एक अपूर्व भाव छलक रहा था। महा की दृष्टि अब भी उस संन्यासी पर नहीं पड़ी थी, परंतु अब बुद्धेश को भी यह ज्ञात हो चला था कि वह वृद्ध संन्यासी केवल महा को ही निहार रहा है।

घनघोर अगाध निद्रा में लीन जीव, पशु बनता स्वयं से कैसी निर्मम क्रीड़ा करता है, इसका साक्षात्कार आज महा प्रथम बार कर रहा था। वह देख रहा था कि गाँव का तांत्रिक जिसे 'तड़वी' भी कहा जाता है, धुनता हुआ उस स्थान पर आ पहुँचा था जहाँ इस पर्व को मनाया जाता था।

अभी महा कुछ समझ पाता उससे पूर्व ही तड़वी ने एक मुर्ग़े को काटकर उसकी बलि चढ़ाई एवं उसके रक्त का छिड़काव उस स्थान पर सर्वत्र कर दिया। अब सारी गायों को उस स्थान पर ला खड़ा कर दिया गया था।

मानवीय स्वभाव जैसे किसी कालिमा की कोठरी में खो गया था एवं वे सारे आदिवासी पुरुष जिन पर भार प्रकट हुआ था उस स्थान पर एकत्रित हो धुन रहे थे। सभी के ललाट पर कुमकुम का एक गोल तिलक लगा था। दग्ध कोयलों पर घृत एवं ज्वार को डाल धूम्र को फैलाया जा रहा था एवं सर्वत्र ढोल और नगाड़ों को पीटा जा रहा था। आदिवासी पुरुषों की लाल आँखें, कुमकुम के बड़े तिलक, ज्वार का धूम्र, गायों के रँभाने की आवाज़, ढोलक और नगाड़ों से उठते नाद एवं संध्या का उतरता अँधेरा वातावरण को भयावह बना रहे थे।

ऐसा प्रतीत हो रहा था जैसे कोई दानव अपने विशाल करों को फैलाकर उसमें उन आदिवासी पुरुषों को घेर, गायों से एक लघु दूरी पर ले आया था। अब महा देख रहा था कि जिन पुरुषों में भार प्रकट हुआ था वे धरा का अभिवादन कर वहाँ नारियल फोड़ रहे थे। इसके पश्चात् सभी ने अपने करों में थामे मुर्ग़ी के चूज़ों को एक साथ हवा में ऊपर उछाला एवं स्वयं सभी हाथों को सीने के नीचे दबाए, उसी के बल धरा पर लेट गए थे।

ढोल एवं नगाड़ों को और अधिक तीव्रता से पीटा जाने लगा था। एकाएक सभी गायों को हाँककर तीव्र गति के साथ सामने की ओर दौड़ाया गया, जहाँ सारे आदिवासी पुरुष लेटे थे। इन भीलों में यह मान्यता थी कि जिस पुरुष में वास्तविक भार प्रकट होता है उसे गाय अपने पैरों तले नहीं कुचलती

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

है। जैसे कई प्रेतात्माएँ एकसाथ तीव्र गति से अपने शिकार को दबोचने उनकी ओर बढ़ रही हों, ऐसे ही अब ये गायें भी तेज़ गति के साथ लेटे हुए आदिवासी पुरुषों की ओर बढ़ रही थीं।

बुद्धेश के हृदय का स्पंदन जैसे बंद हो गया था एवं उसका रोम-रोम काँप उठा था। उसे लग रहा था कि कुछ ही घड़ियों में ये गायें आदिवासियों को कुचलती, उनके पार चली जाएँगी। न जाने कितने आदिवासी पुरुष घायल हो जाएँगे या फिर चिरनिद्रा में लीन हो जाएँगे, सोचता बुद्धेश सिहर उठा था। परंतु अगली ही घड़ी जब उसकी दृष्टि महा के मुखमंडल पर गई तो वह आश्चर्य के सागर में ग़ोते लगाने लगा। महा की काया का कण-कण जैसे प्रकाश घेरता स्वयं की विद्यमान चेतना से इस वातावरण को संचालित कर रहा था। उसकी दृष्टि प्रकृति के किसी गूढ़ संकेत को दर्शा रही थी। मौन एवं शांत वह मुस्करा रहा था।

अब आदिवासी पुरुषों एवं गायों के मध्य मात्र कुछ पग की दूरी ही रह गई थी। बुद्धेश ने देखा कि महा की दृष्टि से जैसे कोई विद्युत् कौंधी एवं जब उसकी दृष्टि गायों पर पड़ी तो वह आश्चर्य के उस रसातल में था, जिसकी कोई थाह नहीं थी। इस क्षण मानो उसका स्वयं पर से ही विश्वास खो गया था। वह देख रहा था कि घड़ी भर में ही एक झटके के साथ सारी गायें रुक गईं एवं जस की तस वहीं बैठ गईं। उनके यों रुकने से सारा वातावरण धूल के ग़ुबार से पट गया था। ढोल एवं नगाड़ों के नाद अब थम गए थे एवं सर्वत्र एक मौन छा गया था। आज से पूर्व किसी ने ऐसा चमत्कार नहीं देखा था।

आदिवासियों के लिए तो यह घटना मानो किसी देवता की आँख मिचौली थी या संत का चमत्कार! सभी भौचक्के हो बैठी हुई गायों को निहार रहे थे। सारी गायें आँखें मूँदकर बैठी थीं। शरीर को साधन जान, मन से जग को जीतने वाले, आदिवासी पुरुष जिन्हें भार आया था वे भी खड़े होकर आश्चर्य से गायों को देख रहे थे।

कोई नहीं समझ पा रहा था कि क्या हुआ! अचानक बुद्धेश की दृष्टि उस संन्यासी पर चली गई जिसे अब सारे आदिवासियों की भीड़ ने घेर लिया था। सभी आदिवासी स्त्री-पुरुष उसके चरणों के स्पर्श के लिए धक्का-मुक्की

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

करने लगे थे। मुखमंडल पर एक स्निग्ध स्मित लिए महा अब इस स्थान को सदा-सदा को छोड़ने के लिए घूमकर पग बढ़ाने लगा था। सरन भी उनके साथ हो लिया था परंतु वह घूम-घूम कर अब भी उस संन्यासी को देख रहा था, जो क्रोधित होता भीड़ से बाहर निकलने की चेष्टा कर रहा था। महा को स्वयं से दूर जाता देख वह ज़ोर से चिल्ला उठा था-

''शिव का प्रणव रूपी महामंत्र 'ॐ' ही परब्रह्म है, साथ ही सगुण एवं निर्गुण ब्रह्म भी। हाँ, आप वही हैं जो यह ज्ञात कर स्वयं को शिव से एकाकार कर लेंगे।''

संन्यासी के स्वर अब भी सरन के कानों में गुंजायमान हो रहे थे एवं क्रोधित संन्यासी अब भी भीड़ से बाहर निकलने का प्रयत्न कर रहा था। अंधकार का साम्राज्य सर्वत्र व्याप्त हो चला था एवं बालपुर ग्राम की सीमा पर क्षण को खड़े हो, महा ने अत्यंत ही प्रेमपूर्वक स्वर में सरन से कहा-

''जाओ, अपने संसार में पुनः लौट जाओ। यह यात्रा तुम्हारी नहीं। किसी विकट समस्या की घड़ी काशी विश्वनाथ को स्मरण करते ही वे तुम्हारे विघ्न हर लेंगे। जाओ, लौट जाओ।''

यह कहते ही महा अब बुद्धेश के साथ आगे पग बढ़ा चला था एवं सरन जस का तस वहीं खड़ा रह गया था। उसकी आँखों से अश्रुधार बह रही थी। अब उसने झुककर महा की चरण-धूलि को अपने ललाट पर लगा लिया था। इस घड़ी वह नहीं जानता था कि निकट भविष्य में ही काशी विश्वनाथ का स्मरण उसकी गर्भवती स्त्री एवं नवजात शिशु, दोनों के प्राणों की रक्षा करेगा क्योंकि प्रसव की घड़ी शिशु, माँ की कोख में तिरछा होने वाला था जिससे ज़च्चा एवं बच्चा दोनों के प्राण संकट में पड़ने वाले थे।

महा और बुद्धेश अब सरन की दृष्टि से ओझल हो चुके थे। वह पलट कर गाँव की ओर लौट ही रहा था कि दौड़ता हाँफता वह संन्यासी सरन के पास आ पहुँचा एवं उसने मात्र यह प्रश्न पूछा-

''कहाँ हैं वे?''

सरन के नेत्रों से अब भी अश्रुधार बह रही थी और उसने उस दिशा में अँगुली उठा दी, जिस दिशा में महा एवं बुद्धेश गए थे। इंगित पाते ही संन्यासी

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

उस दिशा में दौड़ चला था। कुछ घड़ी दौड़ने के पश्चात् अब संन्यासी को महा और बुद्धेश के साए दिखाई देने लगे थे।

"रुकिये, जरा रुकिये",

चिल्लाता संन्यासी उनकी ओर दौड़ रहा था। स्वर सुनते ही महा एवं बुद्धेश वहीं स्थिर हो गए। दौड़ता संन्यासी महा के समक्ष आ खड़ा था एवं महा की दृष्टि में स्वयं की दृष्टि गड़ा वह हाँफता हुआ बोल उठा-

"वह आप ही हैं जिन्हें मैं जन्म-जन्मांतर से खोज रहा था। आप ही के सम्मोहन से तो आज दौड़ती गायें जस की तस उसी स्थान पर बैठ गई थीं। आप ही ने उन आदिवासियों के प्राणों की रक्षा की एवं आप ही मुझे इस भवसागर के पार उतार सकते हैं। कृपया मुझे अपना शिष्य स्वीकार कीजिए", कहता संन्यासी महा के चरणों में झुक गया था।

अत्यंत ही स्नेहपूर्वक उसे खड़ा कर महा ने उसे अपने आलिंगन में बद्ध कर लिया था एवं बोल उठा था-

"नहीं बाबा, मैं आपका गुरु नहीं हो सकता। मुझे किसी को दीक्षा देने का अधिकार नहीं। मिलेंगे, आपको भी अपने गुरु अवश्य मिलेंगे।"

"आप ही तो चिताभस्म अपने अंग पर रमाए प्रणव महामंत्र 'ॐ' के जाप में लीन रहते हैं। आपको किसी भी यम-नियम, ध्यान-धारणा की आवश्यकता नहीं। इसी महामंत्र के मानसिक जाप ने ही तो आपको सिद्धि प्रदान की है जबकि आप तो उससे ऊपर शिव से तादात्म्य स्थापित करते, उससे एकाकार के मार्ग की ओर प्रशस्त हो रहे हैं। क्यों मुझे ऐसा लग रहा है कि आप ही मेरे गुरु हैं?", कहते हुए संन्यासी ने अपनी दृष्टि महा के नेत्रों में गड़ा दी।

मुख पर स्निग्ध स्मित लाते हुए महा कह उठा-

"लगता है, ऐसा कई बार लगता है, मुझे भी लगा था। परंतु जब-जब लगा, जहाँ-जहाँ लगा, मात्र यही सुनने को मिला-

'पर याद रख मैं तेरा गुरु नहीं।' "

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अध्याय-५७

आज महाश्मशान मणिकर्णिका पर प्रणवात्मक, विश्वदीप्ति, त्र्यम्बकेश्वर काशी विश्वनाथ अखिल ब्रह्मांडमय विराट् पुरुष का रूप धर, वेदवाणी की शाखाओं का विस्तार करते अमर अनाहत नाद निनादित कर रहे हैं-

''मैं शिव ही शक्ति के संग मेरे प्रणव रूपी महामंत्र में अधिष्ठित हूँ। 'अ' शिव हैं, 'उ' शक्ति एवं 'म'कार दोनों की एकता को अभिलक्षित करता है।''

''मेरा यह प्रणव रूपी महामंत्र 'ॐ'कार स्वयं अपने जाप करने वाले साधक को ज्ञान के उस चरम पर ला प्रतिष्ठित करता है, जहाँ उसे ज्ञात होता है कि 'प्र' अर्थात् प्रपंच , 'न' अर्थात् नहीं है एवं 'व' अर्थात् तुम लोगों के लिए। इसके जाप से ही साधक यह ज्ञात कर लेता है कि सृष्टि रूपी प्रपंच उसके लिए नहीं है एवं यही प्रणव साधक पर नवदिव्य परमात्म ज्ञान को उद्घाटित करता है।''

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कल तक महा को काशी में महाश्मशान की शाश्वत नीरवता में शिव रमते प्रतीतं होते थे, परंतु अब 'ॐ'कार का मानसिक जाप उसे उस ऊँचाई पर ले आया था जहाँ से नीचे दृष्टि डालने पर धरा का प्रत्येक कण शिव को प्रतिबिंबित करने लगा था। कैसा अपूर्व परिवर्तन था! जहाँ एक ओर महाश्मशान मणिकर्णिका पर चिताग्नि से उठती लाल-नारंगी लपटों के साथ स्वर्णिम क्रीड़ा ही मात्र शिवभक्ति थी, वहीं यात्रा में बढ़ा प्रत्येक पग उसे शिव की आराधना के और अधिक निकट ले जा रहा था। रह-रह कर भस्म त्रिपुंड की प्रथम रेखा उसके समक्ष आ खड़ी होती थी, परंतु उसका वास्तविक दर्शन अब भी दुर्लभ था।

आगामी ज्योतिर्लिंग के स्थान पर पग रखते ही जाग्रत् अवस्था और अधिक जागरण को उपलब्ध होती उसे भस्म त्रिपुंड की प्रथम रेखा के साक्षात् दर्शन के निकट ला रही थी। 'अ'कार रूपी देवालय के द्वार पर खड़ा, वह देवालय के गर्भगृह में प्रविष्ट होने की सहज चेष्टा कर रहा था। अंतर में अब कोई कामना न थी एवं यात्रा में बढ़ा प्रत्येक पग नित्य नए शिव-रहस्य को उघाड़ रहा था। न उसे मार्ग का भान था न ही काल का, फिर स्थान का भान कैसे रहता?

बुद्धेश देख रहा था कि प्रत्येक स्तर पर महा के भीतर की शांति और अधिक गहरा रही थी एवं मौन अब अधिक मुखर होता उसके मुख को दिव्यता प्रदान करने लगा था, जैसे महा किसी दैविक सत्ता के अचल आनंद क्षेत्र में मुक्त विचर रहा था।

अब काया पर भस्म त्रिपुंड खींचते ही महा के समक्ष गुरु एवं उन महात्मा का मुखश्री घूम जाता था जिन्होंने उसे भस्म त्रिपुंड के रहस्य से अवगत कराया था। उनके मुखश्री घूमते ही 'ॐ'कार स्वत: भीतर गूँज उठता था एवं महा, शिवध्यान में लीन हो जाता था। अब उसके लिए हंस रूपी प्राण एवं महामंत्र प्रणव 'ॐ' में कोई अंतर शेष न था एवं इसी ध्यानावस्था में वे कब त्र्यम्बकेश्वर आ पहुँचे थे, उसे भी ज्ञात न हुआ।

सूखे से त्रस्त जीवों के लिए ऋषि गौतम ने भीषण तपस्या के फलस्वरूप

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

देव वरुण से कभी न ख़त्म होने वाला जल का कुंड तो पा लिया था, परंतु अन्य ऋषियों ने ईर्ष्यावश गणेशजी को प्रसन्न कर उन्हें एक दुबली गाय का रूप धरने को कहा। ऋषि गौतम द्वारा एक तिनके के आघात से जब खेत में चरती वह गाय मृत्यु को प्राप्त हुई, तो गोहत्या के पाप का लांछन लगाकर ऋषियों ने उन्हें वहाँ से निष्कासित कर एक कोस दूर भेज दिया।

इसी पाप से मुक्त होने के लिए वे एक कोटि शिवलिंग बनाकर गंगा को उस स्थान पर लाने की तपस्या में लीन हो गए एवं शिव के प्रसन्न होने पर जब उन्होंने गंगा को वहाँ पधारने की विनती की, तो गंगा भी इस शर्त पर वहाँ पधारीं कि उनका महात्म्य अन्य नदियों से अधिक हो एवं शिव भी उनके साथ वहीं वास करें। यही गंगा, गोदावरी बनीं एवं भगवान् शिव का ज्योतिर्लिंग 'त्र्यम्बक' कहलाया।

फाल्गुन मास के कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी के दिवस महा, त्र्यम्बकेश्वर के देवालय से दूर स्थित एक वट वृक्ष की छाँव में पद्मासन में बैठा 'ॐ'कार के मानसिक जाप में लीन था। घड़ी भर को दृष्टि के समक्ष भस्म त्रिपुंड की प्रथम रेखा आ गई थी, परंतु अगली ही घड़ी दृष्टि के समक्ष काशी पुनः आ खड़ी थी। श्मशान विनायक देवालय से चार फरलांग सीधी रेखा में ही जमघाट तक विस्तृत प्राचीन श्मशान में वह अघोरी एक तरुण की पीठ पर लात मारते हुए चिल्ला रहा था-

"नाद से बिंदु एवं बिंदु में नाद, इसके पश्चात् इसी नाद बिंदु से सृष्टि का सृजन तू क्या समझेगा? जा भाग मूर्ख! यहाँ से भाग। यह तेरा मार्ग नहीं है। शक्ति से वंचित शव, शिव नहीं हो सकता।"

दृष्टि के समक्ष क्षण भर को इस्माइल चाचा का चेहरा आ घूमा। आँखें खुलते ही जैसे बंद द्वार खुले हों एवं क्षण को प्रकाश की झलक दे, द्वार पुनः बंद हो गए थे। अब पुनः 'ॐ'कार के भीतर गूँजते ही महा घड़ी भर के लिए बड़बड़ा उठा-

"शिव ही शक्ति के संग प्रणव रूपी महामंत्र में अधिष्ठित हैं। 'अ'शिव हैं, 'उ'शक्ति एवं 'म'कार दोनों की एकता को अभिलक्षित करता है।"

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

इतने वर्षों की यात्रा में बुद्धेश, महा का यह रूप आज प्रथम बार देख रहा था। उसके शब्द सुन जैसे बुद्धेश भी काँप उठा था। ''शक्ति ही 'उ'कार है'', सुनते ही बुद्धेश की दृष्टि के समक्ष दक्षिणेश्वर, माँ काली एवं रामकृष्ण परमहंस घूमने लगे थे। आज वह भी हर्ष रोमांचित हो काँप रहा था। शायद शिवरात्रि के इस उपवास ने ही उसे भी इस 'ॐ'कार रूपी शिवशक्ति से परिचित करवाया था एवं आज उसे पूर्णत: ज्ञात हो चला था कि जितने शिव, शक्ति के बग़ैर अधूरे हैं, उतनी ही शक्ति भी बिना शिव के अधूरी हैं। इसलिए ही तो वह शिवज्ञान के लिए ज्योतिर्लिंगों की यात्रा कर रहा था जिसका आदेश उसे स्वयं उसके गुरु, बाबा रामकृष्ण परमहंस ने दिया था।

अब बुद्धेश मंदिर में ज्योतिर्लिंग के दर्शन करने जा चुका था एवं महा भिक्षा ग्रहण करने चल दिया था। जब बुद्धेश देवालय से लौटा तो उसने देखा कि महा, शिव की पिंडी को नैवेद्य अर्पित कर रहा है एवं उसके पश्चात् वह भी अन्न ग्रहण करने लगा था। बुद्धेश पर दृष्टि पड़ते ही महा ने उससे भी भोजन ग्रहण करने को कहा।

तब बुद्धेश ने कहा- ''आज मेरा उपवास है।''

उत्तर सुनते ही महा के मुखमंडल पर एक स्निग्ध स्मित फैल गया था। उसकी आँखों की चमक यह दर्शा रही थी कि आज की जाग्रत् अवस्था पुन: उस पर कोई नया शिव-रहस्य उघाड़ रही है। उसने बुद्धेश की ओर देख प्रश्न पूछा-

''खा लोगे तो क्या बिगड़ेगा?''

बुद्धेश ने कहा- ''क्यों पाप में डालते हो?''

तब महा हँसते हुए बोला- ''कैसा पाप? एवं यह उपवास क्यों?'' तब बुद्धेश ने खीज कर उत्तर दिया-

''तुम्हारी काशी के ही एक भूखे शिकारी ने पूरी शिवरात्रि बिल्व वृक्ष के ऊपर बिताई थी। दिन भर की भूख-प्यास से उपवास सहज ही हो गया था। संयोग से रात्रि के चार पहर में ओस कण से भीगे बिल्व पत्र, उस वृक्ष के नीचे स्थित प्राचीन शिवलिंग पर उसके हाथों से गिर पड़े थे एवं उस हत्यारे को भी

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

शिवलोक प्राप्त हुआ था। फिर हम तो इस ज्योतिर्लिंग के स्थान पर हैं, वह भी शिवरात्रि को। तो मैं क्यों उपवास न करूँ?''

महा ने हँसकर फिर मौन धारण कर लिया था। दूसरे दिन प्रातः मंदिर में दर्शन के पश्चात् भूख से व्याकुल बुद्धेश, भिक्षा की पोटली को खँगालता उसमें से निकले रोटी के टुकड़ों को तेज़ी से खाने लगा था। उसकी व्याकुलता देख महा ने हँसकर कहा-

''आज वास्तविक उपवास का अर्थ तुम भी जान लो।''

महा की वाणी में एक अपूर्व ओज था। उससे मुग्ध होता बुद्धेश उसे तकने लगा था एवं महा धाराप्रवाह बोल रहा था-

''मन, बुद्धि एवं इंद्रियाँ नित्य ही बाह्य आहार ग्रहण करती हैं। संस्कार मन का सूक्ष्म आहार है एवं पंचज्ञानेंद्रियाँ रूप, रस, स्पर्श, गंध एवं श्रवण रूपी स्थूल आहार ग्रहण करती है। किसी के निक़ट वास करना ही उपवास है।''

बुद्धेश अवाक् सा महा को देख रहा था। इस घड़ी महा का मुखमंडल एक दिव्यता उठा रहा था एवं उसकी वाणी का ओज बुद्धेश को सम्मोहित कर रहा था। महा अब भी बोल रहा था-

''जब जीव, शिव के समीप वास करता है तो मन एवं प्राण के समस्त रंग उनके सम्मुख धूमिल पड़ जाते हैं। इस घड़ी जीव किसी भी सूक्ष्म अथवा स्थूल आहार को ग्रहण नहीं करता, अर्थात् इसी को आहार निवृत्ति कहते हैं।''

बुद्धेश को प्रतीत हो रहा था जैसे साक्षात् शिव उसके सम्मुख उपवास का अर्थ उघ्राड़ रहे हैं, तभी महा प्रश्न कर बैठा-

''क्या कभी सोचा कि शिवरात्रि व्रत, रात्रि में ही क्यों होता है?

बुद्धेश आश्चर्य से महा को तक रहा था एवं महा जैसे सृष्टि के किसी गूढ़ रहस्य को उघाड़ता बोल रहा था-

''शिव स्वयं की कला एवं इच्छा, ज्ञान और क्रिया शक्ति के माध्यम से नित्य दिवस रूपी सृष्टि का निर्माण करते हैं एवं नित्य रात्रि रूपी प्रलय को उठाते अपनी संहार क्रिया में लीन रहते हैं। दिवस में जीव मन, प्राण एवं इंद्रियों के माध्यम से आत्म-राज्य से बाहर निकलकर सृष्टि का फैलाव करता है, तो

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

रात्रि में पुन: आत्म-राज्य की ओर पग बढ़ाता परमात्मा के द्वार पर आ खड़ा होता है। अर्थात् अंधकार में अभेद की ओर लौटता वह स्वयं के आत्मा के राज्य में लय हो जाता है। दिवस, कारण से कार्य के मार्ग को प्रशस्त करता है, तो रात्रि पुन: जीव को कार्य से घसीटती कारण के द्वार पर ला पटकती है। इसलिए रात्रिकाल ही शिवरात्रि के उपवास का अनुकूल काल है, जहाँ अंधकार के साम्राज्य में कार्य-जीव, कारण-शिव से एकाकार होने के लिए लालायित हो मन, प्राण एवं इंद्रियों के समस्त आहारों को स्वत: ही त्याग देता है।''

आज शक्ति का एक असीम आवेग बुद्धेश को थर-थर कँपा रहा था। बाबा रामकृष्ण परमहंस उसकी दृष्टि के समक्ष साक्षात् शिव के रूप में आ खड़े हो जैसे उसे यह ज्ञान दे रहे थे एवं महा अब भी बोल रहा था-

''शिवरात्रि कृष्ण चतुर्दशी के दिवस ही क्यों पड़ती है? इसके रहस्य को भी जान लो परंतु इसे जानने से पूर्व तुम अमावस्या को भी समझ लो। सूर्य परमात्मा को प्रतिबिंबित करता है, तो चंद्रमा जीवात्मा को। सृष्टि के विराट एकांत में एकाकार शिव एवं जीव में जब कोई भेद नहीं रहता तो भला इस अभेद में कौन, किसकी आराधना में लीन होगा? अमावस्या में ही सूर्य और चंद्र साथ होते हैं जहाँ शिव और जीव में कोई भेद ही नहीं होता। अत: चतुर्दशी की रात्रि में समस्त सूक्ष्म एवं स्थूल आहारों को त्यागकर जीव शनै:-शनै: शिव में डूबने लगता है, फिर भी एक महीन भेद रेखा जीव की ओर से शेष रह ही जाती है। अत: अमावस्या के दिवस उस रेखा को लाँघकर जीव, शिव से एक हो जाता है एवं इसी को व्रत का पारणा कहते हैं।''

महा अब बुद्धेश के लिए अबूझ हो चला था। किसकी वाणी थी यह? महा की या उसके गुरु की या फिर स्वयं शिव की?

कहीं बाबा रामकृष्ण परमहंस, महा के माध्यम से स्वयं तो नहीं बोल रहे थे? अभी बुद्धेश यह सोच ही रहा था कि पुन: महा की वाणी उसके कर्णपटल पर गूँज उठी-

''अब तुम उस कथा की यथार्थता भी जान लो। सारी पौराणिक कथाएँ कबीर की उलट बाँसियों से कम नहीं, जो कभी भोले मानस पर धर्म की छाप

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

छोड़ती हैं, तो कभी योगी को शिव-मार्ग पर ला खड़ा करती हैं।''

''अर्थात्?'' बुद्धेश ने पूछा। एक स्निग्ध स्मित फैलाते महा पुनः बोल उठा-

''वह बिल्व वृक्ष मानव-काया के अतिरिक्त कुछ भी नहीं एवं शिकारी ही मानव जीवात्मा है। यह वही उलटा वृक्ष है जहाँ मस्तिष्क वृक्ष का मूल है, तो मेरुदंड उसका तना। सारे अंग-प्रत्यंग इसकी शाखाएँ-प्रशाखाएँ हैं। बिल्व वृक्ष के मूल में अर्थात् मस्तिष्क में ही शिव प्राणप्रतिष्ठित हैं।''

बुद्धेश, महा को अवाक् देख रहा था एवं महा अब भी धाराप्रवाह बोल रहा था-

''नित्य ही इंद्रियों के तीरों से जीवात्मा रूपी शिकारी, विषय रूपी प्राणियों का शिकार करता है एवं जब वह थककर स्वयं के समस्त कर्मों को शिव के चरणों में समर्पित करता है अर्थात् काया रूपी बिल्व वृक्ष के सत्, रज एवं तम गुण रूपी त्रिपत्र को, जब वह गुणातीत शिव के मस्तक पर अर्पित करता है, तो उसी घड़ी संपूर्ण मन को त्याग वह पशु, पशुपति के पद पर शोभित होता शिवलोक को प्राप्त होता है।''

बुद्धेश का मन-मस्तिष्क अब शून्य हो चला था एवं भाव-विभोर हो अश्रुधार बहाता वह अब भी काँप रहा था। दूर देवालय से उठता घंटनाद महा के कर्णपटल पर गूँज रहा था एवं अब यह सोचकर उसकी आँखों से भी अश्रुधार बह चली थी कि कितने सरल हृदय से कबीर ने उसे मित्रवत् एवं भ्रातृवत् प्रेम दिया था। सृष्टि के गूढ़ रहस्य को समझाने के लिए जब वे कठोर हुए, तो वह स्वयं ही मूर्ख था कि उन्हें समझ न पाया। उस उलटे वृक्ष की पहेली ने ही तो उसे जन्म-जन्मांतर की गुरु रूपी अमूल्य निधि के द्वार पर ला खड़ा किया था। गुरु से पूर्व कबीर एवं काशी विश्वनाथ ही तो उसके सच्चे पालक थे एवं वह स्वयं के अहंकार में मात्र इन शब्दों से कबीर एवं काशी विश्वनाथ से रुष्ट हो काशी छोड़ आया था-

'पर याद रख मैं तेरा गुरु नहीं।'

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

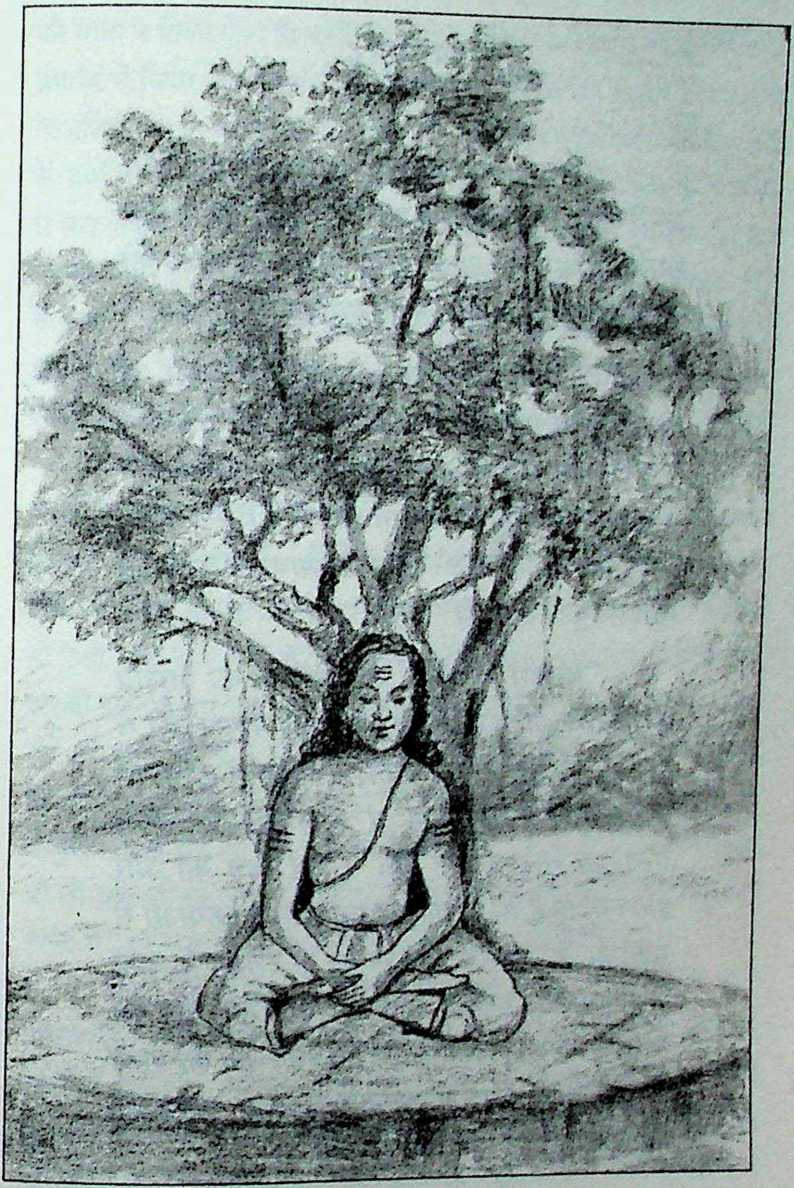

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अध्याय-५८

आज महाश्मशान मणिकर्णिका पर अपरिच्छेद्य, हव्यवाहन, कुशलागम काशी विश्वनाथ समस्त सिद्धियों का आश्रय धरते, स्वर्णमयी कवच को धारण कर अमर अनाहत नाद निनादित कर रहे हैं-

"मैं शिव ही सृजन, पालन और संहार के कारण भिन्न प्रतीत होता ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश के रूप में जाना जाता हूँ एवं मैं ही इस त्रिगुणात्मक रूप में एक होता महागुरु 'अवधूत' का रूप धारण करता शिष्य को भी 'अवधूत' पद पर शोभायमान करने को सदा व्याकुल रहता हूँ।"

"मेरे इस 'अवधूत' रूप में 'अ' का आशय आशारहित, आदि से निर्मल एवं आनंद में मग्न रहने से है। 'व' का अर्थ वासना त्याग, रोगरहित वक्तव्य एवं मात्र वर्तमान में जीने से है। 'धू' विलासिता एवं शृंगार रहित उस धूल-धूसरित अंग व धुत्त चित्त की ओर इंगित करता है जो धारणा एवं ध्यान आदि क्रियाओं से मुक्त है। 'त' मात्र तत्त्व चिंतन को ही दर्शाता है, जहाँ जीव तम रूपी अहंकार को त्याग सांसारिक चिंता एवं चेष्टा से रहित हो जाता है। इस 'अवधूत' पद को ग्रहण करते ही जीव, शिव से एकाकार कर ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश से एकात्म को प्राप्त हो जाता है।"

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

महा के लिए काशी छोड़ने के पश्चात् यह यात्रा कोई सांसारिक लाभ की यात्रा न होकर ऐसी हो चली थी, जैसे वह किसी अज्ञात की यात्रा करता पूरे ब्रह्मांड में विचर रहा हो। मौन की विद्यमानता में रिक्त मन लिए वह मात्र स्वयं के प्रति सजग हो चला था। अब तो प्रकृति का प्रत्येक स्पर्श उसे गति देता आगे के मार्ग पर प्रशस्त कर रहा था। 'ॐ'कार की साधना उसके लिए किसी विधि से बद्ध संकुचित दायरा नहीं थी। हंस रूपी प्राण ही जब सहज 'ॐ'कार का जाप हो चला हो, तो साधक, साधना की किसी विधि के दायरे में क्या बँधेगा? संपूर्ण वर्तमान निर्दोष होता उसे एकाकी कर चला था एवं मन की इस रिक्तता में प्रकृति स्वयं का रहस्य उघाड़ती नित नवीन घटनाओं को महा की दृष्टि के समक्ष ले आती थी, परंतु वह उसे वर्तमान के उस क्षण में जीकर पुनः त्याग देता था।

सह्याद्रि पर्वत में स्थित भीमाशंकर ज्योतिर्लिंग के स्थान की ओर पग बढ़ाते हुए आज कैसी विचित्र घटना घटी थी उसके साथ! इस गहरे अरण्य में विचरते हुए जब वह मंद गति से बहती नदी के पास आ अँजुली भरकर जल पीने को झुका, तो उसके प्रतिबिंब के स्थान पर जल में संपूर्ण काशी प्रतिबिंबित हो उठी थी। वही अर्ध चंद्राकार गंगा, मणिकर्णिका, पंचगंगा, दशाश्वमेध, अस्सी इत्यादि घाट एवं लोलार्क कुंड इत्यादि सारे कुंड, दृष्टि के समक्ष ज्यों के त्यों आ खड़े थे, परंतु आश्चर्य यह था कि काशी के इस प्रतिबिंब में संपूर्ण काशी के दर्शन होने के पश्चात् भी उसे उसमें विचरते किसी भी जन, पुजारी, संन्यासी, यहाँ तक कि गंगा में बहती नाव तक के दर्शन न हुए थे। दृष्टि के समक्ष थी तो मात्र जीवनरहित वीरान काशी। कैसा विचित्र अनुभव था यह! इस घड़ी अंतर में 'ॐ'कार के स्थान पर मात्र 'अ'कार गुंजायमान था।

काशी के दर्शन होते ही दृष्टि के समक्ष करुणा एवं वात्सल्य रूपी आद्यशक्ति, यशोदा माँ के रूप में आ खड़ी हुई थी। उस देवी ने तो स्वयं की देह रूपी शिवालय में शिव की प्राणप्रतिष्ठा कर ली थी, परंतु यह शायद उन्हीं का आशीर्वाद था कि उसे भी बारह ज्योतिर्लिंग एवं चार धामों की यात्रा का सुअवसर प्रदान हुआ था। अब यह यात्रा करते हुए वह भी शिवसान्निध्य में विचर रहा था। चिरनिद्रा में लीन होने से पूर्व उस देवी के वचनों को सत्यता

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

प्रदान करते ही शिव ने उसकी भेंट गुरु से करवा दी थी। अब दृष्टि के समक्ष इस्माइल चाचा एवं भूतू चाचा के मुखमंडल भी घूम रहे थे। माँ के अतिरिक्त काशी में यदि किसी ने भौतिक धरातल पर उसकी संवेदनाओं को समझने की चेष्टा की थी, तो वे मात्र यह दो जन ही थे।

कबीर एवं तुलसी उसे किस ज्योतिर्मय परम गुह्यता की ओर धकेल रहे थे इसका ज्ञान तो उसे सद्‌गुरु मिलने के पश्चात् ही हो गया था, परंतु 'ॐ' रूपी प्रणव महामंत्र का जाप अब उसे उस ज्योतिर्मय लोक का भान करा रहा था, जिस जगत् में मात्र आनंद ही आनंद है।

आज अतीत की सारी घटनाएँ मन को एक साथ भर चली थीं परंतु जैसे ही वह सह्याद्री पर्वत की सीढ़ियाँ उतरकर देवालय के निकट आया, तो शिखर दर्शन के साथ ही मन पुन: रिक्त हो गया था एवं अब नेत्र बंद करते ही उसे उस ज्योतिर्लिंग के दर्शन हुए जो मध्य से दो खंडों में विभक्त है।

कथा है कि रावण के अनुज, कुंभकर्ण ने राक्षसी कर्कटी के साथ बलात् समागम किया था एवं उसी के फलस्वरूप राक्षस भीम का जन्म हुआ था। राक्षस भीम ने अपने असीम बल से संपूर्ण पृथ्वी को वश में कर शिवभक्त राजा सुदक्षिण को कारावास में डाल दिया था। जब राजा, भगवान् शंकर के पार्थिव लिंग के पूजन में लीन थे, तभी राक्षस भीम ने तलवार से पार्थिव लिंग पर आघात किया था। तलवार अभी पार्थिव लिंग को स्पर्श करती उससे पूर्व ही शिव ने प्रकट होकर उसका संहार कर दिया एवं स्वयं यहीं ज्योतिर्लिंग के रूप में प्राणप्रतिष्ठित हो गए थे। यही भीमाशंकर ज्योतिर्लिंग है।

बुद्धेश, भीमाशंकर के ज्योतिर्लिंग के दर्शन करते मंदिर में प्रविष्ट हो चुका था। घने अरण्य को समाहित करती इस पर्वत शृंखला में 'ॐ' के जाप में लीन महा को घड़ी भर के लिए यों प्रतीत हुआ कि वास्तव में तो ब्रह्मांड के प्रत्येक कण में शिव प्राणप्रतिष्ठित होकर ज्योतिर्लिंग के रूप में स्थित हैं। परंतु इन द्वादश ज्योतिर्लिंग के दर्शन जीव में उस शक्ति का संचार करते हैं, जिसके द्वारा जीव-पशु स्वयं के मलपाश को काटकर यह पात्रता प्राप्त कर सकता है कि उसे भी ज्ञात हो सके कि ब्रह्मांड का कण-कण शिव का ही ज्योतिर्लिंग है।

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

यहाँ कुछ दिवस विश्राम करने के पश्चात् अब वे घुश्मेश्वर ज्योतिर्लिंग के दर्शन के लिए पग बढ़ा रहे थे। मार्ग में एक गाँव में रात्रि विश्राम के पश्चात् प्रात: स्नान कर, ध्यान से पूर्व जैसे ही महा ने अपनी झोली में भस्म को ग्रहण करने हेतु कर डाला, तो भस्म की पोटली नदारद थी।

शिव-प्रकाश को आकर्षित करते शिवपूजा में लीन महा के प्राण अब उस चरम पर जा बैठे थे जहाँ समस्त सिद्धियाँ स्वत: ही उसके चरणों में स्वयं को समर्पित कर चली थीं, परंतु सद्गुरु की दृष्टि में स्वयं के लिए इन सिद्धियों का उपयोग घोर अपराध था। भाव निर्दोष था, मात्र भस्म त्रिपुंड खींचने के लिए महा, भस्म की पोटली की कामना में उसे पाने का प्रयत्न कर रहा था। परंतु आज जैसे समस्त सिद्धियाँ किसी अंधगुफा में जा छिपी थीं। इतने वर्षों में आज प्रथम बार महा अंगों पर बिना भस्म त्रिपुंड खींचे ही साधना में लीन हो चला था। अंतर में गड़ा कोई सूक्ष्म शल्य बार-बार चुभकर उसके ध्यान को भंग कर रहा था। आज से पूर्व महा के साथ ऐसी घटना कभी घटित न हुई थी। हताश वह अब उठ खड़ा हुआ था एवं बुद्धेश को संग ले उसने यात्रा में आगे पग बढ़ा दिए थे।

कुछ कोस आगे चलते ही महा को ऐसा प्रतीत हुआ जैसे वह किसी रहस्यमय मंदिर की ओर पग बढ़ा रहा था। काया, भाव के अतिरेक में किसी अज्ञात के भय से थर-थर काँप रही थी। बुद्धेश ने उसे इस तरह काँपते हुए आज से पूर्व मात्र उस दिवस देखा था, जिस दिवस नर्मदा परिक्रमा में उनकी भेंट अश्वत्थामा से हुई थी। घड़ियों के सुमौन में महा जैसे किसी अज्ञात शक्ति से आकर्षित होता एक गाँव के भीतर प्रविष्ट हो चला। मानवीय नेत्र एवं श्रोत्र से परे वह किसी परादृश्य को देखता एवं परावाणी को सुनता अब भी काँप रहा था। आज से पूर्व बुद्धेश ने उसकी ऐसी दशा कभी नहीं देखी थी।

कुछ ही घड़ियों में अब वे एक लघु मस्जिद के समक्ष थे। उसके छोटे से आँगन में पग धरते ही जैसे किसी उच्च शक्ति ने महा को समस्त दिशाओं से आ घेरा था। दृष्टि के समक्ष मस्जिद के चबूतरे के निकट टाट के टुकड़े पर एक फ़क़ीर विराजमान थे, जिनके समक्ष एक अखंड अग्नि प्रज्वलित थी। कैसी असीम दिव्यता थी उन फ़क़ीर में! जिस पर दृष्टि पड़ते ही मन अपने अस्तित्व

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

को खोता नष्ट हो चला था। किन्हीं पुतलियों की तरह संचालित अब वे दोनों आँगन में हाथ जोड़ फ़क़ीर को निहार रहे थे। आँगन अत्यंत छोटा था एवं सामने की ओर पाषाण की एक शिला रखी हुई थी।

जैसे ही महा की दृष्टि पुनः उन फ़क़ीर पर पड़ी, तो वह आश्चर्य के रसातल में ग़ोते लगाता भयभीत हो उठा था। दृष्टि के समक्ष संपूर्ण सृष्टि रूपी शिवालय आ खड़ा था, जिसमें साक्षात् शिव अनंत कोटि सूर्यों का प्रकाश उठाते स्वयं के क्रुद्ध नेत्रों से उस पर दृष्टि डाल रहे थे। नेत्रों का लाल वर्ण देखकर यह प्रतीत हो रहा था कि मानों इस घड़ी वे स्वयं का तीसरा नेत्र खोल प्रलय उठाने, तांडव नृत्य की तैयारी में उठ खड़े हुए हैं। आज से पूर्व किसी ने भी उसे ऐसे क्रोधित नेत्रों से नहीं देखा था। वह पर्ण की तरह काँप रहा था कि अब दृष्टि के समक्ष शेषनाग की शय्या पर लेटे विष्णु के दर्शन होने लगे थे। वह कुछ समझ पाता कि अब दृष्टि के समक्ष कर में कमंडलु लिए ब्रह्माजी खड़े थे।

घड़ी को आश्चर्य में आँख मलते ही उसने पुनः स्वयं को मस्जिद में खड़ा पाया एवं दृष्टि के समक्ष फ़क़ीर के स्थान पर कबीर प्रज्वलित अग्नि में काष्ठ के टुकड़ों को डालते हुए दृष्टिगोचर हुए। आज से पूर्व ऐसा चमत्कार महा ने स्वप्न में भी न देखा था। विराट ब्रह्मांड के सृजन करने के कर्तव्य से संपन्न वह परम कांतिमान् फ़क़ीर समस्त ब्रह्मांड के प्रकाश स्वरूप से महा को परिचित करवा रहा था। कंठ से पग तक फैली लंबी श्वेत कफ़नी, श्वेत धवल दाढ़ी, सिर पर बँधी श्वेत साफी एवं कर में एक सटका। तेज की सृष्टि करने वाले इन फ़क़ीर को देख महा की आँखों से अश्रुधार बह चली थी। अभी वह उनके मुखश्री से परिचित हो पाता उससे पूर्व ही दृष्टि के समक्ष तुलसी खड़े-खड़े मुस्करा रहे थे।

अब महा ने जैसे ही स्वयं का पग उन फ़क़ीर की ओर बढ़ाया तो क्रोधित होते धूनि के निकट आ सटका पटकते एवं गालियाँ देते, वे बोल उठे-

''ये अग्नि तेरी मित्र है ना? तो डाल इसमें कर एवं निकाल ले इसमें से भस्म, जिसे सिद्धि से प्राप्त करने का घोर अपराध तू प्रातः कर रहा था।''

फ़क़ीर का कथन ख़त्म होते ही सटके के पटकने से भभकती अग्नि के समक्ष लाल क्रुद्ध नेत्र लिए नंग-धड़ंग गुरु खड़े थे। आज महा को ज्ञात हो रहा

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

था कि सिद्धि का दुरुपयोग वास्तव में सद्गुरु की दृष्टि में घोर अपराध है। जो महा को दृष्टिगोचर हो रहा था उससे अनभिज्ञ बुद्धेश, उन फ़क़ीर को साष्टांग दंडवत् कर मस्जिद के बाहर निकल आया था। महा अब भी फ़क़ीर के समक्ष ग्लानि में अश्रुधार बहा रहा था।

कुछ घड़ी के क्रोध के पश्चात् अब वे फ़क़ीर धूनि में से भभूत निकालते शांत हो चले थे। जैसे ही महा ने आगे बढ़ उनके चरणों में स्वयं का मस्तक रखा तो दृष्टि के समक्ष मणिकर्णिका घाट पर स्थित वह दत्त पादुका आ खड़ी थी, जिसके दर्शन बाल्यावस्था में उसने यशोदा के साथ कई बार किए थे। अब भी उसका ललाट फ़क़ीर के चरणों पर टिका हुआ था एवं फ़क़ीर के स्वर मानो संपूर्ण ब्रह्मांड को गुंजारित कर रहे थे-

''हाँ मैं वही हूँ, जो नित्य प्रातः काशी में स्नान कर, कोल्हापुर में भिक्षा ग्रहण कर, दिगंबर अवस्था में रात्रि शयन माहुरगढ़ में करता हूँ।''

जैसे ही महा ने दृष्टि उठाकर ऊपर देखा तो अनंत दिव्यता उठाते प्रकाश को वह देख न पाया। घड़ी की झलक में जैसे ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश तीनों ही गुरुओं के गुरु महागुरु दत्तात्रेय के रूप में उन फ़क़ीर के स्थान पर खड़े थे एवं इस अनंत तेज से भयभीत महा ने पुनः अपनी दृष्टि फ़क़ीर के चरणों में गड़ा दी थी। इस घड़ी जैसे संपूर्ण ब्रह्मांड में यह परावाणी गुंजारित हो रही थी-

''मैं शिव ही सृजन, पालन और संहार के कारण भिन्न प्रतीत होता ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश के रूप में जाना जाता हूँ एवं मैं ही इस त्रिगुणात्मक रूप में एक हो महागुरु 'अवधूत दत्तात्रेय' का रूप धारण करता, शिष्य को भी 'अवधूत' पद पर शोभायमान करने को सदा व्याकुल रहता हूँ।''

फ़क़ीर के चरणों में नतमस्तक महा के मुख से मात्र एक शब्द निकला-

'साई'।

महा के 'साई' कहते ही संपूर्ण मस्जिद उन फ़क़ीर के इस कथन से गूँज उठी-

''अल्लाह मालिक है।''

अब संपूर्ण दृश्य सामान्य हो चला था एवं फ़क़ीर ने अत्यंत ही स्नेह से

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

महा को खड़ा कर भभूत द्वारा उसके ललाट, स्कंध, कंठ एवं सीने पर भस्म त्रिपुंड खींचे। महा की दृष्टि में स्नेहपूर्वक स्वयं की दृष्टि गड़ाए मुखश्री पर स्निग्ध स्मित लिए वे बोल उठे-

''कबीर ने स्वप्न या भाव में आ अनगिनत बार इस 'अवधूत' शब्द से तेरा परिचय करवाया था, परंतु आज इसके रहस्य को तू मुझसे जान ले। इस 'अवधूत' रूप में 'अ' का आशय आशारहित, आदि से निर्मल एवं आनंद में मग्न रहने से है, 'व' का अर्थ वासना के त्याग, रोगरहित वक्तव्य एवं मात्र वर्तमान में जीने से है, 'धू' विलासिता एवं श्रृंगार रहित उस धूल-धूसरित अंग एवं धुत्त चित्त की ओर इंगित करता है जो धारणा एवं ध्यान आदि क्रियाओं से मुक्त है एवं 'त' मात्र तत्त्व चिंतन को ही दर्शाता है, जहाँ जीव तम रूपी अहंकार को त्यागकर, सांसारिक चिंता एवं चेष्टा से रहित हो जाता है। इस 'अवधूत' पद को ग्रहण करते ही जीव, शिव से एकाकार कर ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश से एकात्म को प्राप्त हो जाता है।''

''जब सब एक है, तो क्यों भस्म को भिन्न मान अपनी साधना को व्यर्थ गँवाता है? यहाँ तेरा भाव निर्दोष था अत: ठीक है, अन्यथा यदि उस क्षण तुझमें तम रूपी अहंकार होता तो सद्गुरु के वचन अवश्य सिद्ध होते, जो उन्होंने तुझसे केदारनाथ में कहे थे'', कहकर फ़क़ीर कुछ घड़ी मौन हो गए एवं पुनः बोल उठे-

''अब अहंकार आते ही अनेक जन्म धारण करने के पश्चात् भी तू गर्भवास की यंत्रणा से मुक्त नहीं हो पाएगा एवं साथ ही पुनः ऐसा होने पर तो तेरे कर्ण जन्मों-जन्म तक यह सुनने के लिए भी तरस जाएँगे, फिर भी नहीं सुन पाएँगे-

'पर याद रख मैं तेरा गुरु नहीं।' ''

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

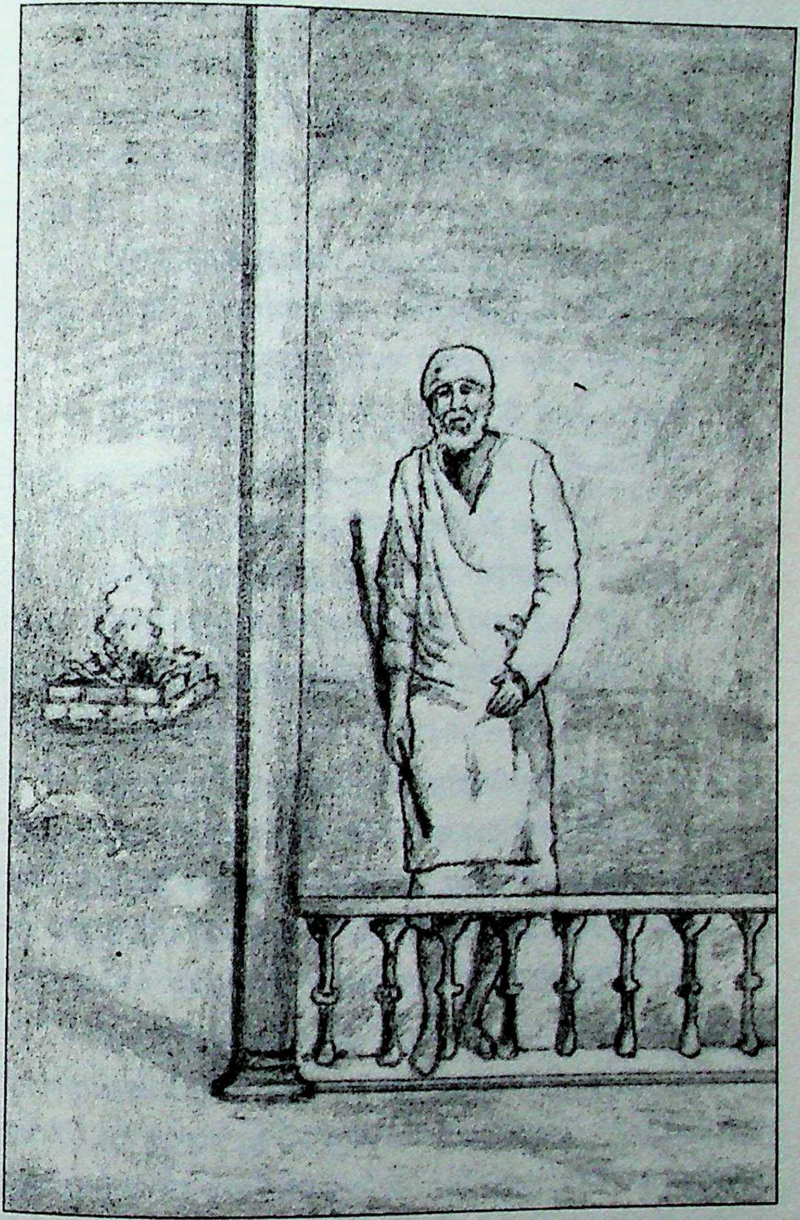

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अध्याय-५९

आज महाश्मशान मणिकर्णिका पर महात्यागी, द्युमणिस्तरणि, व्याघ्रचर्मधारी काशी विश्वनाथ माया से अपने यथार्थ स्वरूप को छिपा, बिंदुरूप प्रणव के आश्रय होते अमर अनाहत नाद निनादित कर रहे हैं-

''मैं शिव ही नित्य स्थायी एवं कालातीत हूँ। मैं स्वयं की चेतनाशक्ति द्वारा ही जड़ प्रकृति का निर्माण कर, सृष्टि की रचना करता हूँ। शक्ति ही मुझ शिव रूपी विशुद्ध चेतन तथा जड़ प्रकृति के मध्य एक कड़ी है।''

''मैं पशुपति शिव ही जड़ प्रकृति रूपी पाश एवं चेतन जीव रूपी पशु का नियंता हूँ। चेतन जीव को आच्छादित करने वाला अज्ञानमय पाश ही मल है एवं मल से घिरा जीव, पशु है। मल के शुद्ध होने पर ही जीव स्वत: मुझ शिव से एकाकार कर लेता है।''

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सारी ध्वनियाँ एवं आवाज़ें अब महा के लिए जैसे काशी के देवालयों में होते घंटनाद में परिवर्तित हो चली थीं। घुश्मेश्वर की ओर इस यात्रा में कैसा गुणात्मक परिवर्तन आ गया था! कल तक महा जैसे संपूर्ण ब्रह्मांड की यात्रा कर रहा था, परंतु आज इस ज्योतिर्लिंग की ओर पग बढ़ाते उसे ऐसा प्रतीत हो रहा था कि जैसे संपूर्ण ब्रह्मांड की यह यात्रा सिमटकर पुनः पंचक्रोशी की यात्रा हो चली हो।

'ॐ'कार के जाप के किसी क्षण कर्णपटल पर उन फ़क़ीर के स्वर गूँज उठते-

''अल्लाह मालिक है।''

उसी घड़ी हृदय एवं मन में आमूल परिवर्तन हो जाता एवं पूर्ण मौन सध जाता था। अब इस पूर्ण मौन में मार्ग में पड़ते किसी भी देवालय के घंटनाद को सुनते ही महा, उसकी ध्वनि पर सवार हो यात्रा करते हुए पुनः काशी के घाटों पर आ खड़ा हो जाता था। ज्योतिर्मय दृष्टि के समक्ष पुनः विश्वेश्वर गली में स्थित काशी विश्वनाथ का मंदिर आ खड़ा होता था, परंतु आश्चर्य कि उसे मात्र देवालय के दर्शन होते। भीतर का प्रांगण, गर्भगृह एवं काशी विश्वनाथ का ज्योतिर्लिंग लाख यत्न करने पर भी दृष्टिगोचर न होते थे।

यात्रा के सारे श्रम के पश्चात् भी उसे ऐसा प्रतीत होता, जैसे अब भी वह इस्माइल चाचा की अँगुली थामे मात्र स्थूल काशी में ही विचर रहा है। कल तक वह इस्माइल चाचा की अँगुली थाम उस काशी में विचरता था, तो अब वह सद्गुरु की अँगुली थाम या कभी 'ॐ' के 'अ'कार की अँगुली थाम इस काशी में विचर रहा है।

दिशा से दिगंत तक एकमात्र काशी का ही संदेश महा तक पहुँच रहा था एवं वह आश्चर्यचकित था कि इतने वर्षों पश्चात् काशी पुनः उस तक पहुँच, उसे ऐसे क्यों झकझोर रही है? घुश्मेश्वर के निकट आते ही जैसे समस्त दिशाएँ सारनाथ से तरंगित भाव-लहरियों को ला उससे टकरा रही थीं। पंचगंगा घाट पर मिले उस बौद्ध भिक्षु का मुखमंडल उसकी दृष्टि के समक्ष बार-बार घूम रहा था।

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

यह सद्‌गुरु सृजित माया थी या उनका ज्ञान संदेश, अभी महा को ज्ञात न था। काशी को माध्यम बनाकर सद्‌गुरु तो उसे मात्र 'ॐ' के 'अ'कार अर्थात् स्थूल शरीर से परिचित करा रहे थे। जिसे महा काशी मान रहा था, वह काशी नहीं अपितु स्वयं की काया मात्र थी। चूँकि अभी वह मात्र स्थूल शरीर का ही ज्ञान अर्जित कर रहा था, इसलिए वह मात्र विश्वेश्वर गली में स्थित विश्वनाथ मंदिर के दर्शन ही कर पा रहा था। प्रांगण, गर्भगृह एवं काशी विश्वनाथ के ज्योतिर्लिंग से साक्षात्कार अभी दूर था।

अब वे घुश्मेश्वर आ पहुँचे थे। बुद्धेश को ऐसा प्रतीत हो रहा था कि वह स्वयं मंदिर में प्रविष्ट हो ज्योतिर्लिंग के दर्शन नहीं कर रहा, अपितु माँ काली की शक्ति को माध्यम बना बाबा रामकृष्ण परमहंस स्वयं उसे ज्योतिर्लिंग के दर्शन के लिए देवालय में धकेल रहे हैं। उसे जो प्रतीत हो रहा था वह सत्य था, परंतु अब भी वह उस सत्य से वर्षों दूर था जिससे बाबा रामकृष्ण परमहंस यथार्थ रूप में साक्षात्कार कर चुके थे-

''मात्र शिव ही नित्य स्थायी एवं कालातीत हैं। शिव स्वयं की चेतनाशक्ति द्वारा ही जड़ प्रकृति का निर्माण कर, सृष्टि की रचना करते हैं। शक्ति ही शिव रूपी विशुद्ध चेतन एवं जड़ प्रकृति के मध्य एक कड़ी है।''

इसी शक्ति से तो घुश्मा ने अपनी सौत, जो उसकी सगी बहन भी थी के द्वारा उसके एकमात्र पुत्र की हत्या के पश्चात् भी शिव रूपी चेतन के पार्थिव लिंग के पूजन को भंग नहीं किया था। वह शक्ति ही थी कि घुश्मा स्वयं के पुत्र की हत्या का संदेश पाकर भी विचलित न होती, स्वयं के शिवपूजन रूपी व्रत से विमुख न हुई थी। इसी से प्रसन्न हो महादेव यहीं ज्योतिर्लिंग के रूप में प्राणप्रतिष्ठित हो गए थे और उसके पुत्र को जीवनदान भी दे गए थे। इसी घुश्मा के नाम पर यह ज्योतिर्लिंग घुश्मेश्वर कहलाता है।

मंदिर के बाहर स्थित महा की दृष्टि के समक्ष आज पुनः पंचगंगा घाट पर मिले बौद्ध भिक्षु का मुखमंडल घूम रहा था एवं उनका मुखमंडल घूमते ही जैसे उसे एक झटका लगा था। कामवासना से पूर्णतः निर्लिप्त, महा की दृष्टि

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

के समक्ष आज बुढ़वा मंगल के मेले में मिली गणिका एवं कबीर चौरा पर स्थित कोठे की बाईजी के मुखमंडल भी घूम रहे थे। अब कर्णपटल पर उस बौद्ध भिक्षु के अंतिम कथन गूँज रहे थे-

''कल्याणमित्र के ये शब्द सदा याद रखना- जैसी तेरी गंदी काया है, वैसी मेरी भी।''

जैसे आज बुद्ध स्वयं उसके लिए यह संदेश लाए थे कि क्या चांडाल और क्या गणिका अथवा क्या बौद्ध भिक्षु और क्या बाईजी? कहीं अंदर गहरे यह भाव अब अंकित हो चुका था- ''जैसी तेरी गंदी काया है, वैसी मेरी भी।''

आज महा को पूर्णतः ज्ञात हो गया था कि काया रूपी स्थूल शरीर तो सभी का एक सा है, इसमें कोई अंतर नहीं।

अब यहाँ से महा, बुद्धेश के साथ एलोरा की गुफाओं के निकट आ गया था। आज.बुद्धेश को आश्चर्य हो रहा था कि जो महा आज तक उसके साथ किसी भी मंदिर में प्रविष्ट न हुआ था, वह स्वच्छंद विचरता एलोरा की गुफाओं में भगवान् बुद्ध की मूर्तियों के दर्शन ऐसे कर रहा था, जैसे बुद्ध की प्रत्येक ध्यानस्थ मूर्ति महा के कर्णपटल पर कोई संदेश फूँक रही थी।

वर्ण व्यवस्था एवं जातिवाद को समाप्त करने वाले भगवान् बुद्ध ने मात्र एक संदेश दिया था कि 'स्वयं के दीपक बनो।' तो क्या उनकी मूर्तिपूजा सत्य है? तो क्या कबीर एवं तुलसी पुनः एक बार निर्गुण एवं सगुण का द्वंद्व मेरे समक्ष ला रहे हैं? या सद्गुरु स्वयं? अभी महा यह सोच ही रहा था कि महा के कर्णपटल पर ये गुरुवाक्य गूँज उठे-

''शिव ही प्रलय की घड़ी संपूर्ण ब्रह्मांड को भस्म कर, स्वयं के निराकार लिंग में समाहित कर लेते हैं एवं अपनी ही लीलाशक्ति में सर्वप्रथम स्वयं के साकार लिंग की कल्पना करते हैं।''

यह वाक्य गूँजते ही एक भाव और दृढ़ हो गया कि, 'मात्र मार्ग भिन्नता है। क्या सगुण और क्या निर्गुण? अंततः गंतव्य तो एक ही है। बुद्ध भी सत्य

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कहते थे एवं बुद्ध की मूर्तिपूजा में लीन बौद्ध साधक भी सत्य मार्ग पर ही विचर रहे हैं।'

ध्यानस्थ बुद्ध की मूर्ति पर नेत्र टिकाए महा को प्रतीत हो रहा था कि केदार हो या काशी, आज भी बुद्ध का ध्यान हिमाच्छादित हिमालय से बहती शीतल ठंडी हवाओं एवं गंगा की लहरों पर बह रहा है।

प्रकृति के इस धैर्य पथ पर यात्रा करता महा इस क्षण गुफाओं के पास स्थित एक वट वृक्ष की छाँव में बैठा 'ॐ'कार के जाप में लीन था एवं बुद्धेश गाँव में भिक्षा ग्रहण करने चला गया था।

'ॐ'कार के जाप में लीन महा के अंतर में अब जैसे पंचमहाभूत उथल-पुथल करते, स्वयं का पूर्ण परिचय देने उद्यत हो रहे थे। अग्नि की अपनी भाषा थी तो वायु की अपनी। अचानक यह उथल-पुथल लुप्त हो गई एवं आज प्रथम बार महा के ध्यान में नए पंचतत्त्व उतर आए- शरीर, भावना, संकल्प, भावबोध एवं चेतना। साथ ही महा को प्रतीत हो रहा था कि निश्चित ही इन पंचतत्त्वों का पंचमहाभूतों से वैसा ही संबंध हैं, जैसा श्वासों का शरीर से।

अब बुद्धेश भिक्षा लेकर लौट आया था एवं वह भी महा के साथ बैठकर ध्यान में लीन होने की चेष्टा कर रहा था, परंतु आज उसका मुखमंडल किसी विचित्र भाव को दर्शा रहा था। उस पर ध्यान पड़ते ही महा बोल उठा-

''क्यों सुप्त अवस्था में बैठे ध्यान की चेष्टा कर रहे हो? आज तुम्हारी साँसों से तुम्हारा लय खो गया है।''

महा का कथन सुनते ही बुद्धेश भयभीत हो गया था एवं भयग्रस्त हो वह मात्र इतना बोल पाया-

''नहीं, ऐसा कुछ भी नहीं।''

मुख पर स्निग्ध स्मित लिए महा कह उठा-

''इन गुफाओं से बहती हवाओं ने मुझे कोई संदेश ला सुनाया है। गुरु ने तुम्हारी एक परीक्षा ली एवं उसमें भी तुम अनुत्तीर्ण हो भयग्रस्त हो गए हो।

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

जाओ, बुद्ध तुम्हें कुछ पाठ सिखाना चाहते हैं। सीखकर लौट आओ।''

इस वार्तालाप में दोनों को ही ध्यान न था कि उनसे कुछ दूरी पर एक वृक्ष के पीछे छिपा बौद्ध भिक्षु दीर्घ समय से उन्हें निहार रहा था। महा की आज्ञा प्राप्त कर जैसे ही बुद्धेश गुफाओं की ओर पग बढ़ा रहा था कि अचानक उसकी दृष्टि उस बौद्ध भिक्षु पर चली गई। महा इस घड़ी पुनः ध्यानस्थ हो चला था। बौद्ध भिक्षु पर दृष्टि पड़ते ही बुद्धेश उनके निकट चला आया एवं जैसे ही उसने उनके चरणस्पर्श किए, तो उसे खड़ा कर बौद्ध भिक्षु मुस्कराकर महा को देख, बुद्धेश से कहने लगे-

''क्यों मिथ्या वर्णन कर रहे थे? उसकी काया का अंग-प्रत्यंग उसके सिद्ध होने के लक्षणों को परिभाषित कर रहा है। उसकी काया का जल समस्त मलिन पदार्थों को शुद्ध कर भी दुखी नहीं होता। उसके भीतर की अग्नि समस्त अशुद्धियों को जलाकर भस्म कर चली है।''

''सुगंध हो या दुर्गंध, उसकी काया की वायु उन्हें समभाव से आत्मसात् कर बह रही है। अब उसकी काया की धरा की मिट्टी पर कोई मल विसर्जन करे या पुष्प चढ़ाए, उसके लिए कोई अंतर नहीं। तुम्हारा यह मित्र प्रेम से आप्लावित कृपा, दया एवं करुणा के उस शिखर पर विचर रहा है, जिसे छूना एक आम मनुष्य के लिए संभव नहीं।''

''सहानुभूतिपूर्ण आनंद एवं ममत्वहीन चित्त के सौंदर्य को लिए अब वह संपूर्ण गगन के विस्तार में विचर रहा है, अतः व्यर्थ है उसके समक्ष कोई भी मिथ्या वर्णन, व्यर्थ है।''

बुद्धेश की आँखों से अब अश्रुधार बहने लगी थी एवं पश्चात्ताप की अग्नि में सुलगता वह आत्मग्लानि से भर उठा था। वास्तव में जब वह भिक्षा ग्रहण करने गाँव की ओर जा रहा था, तो मार्ग में उसे एक पोटली मिली थी जिसमें कई स्वर्ण की मुद्राएँ पड़ी थीं। इतना स्वर्ण एक साथ देखकर मोहित होता वह माया के पाश से बँधने लगा था। स्वयं को मनाने के लिए वह इसे भगवान् बदरीनाथ एवं जगन्नाथ का प्रसाद मान रहा था एवं सोच रहा था कि जब यह

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

उन्हीं का प्रसाद है तो इसे ग्रहण करने में क्या हानि? इसके विपरीत इस प्रसाद से तो उसकी आगे की यात्रा सुगम हो जाएगी एवं साथ ही साथ वह भी एक आलीशान कोठी एवं बग्घी का मालिक हो जाएगा।

जहाँ इस घड़ी बुद्धेश यह सब सोच रहा था उसी घड़ी भाव के सर्वोच्च शिखर पर स्थित महा की दृष्टि के समक्ष शेष-शय्या पर विराजे लक्ष्मीपति पुरुषोत्तम आ खड़े थे एवं दूसरी ही घड़ी धूल-धक्कड़ से भरे पथरीले मार्ग पर हाथ में भिक्षा पात्र लेकर पग-दर-पग सधकर चलते बुद्ध आ खड़े थे। कहाँ ब्रह्मांड का संपूर्ण ऐश्वर्य एवं कहाँ कंटकों से भरा यह मार्ग! अर्थात् परमात्मा पुनः दृष्टि के समक्ष स्वयं के वर्तुल को ले आए थे। कहाँ रासबिहारी कृष्ण एवं कहाँ भिक्षा ग्रहण करते बुद्ध?

स्वर्ण मुद्राओं की पोटली मिलते ही मायावी स्वरों ने बुद्धेश को आ घेरा था। जैसे जागरण में अब मूर्च्छना उतरने लगी थी एवं गाँव में पग धरते ही एक नवयुवती पर दृष्टि पड़ते ही कामवासना जाग उठी थी। हृदय कलुषित होने लगा था उस नवयुवती की ओर, मन और अधिक दूषित हो इससे पूर्व ही उसने अपने पग आगे तो बढ़ा लिए थे, परंतु आज वह स्वयं को मांसाहार से रोक नहीं पाया था। मछली के बदले में उससे सोने की मुद्रा पाकर एवं ऐसी फटेहाल अवस्था में देखकर विक्रेता उसे चोर समझ रहा था।

अभी बात और आगे बढ़ती इससे पूर्व ही बुद्धेश वहाँ से भाग खड़ा हुआ था। अब भय सताने लगा था कि कहीं वह और अधिक पथभ्रष्ट न हो जाए, इसी भय में उसने उस पोटली को एक पोखर में फेंक दिया था। परंतु यह सत्य वह महा के समक्ष न बोल पाया था।

इतने वर्षों में ली गई गुरु की एक परीक्षा में असफल रहने से अब वह आत्मग्लानि से भरता, आत्मलघुता की ओर पग बढ़ा ही रहा था कि शिष्य की इस भूल को माफ करते बाबा रामकृष्ण परमहंस, उस बौद्ध भिक्षु के माध्यम से बुद्ध का वह संदेश सुना रहे थे जो उसकी आत्मोन्नति में सहायक था। मुखमंडल पर स्निग्ध स्मित लिए वह बौद्ध भिक्षुक उसे भगवान् बुद्ध की कथा सुनाने लगे-

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

''समस्त प्रतीकों, छवियों एवं स्मृतियों से मुक्त भगवान् बुद्ध दक्षिण की यात्रा कर रहे थे। मार्ग में पड़ते एक धान के खेत से गुज़रते उन्हें यों भिक्षुक समझ, एक कृषक ने ताना दिया था-

'हम किसान हैं। खेतों को जोत, उनमें बीज डालकर हम अन्न उगाते हैं। हल चलाने का परिश्रम कोई हमसे पूछे। आप तो यों सहज ही भिक्षा ग्रहण कर लेते हैं, भिक्षा माँगने में कैसा परिश्रम?'

तब करुणा के सागर भगवान् बुद्ध ने अत्यंत मृदुता से यह उत्तर दिया था-

'हम भी तुम्हारी तरह ही एक कृषक हैं। हमारा सच्चा हृदय ही धरा है एवं मानसिक चेतना रूपी हल पर साधना रूपी बैल को बाँध हम इस धरा को जोतते हैं। विश्वास रूपी बीज को बोकर हम भी प्रेम और सौहार्द की फसल काटते हैं।' ''

कथा को सुन बुद्धेश फूट-फूट कर रोता पुन: उस बौद्ध भिक्षुक के चरणों में गिर पड़ा था एवं उसे उठाकर अपने आलिंगन में बद्ध करके वह बौद्ध भिक्षुक पुन: बोल उठे-

''तुम्हारा यह मित्र वह महान प्रज्ञा पुरुष है जिसका सान्निध्य दुर्लभ है। वह सदा ही स्वयं की हृदय रूपी धरा पर मानसिक चेतना रूपी हल एवं कठिन साधना रूपी बैल को चला, उसे जोतकर उसमें विश्वास रूपी बीजों को बोता है एवं सदा ही प्रेम और सौहार्द की फसल काटता है। क्यों ऐसे महान प्रज्ञा पुरुष के साथ विश्वासघात करते हो? तुम्हें तो बिना किसी साधना के ही गुरु मार्गदर्शन दे रहे हैं, जबकि वह तो अनेक जन्मों की कठिन साधना के पश्चात् भी गुरु मिलने से पूर्व, विगत कई जन्मों से अनगिनत बार यह सुनता आया है-

'पर याद रख मैं तेरा गुरु नहीं' ''

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अध्याय-६०

आज महाश्मशान मणिकर्णिका पर मधुरप्रियदर्शन, प्रशान्तबुद्धि, परकार्यदक्ष काशी विश्वनाथ हर्ष भरा हृदय लिए समस्त तीर्थों का निर्माण करते अमर अनाहत नाद निनादित कर रहे हैं-

"मैं शिव स्वयं की चेतनाशक्ति द्वारा ही पंचमहाभूतों का विस्तार करता हूँ, जिसे प्रपंच कहा जाता है। सृष्टि की कामना से मुझ महेश्वर का प्रथम परिस्पंद ही शिवतत्त्व है एवं शिवतत्त्व से पृथ्वीतत्त्व तक फैले तत्त्वों का समुदाय ही ब्रह्मांड है। मैं ही जीव-शरीर की रचना कर स्वयं उसमें प्रविष्ट होता हूँ।"

"मैं 'अ'कार स्वरूप ब्रह्म ही 'पुर' अर्थात् देह में शयन करने के कारण पुरुष कहा जाता हूँ।"

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

द्वादश ज्योतिर्लिंग की इस यात्रा में महा की देह उस दिव्यता से भर उठी थी जो सृष्टि की किसी शाश्वतता को इंगित कर रही थी। समग्र की एकलयतापूर्ण इस गतिशील यात्रा में अब महा, कबीर के उन शब्दों को भली-भाँति जान चला था-

''जिसे परमात्मा से प्रेम है, उसे कालजगत् में होशियारी से क्या वास्ता? वह तो इस जगत् में स्वतंत्र विचरता है। परमात्मा से यह प्रेम ऐसा है जहाँ हृदय में दो को दूर करना पड़ता है। ऐसी नाज़ुक राह है जिस पर चलने वाले के सिर पर कोई बोझ नहीं हो सकता। हृदय में दो को रखना ही अहंकार को दर्शाता, जीव को शिव से अलग कर देता है।''

वैद्यनाथ की ओर यात्रा करते हुए अब महा यह भली-भाँति समझ रहा था कि स्वयं के नौ शीश काटने के पश्चात् शिव के प्रति असीम भक्ति में जब रावण स्वयं का दसवाँ शीश काटने जा ही रहा था कि शिव प्रसन्न हुए एवं रावण की प्रार्थना पर ज्योतिर्लिंग के रूप में उसके साथ चल दिए। परंतु जब हृदय में दो हों तो उस अहंकारी के द्वारा शिव कैसे स्वयं को विराजित करते? अतः उन्होंने माया को रच, रावण के भीतर मूत्रत्याग की भावना को उत्पन्न किया और परिणामस्वरूप वह ज्योतिर्लिंग एक ग्वाले को थमाकर मूत्रत्याग हेतु चला गया। किंतु ग्वाला यह भारी ज्योतिर्लिंग सँभाल न पाया और उसे धरा पर रखते ही भगवान् शिव वैद्यनाथेश्वर ज्योतिर्लिंग के रूप में वहीं स्थित हो गए।

कभी स्वयं के हृदय पृष्ठ पर अंकित कबीर के ये शब्द कितने अमूल्य थे, इसका भान महा को अब हो रहा था। इस तरह स्वतंत्र विचरने में अब न तो उसे काल का होश था, न ही स्थान का। जहाँ पग चलें वह चल पड़ता था। बुद्धेश अभी तक यह नहीं समझ पाया था कि जगन्नाथपुरी से काशी निकट होने के पश्चात् भी महा ने उसे प्राथमिकता क्यों न दी थी?

अन्य द्वादश लिंगों की यात्रा के घटनाक्रम में बुद्धेश ज्योतिर्लिंग के दर्शन के लिए मंदिर में प्रविष्ट हो चुका था एवं महा पुनः एक वट वृक्ष के नीचे 'ॐ'कार के जाप में लीन हो चला था। आज इस जाप में जैसे समस्त पंचमहाभूत एक होकर उसकी काया रूपी काशी के द्वार पर आ खड़े थे एवं स्वयं

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

का अर्थ उघाड़ने की चेष्टा कर रहे थे। इसी चेष्टा में कभी महा की दृष्टि के समक्ष 'अ'कार' घूम जाता, तो कभी संपूर्ण स्थूल काशी। महा अब भी अनभिज्ञ था कि विगत कुछ मासों से बार-बार उसकी दृष्टि के समक्ष काशी क्यों घूम रही है?

आज प्रात: ही महा भिक्षा ले आया था। मध्याह्न की इस घड़ी स्नान करने के पश्चात् जैसे ही उसने शंकर की पिंडी को नैवेद्य अर्पित किया, तो घड़ी भर को वह चौंक उठा। उस घड़ी पिंडी के स्थान पर जैसे संपूर्ण काशी आ खड़ी थी। ''क्या यह चित्त का विकार है?'' प्रश्न उठते ही गुरुवाक्य अंतर में गूँज उठे-

''जब तक चित्तशुद्धि नहीं होती, तब तक आत्मानुभूति की आशा व्यर्थ है।''

अंतर में वाक्य गूँजते ही एक भाव ने उसे आ घेरा कि मोक्ष प्राप्ति तो गुरुप्रसाद है, परंतु चित्तशुद्धि स्वयं की साधना। अभी वह यही सोच ही रहा था कि पुन: गुरुवाक्य अंतर में गूँज उठे-

''सुख-दुःख रूपी सरिता के दो तटों के मध्य नाव खेकर परमात्मा रूपी सागर तक पहुँचा जा सकता है।''

सुख-दुःख के प्रति तो महा सम हो चला था, परंतु दृष्टि के समक्ष यों काशी का घूमना किस ओर इंगित कर रहा है, यह उसकी समझ से परे था। अब जैसे ही उसने स्वयं के नेत्र मूँदकर 'ॐ'का मानसिक जाप आरंभ किया, तो अंतर में मात्र 'अ'कार गूँज उठा था। वह स्वयं से प्रश्न कर बैठा, मात्र 'अ'कार ही क्यों? अभी वह कुछ सोचता उससे पूर्व ही कर्णपटल पर एक भारी स्वर गूँज उठा-

''चश्म बंदो लब ब बंदो गोश बंद।
गर नबीनी सिर्र हक बरमन ब खंद।''

स्वर गूँजते ही नेत्र स्वत: खुल गए एवं स्वर की ओर दृष्टि डालने पर दृष्टि के समक्ष निकट ही बैठा एक पठान आ खड़ा था। दोनों की आँखें चार हुईं एवं महा उससे प्रश्न पूछ बैठा-

''कृपया आप मुझे इसका यथार्थ अर्थ समझाएँगे?''

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

एक स्निग्ध स्मित मुख पर लिए सूखे मेवे बेचने वाला वह पठान बोल उठा-

"ओय बुलबुल! इसका मतलब तो बड़ा साफ़ है। अपना आँखें, होंठ और कान बंद कर। फिर यदि खुदा का मज़मून तेरा समझ में न आए, तो हमसे कहना ओय।"

महा की दृष्टि के समक्ष इस घड़ी इस्माइल चाचा का मुखमंडल घूम रहा था। पठान का यह कथन जैसे गुरुप्रेम की वर्षा थी एवं वह जान चला था कि ध्यान के क्षण भले ही उसके नेत्र एवं होंठ बंद थे, परंतु कर्णपटल खुले हो स्वरों को ग्रहण कर रहे थे। ज्ञान की गुणवत्ता में सुधार लाने ही जैसे गुरु उस पठान के मुख से प्रसाद रूपी यह संदेश दे गए थे।

अब ध्यान में नेत्र एवं मुँह के साथ कर्णपटल भी बंद हो चले थे। ऐसा होते ही जैसे कोई शिवकृपा उतर आई थी एवं त्र्यम्बक में स्वयं के द्वारा कहे गए कथन का आज साक्षात्कार हो रहा था। दृष्टि के समक्ष जैसे आकाश से विस्तृत एक बिल्व पत्र आ खड़ा था, जिसका मात्र एक पर्ण देखने में ही वह सक्षम था। गुरुवाक्य पुनः अंतर में गूँज उठे-

"ब्रह्मा के प्रातःयज्ञ से ही रजोगुण रूपी यह पर्ण क्रियाशक्ति के माध्यम से सृष्टि के सृजन में व्यस्त होता, तुझे भी वह क्रियाशक्ति प्रदान कर रहा है जिसके द्वारा तुझे 'ॐ'कार की यात्रा पूर्ण करनी है। यह 'अ'कार ही भूलोक भी है एवं स्वात्मा भी, इसी 'अ'कार द्वारा ऋग्वेद उतरता गार्हपत्याग्नि एवं महादेवी के रूप को उघाड़ता है। इस गार्हपत्याग्नि की रक्षा ही गृहस्थ को भी संन्यासी के सदृश शिव से एकाकार के मार्ग पर प्रशस्त करती है। अतः प्रत्येक गृहस्थ के लिए शास्त्रानुसार इस प्रधानाग्नि की रक्षा करना उचित है।"

महा के अंतर में गुरुवाक्य गूँज रहे थे एवं दृष्टि के समक्ष पंचगंगा घाट पर खड़े वे महात्मा घूम रहे थे जिन्होंने उसे भस्म त्रिपुंड की महिमा से अवगत करवाया था। भस्म त्रिपुंड की प्रथम रेखा का स्पष्ट ज्ञान होते ही जैसे सारे पंचमहाभूत, अब स्वयं का स्पष्ट परिचय देते हुए स्थूल काशी के रहस्य को उसकी दृष्टि के समक्ष उघाड़ने लगे थे। घड़ी भर में ही काया रूपी स्थूल काशी

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

के समस्त घाट जो अब तक कोहरे से आच्छादित थे, कोहरा छँटते ही अपने संपूर्ण ओज के साथ दृष्टि के समक्ष आ खड़े थे।

किंचित् कंपित सिहरन में उसे प्रतीत हो रहा था, जैसे अंतर में अग्नि भगवत्-संकल्पशक्ति का रूप धारण करती उसे ऊर्ध्वगमित कर रही है एवं ऊपर की ओर उठती हुई इस अग्नि रूपी भगवत्-संकल्पशक्ति पर दृष्टि पड़ते ही साक्षात् गुरु आनंद रूपी वर्षा करते, जल उसकी ओर प्रवाहित कर रहे हैं। अंतर की धरा स्वयं की इस संकल्पशक्ति का आधार बन गौरवान्वित महसूस कर रही थी, तो हृदयाकाश उस परमात्मा रूपी आकाश में परिणित हो आत्मा को आच्छादित करने लगा था। भीतर की वायु जैसे अग्नि रूपी भगवत्-संकल्पशक्ति एवं जल रूपी आनंद के मध्य कड़ी बनती तरंगित हो रही थी। साथ ही साथ जैसे इसी घड़ी संपूर्ण चित्त स्वत: निर्मल हो गया था और आज प्रथम बार वास्तविक ध्यान उतर आया था।

'अ'कार खुलते ही अब स्थूल काशी का रहस्य भी खुल गया था। कैसा विचित्र अनुभव था! घड़ी में काशी, तो घड़ी में स्वयं की काया। जाग्रत् अवस्था में अब पंचमहाभूत जागरण को उपलब्ध हो उसे स्थूल काशी रूपी काया का परिचय दे रहे थे। दृष्टि के समक्ष गंगा के उत्तरी किनारे पर स्थित कंकरीले करारे पर बसी काशी के उतरते ही उसे ज्ञात हो चला कि धरा भी तो उस कंकरीले करारे के सदृश अस्थियों का रूप धर उस पर काया को बसाती है।

काया की नसों में दौड़ते रक्त पर ध्यान जाते ही, उसे यह ज्ञात हो चला था कि जैसे वर्षा ऋतु में काशी की गलियों में बहता जल प्रवाह, गंगा में आ समाता है एवं नाले भी गंगा में समाकर शुद्ध हो जाते हैं, उसी तरह रक्त भी जल एवं धरा की साझेदारी का परिणाम है जो हृदय में आ शुद्ध हो जाता है।

कुछ देर के ध्यान के पश्चात् श्रांत होकर जैसे ही वह धरा पर लेटा एवं उसने स्वयं के पग सिकोड़े, तो अचानक ध्यान आया ग्रीष्म में गंगा का सिकुड़ना एवं वर्षा में उसका विस्तार। यह ध्यान आते ही वह जान गया कि सिकुड़ना धरा की जड़ता के अतिरिक्त कुछ नहीं जिसमें वायु सहायता प्रदान करती है। आलस्य परिभाषित कर रहा था कि यह कुछ भी नहीं, अपितु धरा के सदृश ही

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

विस्तार है जिसमें अग्नि सहायक है।

इस घड़ी अँगुली नाभि पर थी एवं दृष्टि के समक्ष मणिकर्णिका कुंड आ खड़ा था। मणिकर्णिका कुंड दृष्टिगोचर होते ही जैसे व्योम स्वयं को परिभाषित करता पृथ्वी के साथ स्वयं की साझेदारी जता गया था एवं उसे ज्ञात हो गया था कि नाभि कुछ भी नहीं अपितु पृथ्वी का हिस्सा होकर वह कट्याकाश है जिसमें व्योम समाया हुआ है।

शिवलिंग पर्वत के समक्ष समय-दीक्षा के पश्चात् महा ने स्वयं के अस्तित्व पर कदापि प्रश्नचिह्न नहीं लगाया था, परंतु जब गुरु स्वयं प्रसाद रूपी आनंदवर्षा कर रहे हों, तो इस आनंद में महा भला कैसे स्वयं की काया रूपी स्थूल काशी से अपरिचित रहता? इस आनंद में उसे ध्यान आया कि गुरु ने वैश्यत्व से जाति उत्कर्ष कर, उसे ब्राह्मणत्व तक पहुँचाया था। अत: मन में प्रश्न उठा कि क्या मैं किसी वैश्य का वीर्यांश हूँ? जैसे यह प्रश्न भी गुरुप्रसाद था एवं दृष्टि के समक्ष पुन: काशी में प्रवाहित होती अर्द्धचंद्राकार गंगा नाच उठी। अब वह जान चला था कि वीर्य भी तो जल के सदृश श्वेत होता है एवं जैसे जल से वृक्ष उत्पन्न होते हैं वैसे ही वीर्य से काया।

अब क्या था! जल स्वयं अपना रहस्य उघाड़ने को आतुर हो चला था एवं अब उसे स्पष्ट हो चला था कि काया का मांस द्रवीभूत ही तो है जिसमें पृथ्वी सी कठोरता है। इतना ध्यान आते ही उसकी दृष्टि के समक्ष मणिकर्णिका महाश्मशान पर शव जलाते भूतू चाचा का मुखमंडल घूमने लगा। वे सदा कहते थे कि "तेरे मुख पर एक अपूर्व तेज है।" जैसे इस घड़ी भूतू चाचा ही उससे कह रहे थे-

"तेज भी तो मात्र जल एवं अग्नि की साझेदारी के अतिरिक्त कुछ नहीं।"

अब तो जैसे काशी की प्रत्येक आड़ी-तिरछी-सँकरी गली स्वयं का परिचय देने लगी थी। यात्रा में पग बढ़ाते हुए विचरना अब कह रहा था कि चलना मात्र जल का ही हिस्सा है जिसमें वायु आ समाती है। कर अब उदर पर था एवं दृष्टि के समक्ष दुर्गा कुंड। यह ज्ञात होते ही वह आनंद से झूम उठा कि

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

उदर भी दुर्गा कुंड के सदृश जल को स्वयं में समाए रखता है एवं व्योम इसमें सहायता प्रदान करता है।

मानो कोई प्रतिस्पर्धा चल रही थी जिसमें कोई भी महाभूत पीछे नहीं रहना चाहता था। दृष्टि के समक्ष अब दशाश्वमेध घाट पर सजे अस्थायी यज्ञ कुंड नाच रहे थे एवं कुंड में प्रज्वलित अग्नि गान उठाती उसे यह सुना रही थी कि क्षुधा, अग्नि के अतिरिक्त कुछ नहीं जो प्रत्येक भोज्य पदार्थ को निगल जाती है।

इस भावातिरेक में काया गर्माने लगी थी एवं दृष्टि के समक्ष पंचक्रोशी में फैली ग्रीष्म ऋतु की आड़ी-तिरछी-सँकरी गलियाँ नृत्य करती उसे यह दर्शा रही थीं कि काया की प्रत्येक ज्वरग्रस्त नाड़ी, अग्नि के अतिरिक्त कुछ नहीं जिसमें धरा की मिट्टी समाकर उसे ठोस करती है। अब भला अस्सी का नाला कैसे चुप रहता? ग्रीष्म ऋतु का यह सूखा नाला अब उसे उस मूत्र का भान दे रहा था, जिसमें अग्नि एवं जल की साझेदारी है।

आनंदातिरेक में वह एक झटके के साथ उठ बैठा, तो दृष्टि के समक्ष रामनगर की वह रामलीला घूम गई जिसमें लेटे रावण के पुतले को दहन के लिए उठाया जा रहा था एवं वह जान गया कि उठना, तेज का वह भाग है जिसमें वायु की हिस्सेदारी है। हृदय में उठते भाव दृष्टि के समक्ष तुलसीदास के साथ उस लोलार्क कुंड को ले आए थे, जहाँ बाल्यावस्था में वह सदैव ऊर्जा के आवेग से सिहर उठता था। यही लोलार्क कुंड तो था जिसका जल भीषण शीत में भी उष्ण रहता है एवं यह कुंड अब उसे यह ज्ञान दे गया था कि हृदयाकाश में भी व्योम की साझेदारी में अग्नि भावों को उष्णता प्रदान करती है।

हर्षातिरेक में महा अब विक्षिप्त सा हो चला था एवं इसी विक्षिप्तता में दौड़ते हुए उसे इक्काबाज़ी की वह दौड़ याद आ गई, जो उसने इस्माइल चाचा की अँगुली थाम देखी थी। इक्काबाज़ी की दौड़ याद आते ही वह जान चला था कि दौड़ना मात्र वायु का ही हिस्सा है एवं वायु ही वेग प्रदान करती है। दौड़ते समय इस ग्रीष्म ऋतु की गर्म वायु उसकी त्वचा को स्पर्श कर रही थी, तो वह जान गया कि त्वचा भी वायु का हिस्सा है जिसमें धरा का अंश आ समाया है।

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

तीव्र वेग से दौड़ने के कारण श्वासोच्छ्वास तीव्र हो गया था एवं काया स्वेद कणों से भीग चली थी। जैसे ही वह रुका तो सूखते स्वेद कणों को देख वह सिहर उठा क्योंकि आज से पूर्व कभी उसे यह ध्यान नहीं आया था कि स्वेद कण भी तो वायु से निर्मित होते जल का अंश रखते हैं।

इस घड़ी तृष्णा व्यथित करने लगी थी। जैसे ही वह निकट स्थित कुंड में जल ग्रहण करने के लिए सीढ़ियाँ उतर रहा था, तो दृष्टि के समक्ष आ खड़ा था अगत्स्य कुंड। इस क्षण उसे काया रूपी काशी की एक और स्थूलता दृष्टिगोचर होने लगी। वह देख रहा था कि तृष्णा वायु का अंश होकर भी उत्तप्त है अर्थात् वायु एवं अग्नि के अंश से ही तृष्णा उत्पन्न होती है। कंठ सूख रहा था एवं वह जान गया कि कंठ वायु के आवागमन का मार्ग मात्र है, जिसमें व्योम समाहित है। अब कंठाकाश भी ज्ञात हो चला था।

प्रकृति शांत हो जैसे महा में सिमट रही थी, तो इस घड़ी व्योम स्वयं के सौंदर्य को कैसे प्रकट न करता? बाल्यावस्था में विश्वेश्वर गली में स्थित काशी विश्वनाथ. का देवालय पुनः उसकी दृष्टि के समक्ष आ खड़ा था, परंतु आश्चर्य कि देवालय दृष्टि के समक्ष होने पर भी प्रांगण, गर्भगृह एवं काशी विश्वनाथ का ज्योतिर्लिंग दृष्टि के समक्ष न थे। यह अवश्य ज्ञात हो रहा था कि कर्णपटल पर देवालय का घंटनाद गुंजायमान हो रहा है एवं शिराकाश के मध्य विराजे मस्तिष्क रूपी काशी विश्वनाथ काया रूपी काशी को संचालित कर रहे हैं। मस्तिष्क तो दृष्टि के समक्ष था, परंतु चौकोर योनि में स्थित ज्योतिर्लिंग के दर्शन दुर्लभ थे। अब काया फैलने लगी थी तो प्रतीत हुआ कि फैलाव भी तो व्योम का अंश हो वायु से जा मिला है।

अभी जल ग्रहण नहीं किया था एवं सूखे कंठ में लार गटकने पर उसे प्रतीत हुआ जैसे ज्योतिर्लिंग पर अर्पित दुग्ध एवं जल नीचे उतर रहे हैं। अब भी ज्योतिर्लिंग अदृश्य था परंतु यह स्पष्ट हो गया था कि लार शिराकाश से नीचे बहते जल के अतिरिक्त कुछ नहीं। अगली ही घड़ी काशी में गंगा के पार स्थित लहलहाते सरसों के खेत दृष्टि के समक्ष आ खड़े थे एवं जैसे ही वह जल ग्रहण करने के लिए कुंड की ओर झुका, तो जल में प्रतिबिंबित स्वयं के लंबे केशों

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

को देख वह जान गया था कि जैसे फसल धरती का अंश होकर भी आकाश की ओर उठती है एवं उसके कटने से धरा को पीड़ा नहीं होती, वैसे ही केश भी व्योम एवं धरा का सम्मिलित रूप हो व्योम की ओर उठते हैं एवं उनके कटने से काया को कष्ट नहीं होता।

जीवन की प्रथम साँसें जिन पंचमहाभूतों के आश्रय बिताई थीं उनसे महा की मित्रता अवश्य थी, परंतु इतनी घनिष्ठता का परिचय आज हो रहा था। थकान एवं तृष्णा के शांत होते ही महा को निद्रा ने आ घेरा था कि उसी घड़ी व्योम ने अपना अंतिम परिचय भी दे डाला। निद्रा भी तो व्योम का अंश हो शून्यावस्था में ले जाने वाली है, जिसमें अग्नि पूर्णरूपेण सहायक है।

पंचमहाभूतों की यह घनिष्ठता देख महा भाव-विभोर हो अश्रु बहा रहा था कि गुरुवाक्य अंतर में गूँज उठे-

"शिव स्वयं की चेतनाशक्ति द्वारा ही पंचमहाभूतों का विस्तार करते हैं, जिसे प्रपंच कहा जाता है। सृष्टि की कामना से महेश्वर का प्रथम परिस्पंद ही शिवतत्त्व है एवं शिवतत्त्व से पृथ्वीतत्त्व तक फैले तत्त्वों का समुदाय ही ब्रह्मांड है। शिव ही जीव-शरीर की रचना कर उसमें प्रविष्ट होते हैं। शिव रूपी 'अ'कार स्वरूप ब्रह्म ही 'पुर' अर्थात् देह में शयन करने के कारण पुरुष कहलाते हैं।"

कुंड की सीढ़ी पर निद्रा में उतरने से पूर्व महा का जिज्ञासु मन प्रश्न कर बैठा कि वह कौन है जो मुझमें शयन करता मुझे निद्रामग्न कर रहा है? उत्तर मिलने से पूर्व ही महा निद्रामग्न हो चला था एवं आज न जाने कितने समय पश्चात् स्वप्न में वह वृद्ध कबीर के दर्शन कर रहा था। पंचगंगा घाट की सीढ़ी पर उसके निकट बैठे कबीर उसके शीश पर कर फेरते करुणामय स्वर में बोल रहे थे-

"ज्ञानाग्नि में ममता, पाखंड एवं अभिमान सब जलकर भस्म हो गए। अब मेरा मन नृत्य में नहीं रमता एवं मर्दल का वादन भी नहीं करता। सांसारिक कर्मों से अब मुझे कोई सरोकार नहीं। तृष्णा की गगरी भंग हो गई है एवं हरि-चिंतन करते मर्दल भी भीग गया है। भ्रम का मोयन छूट गया एवं कामजन्य यह काया अब जीर्ण हो चली है। मुझसे अब दूसरा नहीं बजाया जाता। जितने रूप

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

निर्मित हो सकते थे हो गए, अब और संभव नहीं हैं। समस्त सजावट पूर्ण हो गई। कबीर ने रामकृपा से सब पूर्ण कर लिया। अब तो इस चदरिया को ज्यों की त्यों धर देने का काल आ चला है। मैं काशी छोड़ रहा हूँ। जब पूर्ण ब्रह्म पा लिया, तो फिर कैसे संगी साथी? आज का यह अपना अंतिम संग है। अब मैं तुझे और मार्गदर्शन नहीं दे सकता, सो इसे ही पूर्ण समझ क्योंकि अब तुझसे ऐसे मिलना दोबारा न होगा।''

स्वप्न में अब दृश्य परिवर्तन हो चला था एवं महा को दृष्टिगोचर हो रहा था कि गंगा एवं वरणा के संगम के सामने वाले तट पर कुछ दूर बलुआ मैदान में दंड भर गड्ढे में कुश के आसन पर एक ध्यानस्थ योगी पद्मासन में विराजित हैं। उनकी पीठ एवं लंबे केश दृष्टिगोचर हो रहे हैं। स्कंध, कंठ एवं शीश पर वे रुद्राक्ष मालाएँ धारण किए हुए हैं। महा को यह स्पष्ट नहीं हो रहा था कि वे योगी कौन हैं? संपूर्ण वातावरण रुद्रसूक्त के उच्चारण के स्वरों से गुंजायमान था। अब महा स्वप्न में आगे देख रहा था कि कोई एक हाथ में नारियल लिए योगी के मस्तक का भेदन कर रहा है, वह कौन था यह उसे स्वप्न में ज्ञात नहीं हो रहा था। सर्वत्र अब अनंत कोटि सूर्यों का स्वर्णिम प्रकाश फैला हुआ है। मात्र प्रकाश ही प्रकाश; अन्य कुछ भी नहीं एवं उस प्रकाश से जैसे एक अमर अनाहत नाद निनादित हो रहा है-

''उसके लिए मैं अदृश्य नहीं होता हूँ एवं वह भी मेरी दृष्टि से कभी ओझल नहीं होता। जब हम दोनों में कोई भिन्नता नहीं तो भला इस अद्वैत में क्या गुरु, क्या शिष्य? साथ ही जब सर्वत्र अद्वैत है, तो फिर क्या फ़र्क़ पड़ता है कि समस्त जीवन मैं स्वयं कभी न कभी, कहीं न कहीं यह सुनता रहा-

'पर याद रख मैं तेरा गुरु नहीं।' ''

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अध्याय-६१

आज महाश्मशान मणिकर्णिका पर परावरज्ञ, योगपार, स्वयंज्योतिस्तनुज्योति काशी विश्वनाथ रात्रि के स्वामी चंद्रमा रूप में नन्दी की पीठ पर सवार अमर अनाहत नाद निनादित कर रहे हैं-

"मैं शिव ही 'ॐ' स्वरूप परब्रह्म पंचाकार में परिणीत होता हूँ।"

"मैं परब्रह्म शिव ही स्वयं की पराशक्ति से चैतन्यशक्ति को सृजित करता, इच्छाशक्ति को जन्म देता हूँ। मेरी इसी इच्छाशक्ति से ज्ञानशक्ति जन्म लेती क्रियाशक्ति को उत्पन्न करती है एवं इन्ही शक्तियों से मैं शिव 'ॐ' स्वरूप परब्रह्म पंचाकार का रूप धर सृष्टि को सृजित करता हूँ।"

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

दिवस और रात्रि जैसे महा एवं बुद्धेश की इस यात्रा के साक्षी हो चले थे। वैद्यनाथ में 'अ'कार का ज्ञान होते ही जैसे पंचक्रोशी यात्रा पुनः महा की दृष्टि के समक्ष आ खड़ी थी। काल जैसे मित्र होता उस स्मृति को पुनः महा के समक्ष ले आया था, जिसका मात्र दो वर्ष से अधिक की उम्र में महा ने साक्षात्कार किया था, परंतु उम्र की उस अज्ञान अवस्था में स्मृतिलोप अवश्यंभावी था।

कैसा विचित्र अनुभव था! उम्र की वह स्मृति आज उसके सम्मुख ऐसे आ खड़ी थी जैसे कभी स्मृतिलोप हुआ ही न हो। साथ ही यह भी आश्चर्य था कि उस उम्र में की गई यात्रा का मात्र प्रथम दिवस ही उसकी दृष्टि के समक्ष आ खड़ा था।

इस घड़ी उसे काशी विश्वनाथ मंदिर का प्रांगण धुँधला सा दृष्टिगोचर हो रहा था, परंतु गर्भगृह एवं ज्योतिर्लिंग को छोड़ पंचक्रोशी की प्रथम दिवस की यात्रा चित्र-दर-चित्र उसकी दृष्टि के समक्ष घूम रही थी। मणिकर्णिकेश्वर की पूजा, ललिता घाट, मीर घाट इत्यादि घाटों पर देवी-देवताओं के दर्शन, अस्सी संगम पर संगमेश्वर के दर्शन, लोलार्क कुंड पर उसका काँपना, कंदवा ग्राम में माँ यशोदा की वात्सल्य से परिपूर्ण गोद में शयन करना एवं इस्माइल चाचा की शहनाई से उठते सुरों से उसका आनंदित होना, सभी तो स्पष्ट दिखाई दे रहा था।

अब भी यह रहस्य उसकी समझ से परे था कि पंचक्रोशी की इस यात्रा में सभी देवी-देवताओं की मूर्तियों के इतने स्पष्ट दर्शन के पश्चात् भी उसे काशी विश्वनाथ के ज्योतिर्लिंग के दर्शन क्यों नहीं हो रहे थे एवं देवालय के प्रांगण के दर्शन भी इतने धुँधले क्यों थे?

नागेश्वर की ओर पग बढ़ाते अब यह आम हो चला था कि रह-रह कर उसकी दृष्टि के समक्ष काशी विश्वनाथ के मंदिर का प्रांगण अपने धुँधलेपन को लिए दृष्टिगोचर हो जाता था एवं ऐसा क्यों? सोचते जब वह 'ॐ' के जाप में लीन होने की चेष्टा करता, तो अंतर में अब 'अ'कार के स्थान पर 'उ'कार गुंजारित हो उठता था।

प्रभात काल का प्रकाश अब महा की दृष्टि के समक्ष न मात्र दारुका वन

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

के पथ को प्रकाशित कर रहा था, अपितु अंतर की यात्रा के किसी और पथ को भी प्रकाशित करने लगा था। अब बाह्य एवं आंतरिक, दोनों ही यात्राओं में पग बढ़ाता महा, बुद्धेश के साथ दारुका वन स्थित नागेश्वर आ पहुँचा था। भगवती उमा से वरदान प्राप्त कर राक्षसी दारुका ने इस वन को ऋषि और्वकी के शाप से मुक्त करने के लिए समुद्र में स्थापित कर दिया था एवं उन्हीं राक्षसों द्वारा क़ैद अपने भक्त सुप्रिय की रक्षा करने भगवान् शिव यहाँ ज्योतिर्लिंग के रूप में प्रकट हुए थे।

गुप्त रहस्यों का उद्घाटन शिवकृपा भी थी एवं गुरुप्रसाद भी, यह महा भली-भाँति जान चला था। गोमुख के निकट स्थित कंदरा में बिताए दिवस किसी भी घड़ी महा के समक्ष आ खड़े होते थे एवं प्रज्वलित अग्नि की लाल-नारंगी लपटों के समक्ष खड़े नंग-धड़ंग गुरु दृष्टिगोचर हो जाते थे, जिनके कंठ पर लिपटा नाग मानो अब भी अपना फन फैलाता महा को सम्मोहित कर देता था। इसी सम्मोहन में अंतर में पुन: गुरुवाणी गूँज उठती थी। आज भी महा कुछ ऐसी ही स्थिति में था एवं गुरु फिर अंतर में गूँज रहे थे-

''जीव स्वभावत: भिन्न नहीं हैं एवं उनका आत्मभाव भी भिन्नता नहीं रखता, परंतु मल का परिपाक एवं अपरिपाक ही जीव को मुक्त अथवा बद्ध दशा में ला खड़ा करता है। बद्ध जीवों में कुछ मानव लय एवं भोग के अधिकार के अनुसार उत्कृष्ट एवं निकृष्ट गति को प्राप्त कर, ज्ञान एवं ऐश्वर्य आदि विषमताओं को प्राप्त करते हैं।''

बुद्धेश इस समय नागेश्वर मंदिर के भीतर ज्योतिर्लिंग के जलाभिषेक में व्यस्त था एवं मात्र 'उ'कार के जाप में लीन महा के अंतर में अब भी गुरुवाक्य गूँज रहे थे-

''शिव ही 'ॐ' स्वरूप परब्रह्म पंचाकार में परिणीत होते हैं। परब्रह्म शिव ही स्वयं की पराशक्ति से चैतन्यशक्ति को सृजित करते, इच्छाशक्ति को जन्म देते हैं। शिव की इसी इच्छाशक्ति से ज्ञानशक्ति जन्म लेती क्रियाशक्ति को उत्पन्न करती है एवं इन्ही शक्तियों से शिव 'ॐ' स्वरूप परब्रह्म पंचाकार का रूप धर सृष्टि को सृजित करते हैं।''

स्वयं की क्रियाशक्ति का परिचय तो महा को हो चला था एवं उसी

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

क्रियाशक्ति के माध्यम से जैसे ही महा पुनः 'ॐ'कार के जाप में लीन होने के लिए उद्यत हुआ कि पुनः मात्र 'उ'कार गूँजते, गुरुवाणी अंतर में गूँज उठी-

"यदि तू सहस्रार में काशी विश्वनाथ की वास्तविक प्राणप्रतिष्ठा की कामना रखता है, तो आने वाले वर्षों में दैविक जगत् से अवगत हो उसमें विचरना भी त्याग देना।"

गुरुवाणी गूँजते ही जैसे दृष्टि के समक्ष संपूर्ण अंतरिक्ष को घेरता वही बिल्व पत्र आ गया था, जिसके दर्शन उसे वैद्यनाथ में हुए थे। अपनी वक्रीय चाल में घूमता वह बिल्व पत्र दृष्टि के समक्ष स्वयं के रजोगुण रूपी पर्ण को विस्थापित कर, सत्‌गुण रूपी पर्ण को ले आया था। उसके दर्शन होते ही जैसे पंचगंगा घाट की सीढ़ी पर खड़े वह महात्मा पुनः दृष्टि के समक्ष आ खड़े थे। अगले ही क्षण उनके स्थान पर कंठ पर नाग को धारण कर नंग-धड़ंग गुरु आ बोल उठे-

"शिव ही सदाशिव स्वरूप यजुर्वेद की ऋचाएँ उतारते स्वयं माध्यंदिन यज्ञ में दक्षिणाग्नि को समर्पित करते स्वयं की ज्ञानशक्ति को जाग्रत् कर, सत्‌गुण रूपी पुरुष को जन्म देते सृष्टि के पालन में व्यस्त हैं। अंतरात्मा के इस द्वार पर तू 'उ'कार का रहस्य ज्ञात कर यह जान लेगा कि क्यों मैं तुझे दैविक जगत् से अवगत करा, उसे त्यागने का आदेश दे रहा था।"

अब जैसे महा की दृष्टि के समक्ष काशी विश्वनाथ के मंदिर का प्रांगण स्पष्ट हो चला था एवं उसमें पग धरते ही महा विगत की किसी स्मृति को याद कर ऐसे फिसलकर औंधे मुँह गिरा था कि वह स्वयं भी काँप उठा था।

लोलार्क कुंड पर इस्माइल चाचा के साथ बिताई वह संध्या एवं अगले ही दिन चाचा के साथ कोहरे से लिपटी काशी में गंगा पर नाव की सैर के साथ राजा दिवोदास की कथा ही वह स्मृति थी, जिसका स्मरण होते ही महा विश्वनाथ मंदिर के प्रांगण की फिसलन में फिसल गिर पड़ा था। इसी आघात से हिलते मस्तिष्क के तंतुसूत्र उसकी दृष्टि के समक्ष वह दृश्य ले आए थे जिसे देखकर वह काँप उठा था। अब उसे ज्ञात हो चला था कि राजा दिवोदास कोई और नहीं, अपितु वह स्वयं ही है अर्थात् धरा का प्रत्येक मानव ही राजा दिवोदास है।

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

'उ'कार पथ की इस यात्रा में पुनः दृष्टि के समक्ष अब काशी घूम रही थी। परंतु यह सूक्ष्म काशी थी जो स्थूल काशी से एक होकर भी भिन्न थी। जाग्रत् अवस्था जैसे इस घड़ी स्वप्न में परिवर्तित हो चली थी एवं जाग्रत् अवस्था में इस्माइल चाचा द्वारा वैखरी वाणी में सुनी यह कथा, अब मध्यमा वाणी में गूँजती उसे उस काशी से अवगत करा रही थी, जिसे वह इस्माइल चाचा की अँगुली थामकर काशी की आड़ी-तिरछी-सँकरी गलियों में विचरते हुए खोजता था। अब यह वाणी जिह्वा एवं तालू से निकली वैखरी वाणी के ऊपर, मन-मस्तिष्क की गहराई से निकली मध्यमा वाणी में परिवर्तित हो चली थी। अंतर में गूँजती यह वाणी अब उसे ज्ञात करा रही थी कि दिवोदास रूपी मानव, स्वयं सृजनकर्ता ब्रह्मा से सृजित माया की साधना एवं तपस्या में लीन हो उसे प्रसन्न कर मल से घिरता, स्वयं की देह रूपी काशी से काशी विश्वनाथ को विलग करने का वरदान प्राप्त कर लेता है।

मल से घिरकर भले ही मानव अपनी देह रूपी काशीपुरी से काशी विश्वनाथ को विलग कर देता है, परंतु स्वयं के ओज से ही निर्मित इस काशीपुरी को काशीपति यों कैसे त्याग दें? वह भोला भंडारी स्वयं की अंशात्मा को भला ऐसे कैसे मझधार में छोड़ दें? इसलिए तो व्याकुल हो वे स्वयं को पुनः इस काशीपुरी में प्राणप्रतिष्ठित करने के लिए लाख जतन करते, समस्त देवी-देवताओं को काया रूपी काशी के प्रत्येक अंग का अधिष्ठाता बना, मानव रूपी दिवोदास को धर्म की उस उच्चता पर ला बैठाते हैं, जहाँ से वह मोक्ष के द्वार को खटखटाकर काशी विश्वनाथ को इस काशीपुरी में पुनः पधारने का आमंत्रण दे सके।

इस सूक्ष्म काशी के दर्शन के साथ ही अब पंचमहाभूत भी स्वयं के रंग परिवर्तित करते, महा को देवों के इस सूक्ष्म रहस्य का महादान देने को आतुर हो उठे थे। वायु अब रंग परिवर्तन करती मंन का निर्माण कर रही थी, जिसके अधिष्ठाता देवता चंद्रमा इस घड़ी यह संकल्प-विकल्प उठा रहे थे कि काशी विश्वनाथ को पुनः कैसे आमंत्रित किया जाए? महा को प्रतीत हो रहा था कि कथा में इस्माइल चाचा ने कुछ ही देवगणों को वर्णित किया था, परंतु यहाँ तो समस्त देवी-देवता इसी यत्न में चिंतातुर थे कि काशी विश्वनाथ पुनः काशी में

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कैसे आ पधारें?

आदिकेशव के मंदिर में स्थित श्रीहरि विष्णु व्योम से निर्मित अंत:करण के अधिदेव होते, अंत:करण में स्फुरण जगाकर स्फूर्ति प्रदान कर रहे थे एवं राजा दिवोदास के मल को हटा, उन्हें काशी विश्वनाथ को पुन: प्राणप्रतिष्ठित करने की आज्ञा रूपी स्फुरण दे रहे थे।

अग्नि रूपी बुद्धि के यज्ञ में निश्चय की समिधा अर्पित करते ब्रह्मा भी इस घड़ी काशी विश्वनाथ का ही आवाहन कर रहे थे, तो उसी घड़ी बिंदुमाधव के धरहरे पर स्थित नारायण अपनी अध्यक्षता में, जल को चित्त का रूप देकर चिंतन करवा रहे थे कि कैसे काशी विश्वनाथ को पुन: काशी में आमंत्रित किया जाए?

जब समस्त देव मात्र इसी कार्य में लीन थे, तो शिवस्वरूप रुद्र अपने कर्तव्य से कैसे विमुख होते? धरा से अहंकार को सृजित करते वे स्वर उठा रहे थे कि अवश्य ही मैं इस कार्य को पूर्णता प्रदान करूँगा।

इस घड़ी में व्योम एवं वायु सर्वांग में समाकर मात्र काशी विश्वनाथ के जाप में लीन हो चले थे। अब देवता दिशा स्वयं की प्रधानता में व्योम की अग्नि के साथ साझेदारी करते कर्ण को मात्र ''ॐ नम: शिवाय'' के जाप को ही सुनने का निर्देश दे रहे थे एवं अब समस्त दिशाओं से वायु की तरंगों पर सवार देवता मात्र महामंत्र प्रणव शब्द को ही काशीपुरी तक लाने में व्यस्त हो चले थे।

स्वयं को काशी विश्वनाथ की अनुपस्थिति में संपूर्ण एकाकी मान वायुदेव, वायु एवं अग्नि के संयोग से त्वचा को निर्मित कर, काशी विश्वनाथ के एकमात्र स्पर्श के लिए सहस्र वर्षों की आराधना में लीन हो चले थे। त्वचा रूपी इस अविमुक्त क्षेत्र में काशी विश्वनाथ का एकमात्र स्पर्श ही जैसे वायुदेव का अंतिम लक्ष्य हो चला था।

इंद्र भी वायु एवं जल के अंश से निर्मित करों के अधिदेव होते, स्वयं के दोनों कर जोड़ अश्रु बहाते काशी विश्वनाथ से मात्र यही प्रार्थना कर रहे थे-

''जो हो, जैसे हो, आप शीघ्रातिशीघ्र काशी में पग धर प्राणों को संबल प्रदान करें।''

व्योम और वायु के संयोग से निर्मित ब्रह्मनाल रूपी कंठस्थान तो जैसे

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

विक्षिप्त होकर समस्त तीर्थों के प्रसाद एवं तीर्थोदक को ग्रहण करता, ग्लानि से भरा मात्र यही स्वर उठा रहा था-

''त्रुटि हो गई परंतु इस त्रुटि को क्षमा कर स्वयंभू अवश्य ही पधारेंगे।''

अब लोलार्क कुंड पर स्थित आदित्य, चक्षु का रूप ग्रहण कर अहर्निश उत्तर की ओर तक रहे थे कि घड़ी भर ही सही, नीलकंठ के दर्शन हो जाएँ। देवता उपेंद्र तो पग का रूप धर ऐसे आतुर हो रहे थे कि शंकर पर दृष्टि पड़ते ही दौड़कर उनसे लिपट जाएँ।

हृदयाकाश अब जल एवं वायु के संग समस्त प्राणों को समेटकर प्रणव महामंत्र 'ॐ'कार को जपता श्वासोच्छ्वास में लीन हो चला था, तो देवता वरुण, जल एवं अग्नि के माध्यम से जिह्वा का रूप लेते काशी विश्वनाथ के चरणोदक को ग्रहण करने को लालायित हो गए थे।

जब समस्त देव मात्र एक ही आराधना में लीन थे, तब प्रजापति इस आश्वस्तता में लीन स्वयं के कार्य को सजगता से निभा रहे थे कि काशी विश्वनाथ को तो अवश्य ही पुन: पधारना है, सो उनके आने पर यह काशी अपवित्र न हो। अत: वे स्वयं कार्यरत हो शिश्न का रूप धर, वीर्य एवं मूत्र त्याग को नियंत्रित कर रहे थे। अपान-वायु भी इस घड़ी इस कार्य में लीन थी कि कहीं गुदास्थान से स्थूल मल विसर्जन न हो जाए, जिससे यह काशीपुरी अपवित्र हो जाए।

अश्विनीकुमार तो पृथ्वी एवं अग्नि से निर्मित नाक के स्वामी हो, काशी विश्वनाथ की काया से उठती मीठी चंदन की सुगंध को पाने के लिए ऐसे अकुला रहे थे, जैसे किसी अरण्य में स्वयं के भीतर छिपी कस्तूरी की गंध को प्राप्त करने विक्षिप्त सा कस्तूरी मृग अकुलाता है।

इसी घड़ी जैसे यम ने गुदा के द्वार पूर्णत: खोल दिए थे ताकि दिवोदास रूपी इस मानव-काया का मरण हो एवं संपूर्ण पशु रूपी मलों का त्याग कर पशु, पशुपति से एकाकार कर काशी मरणान्मुक्ति को सार्थकता दे जाए। अब क्या बचा था! समस्त पुरुषार्थों को ढूँढ़ने वाले ढुंढिराज गणेश हों या चौंसठ योगिनियाँ, सभी तो काशी में काशी विश्वनाथ के पुन: दर्शन की अभिलाषा में आ बसे थे।

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

ध्यान के इस जागरण का स्वप्न अब टूट चला था एवं काशी विश्वनाथ के मंदिर के प्रांगण में फिसलकर गिरता एवं पुनः उठता महा, प्रांगण के प्रत्येक कोणों से पूर्णतः अवगत होता धुँधले गर्भगृह की ओर दृष्टि डालने की चेष्टा कर रहा था। परंतु प्रांगण से गर्भगृह अब भी दूर था। 'उ'कार का रहस्य उघड़ते से ही अब महा के अंतर में इस गुरुवाणी के रहस्य से भी परदा उठ चला था-

"यदि तू सहस्रार में काशी विश्वनाथ की वास्तविक प्राणप्रतिष्ठा की कामना रखता है, तो आने वाले वर्षों में दैविक जगत् से अवगत हो उसमें भी विचरना त्याग दे।"

स्वयं की सूक्ष्म काया रूपी काशी के रहस्य से परदा उठते ही अब महा यह भी जान चला कि क्यों देवगण मानव से ईर्ष्या करते हैं?

दिवोदास रूपी पशु जीव भी आदिकेशव स्थित विष्णु के स्फुरण से स्वयं के अंतःकरण को जगा गया। चंद्र ने इस घड़ी मन से उठते समस्त संकल्प-विकल्पों को त्याग दिया। ब्रह्मा ने दशाश्वमेध घाट पर अश्वमेध यज्ञ करवा बुद्धि को दिवोदास के अधीन कर यह निश्चय करवा लिया कि अवश्य ही काशी विश्वनाथ की पुनः प्राणप्रतिष्ठा होगी। नारायण अब पशु रूपी जीव दिवोदास के चित्त को निर्मल कर चले थे। जब स्वयं काशी विश्वनाथ की प्राणप्रतिष्ठा होनी हो, तो रुद्र कैसे विमुख रह सकते थे? उन्होंने दिवोदास के मानवीय अहंकार को उसी घड़ी हर लिया एवं दिवोदास, काशी विश्वनाथ की प्राणप्रतिष्ठा कर मुक्त हो गया।

मानव रूपी काया को प्राप्त कर दिवोदास भी मुक्ति को पा गया एवं समस्त देवगण मात्र काशी विश्वनाथ के दर्शन की अभिलाषा से इस दिवोदास रूपी मानव काया में स्थित हो गए। समस्त देवी-देवता इस ज्ञान से भली-भाँति अवगत हैं कि यदि उन्हें काशी मरणान्मुक्ति को उपलब्ध होना है, तो उन्हें भी मानव के रूप में अवतरित होना ही होगा एवं सद्गुरु खोज साधना के मार्ग पर चलना ही होगा। फिर भले ही सद्गुरु की खोज में उन्हें भी स्वप्न या भाव में किसी कबीर से यह क्यों न सुनना पड़े-

'पर याद रख मैं तेरा गुरु नहीं।'

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अध्याय-६२

आज महाश्मशान मणिकर्णिका पर यज्ञश्रेष्ठ, सकलागमपारग, स्वस्तिकृत काशी विश्वनाथ यज्ञादि कर्मों में होने वाले अंग वैगुण्य का नाश कर स्वयं के प्रणव रूप में अमर अनाहत नाद निनादित कर रहे हैं-

"मैं शिव ही स्वयं के मुख से 'ॐ'कार को उत्पन्न करता हूँ, अत: यह मेरे स्वरूप का ही बोधक है एवं यह मंत्र ही मेरा आत्मा है।"

"मैं शिव ही सृष्टि की रचना में स्वयं की चेतनाशक्ति से नाद एवं आनंदशक्ति से बिंदु को सृजित करता हूँ। मेरी ही इच्छाशक्ति द्वारा 'म'कार की उत्पत्ति होती है तथा मेरी ही ज्ञानशक्ति एवं क्रियाशक्ति से क्रमश: 'उ'कार एवं 'अ'कार जन्म लेते, मेरे इस प्रणव मंत्र को पूर्णता प्रदान करते हैं।"

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

'ॐ'कार की इस यात्रा में जैसे विविध प्रकार के संघर्ष, द्वंद्व एवं अवरोध लगभग समाप्त हो चले थे एवं महा जैसे जागरण एवं स्वप्न अवस्था से ऊपर सुषुप्ति के द्वार खटखटाने लगा था।

बुद्धेश, महा को देखता तो उसे यह प्रतीत होता था कि हर घड़ी, यहाँ तक की यात्रा में पग बढ़ाते समय भी महा मात्र ध्यानस्थ अवस्था में ही रहता था। जैसे इस ध्यान में उसकी समस्त खोज खो गई थी एवं उसकी दृष्टि के समक्ष अब कोई लक्ष्य प्राप्ति भी नहीं थी।

बाबा रामकृष्ण परमहंस को पढ़ बुद्धेश जानता था कि ध्यान मन में, वन में एवं कोने में करना चाहिए, परंतु महा को देखकर वह यह भी जान चला था कि समस्त दिशाएँ ध्यान को उतारती महा तक ला रही हैं। अब उसे यह स्पष्ट हो चला था कि ध्यान किया नहीं जाता, उतरता है।

महा के मुखमंडल की दिव्यता को देखकर बुद्धेश को बाबा रामकृष्ण परमहंस के इस वक्तव्य पर पूर्णतः विश्वास हो चला था कि माया एवं ब्रह्म, क्रमशः चलता हुआ साँप एवं स्थिर पड़ा हुआ साँप हैं। अर्थात् शक्ति क्रियाशील अवस्था में माया है और निष्क्रिय अवस्था में ब्रह्म। ज्योतिर्लिंगों के दर्शन करते हुए वह भी शक्ति की महिमा का परिचय पाता महा को देखकर यह जान चला था कि शक्ति की क्रियाशील अवस्था 'माया' में भी कोई स्वयं की शक्ति को निष्क्रिय करता, कैसे ब्रह्म की ओर पग बढ़ाता है।

सोमनाथ की ओर यात्रा करते हुए महा जैसे निष्क्रिय होता किसी स्थिर पड़े हुए साँप की तरह मात्र प्रकृति का अवलोकन कर रहा था। इस अवलोकन में ही वह पंचक्रोशी यात्रा के रहस्य को ज्ञात करता, 'अ'कार स्वरूप स्वयं के अन्नमयकोश एवं 'उ'कार स्वरूप प्राणमयकोश, मनोमयकोश एवं विज्ञानमयकोश को स्वतः जान चला था। अब उसे यह स्पष्ट रूप से ज्ञात हो चला था कि काशी स्वयं की देह के अतिरिक्त कुछ भी नहीं एवं काशी की पंचक्रोशी यात्रा भी स्वयं के भीतर स्वयं की ही यात्रा है।

अब भी महा की दृष्टि के समक्ष काशी विश्वनाथ के मंदिर के प्रांगण

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

का दर्शन तो स्पष्ट था, परंतु धुँधले गर्भगृह के स्पष्ट दर्शन अब भी दूर थे। रह-रह कर अंतर में एक ही स्वर गुंजायमान हो उठता था-

''मैंने मन में समझकर देख लिया है कि पति-वियोग के समान संसार में कोई दुःख नहीं है।''

इसी पति-वियोग को लेकर तो प्रजापति दक्ष ने चंद्रमा पर क्रोधित हो शाप दिया था कि ''तुम्हें क्षय रोग हो जाए'', क्योंकि प्रजापति दक्ष की सत्ताईस कन्याओं का विवाह चंद्रमा से हुआ था, परंतु चंद्रमा इनमें मात्र रोहिणी को ही प्रेम करते थे। इस शाप से ग्रसित हो धीरे-धीरे क्षीण होते चंद्रमा ने प्रभास नामक क्षेत्र में मृत्युंजय मंत्र का पाठ करके शिव को प्रसन्न किया एवं वर पाया था कि एक पक्ष में उनकी कला क्षीण होगी, तो दूसरे पक्ष में वह निरंतर वृद्धि को प्राप्त होगी। चंद्रमा को यह वर देकर शिव भी ज्योतिर्लिंग के रूप में वहीं स्थित होते सोमेश्वर कहलाए। महा को अब यह स्पष्ट हो चला था कि पति तो मात्र शिव ही हैं एवं उनके वियोग के समान संसार में और कोई दुःख नहीं।

आज सोमनाथ में ग्रीष्म की चिलचिलाती धूप में महा समुद्र तट की तपती बालू पर ऐसे लेटा था जैसे कोई मख़मली शय्या पर लेटा हो। अब भी अंतर में मात्र 'उ'कार गूँजता उसे काशी विश्वनाथ के मंदिर के प्रांगण रूपी सूक्ष्म शरीर के प्रत्येक अव्यय से भली-भाँति परिचित करा रहा था। उसे यों तपती बालू पर लेटा देख बुद्धेश की दृष्टि के समक्ष महा के गुरु का चित्र आ खड़ा था, क्योंकि बाबा रामकृष्ण परमहंस की जीवन लीला को पढ़कर बुद्धेश ने यह जान लिया था कि स्वयं बाबा रामकृष्ण परमहंस ने महा के गुरु को ऐसे ही गंगा किनारे की बालू पर चिलचिलाती धूप में नंग-धड़ंग लेटा देखा था।

अब बुद्धेश ज्योतिर्लिंग के दर्शन हेतु मंदिर की ओर चला गया था एवं महा पद्मासन में बैठा 'ॐ'कार के जाप में लीन हो चला था। बुद्धेश के लौटने के पश्चात् भी उसने स्वयं के नेत्रों को नहीं खोला था एवं आज उसने मात्र शंकर की पिंडी को नैवेद्य अर्पित किया था, स्वयं अन्न ग्रहण नहीं किया था। संध्या के पश्चात् रात्रि घिर आई थी एवं बुद्धेश उसके निकट बैठा मात्र उसे जाप में

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

लीन देख रहा था।

जब महा ने नेत्र खोले तो दृष्टि व्योम में खिले पूर्ण चंद्रमा पर थी। इस घड़ी वह भली-भाँति जान चला था कि चंद्रमा की अध्यक्षता में रहने वाले मन से उठते संकल्प-विकल्प भी चंद्रमा की कलाओं की तरह क्षीण होते एवं वृद्धि को प्राप्त करते हैं। मुखमंडल पर एक स्निग्ध स्मित था एवं उसे यों मुस्कराता देख बुद्धेश मात्र इतना पूछ पाया था-

''भोजन ग्रहण नहीं करोगे?''

बुद्धेश की ओर दृष्टि डालता महा बस इतना ही बोला-

''नहीं, आज यों ही बैठूँगा, तुम भोजन करके सो जाना।''

भोजन करने के पश्चात् बालू पर लेटते ही बुद्धेश निद्रामग्न हो गया था एवं महा पुनः जाप में लीन हो गया था। जिस घड़ी वह जाप को रोक नेत्र खोलता, उस घड़ी उन गुरुवाक्यों पर ध्यान चला जाता जो उन्होंने गोमुख के निकट कंदरा में कहे थे। मानो अब इन वाक्यों पर चिंतन भी महा की साधना का एक अंग हो चला था। पंचमहाभूतों का विस्तार, रज, सत्, तम रूपी त्रिगुणात्मक प्रकृति का रहस्य इत्यादि अब स्वयं को उघाड़ते स्वतः ही उसके सामने आ खड़े होते थे। पंचमहाभूतों के विस्तार 'प्रपंच' को अब वह 'ॐ'कार की साधना के साथ पूर्णतः समझने की चेष्टा कर रहा था, परंतु यह चेष्टा भी श्वासोच्छ्वास के सदृश सहज थी। इस घड़ी अंतर में जैसे पुनः वह वाक्य गुंजारित हो रहे थे, जो उसने गुरु के मुख से गोमुख के निकट कंदरा में सुने थे-

''शिव ही सृष्टि की रचना में स्वयं की चेतनाशक्ति से नाद एवं आनंदशक्ति से बिंदु को सृजित करते हैं। उनकी ही इच्छाशक्ति द्वारा 'म'कार की उत्पत्ति होती है एवं उनकी ही ज्ञानशक्ति एवं क्रियाशक्ति से क्रमशः 'उ'कार तथा 'अ'कार जन्म लेते, उनके इस प्रणव मंत्र को पूर्णता प्रदान करते हैं।''

इच्छाशक्ति, ज्ञानशक्ति एवं क्रियाशक्ति पर चिंतन करते ही जैसे आज उसे ये गुरुवाक्य स्पष्ट समझ में आ गए थे-

''सृष्टि के सृजन हेतु शिव की इच्छाशक्ति द्वारा प्रथम परिस्पंद ही

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

'शिवतत्त्व' है। जब ज्ञान और क्रियाशक्तियों में ज्ञान का प्राबल्य अधिक हो, तो उसे 'सदाशिव तत्त्व' कहा जाता है एवं क्रियाशक्ति का प्राबल्य अधिक हो तो उसे 'महेश्वर तत्त्व' कहा जाता है। जब दोनों ही शक्तियाँ सम पर हों तो उसे 'शुद्धविद्यात्मक तत्त्व' कहते हैं। इन शक्तियों में भिन्नता प्रतीत होना ही 'माया तत्त्व' कहा जाता है। जब शिव स्वयं के परम ऐश्वर्यशाली स्वरूप को माया से निग्रहित कर संपूर्ण पदार्थों को आत्मसात् करते हैं, तो उसे ही पुरुष कहा जाता है एवं माया से मोहित पुरुष ही पाश में बँधता पशु हो जाता है।''

भले ही गुरु क्या कहना चाहते हैं यह उसे स्पष्ट समझ में आ रहा था तथापि उन शब्दों का पूर्ण साक्षात्कार अब भी दृष्टि से कोसों दूर था।

ज्ञानशक्ति के आधिक्य में सदाशिव तत्त्व से परिचय तो वह अब भी 'उ'कार के जाप के साथ कर रहा था, जबकि 'अ'कार क़ी यात्रा को पूर्ण करने के पश्चात् क्रियाशक्ति के आधिक्य रूपी महेश्वर तत्त्व से वह परिचित हो चला था। भले ही दृष्टि के समक्ष दोनों शक्तियों की समता पर स्थित शुद्धविद्यात्मक तत्त्व नहीं था, परंतु माया तत्त्व से भली-भाँति परिचित होता वह संसार रूपी पाशों को काटता एवं स्वयं के पशुत्व को लाँघता, पशुपति की ओर पग बढ़ा रहा था। अब भी भले ही काशी विश्वनाथ मंदिर के गर्भगृह एवं ज्योतिर्लिंग से वह दूर था, परंतु प्रांगण में विचरते एवं सदाशिव तत्त्व से परिचय बढ़ाते इस घड़ी वह स्वयं के सूक्ष्म शरीर से स्पष्ट साक्षात्कार कर रहा था।

आज इस घड़ी उसे यह स्पष्ट दिखाई दे रहा था कि काया में सर्वत्र फैली व्यान-वायु ही समस्त संधियों को जोड़ने का कार्य करती है। जठराग्नि में ग्रहण किए भोज्य पदार्थ को पकाने का कार्य समान-वायु का है। इसी पके अन्न का अतिसूक्ष्म अंश हृदय में आकर मन एवं बुद्धि को पुष्ट करता है, तो जल का सूक्ष्म अंश प्राणों को पुष्ट करता है।

काया की समस्त नाड़ियों द्वारा अन्न एवं जल के मध्यम भाग को समान-वायु ही प्रत्येक अंग में पहुँचाकर, रक्त एवं मांस का निर्माण करती है एवं शेष अन्न एवं जल, मल-मूत्र के द्वारा काया से त्याग दिए जाते हैं।

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बाल्यावस्था के ये पंचमहाभूत रूपी मित्र स्वयं की सरलता में भी कितनी जटिलता समाए हुए उसे ढो रहे हैं, यह महा को अब शनैः-शनैः ज्ञात होने लगा था। उनकी जटिलता के इसी ज्ञान में महा को यह ज्ञात हो चला था कि कंठ में उदान-वायु के वास के कारण ही मानव, जल एवं अन्न ग्रहण करता है। यही वायु हृदयमंदिर में स्वयं को प्राणवायु के स्वरूप में स्थापित करती श्वासोच्छ्वास के कार्य में लीन है। साथ ही साथ वायु ही गुदा स्थान पर अपान की उपमा धारण किए, मल विसर्जन के मार्ग को प्रशस्त करती है।

शिव द्वारा गुथी संपूर्ण ब्रह्मांडमाला जैसे एक लघु पुष्पमाला का रूप धर महा के कंठ पर सुशोभित होने लगी थी एवं उससे उठती सुवास जैसे अब महा को यह संदेश देने लगी थी कि जो ब्रह्मांड है, वही पिंड है एवं उसका द्रष्टा हो महा, शब्द, स्पर्श, रस, रूप एवं गंध रूपी पंचविषयों को आत्मसात् करता, सत्, रज एवं तम रूपी त्रिगुणों के समन्वय की दहलीज़ पर खड़ा था।

महा यह जान रहा था कि सत्गुण अंतःकरण, मन एवं बुद्धि के माध्यम से सुख-दुःख का ज्ञान कराते हैं, तो कर्ण, त्वचा, नेत्र, जिह्वा एवं घ्राण के माध्यम से पंचविषयों का ज्ञान भी यही सत्गुण कराते हैं। रजोगुण ही क्रियाशील होता पंचप्राण एवं पंचकर्मेंद्रियों को गति देता है तो पंचविषय अर्थात् शब्द, स्पर्श, रस, रूप एवं गंध मात्र जड़ हैं, जो पंचमहाभूतों के तामसिक गुण से उत्पन्न होते हैं।

व्योम में शशि स्वयं की पूर्ण कलाओं में खिला मुस्करा रहा था एवं सागर की लहरें किनारों से टकराकर फेनिल हो रही थीं। अर्द्धरात्रि की इस घड़ी जैसे सारनाथ से बहती हवा महा के कान में कोई संदेश फूँक गई थी एवं 'ॐ'कार के जाप में लीन महा के नेत्र स्वतः खुल उस काष्ठ के टुकड़े पर चले गए थे, जो हिचकोले खाता सागर की लहरों पर डोल रहा था। महा ने बुद्धेश की ओर जैसे ही दृष्टि डाली, उसी घड़ी जैसे बुद्धेश की निद्रा भंग हो गई एवं अवाक् वह महा को देखने लगा। महा ने लकड़ी के उस टुकड़े की ओर अँगुली उठाते बुद्धेश से कहा-

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

"देखो, उस लकड़ी के टुकड़े की ओर ध्यान से देखो। भीषण झंझावात में यह किसी वृक्ष से टूटकर सरिता में जा गिरा था। न तो यह किसी किनारे की आस में किनारे पर थमा, न ही सरिता की जलराशि में इसने स्वयं को डुबोया, न यह कहीं रेत में फँसा एवं न किसी के द्वारा उठाया गया। और तो और यह स्वयं के भीतर सड़ा भी नहीं। यही सारे कारण हैं कि आज यह उस छोटी सी सरिता में तैरता हुआ इस विशाल सागर में आ समाया है।"

महा के नेत्रों में स्वयं की दृष्टि गड़ाए बुद्धेश ने मात्र इतना पूछा-

"अर्थात्?"

अपने मुख पर एक स्निग्ध स्मित लाते हुए महा ने उत्तर दिया-

"यह मेरा नहीं अपितु भगवान् बुद्ध का संदेश है। मानव को स्वयं की इंद्रियों एवं उसके विषयों में उलझकर रुकना नहीं है। उसे स्वयं की कामनाओं एवं आकांक्षाओं में ग़ोते लगा, डूबना भी नहीं है। स्वयं के हित में स्वार्थी होकर इच्छापूर्तियों के लिए कहीं फँसना भी नहीं है एवं न ही उसे कुसंगति में पड़, कुकर्मियों के बीच उठना-बैठना भी है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस एवं गंध के भँवर में फँसना भी नहीं है एवं साथ ही साथ मात्र दिखावे के लिए सद्गुण रूपी वस्त्र ओढ़, स्वयं के भीतर सड़ना भी नहीं। जो ऐसा कर लेता है, वही मनुष्य इस लकड़ी के टुकड़े की तरह संसार रूपी सरिता में तैरते हुए परब्रह्म के समुद्र में लीन हो सकता है।"

बुद्धेश अब भी आश्चर्य से महा को तक रहा था एवं महा पुनः 'ॐ'कार के मानसिक जाप में लीन हो चला था। महा के शरीर से उठते तेज को देख बुद्धेश की दृष्टि के समक्ष एलोरा की गुफा में स्थित भगवान् बुद्ध की वह मूर्ति आ खड़ी थी, जिसमें वे पद्मासन में ध्यानस्थ बैठे थे। इस घड़ी बुद्धेश को प्रतीत हो रहा था जैसे अट्ठाईस या उनतीस वर्षीय भगवान् बुद्ध स्वयं के लंबे केशों को खोले सोमनाथ के इस समुद्र के किनारे ध्यानस्थ बैठे हैं।

बुद्धेश पुनः निद्रामग्न हो चला था एवं ब्रह्म मुहूर्त में स्वयं के नेत्र खोल चंद्रमा को देखता महा, जैसे कबीर के चिंतन में लीन हो चला था। न तो अब

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कबीर स्वप्न में आते थे, न ही भाव में। परंतु भूतकाल के वह शब्द जो उन्होंने महा को स्वप्न में आ कहे थे, आज कितने सार्थक प्रतीत हो रहे थे। उन्हीं ने कहा था-

"ध्यान से देख, ध्यान से। यह संसार वह वृक्ष है जिसका मूल ब्रह्मांड में समाया है एवं शाखाएँ इस संसार में। इसे उगाने के लिए न तो कुछ जोता गया और न ही कुछ बोया गया। इसे सींचा भी नहीं गया, फिर भी बिना पर्ण एवं बिना शाखाओं के इसका विस्तार होता गया। बग़ैर पर्ण के भी इस पर आकर्षक, मनमोहक, विषय रूपी पुष्प खिल ही उठते हैं। माया रूपी मालिन इन्हीं पुष्पों से उस माला को गुथती है, जिसके आकर्षण में जीव रूपी भ्रमर फँस ही जाता है एवं उसका स्पर्श पाते ही स्वयं के प्राणों से हाथ धो बैठता है।"

"जो पंडित मात्र शास्त्रीय ज्ञान अर्जित करते हैं, वे भी इन विषय पुष्पों से स्वयं को नहीं बचा पाते। और तो और ये पुष्प भी नश्वर हैं एवं इनके मुरझाने पर भी जीव रूपी भ्रमर मात्र निराशा को उपलब्ध होता है। एकमात्र साधक ही इनसे बच सकता है।"

साधना के इस पथ पर चलते हुए महा को जैसे अब भी कबीर एवं बुद्ध कोई न कोई संदेश, किसी न किसी रूप में अवश्य दे जाते थे। वाह रे कबीर! गुरु न होकर भी गुरु जैसा स्नेह।

चंद्रमा की ओर दृष्टि पड़ते ही कबीर के स्नेह से सराबोर महा के नेत्रों से अश्रुबिंदु छलक आए थे एवं इस घड़ी वह सोच रहा था कि आदित्य एवं शशि ही तो अंधकार के साम्राज्य में प्रकाश फैलाते जीवों को राह दिखाते हैं।

कबीर एवं तुलसी भी तो उसी आदित्य एवं शशि की तरह उसके अंधकारमय जीवन में प्रकाश फैलाने की चेष्टा कर रहे थे। वह उस घड़ी स्वयं के नेत्र मूँदे प्रकाश को भी अँधेरा मान, कबीर से मात्र इसलिए रुष्ट हो चला था कि वे अंत में उससे कहते थे-

'पर याद रख मैं तेरा गुरु नहीं।'

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अध्याय-६ ३

आज महाश्मशान मणिकर्णिका पर संसारचक्रभृत्, अमोघदण्ड, एकनायक काशी विश्वनाथ मंगलकारिणी शक्ति से संयुक्त जनम-मरण के कष्ट का मूलोच्छेद करते अमर अनाहत नाद निनादित कर रहे हैं-

"मैं शिव विद्यमान होकर भी शक्ति के बिना सुशोभित नहीं होता। मैं ही स्वयं की इच्छा, ज्ञान एवं क्रियाशक्तियों द्वारा सृष्टि को सृजित कर उसे व्याप्त करता हूँ।"

"मैं शिव ही 'ॐ' स्वरूप परब्रह्म पंचाकार का रूप धर स्वयं के पाँचों रूपों द्वारा इस जगत् प्रपंच को व्याप्त करता हूँ। मैंने स्वयं के ईशान रूप में पुरुष, श्रोत्र, वाणी, शब्द एवं व्योम को व्याप्त कर रखा है, तो स्वयं के तत्पुरुष रूप में प्रकृति, त्वचा, कर, स्पर्श एवं वायु को घेर रखा है। मेरा ही अघोर रूप अहंकार नेत्र, पैर, रूप और अग्नि को व्याप्त करता है, तो मैं अपने वामदेव रूप में बुद्धि, रसना, पायु, रस और जल को घेरता हूँ एवं मैं स्वयं के सद्योजात रूपी ब्रह्म से मन, नासिका, उपस्थ, गंध एवं पृथ्वी को घेरता हूँ।"

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

महा की मेघाच्छन्न आत्मा के भ्रम तो अभी दूर नहीं हुए थे, परंतु उसे इन भ्रमों को दूर करने की लालसा भी न थी। 'ॐ'कार के पथ पर स्वतंत्र विचरते हुए जैसे मेघ स्वत: छँटने लगे थे एवं उसकी सहजता ही कभी आदित्य के दर्शन को प्राप्त कराती अंतर को प्रकाश से भर देती थी। इसी प्रकाश में महा 'ॐ' के 'अ'कार एवं 'उ'कार के पथ से परिचित हो चला था।

प्रभास क्षेत्र की परिक्रमा अब महा के समक्ष 'उ'कार के रहस्य को पूर्णत: उद्घाटित करती उन गुरु वचनों का ज्ञान दे गई थी, जिन्हें उसने गोमुख के निकट कंदरा में सुना था। बुद्धेश देख रहा था कि धरा का निशांधकार महा को पुन: श्मशान की ओर आकर्षित करता उसे श्मशान के द्वार तक ले जाता था एवं संपूर्ण रात्रि वह वहीं बैठा शिवज्ञान, शिवभक्ति, शिवध्यान एवं शिवव्रत रूपी शिवपूजा में लीन रहता था, जैसे श्मशान स्थल से ही वह आरोहण कर रहा हो। आज रात्रि भी महा, श्मशान में बैठा इस शिवपूजा में लीन था कि अंतर में गुरुवाक्य पुन: गूँज उठे थे-

''शिव ही 'ॐ' स्वरूप परब्रह्म पंचाकार का रूप धर स्वयं के पाँचों रूपों द्वारा इस जगत् प्रपंच को व्याप्त करते हैं। उन्होंने ही स्वयं के ईशान रूप में पुरुष, श्रोत्र, वाणी, शब्द एवं व्योम को व्याप्त कर रखा है, तो तत्पुरुष रूप में प्रकृति, त्वचा, कर, स्पर्श एवं वायु को घेर रखा है। उनका अघोर रूप अहंकार, नेत्र, पैर, रूप और अग्नि को व्याप्त करता है, तो वे अपने वामदेव रूप में बुद्धि, रसना, पायु, रस और जल को घेरते हैं एवं उन्होंने अपने सद्योजात रूपी ब्रह्म से मन, नासिका, उपस्थ, गंध एवं पृथ्वी को घेर रखा है।''

इस शिवपूजा में लीन महा को शिव की पंचमुखी मूर्ति में उत्तर एवं पश्चिम स्थित दो मुखों के दर्शन होते ही जैसे 'अ'कार एवं 'उ'कार के संबंध में अब कोई संदेह नहीं रह गया था। महा जान गया था कि द्वादश ज्योतिर्लिंग एवं चार धाम की यह यात्रा मात्र 'ॐ'कार की यात्रा के अतिरिक्त कुछ भी नहीं।

सूक्ष्म शरीर का ज्ञान होते ही जैसे पंचमहाभूत रूपी मित्र अब उसके स्नेह के पात्र बनते अत्यधिक निकट आ गए थे एवं वह जान चला था कि सूक्ष्म शरीर भी शिव के प्रपंच के अतिरिक्त कुछ नहीं, जहाँ पंचमहाभूत इंद्रियों का रूप ग्रहण करते शब्द, रूप, रस, गंध एवं स्पर्श का अनुभव कर सुख-दु:ख रूपी

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

माया तत्त्व में जीव को फँसा लेते हैं।

मन, चित्त, अंत:करण, बुद्धि एवं अहंकार ही मल को जन्म देते जीव को पाश में बाँधकर पशु बना देते हैं। परंतु साथ ही वह यह भी जान रहा था कि ये सब भी शिवरूप ही हैं अर्थात् शिव सर्वव्यापी होकर भी इनसे निर्लिप्त हैं एवं सच्चिदानंद भी।

सच्चिदानंद शब्द कर्णपटल पर गूँजते ही काशी विश्वनाथ के मंदिर के प्रांगण में खड़े महा की दृष्टि धुँधले गर्भगृह की ओर चली गई एवं ऐसा प्रतीत हुआ जैसे एक भीषण कोहरे ने संपूर्ण गर्भगृह को आच्छादित कर रखा था। अत: दृष्टि के समक्ष गर्भगृह की धुँधली छाया के अतिरिक्त कुछ भी न था। किसी भी प्रश्न पर वह ऐसे काशी विश्वनाथ के मंदिर में स्वयं को क्यों खड़ा पाता है? इसका ज्ञान भी उसे काल की इस घड़ी न था।

इस प्रश्न का उत्तर ही तो 'उ'कार से 'म'कार की यात्रा के पश्चात् उसे बिंदु एवं नाद के द्वार ले जाने वाला था। पिंड एवं ब्रह्मांड भले ही एक हों, परंतु शिव की पंचमुखी मूर्ति के दर्शन के पश्चात् भी उसके पीछे खड़े निराकार परब्रह्म शिव से एकाकार का पथ तो मात्र यही था। परंतु उनसे एकाकार अब भी दूर की बात थी।

आज प्रात: सागर के किनारे-किनारे अरण्य से होते हुए, वे द्वारका की ओर चल दिए थे। गुरु ने कहा था-

''जिह्वा सदैव पाप लिप्त वचनों को कहने के लिए तत्पर रहती है, अत: उसको संयत करना अति आवश्यक है।''

सो महा इस संपूर्ण यात्रा में सदैव मौनव्रत रखकर चलना ही श्रेयस्कर समझता था।

वह जानता था कि असंतुष्ट मानव कभी किसी को संतुष्टि प्रदान नहीं कर सकता, परंतु वह तो बाल्यावस्था से ही संतुष्ट था एवं उसकी एकमात्र असंतुष्टि भी गुरु के उसके जीवन में पग धरते ही दूर हो गई थी। मुख पर एक स्निग्ध स्मित एवं चित्त की निर्मलता अब उसका व्यक्तित्व हो चला था। ये गुरुवचन ही तो थे-

''संसार मात्र जल बुदबुद के समान मृगमरीचिका के अतिरिक्त कुछ भी

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

नहीं। अत: जो संसार को तुच्छ जान लेता है वह मरण का साक्षात्कार नहीं करता।''

काया की नश्वरता को तो महा ने काशी के महाश्मशान मणिकर्णिका पर ही जान लिया था, अत: वह मृत्यु की ओर सदैव ही निडर रहा था।

अभी वह मात्र इस गुरुवचन का मनन कर रहा था-

''स्वयं के क्रोध को संयत करने वाला ही सच्चा सारथी है। इसके विपरीत अन्य सभी तो मात्र रास पकड़े स्वयं की काया रूपी बग्घी को ढो रहे हैं। वास्तविक मननशीलता ही अमरत्व के राज्य का मार्ग है।''

बुद्धेश ने संपूर्ण यात्रा में मात्र महा को प्रकृति के साथ संवादी बन मनन करते देखा था। इतने वर्षों में घड़ी भर भी उसने महा के मुखमंडल पर क्रोध की छाया नहीं देखी थी।

गंगोत्री के पश्चात् बदरीनाथ, जगन्नाथपुरी एवं अब तक के सभी ज्योतिर्लिंगों की इस यात्रा में क्या कुछ नहीं सीखा था बुद्धेश ने महा से? जैसे सभी स्थानों की मिट्टी, महा की काया की मिट्टी से कोई संवाद स्थापित कर सदा ही कर्णपटल पर कोई संदेश फूँक जाती थी। शिवत्व के इस उम्मीदवार ने ही जैसे उसे शिव की शक्ति, शैवी का परिचय दिया था। यही शक्ति का मार्ग तो भविष्य में बुद्धेश को भी उस स्थान पर ले जाने वाला था, जहाँ कोई दो नहीं है। परंतु इस घड़ी वह मार्ग बुद्धेश से वर्षों दूर था। गुरु न होकर भी गुरुवत् ही नहीं, अपितु मित्रवत्, भ्रातृवत्, सभी प्रेमों का परिचय तो महा ने दे डाला था उसे।

इस यात्रा में घटित प्रत्येक घटना के माध्यम से महा, गुरु के सदृश उसे किसी शक्ति से परिचित कराता था। जब वे इस यात्रा में एक गाँव से गुज़र रहे थे तो दृष्टि के समक्ष वह दृश्य आ खड़ा था, जिसे देख बुद्धेश काँप उठा था। प्रचंड अग्नि से घिरे एक गृह में एक बालक फँसा हुआ था, उस घड़ी उसका पिता सभी से उसे बचाने की याचना कर रहा था। पिता के प्राण अग्नि में भस्म होती स्वयं की संपत्ति में नहीं, अपितु उसमें फँसे अपने एकमात्र पुत्र में अटके पड़े थे। कितनी शीघ्रता से उस अग्नि के मध्य प्रविष्ट होकर महा उसे बाहर निकाल लाया था। उस घटना के पश्चात् यात्रा में आगे बढ़ते महा ने स्वयं का मौन तोड़, बुद्धेश से मात्र इतना कहा था-

CC-O: Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

"संपत्ति प्रेम से पुत्र प्रेम अधिक होता है।"

नर्मदा परिक्रमा में उनकी दृष्टि एक डूबती नाव पर चली गई थी जिस पर पिता-पुत्र दोनों सवार थे। पिता, पुत्र को छोड़कर स्वयं के प्राणों की रक्षा हेतु हाथ-पाँव चला रहा था। हालाँकि नाविक ने दोनों के ही प्राणों की रक्षा कर ली थी। तब महा ने मुख पर एक स्निग्ध स्मित ला, बुद्धेश से यह कहा था-

"इसे भी ध्यान रखना कि पुत्र से अधिक प्रिय स्वयं की काया होती है।"

भीमाशंकर के निकट चिड़िया मारने हेतु जब एक बालक ने स्वयं की गुलेल से पत्थर फेंका था, तो निशाना चूककर वह पाषाण का टुकड़ा बुद्धेश के नेत्र की ओर चला आया था। बुद्धेश का ध्यान पूर्व से ही इस घटना पर था, सो स्वयं के नेत्र की रक्षा हेतु वह स्वयं के कर नेत्र पर ले आया था। इस घटना के पश्चात् महा ने स्वयं का मौन तोड़कर मात्र इतना कहा था-

"यह भी मनन करने के योग्य है कि स्वयं की काया से अधिक प्रिय इंद्रियाँ होती हैं।"

बालपुर के ग्रामीण अंचल में रहकर महा ने न जाने कितने आदिवासियों को मदिरा सेवन की लत से मुक्त किया था। आज भी बुद्धेश उस संदेश को विस्मृत न कर पाया था, जो महा ने उसे वहाँ दिया था। मदिरा में धुत्त एक आदिवासी नवयुवक ने जब एक स्त्री के साथ बलात्कार की चेष्टा की थी, तो पंचों ने उसे प्राणदंड दिया था। वह नवयुवक अश्रु बहाता प्राणों की भीख माँगता याचना कर रहा था-

"भले मेरे करों को काट लो परंतु प्राणों को न हरो।" महा ने मध्यस्थता कर ऐसा नहीं होने दिया था एवं उसके पश्चात् बुद्धेश से मात्र इतना कहा था-

"यह भी मनन योग्य है कि इंद्रियों से अधिक प्रिय प्राण होते हैं।"

अभी कुछ मास पूर्व ही सोमनाथ की ओर यात्रा करते हुए जब उनकी दृष्टि एक रुग्ण वृद्ध पर पड़ी थी, तो वह व्योम की ओर कर जोड़ ईश्वर से प्रार्थना कर रहा था- "हे ईश्वर! यदि मेरे प्राण निकल जाएँ, तो मैं सुखी हो जाऊँगा।" उसी घड़ी बुद्धेश ने महा की ओर दृष्टि डाल यह प्रश्न किया था कि प्राणों से अधिक प्रीतिकर, यह "मैं" क्या है? वह प्रथम दिवस था जब महा ने स्वयं का मौन न तोड़, कोई उत्तर नहीं दिया था। बुद्धेश को आश्चर्य हो रहा था

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

परंतु उस घड़ी महा भी उस प्रश्न के उत्तर से अनभिज्ञ था। प्रश्न का मनन करते महा को यह प्रतीत हो रहा था कि इसका उत्तर तो शायद इस 'ॐ'कार की यात्रा को पूर्ण करने के पश्चात् ही उसे ज्ञात होगा, परंतु उस घड़ी के पश्चात् जैसे महा की संपूर्ण मननशीलता इसी ''मैं'' पर केंद्रित हो गई थी।

आज द्वारका की ओर इस यात्रा में एक ब्राह्मण भी उनके साथ हो लिया था एवं वही द्वारकापुरी का महिमागान बुद्धेश के समक्ष करता कह रहा था-

''जब द्वारका की रज भी पापियों को मुक्ति देती है तो फिर साक्षात् द्वारका एवं द्वारकाधीश की तो बात ही क्या है। जीवन के समस्त पुण्य कर्म इस द्वारकाधीश, राजा ठाकुर भगवान् श्रीकृष्ण के समक्ष कोटि गुना एवं अक्षय हो जाते हैं। मंदिर के मुख्य पीठ पर श्री रणछोड़राय की श्यामवर्ण चतुर्भुज मूर्ति है। सोलह कलाओं एवं द्वादश मूर्तियों से युक्त विश्वात्मा भगवान् श्रीहरि विष्णु साक्षात् यहाँ निवास करते हैं। कलियुग में यदि चांडाल भी द्वारकापुरी में वास करता है तो वह भी यति सी गति पाता है।''

चांडाल शब्द सुनते ही बुद्धेश की दृष्टि महा की ओर चली गई थी, परंतु महा स्वयं के मौन में निर्लिप्त द्वारका की ओर पग बढ़ा रहा था। गुरु ने महा से कहा था-

''यदि तू सहस्रार में काशी विश्वनाथ की प्राणप्रतिष्ठा की कामना रखता है तो आने वाले वर्षों में दैविक जगत् से अवगत हो, उसमें भी विचरना त्याग दे।''

इसके पश्चात् भी आज महा के सूक्ष्म नीरव मन में 'ॐ'कार के मानसिक जाप के स्थान पर स्वत: ही ''श्रीकृष्ण शरणम् मम्'', गुंजायमान हो रहा था। महा अब भी सहज था।

मार्ग में रात्रि विश्राम के पश्चात् आज प्रात: जब वे द्वारकापुरी की ओर पग बढ़ा रहे थे, तो रह-रह कर महा की दृष्टि के समक्ष काशी में पंचगंगा घाट पर बिंदुमाधव के धरहरे के पास की गली में स्थित वह देवालय घूम रहा था, जो उसका गुरुस्थान था। यहीं महा के गुरु ने लगभग अस्सी वर्ष बिताए थे। आज यह देवालय उसकी दृष्टि के समक्ष क्यों घूम रहा है? इसका अब तक महा को ज्ञान न था।

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कई पड़ावों के पश्चात् आज वे द्वारका आ पहुँचे थे। गोमती एवं समुद्र के संगम पर श्रीकृष्ण की आराधना में लीन वह ब्राह्मण डुबकियाँ लगा रहा था। कई यात्री भजन-कीर्तन करते द्वारकाधीश के मंदिर की ओर जा रहे थे एवं उनके साथ चलते महा, देवालय से कुछ दूरी पर ही खड़ा हो शिखर दर्शन कर रहा था। उसके पग वहीं थम गए थे एवं अब वह स्वयं के पग बढ़ाता मंदिर के पीछे, सागर की ओर जाने लगा था कि वह ब्राह्मण चिल्लाता पूछ बैठा-

''तुम मंदिर में दर्शन के लिए नहीं आओगे?''

महा अब भी मौन स्वयं के पग बढ़ा रहा था कि बुद्धेश बोल उठा-

''वे मंदिर में नहीं जाते, मात्र शिखर दर्शन करते हैं।''

जैसे इन शब्दों ने उस ब्राह्मण के अस्तित्व पर ही कोई प्रश्नचिह्न लगा दिया था एवं क्रोधित हो वह बोल उठा-

''इसी को कलिकाल कहते हैं। जब स्वयं को राजा ठाकुर का अपमान करना है, तो औरों को सहभागी बना लोग उन्हें क्यों पाप में डालते हैं?''

अब बड़बड़ाता हुआ वह ब्राह्मण तुलसी की मालाएँ खरीद रहा था। उसने ग्यारह मालाएँ क्रय की थीं एवं बुद्धेश के साथ मंदिर में प्रविष्ट हो उस ब्राह्मण ने वे तुलसी-मालाएँ द्वारकाधीश को अर्पित करने हेतु पुजारी को दे दीं। परंतु जैसे ही पुजारी ने उन मालाओं को द्वारकाधीश के कंठ पर अर्पित किया, तो ब्राह्मण ऐसे काँप उठा जैसे कोई वज्रपात हुआ हो। ब्राह्मण को दृष्टिगोचर हो रहा था कि जैसे सारी मालाएँ लुप्त हो गई थीं। वह अपने नेत्रों को मल रहा था एवं बुद्धेश मूर्ति के समक्ष हाथ जोड़ अपने नेत्र बंद किए आराधना में लीन था। ब्राह्मण ने बुद्धेश को झकझोरते हुए पूछा- ''क्या तुम्हें मालाएँ दिख रही हैं?''

बुद्धेश की ''हाँ'' सुनकर अब ब्राह्मण काँप उठा था। वह दौड़कर देवालय से बाहर आया एवं एक पुष्प की माला और दस तुलसी मालाएँ क्रय कर लीं। अब मंदिर में आ जैसे ही उसने वे मालाएँ भगवान् को अर्पित कीं तो पुनः दृष्टि के समक्ष एक भी माला न थी।

''अवश्य ही मुझसे कोई घोर पाप हुआ है'', कहता हुआ अब वह ब्राह्मण अश्रु बहाता मंदिर के बाहर की ओर दौड़ चला था। महा के मुखमंडल के तेज से वह भली-भाँति अवगत था। शायद उसे पापी कहने में ही पाप था, सोचता ब्राह्मण समुद्र की ओर दौड़ पड़ा था।

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

उधर समुद्र की रेत पर पद्मासन में बैठे ध्यानस्थ महा की दृष्टि के समक्ष काशी में पंचगंगा घाट पर स्थित उस देवालय में स्थित साक्षीगोपाल की मूर्ति घूम रही थी, जिनके शीश पर एक शिवलिंग स्थापित है। शिव एवं विष्णु की एकात्मता पुनः दृष्टि के समक्ष घूम रही थी एवं इस मूर्ति को माध्यम बना, गुरु उसे यह संदेश प्रेषित कर रहे थे-

"जब स्वयं गोपाल कृष्ण स्वयं के सहस्रार में काशी विश्वनाथ को प्राणप्रतिष्ठित करते हैं, तो तू भी उनसे ज्ञान ग्रहण कर अपने सहस्रागार में काशी विश्वनाथ की प्राणप्रतिष्ठा क्यों नहीं करता?"

इस घड़ी महा की दृष्टि के समक्ष चतुर्भुज द्वारकाधीश की श्यामवर्णीय मूर्ति आ खड़ी थी एवं वह भाव-समाधि में लीन हो गया था।

अब तक वह ब्राह्मण महा के निकट आ गया था एवं महा पर दृष्टि पड़ते ही वह विक्षिप्त होता, महा के चरणों में सिर रखकर फूट-फूट कर रो रहा था। घटनाक्रम को समझते बुद्धेश भी वहाँ आ पहुँचा था। महा अब भी भाव-समाधि में लीन था। बुद्धेश पर दृष्टि पड़ते ही ब्राह्मण विक्षिप्त सा चिल्ला उठा-

"देखो, इनके कंठ पर देखो! सारी मालाएँ जो मैंने राजा ठाकुर को अर्पित की थीं, इनके कंठ की शोभा बढ़ा रही हैं। आज से यही मेरे राजा ठाकुर हैं एवं गुरु भी।"

बुद्धेश, महा को आश्चर्य से देख रहा था। उसके कंठ पर एक भी माला नहीं थी। भाव-समाधि में लीन महा के नेत्र अब भी बंद थे एवं उसके चरणों में स्वयं का ललाट रगड़ता, वह ब्राह्मण अश्रु बहाता बोल रहा था-

"क्षमा कर दो मेरे राजा ठाकुर, मुझे क्षमा कर दो। जो चाहे सज़ा दो परंतु अब मैं आप ही से दीक्षा लूँगा। कृपया मुझे अपना शिष्य स्वीकार कीजिए।"

महा पूर्ववत् ध्यानस्थ था एवं बुद्धेश ने ब्राह्मण को खड़ा कर स्वयं के आलिंगन में बद्ध करते हुए कहा-

"व्यर्थ है, इनसे ऐसी याचना करना व्यर्थ है। ये तुम्हें क्षमा तो अवश्य कर देंगे, परंतु इनके समक्ष जीवन पर्यंत दीक्षा की भिक्षा माँगकर भी अंततः तुम इनके मुख से मात्र इन्हीं शब्दों को सुनोगे-

'पर याद रख मैं तेरा गुरु नहीं।' "

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अध्याय-६४

आज महाश्मशान मणिकर्णिका पर सर्वदेवोत्तमोत्तम, तत्त्ववेत्ता, प्रणव काशी विश्वनाथ संपूर्ण जगत् को उत्तम गुणों से सुशोभित करते स्वयं के अद्वितीय आत्म-रूप में अमर अनाहत नाद निनादित कर रहे हैं-

"मैं शिव स्वयं की इच्छा से ही पराशक्ति को शिवतत्त्व से एक करता हूँ। मेरी ही शक्ति से क्रियाशक्ति प्रकट होती है एवं उसके विक्षोभ से ही नाद की उत्पत्ति होती है। इसी नाद से बिंदु जन्म लेता सृष्टि के सृजन के मार्ग को प्रशस्त करता है।"

"मेरे आत्म-रूप प्रणव मंत्र 'ॐ' से पंचाक्षर मंत्र 'नमः शिवाय' उत्पन्न हुआ है। 'अ'कार से 'न'कार, 'उ'कार से 'म'कार, 'म'कार से 'शि', बिंदु से 'वा' और नाद से 'य'कार उत्पन्न हुआ है।"

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

'ॐ'कार की इस यात्रा में महा ने अपना सर्वस्व जैसे शिव के चरणों में अर्पित कर दिया था। अब शिव रूपी गुरु या गुरु रूपी शिव, उसकी काया के पात्र को भरते जिन रहस्यों को उद्घाटित कर रहे थे, वह मात्र शिवज्ञान के अतिरिक्त कुछ न था। इस शिवज्ञान में ही तो जैसे समस्त सृष्टि के सृजन एवं संहार का रहस्य छिपा हुआ था।

स्थूल शरीर एवं सूक्ष्म शरीर से परिचित होता महा अब यह जान चला था कि जैसे तिल से तेल निर्मित होता है, उसी तरह प्रकृति से निर्मित त्रिगुण ही इस सृष्टि की रचना को साम्यावस्था प्रदान करते हैं। सुख, सात्त्विक गुण है तो दु:ख का हेतु राजसिक गुण है एवं जड़ता और मोह का उत्पन्न होना तामसिक गुण को प्रदर्शित करता है।

अब सृष्टि के मंदिर में जीवन का पुजारी बन वह शिव के प्रत्येक रूप का दर्शन करता, काशी विश्वनाथ मंदिर के प्रांगण में खड़ा गर्भगृह की ओर पग बढ़ाने की चेष्टा कर रहा था, जैसे यह प्रयत्न सृष्टि के सृजन की परिभाषा से उसका साक्षात्कार कराने वाला था।

माँ यशोदा के साथ मात्र दो वर्ष से कुछ अधिक की आयु में की गई पंचक्रोशी यात्रा, जैसे स्मरण की इस बेला में स्वयं की वास्तविक पहचान देती हृदय की गहराइयों में छिपे उसे उस परमात्मा के ख़ज़ाने की ओर धकेल रही थी, जिस पर माया ने परदा डाल रखा था। अब इस पंचक्रोशी यात्रा के तृतीय दिवस की रात्रि रामेश्वरम् में बिता वह जाग्रत् एवं स्वप्न अवस्था से ऊपर सुषुप्त अवस्था की ओर पग बढ़ा रहा था। रामेश्वरम् में विश्राम करते हुए अंतर में वह स्वयं के अन्नमयकोश, प्राणमयकोश एवं मनोमयकोश से अवगत हो रहा था।

अब अंतर की काशी रूपी पंचक्रोशी यात्रा के चतुर्थ दिवस की प्रात: उतर आई थी एवं बाह्य यात्रा में वह रामेश्वरम् की ओर पग बढ़ा रहा था। यात्रा में बढ़ते प्रत्येक पग के साथ 'ॐ'कार का जाप सघन होता, उसे अंतर के विज्ञानमयकोश की परिभाषा दे रहा था। अब 'उ'कार स्वयं का पूर्ण परिचय देता उसके समक्ष काया के निर्माण के रहस्य को उघाड़ चला था एवं विज्ञानमयकोश का परिचय पाते ही अब पंचक्रोशी यात्रा के चतुर्थ दिवस की यात्रा भी पूर्णता की ओर प्रशस्त हो चली थी। परंतु रात्रि अभी शेष थी एवं वह रात्रि में माँ यशोदा की गोद में विश्राम कर रहा था।

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

आज रामेश्वरम् की ओर यात्रा में विश्राम की घड़ी जब महा पद्मासन में बैठा 'ॐ'कार के जाप में लीन था, तो उसे प्रतीत हुआ जैसे स्वयं के भीतर वह शांत चरण बढ़ाता अपने हृदयस्थल की ओर बढ़ रहा है। बंद नेत्र ध्यान के द्वारा ब्रह्मरंध्र की ओर चले गए थे। किसी सूक्ष्म प्रकाश का अनुभव कर वह चौंक उठा था, क्योंकि उसकी स्थूल काया के समक्ष उसी की काया के आकार की प्रतिच्छाया को इस घड़ी वह ध्यानस्थ बैठा देख रहा था।

सूक्ष्म शरीर 'उ'कार का पूर्ण परिचय देता महा की प्रकाशमयी प्रतिच्छाया के रूप में साक्षात् महा की काया के समक्ष ध्यानस्थ बैठा था। सत्, रज एवं तम रूपी त्रिगुण, उनसे जन्म लेते पंच अंतःकरण, पंचज्ञानेंद्रियों, पंचकर्मेंद्रियों, पंचप्राण एवं पंचविषय, सभी का तो साक्षात्कार आज उससे हो चला था। इस घड़ी उसे प्रतीत हो रहा था जैसे वह ध्यानस्थ बैठा है एवं उसी के समक्ष उसी के प्रकाशमयी स्वरूप में काशी विश्वनाथ मंदिर का प्रांगण भी ध्यानस्थ बैठा है।

'उ'कार का साक्षात्कार अब पूर्णतः हो चला था, परंतु नियति की लेखनी संपूर्ण 'ॐ'कार से ऐसा साक्षात्कार कब कराएगी इसका अभी उसे ज्ञान न था, जहाँ शिव स्वयं परमानंदरूपिणी आद्यशक्ति के साथ एकरूप हो पंचमहाभूतों का सृजन कर, पुरुष एवं प्रकृति युक्त जगत् उत्पन्न करते, यह अमर अनाहत नाद निनादित करते हैं-

"मैं शिव स्वयं की इच्छा से ही पराशक्ति को शिवतत्त्व से एक करता हूँ। मेरी ही शक्ति में क्रियाशक्ति प्रकट होती है एवं उसके विक्षोभ से ही नाद की उत्पत्ति होती है। इसी नाद से बिंदु जन्म लेता सृष्टि के सृजन के मार्ग को प्रशस्त करता है।"

अब यात्रा में पग बढ़ाते महा के लिए यह आम हो चला था कि जैसे ही वह ध्यानावस्था में बैठता, तो स्वयं की प्रकाशमयी प्रतिच्छाया को वह अपने समक्ष ध्यानस्थ बैठा पाता। परंतु आज जैसे ही वह ध्यान में उतरा तो दृष्टि के समक्ष काशी के अस्सी घाट पर स्थित एक पर्णकुटी आ खड़ी थी, जिसके भीतर तुलसीदासजी की वृद्ध जर्जर होती पीरव्यापी काया की वेदना अब उनसे असह्य हो चली थी। शिष्य सेवा में मग्न थे एवं तुलसीदासजी के मुख से अब भी एकमात्र शब्द 'राम' निकल रहा था कि अचानक एक अंतिम हिचकी और

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

उन्होंने अपनी पलकें मूँद लीं। अब उनकी तेजोमयी मृत देह से भी 'राम' शब्द प्रकट होता वातावरण को गुंजारित कर रहा था।

ध्यान टूट गया था। बुद्धेश निकट के गाँव से भिक्षा ले आया था। जैसे ही महा ने शंकर की पिंडी पर धान का नैवेद्य अर्पित किया तो पिंडी से उठता एक प्रकाशयुक्त वलय महा को घेरने लगा। ध्यान में उतरने से पूर्व अब महा को यह स्पष्ट हो गया था कि सगुण को साधकर ही निर्गुण के साम्राज्य में पग धरा जा सकता है। पिंडी से उठता प्रकाशवलय अब तक महा को संपूर्ण रूप से घेर चला था एवं वह ध्यानस्थ हो गया था।

स्वयं के समक्ष ध्यानस्थ बैठी प्रकाशमयी प्रतिच्छाया उसे पंचउपप्राणों का परिचय देती यह जता गई थी कि पलकों का खुलना एवं बंद होना कर्म-वायु का परिणाम है, तो छींक आना, डकार लेना एवं जम्हाई लेना भी इन्हीं उपवायुओं का कार्य है। धनंजय-वायु ही मृत्यु के पश्चात् काया को फुला देती है। पर जब काया किसी कबीर या तुलसी की हो तो यही धनंजय-वायु स्वयं को उनके चरणों में समर्पित करती कृतार्थ भाव से भर उठती है एवं मृतकाया को कभी नहीं फुलाती। यहाँ अग्नि एवं जल स्वधर्म निभाते हुए इस मृतकाया को दिव्यता प्रदान कर जाते हैं, तो व्योम अनंत के विस्तार को इस मृतकाया के माध्यम से झलकाने लगता है एवं धरा की मिट्टी मृतकाया की मिट्टी को स्वर्णता प्रदान करते हुए निखार देती है।

अब जैसे अंतर की पंचक्रोशी यात्रा की चतुर्थ रात्रि भी बीत चली थी एवं दसों वायु रूपी प्राणमयकोश, मन व बुद्धि से संयुक्त मनोमयकोश एवं विज्ञानमयकोश की यात्रा भी इस रात्रि के साथ पूर्ण हो गई थी। अब महा, काशी विश्वनाथ के मंदिर में प्रांगण से गर्भगृह की ओर पग बढ़ाने के लिए तैयार हो चुका था।

यथार्थ एवं स्वप्न, दोनों से ऊपर होता महा अब 'म'कार के साम्राज्य की ओर ऐसे पग बढ़ा रहा था, जैसे अब पंचक्रोशी यात्रा के पंचम दिवस की प्रातः आ पहुँची थी। इसी यात्रा में आज भी महा 'ॐ'कार के जाप में लीन ध्यानस्थ बैठा था एवं बुद्धेश गाँव में भिक्षा ग्रहण करने हेतु चला गया था। जब बुद्धेश भिक्षा ग्रहण कर लौटा, तो उसे दृष्टिगोचर हुआ कि महा एक रुग्ण बालक को दृढ़ आलिंगन में बद्ध किए था। उस बालक की विधवा माँ एवं एक

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

ब्राह्मण निकट ही खड़े थे, जैसे ब्राह्मण दुभाषिये के रूप में उस विधवा माँ के साथ आया था। महा का किसी को ऐसे आलिंगनबद्ध करना बुद्धेश के लिए प्रथम अनुभव था। यह दृश्य देख बुद्धेश किसी अज्ञात आशंका से भयग्रस्त हो गया था। महा के साथ रहते वह भी अब उसकी भाषा समझने लगा था।

बुद्धेश के निकट आते ही अब वे लोग महा को छोड़कर जाने लगे थे, परंतु उस विधवा माँ का महा के चरणों में गिर अश्रु बहाने एवं अपनी भाषा में धन्यवाद प्रेषित करने से बुद्धेश इतना तो जान गया था कि हो न हो, अवश्य ही महा ने उन्हें किसी विपत्ति से बचाया है। परंतु क्या? यह पूछने का साहस बुद्धेश नहीं कर पाया था।

यात्रा में ज्यों-ज्यों रामेश्वरम् निकट आ रहा था, महा के अंतर में स्वत: 'श्रीराम' का नाम गुंजायमान हो चला था। बाल्यावस्था में इस्माइल चाचा से उसने सुना था कि जब माँ भगवती ने शिवजी से यह प्रश्न पूछा कि समस्त विष्णु सहस्रनामों में ऐसा कौन सा नाम है, जिसका जाप साधारण मनुष्य को विष्णु सहस्रनाम का पुण्य प्रदान कर सकता है, तो उत्तर में स्वयं भोलेनाथ ने 'श्रीराम' नाम बताया था।

भूतू चाचा ने भी तो उसे महाश्मशान मणिकर्णिका पर इस ज्ञान से अवगत कराया था कि राम ही वह तारकमंत्र है, जिसे शिव काशी में शव के कर्णपटल पर फूँक मुक्ति प्रदान करते हैं। यही कारण है कि अर्थी ले जाते लोग सदैव अर्थी के साथ चलते हुए 'राम नाम सत्य है' कहते जाते हैं।

अंतर में राम गूँजते ही अब जैसे स्वत: 'म'कार गूँज उठा था एवं 'म'कार के गूँजते ही ध्यानस्थ महा की दृष्टि के समक्ष एक बार पुन: समस्त लोकों को घेरता बिल्व पत्र आ खड़ा था। अभी महा मात्र उसके तमगुण रूपी पर्ण के दर्शन करने में सक्षम था। अब महा की दृष्टि के समक्ष पुन: भस्म त्रिपुंड की तृतीय रेखा आ खड़ी थी एवं उसके दृष्टि के समक्ष आने पर पुन: उन महात्मा का मुखमंडल आ खड़ा था जिन्होंने उसे भस्म त्रिपुंड के रहस्य से अवगत कराया था।

इस घड़ी उसे प्रतीत हो रहा था जैसे न तो वह जाग्रत् है न ही कोई स्वप्न को देख रहा है। एक सुषुप्त अवस्था को उपलब्ध, उसे मात्र इतना भान हो रहा है कि महाश्मशान मणिकर्णिका की तामसिक छाया में शिव स्वयं के

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

महादेव रूप में संध्या के इस काल में चिताग्नि रूपी यज्ञ में आह्वनीय अग्नि को अर्पित करते परमात्मा की उस क्रियाशक्ति को जगा रहे हैं, जो सृष्टि का सृजन करती है। इस घड़ी स्वर्गलोक के समस्त देवगण सामवेद का गान उठाते 'महादेव' की इस सृष्टि रचना को मंत्रमुग्ध हो देख रहे थे। समस्त दृश्य लुप्त होते ही अब अंतर में पुनः 'राम' गूँजने लगा था।

आज दोनों रामेश्वरम् पहुँच चुके थे। किसी तालाब की तरह शांत समुद्र में स्नान के पश्चात् बुद्धेश अब देवालय के अंदर स्थित बाईस कुंडों में स्नान कर ज्योतिर्लिंग के दर्शन में लीन हो गया था। महा इस समय शंकर की पिंडी का जलाभिषेक करते शिवपूजा में लीन हो गया था।

लंका पर आक्रमण की घड़ी कंठ सूखने पर जैसे ही श्रीराम जल ग्रहण करने जा रहे थे, उन्हें ध्यान आया कि उन्होंने शिवपूजन नहीं किया। अतः जल को त्याग रघुनंदन, शिव का पार्थिव लिंग स्थापित कर शिवपूजा में लीन हो गए। शिव ने ही प्रसन्न होकर उन्हें जय का वरदान दिया था एवं स्वयं ज्योतिर्लिंग के रूप में यहाँ आ विराजे थे।

वाह रे परमात्मा! श्रीराम, शिव के पूजन के बिना जल तक ग्रहण नहीं करते, तो शिव शव के कान में 'राम' नाम का तारकमंत्र फूँकते, उसे मुक्ति प्रदान करते हैं। अब महा को यह स्पष्ट हो चला था कि सगुण के साथ ही निर्गुण में रमा जा सकता है। इस घड़ी उसके समक्ष तुलसी के सगुण 'राम' एवं कबीर के निर्गुण 'राम' का भेद समाप्त हो चुका था। अब उसे यह भी स्पष्ट हो गया था कि क्यों गुरु ने उसे पुनः गोमुख भेजकर उस शंकर की पिंडी को वापस मँगवाया था, जिसका विसर्जन उसने गंगाजल में कर दिया था।

अंतर में अब भी 'राम' गूँज रहे थे। शिवपूजन में लीन महा अब कबीर एवं तुलसी के मुखमंडलों का स्मरण कर रहा था, परंतु आश्चर्य कि उनकी मुखाकृति उसकी दृष्टि के समक्ष न आ, बाल्यावस्था में माँ यशोदा के साथ की गई पंचतीर्थ यात्रा बार-बार दृष्टि के समक्ष घूम रही थी।

काल की भी कैसी महिमा है कि भूतकाल में किया गया कोई भी कर्म भविष्य में किसी न किसी घड़ी, किसी न किसी रूप में, स्वयं का अर्थ उघाड़ता है एवं उसे आत्मसात् कर, उससे न बँध वर्तमान में जीना ही जीवन है।

इस घड़ी कभी दृष्टि के समक्ष पंचतीर्थ यात्रा आ खड़ी होती थी तो कभी

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पंचक्रोशी यात्रा का पंचम दिवस आ जाता।

अंतर में गूँजते राम, तुलसीदासजी की नवधा भक्ति को सामने ला रहे थे एवं नौवीं भक्ति उसे दर्शा रही थी कि हृदय की निष्कपटता एवं निर्मलता लिए श्रीराम के प्रति अचल एवं अटूट विश्वास ही भक्ति द्वारा मुक्ति का मार्ग है। इसी निर्मलता के कारण ही तो श्रीराम ने शबरी के जूठे बेर खाए थे एवं यदि उसका भी हृदय निर्मल है तो अवश्य ही श्रीराम उसे भी उस मार्ग पर प्रशस्त करेंगे जहाँ मुक्ति सुनिश्चित है, फिर भले ही वह चांडाल क्यों न हो।

"निर्मल" शब्द उसे पुन: पशुपति का स्मरण करा गया था एवं दृष्टि शंकर की पिंडी पर चली गई थी। इस घड़ी प्रकाशमय वलय उठाती पिंडी ज्योतिर्मय होती दिव्यता में लुप्त हो गई थी, साथ ही महा ध्यानस्थ हो चला था। अंतर का प्रकाश उसे हृदय के उस द्वार पर ले आया था, जहाँ उसे प्रकाशमय वलय घूमते दिखाई दे रहे थे। अब दृष्टि के समक्ष पंचतीर्थ यात्रा स्वयं का रहस्य खोलती उसे काशी विश्वनाथ मंदिर के प्रांगण से गर्भगृह में ले आई थी।

माँ यशोदा के संग भूतकाल में की गई यह पंचतीर्थ यात्रा, इस क्षण उस पर स्वयं का अर्थ उघाड़ते हुए अतिसूक्ष्म काशी अर्थात् स्वयं के कारण शरीर के द्वार पर ले आई थी। प्राणगान उठाते हुए अस्सी के संगम पर डुबकी लगाते ज्योतिर्मय संगमेश्वर मानो स्वयं दर्शन देते, उस पर सूक्ष्म विचार रूपी पश्यंती वाचा का रहस्य खोल गए थे।

काशी विश्वनाथ का महिमागान करते हुए जैसे ही उसने दशाश्वमेध घाट पर गंगा में डुबकी लगाई, तो उसे दृष्टिगोचर हुआ कि लक्ष-लक्ष ऋषि प्रयाग तीर्थ पर वेदों का मंगलगान करते, निर्विकार सुख के आनंदभोग को भोगते उल्लासित हो रहे हैं।

किसी गंभीरानंद तत्त्व के स्पंदन के साथ जैसे ही उसने आदिकेशव के निकट पादोदक तीर्थ पर डुबकी लगाई, तो दृष्टि के समक्ष प्रकाशवलयों से युक्त निज आत्मानंद को भोगते चतुर्भुज आदिकेशव उसके कर्णपटल पर द्रव्यशक्ति का रहस्य फूँक गए थे।

किसी भगवत्-सत्य का स्पर्श पा जैसे ही उसने पवित्र पंचनद पंचगंगा में डुबकी लगाई, तो अतिनिर्मल स्पष्ट स्वस्तिक चिह्नों से विभूषित नीलांबर बिंदुमाधव उसे 'म'कार के ज्ञान का दान दे गए थे।

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

ईश्वर तत्त्व के स्पंदन से स्पंदित हो जब वह मणिकर्णिका घाट पर डुबकी लगा रहा था, तो महाश्मशान मणिकर्णिका पर अपने सान्निध्य में कार्यरत इस चांडाल पर सत्यव्रतधारी एवं महान त्यागी मणिकर्णिकेश्वर स्वयं की कृपावर्षा क्यों न करते? सर्वोत्कृष्ट ये देव उसके समक्ष सुषुप्ति अवस्था के अहंकारी चैतन्य प्रज्ञा के रहस्य को खोल गए।

ध्यानस्थ महा के हृदय के द्वार पर होती इस हलचल में जैसे काशी विश्वनाथ स्निग्ध स्मित लिए, स्वयं उसे तमोगुण के गूढ़ ज्ञान से दीक्षित कर रहे थे। इसी अतिसूक्ष्म काशी को तो वह जन्म-जन्मांतर से खोज रहा था एवं आज उसके दर्शन होने पर उसे प्रिय रूपी आनंद हो रहा था। इस अतिप्रिय काशी की आड़ी-तिरछी-सँकरी गलियों में विचरते हुए उसे मोद रूपी सुख प्राप्त हो रहा था। पंचतीर्थ घाटों पर इस सुख को भोगता जब वह स्नान कर रहा था, तो प्रमोदमय हो वह आनंदातिरेक में नाच उठा था।

काशी विश्वनाथ मंदिर के प्रांगण से चलकर जैसे ही वह गर्भगृह में प्रविष्ट हुआ तो उसे प्रतीत हुआ जैसे प्रिय, मोद एवं प्रमोद तीनों आनंदों से संयुक्त आनंदमय एक महीन परदे के पीछे स्थित ज्योतिर्लिंग अस्पष्ट दिव्य तेज से चमचमा रहा है। आनंदातिरेक का यह परदा उठाकर अभी वह ज्योतिर्लिंग के दर्शन करने जा ही रहा था कि ध्यान टूट गया। एक असीम आनंद का आवेग वह सह नहीं पाया था एवं यही कारण था कि वह भावातिरेक के इस चरम पर पहुँच कर भी ज्योतिर्लिंग के दर्शन से वंचित रह गया था।

'म'कार रूपी अतिसूक्ष्म काशी, कारण शरीर का भान होने पर जैसे ही उसने शंकर की पिंडी पर दृष्टि डाली, तो दृष्टि के समक्ष एक दिव्य प्रकाश के अतिरिक्त और कुछ न था। न तो इस घड़ी दृष्टि के समक्ष कबीर की मुखाकृति थी, न ही तुलसीदासजी की। आनंदातिरेक में वह गुरु का स्मरण करता उन्हें दंडवत् प्रणाम करने जैसे ही धरा पर लेटा, तो इस घड़ी दृष्टि के समक्ष गुरु के दर्शन भी दुर्लभ थे। यदि कुछ था तो एकमात्र प्रकाश, उसके अतिरिक्त कुछ भी नहीं। क्षण भर को प्रतीत हुआ कि शंकर की पिंडी, समुद्र का जल, कबीर, तुलसी, गुरु एवं स्वयं वह भी मात्र प्रकाश है। शायद यही अद्वैत है एवं जब सब अद्वैत है, तो कौन किसका गुरु? शायद इसलिए वह सदा यह सुनता आया था-

'पर याद रख मैं तेरा गुरु नहीं।'

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अध्याय-६५

आज महाश्मशान मणिकर्णिका पर नित्यशान्तिपरायण, सर्वयोनि, देवप्रियो देवनाथ काशी विश्वनाथ परमार्थ तत्त्व का उपदेश देने वाले ज्ञानी गुरु दत्तात्रेय के रूप में सुवर्ण के समान कांति उठाते अमर अनाहत नाद निनादित कर रहे हैं-

''मैं शिव ही स्वयं की मूर्ति में विराजमान हूँ अर्थात् मेरी प्रत्येक मूर्ति ही आत्मा की साक्षात् बोधक है।''

''मैं शिव ही नाद से बिंदु को जन्म देता हूँ एवं बिंदु से सदाशिव देव को, सदाशिव से महेश्वर प्रकट होते हैं एवं महेश्वर से शुद्ध विद्या जन्म लेती है और यही वाणी की ईश्वरी है। यही वागीश्वरी नामक शक्ति, अक्षरों के रूप में विस्तार प्राप्त करती मातृका कहलाती है।''

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

आँखों के सामने फैला प्रकाश अब लुप्त हो चला था एवं महा ने बुद्धेश के साथ रामेश्वरम् से मल्लिकार्जुन की ओर पग बढ़ा दिए थे। स्वयं को परम दिव्यता का अंश जानकर आनंद के इस अतिरेक में उसे जैसे स्वयं यह ज्ञात हो गया था कि शिव ही स्वयं की मूर्ति में विराजमान हैं अर्थात् उनकी प्रत्येक मूर्ति ही आत्मा की साक्षात् बोधक है।

महा के लिए सब कुछ पूर्ववत् था तथापि संपूर्ण भी। किसी अद्भुत का चमत्कार जैसे स्वत: घट गया था एवं महा को स्वत: यह स्पष्ट होने लगा था-

शिव के आत्म-रूप इस प्रणव मंत्र 'ॐ' से, जिसके जाप में वह लीन है, ही पंचाक्षर मंत्र 'नमः शिवाय' उत्पन्न हुआ है। 'अ'कार से 'न'कार, 'उ'कार से 'म'कार, 'म'कार से 'शि', बिंदु से 'वा' एवं नाद से 'य'कार उत्पन्न हुआ है।

यात्रा में पग बढ़ाते हुए 'नमः शिवाय' की इस उत्पत्ति का स्वत: ज्ञान होते ही आज पुन: हिमाच्छादित हिमालय में स्थित गोमुख के निकट की वह कंदरा दृष्टि के समक्ष घूमने लगी थी, जहाँ बाहर भीषण हिमपात हो रहा था एवं कंदरा के भीतर वह प्रज्वलित अग्नि के समक्ष बैठा था एवं सामने नंग-धड़ंग गुरु खड़े थे, जिनके कंठ पर लिपटा हुआ नाग उनकी शोभा बढ़ा रहा था। गुरु सृष्टि के सृजन के रहस्य को उघाड़ते स्वर उठा रहे थे-

''शिव ही नाद से बिंदु को जन्म देते हैं एवं बिंदु से सदाशिव देव को। सदाशिव से महेश्वर प्रकट होते हैं एवं महेश्वर से शुद्ध विद्या जन्म लेती है और यही वाणी की ईश्वरी है। यही वागीश्वरी नामक शक्ति, अक्षरों के रूप में विस्तार प्राप्त करती मातृका कहलाती है।''

बिंदु एवं नाद का साक्षात्कार भले ही न हुआ था, परंतु महा को इतना अवश्य ज्ञात हो चला था कि द्वादश ज्योतिर्लिंग की यात्रा, चार धाम की यात्रा, काशी की पंचक्रोशी यात्रा या फिर पंचतीर्थ यात्रा, वास्तव में संसारियों के लिए भले ही शक्ति प्राप्त करने की यात्रा हो, परंतु साधक के लिए तो यह स्वयं के अंतर की यात्रा है। आज उसे प्रतीत हो रहा था कि वह माँ यशोदा की अँगुली थामे आदिकेशवादित्य, बिंदुमाधव एवं समस्त देवों के दर्शन करता मणिकर्णिका घाट पर स्नान कर स्वयं के भीतर की पंचक्रोशी यात्रा को पूर्ण कर चला है, जहाँ उसे सहज ही अन्नमयकोश, प्राणमयकोश, मनोमयकोश,

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

विज्ञानमयकोश एवं आनंदमयकोश ज्ञात हो चले हैं।

'म'कार रूपी कारणमय शरीर से परिचित होते महा की दृष्टि के समक्ष मत्स्योदरी तालाब स्थित त्रिलोचन महादेव के मंदिर में स्थित माँ काली की मूर्ति का ध्यान आ गया था एवं साथ ही उन महात्मा का मुखमंडल भी दृष्टि के समक्ष घूम गया था जिन्होंने उसे माँ काली की महिमा, माँ गंगा के स्वरूपों एवं भस्म त्रिपुंड की महिमा से अवगत कराया था। माँ कालिका की मूर्ति दृष्टि के समक्ष घूम रही थी एवं अब उसे ज्ञात होने लगा था कि क्यों कालों के काल, महाकाल शिव भी शव का रूप धारण कर माँ कालिका के चरणतल में निपतित रहते हैं? शिवपूजा में लीन हो प्राप्त शिवज्ञान ने ही जैसे इस प्रश्न का उत्तर उसे सहज ही दे दिया था-

''शिव का प्रथम परिस्पंद ही शिवतत्त्व है एवं इसी से सृष्टि के सृजन का मार्ग प्रशस्त होता है। शिव स्वयं की इच्छा से ही पराशक्ति को शिवतत्त्व से एक करते हैं। इसके पश्चात् यह शक्ति, पराशक्ति, चेतनाशक्ति, आनंदशक्ति, इच्छाशक्ति, ज्ञानशक्ति, क्रियाशक्ति आदि के माध्यम से स्वयं सृष्टि के सृजन एवं संहार की लीला में लीन हो जाती है। जहाँ एक ओर यह शक्ति स्वयं के भाव में विभोर क्रीड़ासुक्त हो अनंत जगत् की सृष्टि करती है वहीं दूसरी ओर समस्त रूपों का अवसान उन्हीं में होने से माँ कालिका, कृष्णवर्णा हो उठती हैं। शिव अब स्वयं शव का रूप धारण कर इस महाशक्ति के चरणतल में निपतित रहते, सृष्टि एवं संहार की अपूर्व लीला को देखकर विमुग्ध होते रहते हैं।''

बाह्य रूप में भले ही महा अपने पग मल्लिकार्जुन की ओर बढ़ा रहा था, परंतु अंतर में वह काशी विश्वनाथ के मंदिर के गर्भगृह में खड़ा ज्योतिर्लिंग के दर्शन की ओर पग बढ़ा रहा था।

आनंद के इस शिखर पर स्थित महा को अब बुद्धेश जब भी ध्यानस्थ बैठे देखता तो विचित्र घटनाओं से उसका साक्षात्कार होता। जिस घड़ी महा, धरा से एकात्म स्थापित कर स्वयं को धरा मान ध्यानस्थ होता, तो बुद्धेश को महा के शरीर से एक सुगंध उठती प्रतीत होती। जल से संवादी बन जब महा स्वयं को जल मान ध्यान लगाता, तो अमृत तुल्य शीतल सूक्ष्म रस उसकी काया से प्रवाहित होने लगता था। अग्नि को आत्मसात् कर जब महा स्वयं को अग्नि के रूप में ध्यानस्थ करता, तो काया एक अपूर्व दिव्यता से भर उठती थी।

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

किसी घड़ी तो बुद्धेश को यह प्रतीत होता जैसे महा की ध्यानस्थ काया, धरा पर नहीं अपितु धरा से ऊपर वायु में तैर रही है। बुद्धेश को ज्ञात नहीं था परंतु उस घड़ी महा स्वयं को वायु मान ध्यान में लीन होता था एवं वायु स्वयं की सूक्ष्मता से उसकी काया को हल्का कर देती थी। बुद्धेश आँखें मलकर जब देखता, तो महा को पुनः धरा पर स्थित ध्यानस्थ पाता।

मल्लिकार्जुन की ओर इस यात्रा में आज जब महा, व्योम की धारणा कर ध्यानस्थ बैठा था तो अंतर में कोई क्षणिक नाद गूँज उठा एवं मस्तिष्क से उतरता एक दिव्य प्रकाश स्वयं के अंग-प्रत्यंगों से उसका साक्षात्कार कराने लगा। मानो संपूर्ण अन्नमयकोश एवं प्राणमयकोश इसी दिव्य रश्मि से आच्छादित थे, जो मनोमयकोश और विज्ञानमयकोश को पार करती उसे आनंदमयकोश के द्वार पर ले आई थी। हृदय भी एक असीम दिव्यता से चमचमा उठा था। इस घड़ी उसे प्रतीत हो रहा था जैसे मस्तिष्क से झरते इस दिव्य प्रकाश के द्वारा ही समस्त कोश दिव्यता को उपलब्ध हो रहे हैं, परंतु अभी उसे यह ज्ञात न था कि यह ज्योतिर्मय दिव्यता तो हृदय गुहा के एकांत में स्थित आत्मा रूपी ज्योतिर्लिंग उठा रहा है एवं उसी की दिव्यता से संपूर्ण काया जगमगा रही है।

पुरुष-प्रकृति का द्वैत जैसे अंत को प्राप्त हो रहा था एवं महा 'ॐ' के 'म'कार का साक्षात्कार करता स्वयं के कारण शरीर में विचर रहा था। इस घड़ी भी आत्मा रूपी ज्योतिर्लिंग आनंद के एक महीन परदे से ढँका, उसे स्वयं के दर्शन से वंचित कर रहा था। कारण शरीर रूपी अतिसूक्ष्म काशी प्रकाशित हो रही थी, परंतु उसे प्रकाशित करने वाले आत्मा रूपी ज्योतिर्लिंग की असीम दिव्यता का भान उसे अब भी न था। अब समस्त प्रकाश लुप्त हो गया था एवं ध्यान के टूटते ही महा खाँसने लगा था।

ईश्वर के प्रति यज्ञ में भाग्य कभी द्वादश ज्योतिर्लिंग एवं चार धाम की यात्रा भी करवाएगा, यह बुद्धेश ने स्वप्न में भी न सोचा था। आज मल्लिकार्जुन पहुँचते ही वह भी इस प्रसन्नता में झूम उठा था कि यहाँ के दर्शन के पश्चात् मात्र काशी विश्वनाथ के दर्शन शेष रह जाएँगे। रामेश्वरम् से मल्लिकार्जुन की ओर इस यात्रा में बुद्धेश अब महा की निरंतर बढ़ती खाँसी से चिंतित हो उठा था, अतः यहाँ पहुँचते ही उसने महा से कहा-

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

"चलो, सर्वप्रथम हम किसी वैद्य को बताते हैं, तुम्हारी खाँसी बढ़ती ही जा रही है।"

एक स्निग्ध स्मित मुख पर लाते हुए महा अति रहस्यमय स्वर में बोल उठा-

"जाओ, तुम दर्शन कर आओ एवं मैं भिक्षा ग्रहण कर आता हूँ। तुम्हारे इस दर्शन के पश्चात् हमें शीघ्रातिशीघ्र काशी पहुँचना है, जहाँ तुम्हें मेरे लिए एक अत्यंत ही आवश्यक कार्य का संपादन करना है।"

"कैसा कार्य?", बुद्धेश ने आश्चर्य से पूछा।

"इतनी शीघ्रता क्या है? वहाँ पहुँचने से एक रात्रि पूर्व ही तुम्हें यह ज्ञात हो जाएगा।", कहते हुए महा ने मौन धारण कर लिया।

'ॐ'कार के 'म'कार का ज्ञान होते ही महा यह स्पष्ट रूप से जान गया था कि न मैं स्थूल शरीर हूँ, न सूक्ष्म एवं न ही कारण शरीर भी। तो फिर मैं कौन हूँ? अब तो मानो उत्तर स्वयं इस प्रश्न की राह देख रहा था।

बुद्धेश मंदिर के भीतर ज्योतिर्लिंग के दर्शन हेतु चला गया था एवं भिक्षा ग्रहण करता महा उपर्युक्त प्रश्न पर मनन कर रहा था। इस घड़ी भी उसे स्वयं के इस भविष्य का ज्ञान न था कि भिक्षा ग्रहण करने के पश्चात् शंकर की पिंडी पर नैवेद्य अर्पित करते ही, वह स्वयं के सच्चिदानंद स्वरूप का साक्षात्कार करने वाला था।

भूत हो, भविष्य अथवा वर्तमान, प्रत्येक काल की प्रत्येक अवस्था अर्थात् जागृत, स्वप्न या सुषुप्ति में आत्मा सदैव एकरूप है, अतः सत् है। जागृत, स्वप्न एवं सुषुप्ति का ज्ञाता भी मैं आत्मा हूँ, अतः चित्त भी। आत्मा सदैव ही परमानंद में मग्न, प्रेम एवं आनंद स्वरूप भी है। यही सच्चिदानंद है।

स्नान के पश्चात् जैसे ही महा ने शंकर की पिंडी का पूजन आरंभ किया, तो एकाएक पिंडी एक साथ कई ज्योतिर्मय वलय उठाने लगी एवं उसे ज्ञात हो गया कि क्यों लोग केदारेश्वर पर कड़ा चढ़ाते हैं। अब दृष्टि के समक्ष मल्लिकार्जुन मंदिर के भीतर स्थित ज्योतिर्लिंग आ खड़ा था, जो उमा एवं उमापति शिव, दोनों की ही परम ज्योति फैलाता मानो संपूर्ण ब्रह्मांड को दिव्यता प्रदान कर रहा था।

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

महा को ज्ञात था कि शिव एवं पार्वती से रुष्ट हो पुत्र कार्तिकेय इस पर्वत पर आ विराजे थे एवं उन्हीं को मनाने एवं उनसे मिलने के लिए शिव यहाँ अमावस्या को पधारते, तो माँ भवानी पूर्णिमा को। तत्पश्चात् दोनों ही यहाँ ज्योतिर्लिंग के रूप में स्थित हो गए थे।

एक असीम शक्ति संचारित हो उसे जीवन की परम आरूढ़ता पर विराजित कर रही थी एवं मानो शिव के प्रकाशमय अमर चैतन्य का मर्म जान, वह समझ रहा था कि काशी विश्वनाथ को महाश्मशानाधिपति के रूप में मात्र संहार का देवता समझना उनके साथ ही नहीं अपितु स्वयं के साथ भी अन्याय है। संपूर्ण ब्रह्मांड के रचयिता, वे स्वयं की कला से सृष्टि को सृजित करते उसे स्थिति प्रदान करने के पश्चात् संहार उठाते, स्वयं के वर्तुल को सार्थकता प्रदान करते हैं।

शिव के परिवार पर दृष्टि डालने से ही यह वर्तुल सहज दृष्टिगोचर हो जाता है। सृष्टि एवं प्रलय के संतुलन की परिभाषा उनके परिवार के सदस्यों के वाहनों पर दृष्टि डालने मात्र से ही स्वत: परिभाषित हो जाती है। गणेशजी का वाहन मूषक है, तो कार्तिकेय मयूर पर सवार विचरते हैं एवं नाग शिव की शोभा बढ़ाता है। कौन कहता है कि नाग, मूषक को निगल जाता है एवं मयूर, नाग को स्वयं के आहार के रूप में ग्रहण करता है? यह तो मात्र शिव की ही लीला है कि स्वभाव से विपरीत होने पर भी ये सभी वाहन रूपी जीव एक ही परिवार को संग ले उनके साथ विचरते हैं। एक ओर माँ भवानी, सिंह पर सवार हैं तो उन्हीं के साथ सदैव भ्रमण करते भोलेनाथ, वृषभ की सवारी करते शोभायमान होते हैं। कहाँ सिंह एवं कहाँ नंदी? फिर भी दोनों का शिवशक्ति के समान एकात्म!

विपरीत एवं वैरी स्वभाव होने के पश्चात् भी यों सब जीवों का एक साथ विचरना शिव की इस सृजन लीला को दर्शाता है, तो महाश्मशान में स्थिति संतुलन को साधते शिव इसकी दूसरी अति पर खप्पर को स्वयं का भोज्य पात्र बना उसमें आहार ग्रहण करते हैं। सृजन, संतुलन एवं संहार रूपी त्रिगुण एक-दूसरे में लीन, एक ही परिवार का अंश हैं एवं एक-दूसरे में पूर्णत: बसे होकर भी जब ये दृष्टि के समक्ष स्वयं का एकात्म उघाड़ते हैं, तो उसी घड़ी ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश साक्षात् महागुरु दत्तात्रेय का रूप धर, परमार्थ तत्त्व का उपदेश देते हैं।

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

ध्यान में मल्लिकार्जुन ज्योतिर्लिंग के दर्शन होते ही महा को यह ज्ञात हो चला था कि भव एवं भवानी के बिना इस चराचर जगत् की उत्पत्ति संभव नहीं है एवं गुणों के कारण उत्पन्न होती शरीर भिन्नता से ये शक्तियाँ भी भिन्न प्रतीत होती हैं। शिव की शक्ति 'शैवी', ब्रह्मा की 'ब्रह्माणी' एवं विष्णु की 'वैष्णवी' एवं इसी में नाद एवं बिंदु का रहस्य छिपा हुआ है।

नाद बिंदु का मनन करते ही महा के नेत्र स्वत: बंद हो गए एवं दृष्टि भ्रूमध्य पर जा टिकी थी। इसी घड़ी जैसे महा अपनी अंतरात्मा के सिंहासन पर विराज, हृदय के स्वच्छ मानसरोवर में स्वयं का परम स्वरूप निहारता, आत्म-गौरव की आत्यंतिक ऊँचाई पर मदमस्त हो झूम उठा। मस्तिष्क से झरता प्रकाश जैसे अंतर के सारे रहस्यों को प्रकाशित करता उघाड़ गया था एवं 'म'कार रूपी अतिसूक्ष्म काशी, कारण शरीर का महीन परदा भी अब उठ चला था। अब स्वयं की काया रूपी काशी में काशी विश्वनाथ के मंदिर में स्थित होता वह दिव्य प्रकाश उठाते वलययुक्त आत्मा रूपी ज्योतिर्लिंग के साक्षात् दर्शन कर रहा था।

वर्ण भिन्नता के कारण प्रत्येक वलय भिन्न वर्ण का प्रकाश उठा रहा था एवं इन्हीं ज्योतिर्मय वलयों के मध्य बिंदु रूपी ज्योतिर्लिंग के दर्शन अब स्पष्ट हो रहे थे। प्रत्येक वलय अब स्वयं का परिचय देता सृष्टि के सृजन के रहस्य को उघाड़ रहा था। इस हृदयाकाश में ब्रह्मगान उठाता प्रथम वलय ब्रह्मा के दर्शन करा रहा था एवं महा को इस घड़ी यह प्रतीत हो रहा था जैसे संपूर्ण ब्रह्मांड ही इस हृदयाकाश में वास करता है। द्वितीय वलय सूक्ष्म प्रकृति को दर्शाता, स्वयं के काया लिंग से परिचय करवा रहा था, जहाँ महा को ज्ञात हो गया था कि जो ब्रह्मांड है, वही पिंड है। तृतीय वलय मन एवं बुद्धि की दिव्य रश्मियों को फैलाता सूक्ष्म प्राण की ओर इंगित कर रहा था, तो चतुर्थ वलय स्वयं की गहरी हरित नीलिमा आभा से युक्त श्वेत वर्ण रश्मियों को फैलाता, अतिसूक्ष्म अहंकार को परिभाषित कर रहा था। अंत में पंचम वलय मनमोहक वर्णयुक्त दिव्य रश्मियों को फैलाता, चित्त एवं अंत:करण को दर्शा रहा था।

आनंद के इस अतिरेक में स्वयं के आत्मा रूपी ज्योतिर्लिंग के दर्शन को पा, महा भाव-विभोर हो सिर से नख तक काँप रहा था। इस घड़ी उसे ज्ञात हो रहा था कि सत्, तम एवं रज गुणों के प्रभाव से प्रत्येक वलय में वर्ण परिवर्तन

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हो रहे थे। अब उसे कोई संदेह न था कि मात्र इन वलयों के मध्य स्थित बिंदु रूपी ज्योतिर्मय ज्योतिर्लिंग ही दिव्यता उठाता संपूर्ण काया को दिव्यता प्रदान करता है।

काल के नियम से बँधा मायातत्त्व ईश्वरत्व के इस चरम पर भी मानव रूपी जीव का पीछा नहीं छोड़ता। हर्षातिरेक में महा को केदारनाथ में देखा स्वप्न याद आ गया। वह स्पष्ट देख रहा था कि तृतीय वलय बुद्धि के अधिष्ठाता ब्रह्मा का है एवं पंचम वलय चित्त एवं अंत:करण के अधिष्ठाता विष्णु का है। ब्रह्मा एवं विष्णु दोनों ही अपनी श्रेष्ठता जताने के लिए एक-दूसरे से विवाद करते प्रतिस्पर्धा में मग्न हैं एवं दोनों के मध्य चतुर्थ वलय पर अहंकार के अधिष्ठाता रुद्र विराजमान हो दोनों में अहंकार जगा रहे थे।

ब्रह्मा एवं विष्णु स्वयं की श्रेष्ठता सिद्ध करने में इतने लीन थे कि वे भी नहीं जानते कि उनकी दिव्यता का स्त्रोत, मात्र आत्मा रूपी ज्योतिर्लिंग है। इस बिंदु से उठती दिव्यता ही दोनों को देदीप्यमान कर रही है।

इस विवाद को देखते ही महा के भीतर यह देखने की लालसा जाग उठी कि अभी घड़ी भर में ही बिंदु रूपी आत्म-ज्योतिर्लिंग दोनों के मध्य स्थित हो स्वयं को दिव्यता प्रदान कर धीरे-धीरे बढ़ता इतना बढ़ जाएगा कि वह आकाश को भी फोड़ पार चला जाएगा एवं दोनों इसका ओर-छोर ज्ञात न कर पाएँगे।

घड़ी भर की इस लालसा ने जैसे समस्त दिव्यता को हर लिया एवं महा पुनः आत्मदर्शन से वंचित रह गया। अब ध्यान भी टूट गया था एवं ग्लानि से भरता महा यह सोचते ही काँप उठा था कि इस विराट् ज्योतिर्लिंग के दर्शन की लालसा कहीं उसका अहंकार तो नहीं था? यह विचार उठते ही जैसे सिद्धि से ऊपर हृदयाकाश में संपूर्ण ब्रह्मांड को समाहित कर विचरता महा, औंधे मुँह धरती पर आ गिरा था एवं काँपती काया लिए वह ऐसे अश्रुधार बहा रहा था, जैसे उसने जीवन की सर्वोच्च अमूल्य निधि को खो दिया था। साथ ही महा यह भी सोच रहा था कि यदि यह अहंकार था, तो गुरुवचन अवश्य ही सिद्ध होंगे एवं अब तो वह जन्म-जन्मांतर यह सुनने के लिए भी तरस जाएगा एवं फिर भी न सुन पाएगा-

'पर याद रख मैं तेरा गुरु नहीं।'

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अध्याय-६६

आज महाश्मशान मणिकर्णिका पर नीलग्रीव, वीर्यवान वीर्यकोविद, गंगाप्लवोदक काशी विश्वनाथ मुक्ति देने वाली अमृत स्वरूपा गंगा के प्रवाहरूप जल को मस्तक पर धारण करते अमर अनाहत नाद निनादित कर रहे हैं-

"मैं शिव ही शुद्ध विद्यास्वरूपा इच्छा, ज्ञान एवं क्रियारूप, तीनों शक्तियों वाली गंगा के गर्भ में मेरे तेज स्वरूप अग्नि को स्थापित करता हूँ। वह मेरे ही वीर्य से सुरक्षित है।"

"मैं शिव ही गंगा को स्वयं के शीश पर धारण करता हूँ एवं काशी में यह गंगा उत्तरवाहिनी है। इस रहस्य के उघड़ते ही जीव मुझ शिव से एकाकार के मार्ग पर प्रशस्त हो जाता है।"

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

परम की दिव्यता रूपी आत्मा के दर्शन से वंचित महा मानो अब स्वयं के जीवन की सर्वोच्च अमूल्य निधि को खो चला था। एक धुंध मन-मस्तिष्क पर छा गई थी एवं मर्त्य दृष्टि का विकार, साकार हो उसे मर्त्यता की ओर धकेल रहा था। मल्लिकार्जुन से अयोध्या तक की इस यात्रा में बुद्धेश स्पष्ट देख रहा था कि मृत्यु की क्षुधा महा की काया का भक्षण करने के लिए चीत्कार करने लगी थी। महा का स्वास्थ्य अब दिन-प्रतिदिन और गिरता जा रहा था एवं प्रत्येक उठती खाँसी का अंत रक्त की क़ै के साथ हो रहा था। असहाय एवं लाचार बुद्धेश, महा के लिए कुछ भी नहीं कर पा रहा था।

यात्रा में बढ़ते क़दमों के साथ अब जैसे महा का ध्यान में बैठना दिन-प्रतिदिन कम होता जा रहा था। क्षीण होती शक्ति अशुभ का खेल खेलती हुई उन्हें अयोध्या की ओर धकेल रही थी। हताश होता बुद्धेश यह देखकर और व्याकुल हो उठता था कि जिस शिवयज्ञ में महा ने स्वयं के संपूर्ण जीवन की आहुति दे डाली थी, वही शिव अब स्वयं महा की काया को लीला स्थली बना उसके संग अशुभ का खेल खेलने में व्यस्त हो गए हैं। परंतु महा की भाँति वह भी नहीं जानता था कि काया रूपी शिव की यह लीला स्थली भी शिव के अतिरिक्त और कुछ नहीं।

महा की इस गिरती हालत को देखता बुद्धेश अब अयोध्या पहुँचने की शीघ्रता में कभी किसी घोड़ागाड़ी वाले से याचना करता तो कभी बैलगाड़ी वाले से। स्वयं के गिरते स्वास्थ्य में भी महा के मुखमंडल पर पूर्ववत् सहजता थी। दृष्टि में न कोई भ्रम था एवं न ही कोई कामना। उसे देख बुद्धेश को मात्र इतना प्रतीत हो रहा था कि कल तक दीपक में प्रज्वलित देदीप्यमान लौ अब शनैः-शनैः मंद हो रही है, परंतु फिर भी उसने प्रकाश का साथ नहीं छोड़ा है।

न जाने कितने दिवसों के पश्चात् आज वे अयोध्या पहुँचे थे। अब महा के भीतर न तो 'ॐ'कार गुंजायमान था और न ही 'राम' गुंजारित हो रहे थे। साथ थी तो मात्र जीर्ण होती काया और बढ़ती खाँसी।

सरयू के दक्षिण तट पर बसी यह पुरी, भगवान् श्रीराम की अवतार भूमि

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

का पद पा महिमान्वित है। बुद्धेश के न चाहने पर भी महा ने उसे सभी दर्शनीय स्थलों के दर्शन के लिए भेज दिया था एवं स्वयं सरयू के किनारे बालू पर लेटा खाँस रहा था। मन में शून्यता के अतिरिक्त और कुछ नहीं था एवं इस शून्यता के मध्य यदि किसी घड़ी कोई लालसा जागती, तो मात्र स्वयं की जन्मस्थली फाफामऊ क़स्बे के दर्शन एवं काशी में पुन: पग धरने की। परंतु ये लालसाएँ महा को अब व्यथित न करती थीं।

रक्त की उलटी करते महा को लग रहा था कि भवमुक्ति तो दूर अब वह पुन: काशी भी लौट नहीं पाएगा। संध्या अब धीरे-धीरे रात्रि में परिवर्तित होती अंधकार के साम्राज्य को फैला रही थी एवं इस निर्जन स्थल में महा अब भी खाँस रहा था। इस घड़ी उसके अतिरिक्त वहाँ कोई नहीं था।

निष्फल एवं स्वयं से ही पराजित जैसे ही वह पुन: उलटी करने को उठा, तो सर्वत्र चंदन की सुगंध व्याप्त हो गई थी। एक काला नाग रेंगता हुआ उसके निकट पहुँचकर कुंडली मार स्वयं का फन फैलाए डोलने लगा था। गुरु के कहीं निकट होने का आभास पाते ही जैसे किसी शक्ति का संचार हुआ हो और महा उठ बैठा। खाँसी जैसे इस समय लुप्त हो गई थी एवं अब इस घड़ी नंग-धड़ंग गुरु उसके समक्ष खड़े मुखमंडल पर स्निग्ध स्मित फैला रहे थे। गुरु के दर्शन से ही भाव-विभोर महा के नेत्रों से अश्रुधार बह चली थी एवं अब गुरु स्वयं का स्नेहसिक्त कर महा के केशों में फेरते बोल उठे थे-

"वह तेरा अहंकार नहीं था अपितु शिव की ही लीला थी। मायातत्त्व से घिर, आत्मदर्शन करने के पश्चात् भी तू उससे वंचित रह गया। मिट्टी से निर्मित काया मात्र शिव रूपी पिंडी हो शव में परिवर्तित हो जाती है, यदि उसे स्वयं की आद्यशक्ति का ज्ञान नहीं होता। इसी आद्यशक्ति की संयुक्तता ही पिंडी को शव से शिव में परिवर्तित कर देती है।"

"काशी में बहती उत्तरवाहिनी गंगा उस आद्यशक्ति का ही रूप है, जो तेरी काया में भी कुंडलिनी के रूप में प्रवाहित हो रही है। आज तुझे भी ज्ञात हो जाएगा कि तेरी काया में भी ओंकाररूपिणी, प्रणवरूपा, ब्रह्मा, विष्णु

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

शिवरूपिणी गंगा प्रवहमान है, जिसे उदिताम्बरमार्गा कहा गया है क्योंकि यह ऊर्ध्व लोक में जाने के लिए प्रकाशित मार्ग के समान है। यह धर्माधर्मगुणच्छेत्री भी है क्योंकि यह धर्माधर्म के बंधन को काटने वाली ब्रह्मविद्या स्वरूपा है एवं यही परब्रह्मप्रकाशिनी भी है, जो परब्रह्म को सदैव ही प्रकाशित करती है।''

इतना कहकर अब गुरु ने महा के भ्रूमध्य पर स्वयं का कर अंगुष्ठ रख उसे बलपूर्वक दबाया। जैसे कोई शक्तिपात हुआ हो एवं महा पुनः ध्यानस्थ हो चला था। अब वह देख रहा था कि मस्तिष्क से झरते प्रकाश में संपूर्ण आंतरिक काया देदीप्यमान हो चली थी। मेरु रज्जु के भीतर स्थित सुषुम्ना नाड़ी में एक तीव्र तेज का संचार हुआ एवं गंगा के प्रवाह के समान, मूलाधार से एक प्रकाश प्रवाह ऊर्ध्व मार्ग पर प्रवाहित होने लगा था। इस घड़ी उसे ऐसा लग रहा था जैसे गंगा उत्तरवाहिनी हो गंगासागर से गोमुख की ओर प्रवाहित होती, हर-जटा को पुनः उपलब्ध होने के लिए लालायित हो रही है। आज महा को ज्ञात हो रहा था कि गंगा की मुक्ति भी गंगासागर में नहीं अपितु हर-जटा में ही संभव है। यह शिव की दीवानी तो बेचारी शिव की लीला में ही शिव से विलग हो गंगासागर की ओर बहती है। गंगासागर तो गंगा की तपस्या स्थली मात्र है, जहाँ तपस्या में लीन वह आदित्य द्वारा फैलाई प्रचंड उष्णता से दग्ध हो स्वयं को तिरोहित करती वाष्प में परिवर्तित हो उठती है, ताकि पुनः मेघों का रूप धरकर कैलास स्थित हर की जटाओं में बरस उनमें समा सके।

आज जैसे महा का उस गंगा से साक्षात्कार हो रहा था जिसके स्वरूपों की महिमा उसने बाल्यावस्था में दशाश्वमेध घाट पर भोर अँधेरे महात्मा के मुखश्री से सुनी थी। कुंडलिनी रूपी इस प्रकाश का तीव्र गमन उसे दर्शा रहा था कि यही प्रकाश रूपी कुंडलिनी देवलोक से अवतरित वह प्राणदा है, जो प्राणों का दान करती है। समस्त भूलोक वासियों को जीवनदान देती यह प्राणेशी, कभी किसी को पराया नहीं मानती इसलिए अपरा कहलाती है। मस्तिष्क से झरते प्रकाश में यह कुंडलिनी स्वर्ण के सदृश चमकने वाली कंचनाकाक्षी प्रतीत हो रही थी। अब महा को प्रतीत हो रहा था जैसे यह कुंडलिनी ही तो कामधेनु के रूप में सभी की मनोवांछा को पूर्ण करती है। महात्मा के शब्द-दर-शब्द का

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

रहस्य उघड़ता उसे इस कुंडलिनी के समस्त स्वरूपों से परिचित करवा यह ज्ञान दे रहा था कि यही तो समस्त भ्रमात्मक ज्ञान का निवारण करने वाली भ्रान्तिज्ञानप्रशमनी है एवं इसमें एक बार डुबकी लगाने पर अज्ञान का तिमिर लुप्त हो जाता है, इसलिए तो यह तिमिरचन्द्रिका कहलाती है।

महा इस घड़ी पुनः आनंद के अतिरेक में झूमता इस ऊर्ध्व मार्ग पर तीव्र गति से बढ़ती कुंडलिनी का साक्षात्कार कर रहा था। यह साक्षात्कार उसे भान दे रहा था कि जैसे यह शंकरप्रिया शोक, मोह, जरा, मृत्यु, क्षुधा एवं पिपासा रूपी समस्त ऊर्मियों को हर, ऊर्मिला कहलाती है, तो यही तुर्या जाग्रत्, स्वप्न एवं सुषुप्ति से ऊपर तारिणी एवं मोक्षदायिनी बन, जीवों को भवसागर से पार लगाती है। कई संन्यासी तो इस दीक्षावती से दीक्षा लेकर जीवों को उद्धार के मार्ग पर प्रशस्त करते हैं। आज महा स्वयं को भाग्यवान् मान रहा था क्योंकि भाग्यवानों को प्रत्यक्ष दर्शन देने वाली यह भाग्यवद्दृष्टिगोचरी, उसकी आंतरिक काया रूपी काशी में साक्षात् प्रवाहित होती उसे दर्शन दे रही थी।

अब महा को प्रतीत हो रहा था कि जैसे यह प्रकाशमय प्रवाह भ्रूमध्य पर आकर शांत हो गया हो। ऐसा दृष्टिगोचर होते ही महा का ध्यान टूट गया था। सामने सरयू का जल प्रवाहित हो रहा था, इसके अतिरिक्त कुछ भी न था।

गुरु शायद काशी में प्रवहमान इस उत्तरवाहिनी गंगा से साक्षात्कार करा इसके रहस्य को उसके समक्ष उघाड़ने ही आए थे।

इस रुग्ण अवस्था में भी यदि स्वयं गुरु की कृपादृष्टि इसी तरह उस पर बनी रहे, तो उसे इसके अतिरिक्त जीवन में और क्या चाहिए? यह सोचता महा अब गुरु का स्मरण करता पुनः भाव-विभोर हो चला था। नेत्रों से अश्रुबिंदु छलक रहे थे एवं स्वयं के भ्रूमध्य पर गुरु के कर अंगुष्ठ के स्पर्श का मानसिक अनुभव करता महा अब यह सोच रहा था कि मात्र इस स्पर्श से वह उस शक्ति को पा गया है, जिसके साथ जीते हुए अब वह इसके लिए भी तैयार है कि जन्मों-जन्म उसके कर्णपटल पर ये शब्द भी न गूँजे-

'पर याद रख मैं तेरा गुरु नहीं।'

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

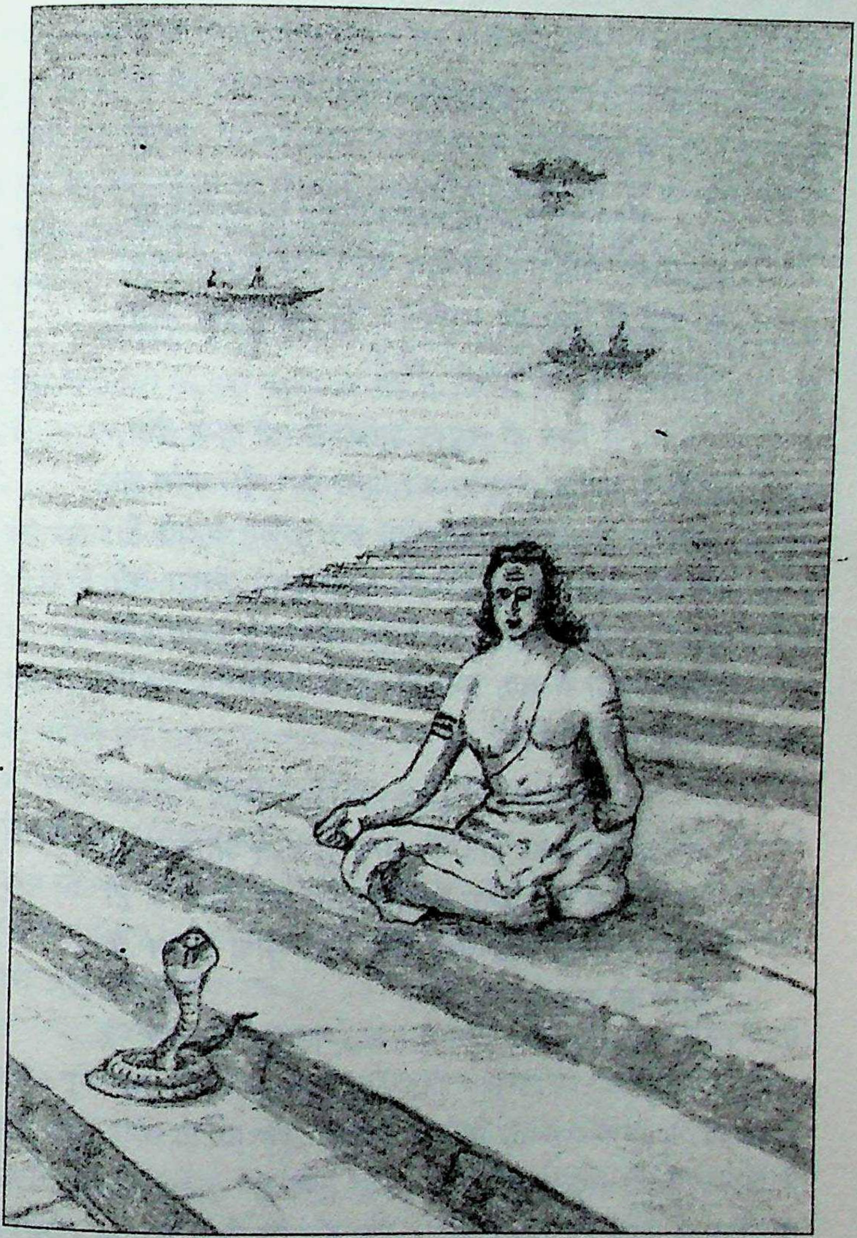

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अध्याय-६७

आज महाश्मशान मणिकर्णिका पर वाचस्पति, स्पष्टाक्षर, सर्वलोकप्रजापति काशी विश्वनाथ माया के परदे में छिपे हुए जगत्‌रूप तंतु को बढ़ाते अमर अनाहत नाद निनादित कर रहे हैं-

''मैं शिव ही समस्त शक्तियों को जन्म देता, वर्णों के रूप में मातृका को जन्म देता हूँ। अनंत के समावेश से यह मातृका माया को सृजित करती है, जिसके द्वारा काल, नियति, कला एवं विद्या की उत्पत्ति होती है। कला से ही राहु तथा पुरुष प्रकट होते हैं एवं माया से सत्, रज, तम गुणों से निर्मित प्रकृति का जन्म होता है।''

''इन्हीं गुणों में क्षोभ होने पर 'गुणेश' नामक तीन मूर्तियाँ प्रकट होती हैं, साथ ही महत् आदि तत्त्वों का क्रम से जन्म होता है। मुझ शिव की आज्ञा से ही उनसे असंख्य अंड-पिंड जन्म लेते सृष्टि सृजन के कार्य को प्रशस्त करते हैं।''

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

शिव ही जैसे स्वरचित पंचमहाभूतों के खेल में मग्न हो महा को पंचमहाभूतों के निकट लाए थे एवं यह उन्हीं की अनुकंपा थी साथ ही साथ गुरुप्रसाद भी कि महा 'ॐ'कार स्वरूप परब्रह्म शिव की पंचमूर्तियों के दर्शन घड़ी भर ही सही, पर कर पाया था। यह आत्म साक्षात्कार तो जैसे साक्षात् गुरु का उस पर अनुग्रह था एवं अब स्वयं की इस रुग्णता को भी वह शिव एवं गुरु का प्रसाद मानकर ही उसे ग्रहण करता, फाफामऊ क़स्बे की ओर पग बढ़ा रहा था।

अयोध्या में गुरु स्वयं आकर उसे उस शक्ति से परिचित करा गए थे जिसके आसरे पर महा काशी की ओर प्रयाण कर रहा था, अन्यथा ऐसी स्थिति में एक पग बढ़ाना भी एक उम्र बिताने जैसा दुरूह था।

ज्योतिर्मान शिव, काल के पार लुप्त हो गए थे एवं खाँसता महा, ख़ून की उलटियाँ करता बुद्धेश के साथ जैसे-तैसे फाफामऊ तक पहुँचा था। इस घड़ी दोनों ही फाफामऊ क़स्बे के उस श्मशान में खड़े थे, जहाँ महा ने अपने जीवन की प्रथम साँसें लेते हुए पंचमहाभूतों का साक्षात् आश्रय भी पाया था एवं परिचय भी। अग्नि से उसके प्रथम संवाद का मौन साक्षी वह दाग़, आज भी महा के दाहिने पग अंगुष्ठ की शोभा बढ़ा रहा था। जैसे धरा के समस्त रजकण महा के कर्णपटल पर गुंजायमान होते उसे उस स्थान पर ले आए थे, जहाँ माँ यशोदा ने उसे उठाकर प्रथम बार आलिंगन में बद्ध किया था। उस स्थान की धूलि को उठा महा ने अपने ललाट पर मल लिया था। दृष्टि अब उस पथ पर थी जहाँ से चलकर राघव एवं यशोदा उसे साथ ले, नाव तक पहुँचे थे एवं उन्होंने काशी की ओर प्रयाण किया था।

'ॐ'कार रूपी ब्रह्मांड की यात्रा से जैसे सूर्य के लघु सौर परिवार ने उसे खींच पुनः उस धरा पर ला बैठाया था, जहाँ से जीवन की यात्रा का आरंभ हुआ था। यही आरंभ तो उसे काशी ले गया था जहाँ इस्माइल चाचा की शहनाई से उठते सुरों पर सवार, वह कभी काशी की आड़ी-तिरछी-सँकरी गलियों में विचरता था, तो कभी हरिश्चंद्र घाट पर चिताभस्म को स्वयं के शरीर पर मलकर, गंगा-स्नान के लिए वह गंगा में छलाँग लगा देता था।

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

संध्या की लालिमा छाने लगी थी, परंतु सर्वत्र कोहरा आच्छादित होने के कारण मात्र जलती चिता दृष्टिगोचर हो रही थी। चिताग्नि को तकता महा अब जैसे वर्तमान को छोड़ता, भूतकाल के द्वार खटखटाने लगा था। माँ यशोदा के साथ एकादशी व्रत का रात्रि जागरण एवं आदिकेशव के मंदिर में जाना, अब उसकी दृष्टि के समक्ष घूम रहे थे।

इस घड़ी जैसे वह कोहरे से आच्छादित गंगा पर इस्माइल चाचा के साथ नाव पर सवार राजा दिवोदास की कथा सुन रहा था, तो अगली ही घड़ी वह मदनपुरा में जुलाहे लतीफ़ को बनारसी साड़ी बुनता देख रहा था। अब वह इस्माइल चाचा के साथ शिवरात्रि में श्मशान विनायक मंदिर के पास खड़ा श्मशान में स्थित अघोरी को देख रहा था, तो अब माँ यशोदा का हाथ थाम नाटी इमली पर रामलीला में भरत-मिलाप देख रहा था।

अब स्वप्न में कबीर से साक्षात्कार, भाव में तुलसीदासजी के दर्शन, भूतू चाचा के मुख से सुनी शंकराचार्य की कथा, महात्मा के मुख से सुनी भस्म त्रिपुंड एवं माँ कालिका की महिमा, पंचगंगा घाट पर मिले बौद्ध भिक्षु, सभी तो चित्र-दर-चित्र उसकी दृष्टि के समक्ष घूम रहे थे। आज मानो महा, चिताग्नि से उठते प्रकाश में स्वयं के संपूर्ण अतीत को एक साथ ऐसे देख लेना चाहता था जैसे फिर कभी यह अवसर उसके जीवन में नहीं आने वाला था।

बुढ़वा मंगल के मेले एवं उस गणिका को, जिसने उससे स्वयं का गुरु बनने की प्रार्थना की थी, याद करता महा धरा पर लेट गया था एवं खाँसी पुनः शुरू हो गई थी। खाँसते-खाँसते भी वह कबीर चौरा एवं उस अखाड़े को याद कर रहा था, जहाँ उसे केसरी सिंह ने एक ही दाँव में चित कर दिया था। अब महा को पुनः रक्त की क़ै हुई। बुद्धेश ने उसे थोड़ा सा जल पिलाकर लेटा दिया एवं उसके केशों में हाथ फेरते हुए वह स्वयं भी उसके निकट लेट गया था।

इस घड़ी महा की दृष्टि के समक्ष वह भीषण रात्रि आ खड़ी थी, जब घनघोर वर्षा में उसे अपने गुरु के प्रथम दर्शन हुए थे एवं उसी रात्रि माँ ने अंतिम साँस ली थी, जब वह उनकी गोद में लेटकर ''ॐ नमः शिवाय'' का जाप करता निद्रामग्न हो गया था।

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

''लो आ गई एक और अर्थी'', जैसे भूतू चाचा का यह स्वर महा के कर्णपटल पर अभी गूँजा था एवं स्वर गूँजने के साथ ही ठगी प्रथा एवं उनके द्वारा की गई बालहत्या, अब महा की दृष्टि के समक्ष घूम रहे थे।

स्मृतियों के इतने विस्तार में विचरण के पश्चात् भी महा अब भी उनसे बाहर नहीं आ पा रहा था एवं इस घड़ी स्वयं की स्मृति में विचरते हुए अर्द्धरात्रि में महाश्मशान मणिकर्णिका की सीढ़ियाँ चढ़, लकड़ी के ढेर में से जैसे ही उसने एक लकड़ी को हटाया कि फन फैलाए नाग की फुफकार से पुनः वह स्मृतिलोप को प्राप्त होता, भूतकाल का परदा फाड़ वर्तमान में आ खड़ा था।

अब वह देख रहा था कि उसे कंबल ओढ़ाने के पश्चात् उसकी सेवा करता बुद्धेश भी कंबल ओढ़ उसके निकट ही निद्रामग्न हो चला था। कितना निश्छल एवं निर्मल है यह! ऐसा मित्र कई जन्मों के पुण्यकर्म के पश्चात् ही मिलता है। कब यह मेरा आत्मीय बन स्वयं की छाप को मेरे हृदय पर अंकित कर गया? यह मुझे भी ज्ञात न हुआ, सोचता महा एक बालक की तरह सोए बुद्धेश के केशों पर हाथ फेरने लगा। इसके इस निर्मल प्रेमभाव के तले दबा मैं, इस निर्लोभी को क्या भेंट कर सकता हूँ? सोचता महा पुनः उठ बैठा था, जैसे आज वह बुद्धेश के सोने की ही प्रतीक्षा कर रहा था।

गुरु का स्मरण कर महा ने स्वयं के दाहिने कर अंगुष्ठ को बुद्धेश के भ्रूमध्य पर रख बलपूर्वक ऐसे दबाव डाला, जैसे वह स्वयं की शक्ति का हस्तांतरण बुद्धेश को करना चाहता था। अंतर में इस घड़ी जैसे यह गुरुवाणी गूँज रही थी-

''शिव ही समस्त शक्तियों को जन्म देते वर्णों के रूप में मातृका को जन्म देते हैं। अनंत के समावेश से यह मातृका माया को सृजित करती है, जिसके द्वारा काल, नियति, कला एवं विद्या की उत्पत्ति होती है। काल से ही राहु तथा पुरुष प्रकट होते हैं एवं माया से सत्, तम, रज गुणों से निर्मित प्रकृति का जन्म होता है। इन्हीं गुणों में क्षोभ होने पर 'गुणेश' नामक तीन मूर्तियाँ प्रकट होती हैं, साथ ही महत् आदि तत्त्वों का क्रम से जन्म होता है। शिव की आज्ञा से ही उनसे असंख्य अंड-पिंड जन्म लेते सृष्टि सृजन के कार्य को प्रशस्त करते हैं।''

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

आज महा जान चला था कि यह रात्रि उसके जीवन की अंतिम रात्रि है। न मरण का भय था, न ही मुक्ति की लालसा। वह इस घड़ी सोए बुद्धेश के केशों पर प्रेम से हाथ फेरता मस्तक पर चुंबन ले रहा था। आँखों में अश्रुबिंदु छलक आए थे। अब खाँसी का दौर उठते ही वह बुद्धेश को छोड़, तेज़ी से पग बढ़ाता कोहरे में गुम हो चला था। बुद्धेश को छोड़ने से पूर्व उसने स्वयं की झोली में से शंकर की पिंडी को निकाल बुद्धेश के निकट रख दिया था।

शीत से सिकुड़ता निद्रामग्न बुद्धेश, अब एक स्वप्न में उतर चला था। स्वप्न में वह देख रहा था कि एक छोटी सी कोठरी में दिव्यता उठाते ध्यानस्थ नंग-धड़ंग महात्मा मध्य रात्रि में स्वयं के नेत्र खोल, उठ बैठे थे। उनके नेत्रों में एक ऐसी खुमारी छाई थी, जैसे अनंत व्योम को चूमती उनकी प्राण लहरें चपलाएँ बन अनंत के प्रेम में नाच रही हों। मुखमंडल एक दिव्य आभा से चमचमा रहा था। अब वे कोठरी से बाहर निकल योगासन की मुद्रा में एक बड़े संदूक़ में जा बिराजे थे। संदूक़ भीतर से गादी, तकिया, चादर, फूल-मालाओं एवं चंदन से सुसज्जित था। उनके संदूक़ में बैठने के पश्चात् ही संदूक़ को बंद कर उस पर बाहर से ताला लगा दिया गया था।

अब कई लोग उस संदूक़ को स्वयं के काँधे पर उठा काशी स्थित पंचगंगा घाट की सीढ़ियाँ उतर रहे थे। घाट पर लगी एक सुसज्जित नाव पर उस संदूक़ को रख अब उसे अस्सी घाट से वरणा संगम तक घुमाया गया। असंख्य लोगों की भीड़ घाटों पर खड़ी थी। क्या संत, क्या नर-नारी, सभी के नेत्रों से अश्रुधार बह रही थी। आदित्य अस्ताचल की ओर बढ़ रहा था। एक निश्चित मुहूर्त पर नाव को घाट के पास स्थित दत्तात्रेय मंदिर के सामने, बीच गंगा में लाया गया। महात्मा के दर्शन हेतु विक्षिप्त से भक्तों ने ज़बरदस्ती संदूक़ को खोल दिया, तो आश्चर्य! महात्मा का स्थूल शरीर उस संदूक़ में नहीं था। मात्र फूल-मालाएँ संदूक़ में शेष रह गई थीं। अब संदूक़ को पुनः बंद कर निर्धारित स्थान पर जल समाधि दे दी गई एवं अश्रु बहाते, विलाप करते लोग, पुनः लौट रहे थे।

अब स्वप्न में दृश्य परिवर्तन के साथ ही बुद्धेश ने स्वयं को गंगा एवं वरणा के संगम पर स्थित सामने की ओर गंगा किनारे बलुआ मैदान पर खड़ा

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पाया। अब वह देख रहा था कि वही नंग-धड़ंग महात्मा उसी मैदान में उसके समक्ष प्रकट हो, उसे कुछ समझा रहे थे। जैसे ही उनका संवाद समाप्त हुआ बुद्धेश तीव्र स्वर में चीख़ उठा-

"नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। ऐसा कभी नहीं हो सकता।"

स्वप्न में स्वयं की चीख़ से ही जैसे बुद्धेश भयभीत होकर जाग उठा था एवं इस जाग्रत् अवस्था में भी अश्रु बहाता, वह चीख़ रहा था-

"नहीं, तुम मुझे ऐसे बीच मझधार में छोड़कर नहीं जा सकते।"

अब बुद्धेश की दृष्टि स्वयं के निकट लेटे महा की ओर चली गई एवं महा को वहाँ न पाकर, उसका धैर्य छूट गया। विक्षिप्त सा स्वयं के बालों को नोचता अब वह फूट-फूट कर रोने लगा था, साथ ही बड़बड़ा भी रहा था-

"नहीं, इस संसार रूपी भवसागर में मुझे पूर्णतः एकाकी छोड़ तुम नहीं जा सकते। सभी कुछ तो थे तुम मेरे, मित्र, भाई..."

कहते हुए जैसे ही उसकी दृष्टि स्वयं के बाएँ कर पर पड़ी, तो चिताग्नि से उठते प्रकाश में उसे शंकर की वह दमकती पिंडी दिखी जिसे महा उसके लिए छोड़ गया था। पिंडी को उठा, अब बुद्धेश व्योम की ओर देखता ज़ोर-ज़ोर से चीख़ रहा था एवं उसके स्वर श्मशान की इस नीरवता में गूँज रहे थे-

"नहीं, तुम ऐसा नहीं कर सकते! तुमने मेरे साथ छल किया है। मैं तो तुम्हें संत समझता था परंतु तुम बहुत ही स्वार्थी निकले। क्या कमी थी मुझमें? मात्र इतनीं कि मैं तुम्हारी तरह चांडाल न था? यदि ज्ञात होता कि चांडाल बनकर ही तुम सा रूप धर तुम्हारे साथ जीवन के भवसागर को पार किया जा सकता है, तो मैं भी पूर्वजन्म में इस निष्ठुर काशी विश्वनाथ की तपस्या में पूरा जीवन बिता मात्र यही फल पाता कि मुझे भी चांडाल बनाकर वह तुम्हारे सान्निध्य में मणिकर्णिका महाश्मशान पर ही रखे।"

"तुम झूठे, तुम्हारा यह शंकर भी झूठा एवं तुम्हारे गुरु भी। तभी तो तुम्हारे अंतिम संस्कार की संपूर्ण विधि मुझे बता, जाते-जाते अंत में मुझसे भी यह कह गए-

'पर याद रख मैं तेरा गुरु नहीं' "

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अध्याय-६८

आज महाश्मशान मणिकर्णिका पर भूतभव्यभवन्नाथ, सर्वशुद्धि, समाधिवेद्य काशी विश्वनाथ स्वयं के गर्भ में शिशु रूपी ब्रह्मा को धारण कर स्वयं के सूर्यरूप में अनंत रश्मियों से प्रकाश उठाते अमर अनाहत नाद निनादित कर रहे हैं-

''मैं शिव स्वयं ही पृथ्वी से प्रकृति तक चौबीस तत्त्वों की अध्यक्षता कर ब्रह्मा कहलाता हूँ। पुरुष का अधिष्ठाता मैं शिव ही विष्णु हूँ। नियति से माया तक के तत्त्व मेरे रुद्र रूप की प्रधानता में कार्यरत हैं। शुद्ध विद्या एवं ईश्वर तत्त्व का अधिष्ठाता ईश्वर भी मैं हूँ एवं इसके ऊपर समस्त तत्त्वों का अधिष्ठाता सदाशिव भी मैं शिव ही हूँ।''

''मैं शिव ही स्वयं की पराशक्ति से सृष्टि का सृजन करता हूँ। क्या हो, क्या न हो, यह मुझ महेश्वर की ही इच्छाशक्ति है। बुद्धिरूप मैं शिव ही स्वयं की ज्ञानशक्ति द्वारा कार्य, करण एवं कारण को निश्चित करता हूँ एवं कार्यरूप संपूर्ण जगत् की क्षण भर में कल्पना करना ही मुझ काशी विश्वनाथ की क्रियाशक्ति है।''

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

काल ने जैसे छद्मवेश धारण कर महा की सहायता की थी या यह गुरु के चमत्कार एवं स्वयं काशी विश्वनाथ के आवाहन का परिणाम था कि जब उसके नेत्र खुले तो स्वयं को उसने चलती हुई रेलगाड़ी के डब्बे में बैठा पाया था। उसे मात्र इतना भान था कि हाँफती हुई श्वास के सूत्रों के बिखराव में खाँसते हुए वह बुद्धेश को छोड़, कोहरे से आच्छादित श्मशान से बाहर निकल आया था एवं वहीं स्वयं के भावी में छिपे मृत्यु के देव के पदचाप को सुनता वह पुनः रक्त की उलटी कर बैठा था। इसके पश्चात् मूर्च्छाग्रस्त होकर जैसे ही वह धरा पर गिरने को था कि किसी ने उसे थामकर निकट खड़ी घोड़ागाड़ी में बैठा दिया था, जहाँ वह मूर्च्छित हो गया था। जब नेत्र खुले तो वह इस रेलगाड़ी में था। इस घड़ी कर्णपटल पर निकट बैठे यात्री के स्वर गूँज उठे-

''काशी बस आने ही वाला है।''

स्वयं के स्नेहालिंगन में काशी पुनः यों बद्ध कर लेगी, इसकी उसने कल्पना तक न की थी। इस भीषण कष्ट में खाँसते हुए भी प्रसन्नता में उसके नेत्रों से अश्रु छलक आए थे। धड़धड़ाती रेलगाड़ी इस घड़ी गंगा के पुल पर से गुज़र रही थी। काशी की मिट्टी की सुगंध जैसे नवप्राणों को संचारित कर उठी थी एवं महा के नेत्र तिमिराच्छन्न काशी के उन घाटों पर चले गए थे, जहाँ कुछ मशालें टिमटिमा रही थीं।

रेलगाड़ी के स्टेशन पर रुकते ही जब महा ने अपना पग कोहरे से आच्छादित इस आध्यात्मिक धाम की धरा पर रखा, तो जैसे स्वयं के व्यक्तित्व से पुनः परिचित होती देह की शिराएँ रक्त के वेगाधिक्य से झनझना उठी थीं। अंतःस्थल में चित्त शुद्ध होता, जैसे मानसरोवर को प्रतिबिंबित करने लगा था। अत्यधिक शीत एवं भीषण कोहरे के मध्य अब रात्रि का प्रथम पहर आरंभ हो चुका था। कोहरे ने सुविशाल व्योम पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया था एवं कंबल ओढ़े, खाँसते-खाँसते महा स्टेशन से बाहर निकल आया था।

केवल आनंद के लिए रची गई इस धरा का प्रत्येक रजकण उसके मानवीय नेत्रों को किसी स्वर्गिक सौंदर्य के दर्शन का सुख प्रदान कर रहा था। हृदय की प्रत्येक धड़कन उसे आंदोलित कर रही थी कि जीवन की शेष घड़ियों को वह इस काशी की आड़ी-तिरछी-सँकरी गलियों में विचरते हुए ऐसे बिताए,

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

जैसे कोई प्रेमी जो जानता है कि यह उसके जीवन की अंतिम रात्रि है, अपनी प्रेमिका के आलिंगन में बिताता है। उसके मानवीय श्रोत्र आज काशी की किसी भी ध्वनि से वंचित होना नहीं चाहते थे।

काल के दलदल में धँसता महा अब यह दुस्साहस कर रहा था कि चाहे जैसे भी हो, उसे एक बार स्वयं की कोठरी, आदिकेशव के मंदिर, काशी विश्वनाथ के देवालय एवं महाश्मशान मणिकर्णिका के दर्शन अवश्य हो जाएँ। कालभैरव के देवालय के समक्ष जाकर वह बाहर से ही सही, एक बार यह घोष अवश्य करना चाहता था-

"मेरी उपस्थिति दर्ज करो।"

दृष्टि के समक्ष इस घड़ी पंचगंगा घाट पर स्थित बिंदुमाधव के धरहरे के निकट स्थित गली का वह देवालय घूम रहा था, जो उसके गुरु का स्थान था।

काया की वेदना अब असह्य हो चली थी एवं खाँसी का दौर पुनः उठते ही अब एक पग उठाना भी असंभव हो चला था। नितांत असहाय महा अब स्टेशन से बाहर निकल वहीं बैठ गया था। निपट अविजित मृत्यु उसकी दृष्टि के समक्ष ही उसकी ओर पग बढ़ा रही थी एवं उसका साक्षी बनता महा स्वयं से कह उठा-

"हे गुरुवर! इस जन्म में न सही तो भावी जन्म में ही सही, किसी घड़ी तो अवश्य मैं आपको सार्थकता प्रदान कर, इस काया रूपी काशी में पुनः रमण करूँगा एवं इसी में मरण को उपलब्ध हो सहस्रार में अवश्य ही काशी विश्वनाथ की प्राणप्रतिष्ठा कर, काशी मरणान्मुक्ति को सिद्ध करूँगा। यह आपकी नहीं अपितु मेरी चूक है, हो सके तो मुझे क्षमा करना एवं ऐसे ही स्वयं की कृपा दृष्टि मुझ पर बनाए रखना।"

कहते हुए महा पुनः खाँसते हुए रक्त की उलटी करने लगा था। इस भीषण वेदना में भी काँपते-काँपते वह बोल उठा था-

"गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुः साक्षात्परब्रह्म, तस्मै श्री गुरवे नमः॥"

मंत्र के पूर्ण होते ही महा के कर्णपटल पर घोड़ागाड़ी के निकट आने के स्वर गूँज उठे। इस भीषण कोहरे में दस पग आगे देखना भी दूभर हो रहा था कि

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अचानक घोड़ागाड़ी चालक के स्वर महा के कर्णपटल पर ऐसे गूँजे जैसे कोई उसके लिए संजीवनी बूटी ले आया था।

"क्या अस्सी घाट होकर आदिकेशव एवं विश्वनाथ मंदिर के दर्शन करने जाओगे?"

महा ने स्वयं के नेत्र खोले बिना मात्र स्वीकृति में गर्दन हिला दी थी। इस घड़ी वह यह भी नहीं देख पाया था कि वह घोड़ागाड़ी चालक कौन है। अंतहीन पीड़ा को झेलता वह जैसे-तैसे खड़ा हो घोड़ागाड़ी में बैठ गया था। कोहरे से आच्छादित इस रजनी में घोड़ागाड़ी तीव्र गति से दौड़ चली थी एवं कुछ समय पश्चात् ही वह स्वयं की कोठरी के द्वार पर खड़ा था। मुख्य मार्ग से गलियों में होता हुआ, वह अस्सी घाट स्थित अपनी कोठरी के द्वार पर कैसे पहुँचा था, यह उसे भी ज्ञात न था। द्वार पर पड़े रजकणों को स्वयं के ललाट पर मलता जैसे ही वह बंद द्वार के सामने नतमस्तक हुआ था, तो उसे प्रतीत हुआ जैसे माँ यशोदा स्वयं के थर-थर कंपित वक्ष:स्थल पर उसका सिर रखती उसे दुलार रही हैं।

अब वह पुन: घोड़ागाड़ी में आ बैठा था एवं गंगा किनारे धूल से भरे पथ पर दौड़ती हुई घोड़ागाड़ी आदिकेशव के मंदिर के निकट स्थित वट वृक्ष के नीचे आ खड़ी थी। महा अब भी अर्द्धमूर्च्छित सा घोड़ागाड़ी में लेटा हुआ था एवं उसके कर्णपटल पर पुन: घोड़ागाड़ी चालक के स्वर गूँज उठे-

"लो, उतरकर आदिकेशव मंदिर के शिखर दर्शन कर लो। इसके पश्चात् हमें गोदौलिया पहुँचना है।"

स्वर परिचित था, पर महा में इतनी शक्ति न थी कि वह उसे पहचान सके।

शुक्ल चतुर्दशी की रात्रि थी एवं कोहरे के आच्छादन से कुछ भी दृष्टिगोचर नहीं हो रहा था। जैसे कोई चमत्कार ही था कि घड़ी भर को कोहरा छँट गया था एवं आदिकेशव मंदिर का शिखर, श्वेत-धवल चंद्र-किरणों में नहाता हुआ चमक उठा था। महा ने स्वयं के कर बद्धकर जैसे ही शिखर को देख नेत्र बंद किए, तो दृष्टि के समक्ष चतुर्भुज विष्णु की मूर्ति साक्षात् आ खड़ी हुई। समस्त क्रियाएँ मानो यंत्रवत् हो रही थीं। महा के पुन: घोड़ागाड़ी में बैठने पर कोहरे को चीरती घोड़ागाड़ी गोदौलिया चौराहे की ओर सरपट दौड़ रही थी।

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

विश्वनाथ गली के समक्ष आ घोड़ागाड़ीं रुक गई थी एवं घोड़ागाड़ी चालक ने स्वयं का कर महा के स्कंध पर रख, हलके से उसे दबाते हुए कहा-

''अब तुझमें इतनी शक्ति है कि आगे का मार्ग तू स्वयं तय कर सके। काशी विश्वनाथ स्वयं तेरी सहायता करेंगे।''

इस घड़ी तक भी महा ने दृष्टि उठाकर घोड़ागाड़ी चालक को नहीं देखा था। जैसे ही वह खाँसते-खाँसते घोड़ागाड़ी से उतरा, घोड़ागाड़ी तेज़ी से पलट दौड़ती हुई कोहरे में खो गई। घोड़ागाड़ी के दृष्टि से ओझल होते ही अचानक महा को यह ध्यान आया कि उस घोड़ागाड़ी चालक का स्पर्श ठीक वैसा ही था, जैसा उसने मूर्च्छित होने से पूर्व फाफामऊ क़स्बे के श्मशान के बाहर महसूस किया था, जब उसे किसी ने थाम घोड़ागाड़ी में लिटा दिया था।

अभी महा कुछ सोच पाता इसके पूर्व ही आश्रयदाता के रूप में एक साँड़ महा के निकट आ खड़ा था, जिसका सहारा ले महा इन सँकरी गलियों में पग बढ़ा रहा था। रुग्णता ने जैसे मन-मस्तिष्क को मथकर सुन्न बना डाला था। किस घड़ी वह काशी विश्वनाथ के मंदिर के बाहर आ खड़ा था, इसका उसे भी होश न था। कोहरा इस घड़ी फिर छँटा एवं उसे काशी विश्वनाथ के मंदिर के स्पष्ट दर्शन हो गए। अब पुनः उसी साँड़ के सहारे महा, कालभैरव के मंदिर के समक्ष आ खड़ा हुआ एवं करों को जोड़ बोल उठा-

''मेरी उपस्थिति दर्ज करो।''

अब पुनः साँड़ उसे सहारा देते हुए वहाँ से बाईं ओर आड़ी-तिरछी-सँकरी गलियों से होता हुआ उसे बिंदुमाधव के धरहरे के निकट स्थित गली में ले आया था। इस गली में पग धरते ही काया पुनः एक अपूर्व शक्ति से संचारित हो उठी थी। अब वह स्वयं इस गली में पग बढ़ा रहा था एवं साँड़ अपने पग बढ़ाता दूसरी गली में लुप्त हो गया था। महा की आँखों से अश्रुधार बह रही थी एवं इस गली में स्थित एक मकान की जाली से अब वह भीतर झाँक रहा था। दीये के प्रकाश में एक अत्यधिक विशाल शिवलिंग एवं उसके पीछे स्थित माँ काली की मूर्ति के उसे स्पष्ट दर्शन हो रहे थे। दोनों करों को जोड़ वह मात्र इतना बोल पाया था-

''इतने निकट होकर भी आप मुझसे जीवन के प्रथम कुछ वर्षों में कितने

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

दूर थे? आपकी कृपा दृष्टि तो सदैव ही मुझ पर रही, परंतु मैं मूरख ही आपको समझ न पाया था।''

अब जैसे कोई शक्ति, प्रकाशक बन महा का पथप्रदर्शन कर रही थी एवं उसी के सहारे पग बढ़ाता महा, मस्जिद के निकट से पंचगंगा घाट की सीढ़ियाँ उतर रहा था। शोभाशाली तरंग मालाओं से युक्त गंगा इस घड़ी कोहरे की श्वेत चादर से ढँकी थी। कुछ घड़ी के लिए कोहरा पुनः छँट गया था एवं दृष्टि के समक्ष चाँदनी की भाँति आह्लाद उत्पन्न करने वाली गंगा में देदीप्यमान देह को धारण करते हुए कबीर एवं तुलसीदास, कमर भर जल में खड़े हो स्निग्ध स्मित फैला रहे थे। उन पर दृष्टि पड़ते ही महा भाव में उतर चला था एवं भाव टूटने के साथ ही खाँसी पुनः प्रारंभ हो गई थी। अभी काया अशक्त होती इससे पूर्व ही नंग-धड़ंग गुरु निकट खड़े स्निग्ध स्मित फैला रहे थे।

गुरु पर दृष्टि पड़ते ही महा साष्टांग दंडवत् लेट गया था। आज गुरु के देदीप्यमान मुखमंडल पर जैसे माँ यशोदा के वात्सल्य भाव उतर आए थे। अत्यंत ही स्नेह से उसे खड़ा कर गुरु ने उसे आलिंगनबद्ध कर लिया एवं महा के शीश पर कर फेरते हुए प्रश्न किया-

''क्या तुझे स्मरण है कि उस दिवस गोमुख के निकट कंदरा में मैं तेरी समय-दीक्षा के संदर्भ में बोल, अचानक मौन हो गया था और तू सोचने लगा कि मैं आगे भी कुछ कहना चाहता था?''

महा ने स्वीकृति में शीश हिला दिया। तब मुखमंडल पर एक स्निग्ध स्मित उठाते हुए गुरु बोल उठे-

''उस घड़ी मैं कहना चाहता था कि समय-दीक्षा के पश्चात् षड़ध्वशोधन की विधि होगी, तत्पश्चात् तेरी सबीज-दीक्षा। इस सबीज-दीक्षा से साधना के पथ पर चलकर तू यह जान लेता कि पृथ्वी से प्रकृति तक पंचमहाभूत, पंचतन्मात्र, पंचकर्मेंद्रियाँ, पंचज्ञानेंद्रियाँ, मन, अहंकार, बुद्धि एवं गुण रूपी चौबीस तत्त्वों को शिव स्वयं की अध्यक्षता प्रदान कर, ब्रह्मा कहलाते हैं। पुरुष के अधिष्ठाता शिव ही विष्णु हैं। नियति से माया तक के तत्त्व उनके रुद्र रूप की प्रधानता में कार्यरत हैं। शुद्ध विद्या एवं ईश्वर तत्त्व के अधिष्ठाता ईश्वर भी शिव हैं एवं इसके ऊपर समस्त तत्त्वों के अधिष्ठाता सदाशिव भी शिव

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

ही हैं।''

''परंतु जैसे ही मेरी दृष्टि तेरी काया पर पड़ी, उसी घड़ी मैं जान गया था कि भविष्य में तू अवश्य ही किसी रुग्ण बालक के रोग को मेरे द्वारा हरण करवाकर, स्वयं पर ले लेगा एवं यह जानते ही मैं मौन हो गया था।''

''तू चाहता तो सिद्धि प्राप्त होने के बाद उसे ज्ञात कर लेता जो उस घड़ी मैं तुझे कहना चाहता था, परंतु मेरे आदरवश तूने ऐसा नहीं किया था। सबीज-दीक्षा के लिए उस घड़ी तेरी काया सधी नहीं थी एवं इस घड़ी इस रोग के कारण तेरी काया में इतनी शक्ति नहीं है कि तू पुनः साधना में लीन हो सके।''

महा कृतार्थ भाव से भर गुरु के चरणों की ओर देख रहा था, जैसे इन चरणों के दर्शन के पश्चात् अब उसके अंतर में मुक्ति की कामना भी शेष न थी। अब गुरु ने स्वयं के करों से महा का शीश थाम उसके ललाट को चूम लिया एवं माँ यशोदा के सदृश उसे दुलारते हुए बोल उठे-

''शिव ही स्वयं की पराशक्ति से सृष्टि का सृजन करते हैं। क्या हो, क्या न हो, यह महेश्वर शिव की ही इच्छाशक्ति है। बुद्धिरूप शिव स्वयं की ज्ञानशक्ति द्वारा कार्य, करण एवं कारण को निश्चित करते हैं और कार्यरूप संपूर्ण जगत् की क्षण भर में कल्पना करना ही काशी विश्वनाथ की क्रियाशक्ति है।''

गुरु से माँ के सदृश दुलार पाकर महा अपनी रुग्णता को भूल चुका था एवं अब स्नेह की वर्षा करते गुरु पुनः बोल उठे थे-

''वह तेरी चूक नहीं अपितु शिव की करुणा थी कि उन्होंने तुझे माध्यम बनाकर उस बालक को जीवन दान दिया था। क्या हो, क्या न हो, यह ज्ञान तो मात्र शिव को ही है एवं जब स्वयं उनकी इच्छाशक्ति, कार्यशक्ति में परिणत होने वाली हो, तो तुझे काशी मरणान्मुक्ति कैसे प्राप्त न होगी? उन्हीं की इच्छा से आज वह महायोग पुनः उतरेगा जब तेरे सहस्रार में काशी विश्वनाथ स्वयं प्राणप्रतिष्ठित होकर तेरे जीव को स्वयं से एकाकार कर लेंगे। उस घड़ी तू काल की सीमा से परे कालातीत को लाँघकर यह जान लेगा कि तू, मैं, कबीर, तुलसी, साई, सभी तो उस अद्वैत के रंग से रँगे हैं। कहाँ क्या भेद है? इस संपूर्ण ब्रह्मांड में ऐसा कोई स्थान नहीं जिसमें शिव व्याप्त नहीं, साथ ही साथ जो शिव

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

में व्याप्त नहीं।''

महा अवाक् हो गुरु को देख रहा था। उनके अनुग्रह के भार से दबा अब वह अश्रुधार बहा रहा था एवं उसे आलिंगनबद्ध करते गुरु के नेत्रों से भी अश्रु छलक रहे थे। उनके नेत्रों से छलकते अश्रुओं को देख महा हतप्रभ रह गया था। आनंद के इस अतिरेक में अब गुरु पुनः बोल उठे थे-

''मैं शिवलिंग पर्वत के समक्ष संपूर्ण क्रिया के पश्चात् उस सूक्ष्म सूत्र को तोड़ने ही जा रहा था, जिससे तेरा जीव स्वयं की देह के साथ राशि मात्र बँधा है, परंतु उस दिवस मैंने उसे नहीं तोड़ा। आज वह सूत्र भी टूटेगा एवं तेरी निर्बीज-दीक्षा भी होगी। यह मंत्र स्वयं परमात्मा शिव के मुख से पराशक्ति के साथ तुझे प्राप्त होगा, जो तेरे समस्त त्रिपाशों को काट देगा। इस मंत्र की शक्ति तेरी कल्पना से भी परे है। इसी मंत्र के द्वारा तेरे समस्त पाश रूपी विष का पान मैं तेरा गुरु रूपी काशी विश्वनाथ, एक ही घड़ी में कर लूँगा।''

कहते हुए गुरु, महा की गलबाहीं डाल महाश्मशान मणिकर्णिका की ओर चल दिए। महा को उस घड़ी प्रतीत हो रहा था कि जिस सीढ़ी पर गुरु उसे निर्बीज-दीक्षा के संदर्भ में बता रहे थे, वह वही सीढ़ी है जहाँ कबीर को बीजमंत्र 'राम' प्राप्त हुआ था।

सीढ़ियाँ उतरकर घाट-घाट चलते अब वे दोनों महाश्मशान मणिकर्णिका पर आ पहुँचे थे। ब्रह्म मुहूर्त आरंभ हो चला था। इस घड़ी महाश्मशान मणिकर्णिका पर मात्र दो चिताएँ जल रही थीं एवं एक चिता जलकर बुझ चुकी थी। काल के इस खंड में महाश्मशान मणिकर्णिका पर उन दोनों के अतिरिक्त और कोई न था। अब गुरु ने आज्ञा दी थी कि वह गंगा-स्नान कर पुनः यहीं लौट आए। गुरु की आज्ञा का पालन कर महा, गंगा-स्नान कर लौट आया था। इस घड़ी उसकी काया पर कोई वस्त्र नहीं था, अब गुरु ने उसे पद्मासन में बैठने का आदेश दिया था।

गुरु के आदेश पर महा पद्मासन में बैठ गया था। अब उसके ललाट, कंठ, स्कंध एवं सीने पर गुरु ने चिताभस्म से त्रिपुंड खींच दिए। पद्मासन में बैठ, नेत्र बंद करने से पूर्व महा ने देखा था कि नंग-धड़ंग गुरु स्वयं की काया पर चिताभस्म को मलते हुए इस भावना में लीन हो चले थे-

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

"मैं शिव हूँ।"

उनके यह स्वर गूँजते ही वही काला नाग कहीं से आकर उनकी काया पर चढ़, कंठ पर कुंडली मार बैठ गया एवं अब वह फन फैलाए डोल रहा था। महा भी पद्मासन में बैठ अपने नेत्र बंद कर चुका था एवं ज्यों ही गुरु ने उसके कर्णपटल पर मंत्र फूँका, तो महा को ऐसा प्रतीत हुआ जैसे उसके लंबे केशों के मध्य शीश पर पीछे की ओर जहाँ शिखा होती है, मानो एक सुई की चुभन हुई एवं वहाँ से एक प्रकाशपुंज उठता समस्त ब्रह्मांड में फैल गया। महा ब्रह्मलीन हो गया था।

अब वह नाग पद्मासन में बैठे महा के कंठ पर कुंडली मारकर बैठ गया था एवं फन फैलाए यहाँ-वहाँ डोल रहा था। जैसे कोटि-कोटि सूर्य एक साथ आभा फैलाते उदित हो उठे थे, सर्वत्र स्वर्णिम प्रकाश ही प्रकाश व्याप्त था। संपूर्ण काशी कंचनाकाक्षी के सदृश दमकती हुई स्वर्णिम दिव्यता उठाने लगी थी। गली में पड़ा मल-मूत्र, कचरा, गोबर, सभी कुछ स्वर्णिम प्रकाश में नहाते एक हो चले थे। सब इस शुद्ध एवं पवित्र स्वर्णिम आभा में एक हो दिव्यता उठा रहे थे। कहीं कोई भेद न था, क्या गलियाँ! क्या घाट! क्या देवालय के शिखर एवं कंगूरें! सर्वत्र फैले इस स्वर्णिम प्रकाश में कभी कोई शिखर, गंगा में परिवर्तित हो उठता था, तो गंगा, बुद्ध का रूप धर आभा बिखेर रही थी। बुद्ध, कबीर में परिवर्तित हो अनंत की दिव्यता उठा रहे थे, तो कबीर, तुलसीदासजी का रूप धर अनंत कोटि सूर्यों का प्रकाश उठा रहे थे। क्या महा! क्या गुरु! क्या ब्रह्मांड! सभी किसी घड़ी आकार धर दिव्यता उठाते, तो दूसरी ही घड़ी निराकार के राज्य में गुम हो मुस्कराने लगते। कभी इस प्रकाश में समस्त ब्रह्मांड के ग्रहों-नक्षत्रों को स्वयं में समेटते सुपार्श्वनाथ किसी आकार को दर्शा जाते, तो कभी फिर पार्श्वनाथ, सुपार्श्वनाथ को निराकार में लीन कर देते।

महा का जीव, शिव से एकाकार हो गया था। सर्वत्र शिव रूपी काशी विश्वनाथ स्वयं के अनंत प्रकाश में सभी को लीन करते देदीप्यमान कर चले थे। अब भला इस अद्वैत में क्या गुरु! क्या शिष्य! इस अनंत कोटि प्रकाश में मात्र यही ब्रह्मनाद गूँज रहा था-

"पर याद रख मैं तेरा गुरु नहीं।"

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

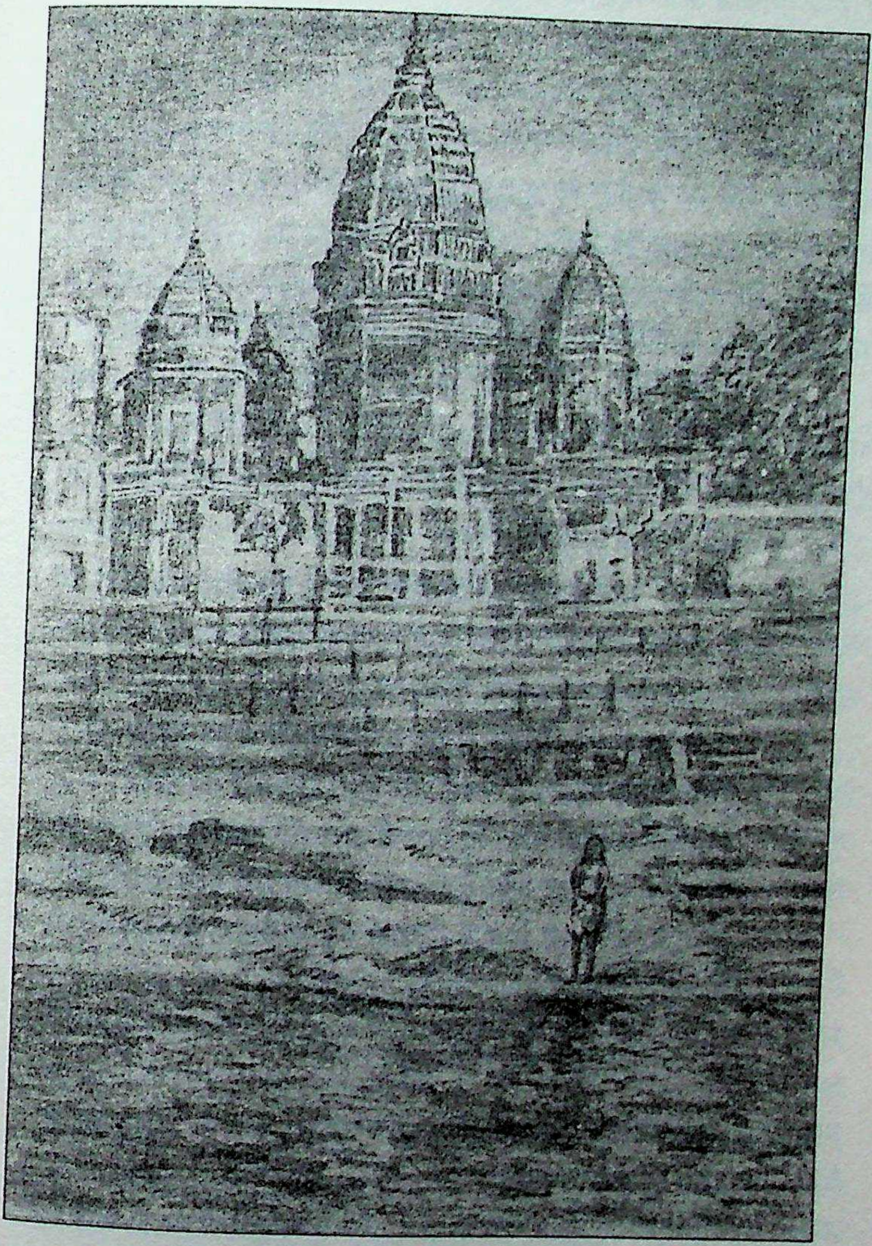

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अध्याय-६९

आज महाश्मशान मणिकर्णिका पर स्नेहकृतागम, व्यालाकल्प, न्यायनिर्मायिको न्यायी काशी विश्वनाथ स्वयं के सूर्यादि ज्योतियों के प्रकाशक सर्वोत्तम महाज्योति स्वरूप में अमर अनाहत नाद निनादित कर रहे हैं-

''यति, ब्राह्मण, योगी तो क्या! जो मेरा भक्त है वह चांडाल भी है, तो मुझे प्रिय है। उससे तो आज मैं स्वयं शिव भी प्रसाद ग्रहण करने यहाँ आ स्थित हूँ। ये चांडाल भी मेरे ही सदृश पूजनीय है। न मैं कभी इसके लिए अदृश्य होता हूँ और न ही वह मेरी भी दृष्टि से कभी ओझल होता है। जब मैं और ये, दोनों एक ही हैं, तो फिर भला क्या गुरु, क्या शिष्य और जब सब कुछ अद्वैत है, तो फिर क्या फ़र्क़ पड़ता है कि मैं कहीं न कहीं, कभी न कभी यह सुनता रहा-

'पर याद रख मैं तेरा गुरु नहीं।' ''

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

महाश्मशान मणिकर्णिका की इस नीरवता में जैसे साक्षात् शिव ही समाधि धारण किए पद्मासन में बैठे हुए थे। प्रभातकाल के प्रकाश में इस घड़ी अभी समय शेष था। जैसे किसी दु:स्वप्न से जागा भूतनाथ अनिष्ट की आशंका लिए महाश्मशान की सीढ़ियाँ उतर रहा था। अत्यधिक कोहरे के आच्छादन से दूर उसे मात्र दो प्रज्वलित चिताएँ दृष्टिगोचर हो रही थीं एवं जैसे ही वह उन चिताओं के पास आया, उसकी बूढ़ी होती आँखों के समक्ष वह परिपूर्ण दृश्य था जिसे देख वह सिर से नख तक काँप उठा था। साक्षात् शिव उसे समाधि में लीन बैठे दिखाई दे रहे थे एवं एक काला नाग उनके कंठ पर कुंडली मार फन फैलाए उनकी शोभा बढ़ा रहा था।

अब भी भूतनाथ, महा के निकट नहीं आया था एवं स्वयं के दु:स्वप्न को स्वयं का परम सौभाग्य मान, दूर से ही उसने चिर समाधि में लीन महा को साष्टांग दंडवत् प्रणाम किया था। पदचाप की कंपन अनुभव करता नाग अब महा के कंठ से उतरकर रेंगता हुआ कोहरे में लुप्त हो गया था। जैसे ही भूतनाथ, महा के समक्ष आ खड़ा हुआ तो मानो कोई वज्रपात हुआ हो एवं कंपित होती काया से महा को पहचानता, वह उसके सिरहाने पर खड़ा होकर सिर पर प्यार से कर फेरता, फूट-फूट कर रो पड़ा था।

इस घड़ी महा परम शांतिमय चिरनिद्रा में मग्न था एवं उसके मुखमंडल पर एक स्निग्ध स्मित फैला हुआ था। भूतनाथ के हृदय के समस्त स्त्रोत जैसे इस घड़ी फूट चले थे एवं अब वह महा के दाहिने पग अंगुष्ठ पर स्वयं का ललाट रगड़ता अश्रुधार बहा रहा था। दु:स्वप्न सच हो गया था।

प्रात: का प्रकाश फैलते ही जैसे संपूर्ण काशी में यह समाचार अरण्य में फैले किसी दावानल की भाँति फैल गया था कि एक चांडाल ने योग के शिखर को पा, पद्मासन में बैठ स्वयं के जीव का शिव से एकाकार कर लिया है। काल से चिर मुक्ति के इस दृश्य को देखने के लिए आज से पूर्व कभी महाश्मशान मणिकर्णिका पर इतने लोग एकत्रित नहीं हुए थे। चींटियों के सदृश लोग वहाँ इकट्ठा हो रहे थे मानो सभी पद्मासन में बैठे समाधिस्थ महा की एक झलक पाना चाहते थे।

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बूढ़े इस्माइल की कमर अब झुक चली थी। क्या हिन्दू! क्या मुसलमान! सभी तो आज वहाँ एकत्रित हो गए थे। शरीर के शिवालय में स्वयं को प्राणप्रतिष्ठित करते इस शिव के पग को छूकर, आज हर कोई आशीर्वाद ग्रहण करना चाहता था। महा की मृत-काया में जैसे परम जीवन डोल रहा था एवं बोधितत्त्व को प्राप्त उसका मुखमंडल एक असीम दिव्यता उठा रहा था। त्रिभुवन पद को पाकर उसकी देह जैसे आज परम पवित्र हो चली थी। काल को वह स्वयं के मुख का निवाला बना, परम मृत्यु को प्राप्त कर दिगंबर अवस्था में महाकाल के पद पर आसीन हो गया था।

'ॐ ॐ ॐ' का भाव घट गया था एवं लोग इस विवाद में ही समय व्यतीत कर रहे थे कि आत्म साक्षात्कार की महाखुमारी में लीन इस फक्कड़ अवधूत का अंतिम संस्कार कैसे संपन्न हो? इस्माइल एवं भूतू, महा को जल समाधि देना चाहते थे, तो कुछ ब्राह्मण उसके अग्नि संस्कार के लिए उद्यत हो रहे थे। इसी विवाद के चलते घड़ी-दर-घड़ी बीत रही थी एवं आदित्य अब सिर पर आ गया था। अश्रु बहाता इस्माइल अब निकट ही बैठकर ज़ोहर की नमाज़ अदा करने लगा था।

अचानक हृदय को दहलाने वाली पुकार से सभी की दृष्टि उस ओर घूम गई थी, जहाँ से वह आवाज़ आई थी।

''महा, महा'', पुकारता एवं अश्रु बहाता एक नवयुवक भीड़ को एक ओर धकेलता, मणिकर्णिका घाट की सीढ़ियाँ उतर रहा था। वह अब भी विक्षिप्त सा अश्रु बहाता चीख़ रहा था-

''नहीं! तुम मुझे ऐसे धोखा नहीं दे सकते! क्या यही वह अत्यंत आवश्यक कार्य है जिसके लिए तुमने मुझे इतने वर्षों तक स्वयं के साथ रखा था?''

लोग उसे आश्चर्यचकित होकर देख रहे थे एवं वह अब भी चीख़ रहा था-

''मुझे मार्ग दीजिए, इनके अंतिम संस्कार की विधि मुझे ज्ञात है। मैं इनके गुरु का आदेश लाया हूँ, मुझे इनके निकट जाने दीजिए। मैं इस्माइल चाचा

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

एवं भूतू चाचा से संवाद करना चाहता हूँ। कृपया कोई मुझे बताए कि वे कौन हैं?''

उसकी विक्षिप्तता एवं इस तरह चीख़ने से लोगों ने उसे आगे बढ़ने का मार्ग दे दिया था एवं वह पुनः चीख़ उठा था-

''मुझे भूतू चाचा एवं इस्माइल चाचा से कुछ कहना है, वे कौन हैं? उनके लिए मैं इनके गुरु का संदेश लाया हूँ।''

एकाएक भूतनाथ की दृष्टि उस युवक पर पड़ी एवं इस घड़ी इस्माइल भी नमाज़ अदा कर खड़ा हो उस युवक को देखने लगा था।

हाँ वह युवक बुद्धेश ही था। उस पर दृष्टि पड़ते भूतनाथ ज़ोर से चिल्लाया था-

''मैं ही हूँ भूतनाथ। कृपया उसे मेरे निकट आने दीजिए।''

भूतनाथ का कथन सुन, लोगों ने बुद्धेश को मार्ग दे दिया एवं वह तीव्र गति से भूतनाथ के समक्ष आ खड़ा था। भूतनाथ ने उसके कंधे पर हाथ रख व्याकुलता से प्रश्न पूछा-

''कहो क्या कहना चाहते हो? क्या संदेश है इनके गुरु का?''

अब तक इस्माइल भी उनके निकट आ पहुँचा था। अभी बुद्धेश कुछ कहता, उससे पूर्व ही उसकी दृष्टि जलती चिता एवं महान तीर्थस्वरूपा गंगा के मध्य पद्मासन में समाधिस्थ महा पर पड़ी। वह महा के चरणों में सिर रखकर फूट-फूट कर रोने लगा।

भूतनाथ ने उसके कर में स्थित वह शंकर की पिंडी देखी, जो महा स्वयं के साथ रखता था। अब उसे इस युवक पर कोई संदेह न रह गया था एवं वह जान गया था कि अवश्य ही यह युवक किसी अत्यंत आवश्यक संदेश को लेकर आया है।

अब वह उस संदेश को पाने के लिए व्याकुल हो उठा था एवं बुद्धेश अब भी महा के चरणों में शीश झुकाए रो रहा था। भूतनाथ ने आगे बढ़कर जैसे ही उसके स्कंध को थामकर उसे उठाने की चेष्टा की, उसी घड़ी महा के दाहिने पग अंगुष्ठ पर स्वयं का ललाट रखते ही बुद्धेश काँप उठा था। अश्रु थम गए थे एवं

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

वह आश्चर्य से ऐसे महा को तकने लगा था, जैसे उस घड़ी साक्षात् महा ने उसे कोई आदेश दिया था। अब भी महा के स्वर उसके कर्णपटल पर गूँज रहे थे-

"इस काया के अंतिम संस्कार के पश्चात् तुम्हें स्नान कर काशी विश्वनाथ के ज्योतिर्लिंग के दर्शन करने के लिए जाना है। उनके दर्शन के पश्चात् ही तुम्हारी द्वादश ज्योतिर्लिंग की यात्रा पूर्ण होगी। इसी पूर्णता में तुम्हें वह पथ मिलेगा जिस पर चलकर तुम्हें शक्ति की साधना करनी है।"

बुद्धेश अब खड़ा हो महा को आश्चर्य से तक रहा था, तभी भूतनाथ ने उसे झकझोरते हुए पूछा-

"क्या संदेश लाए हो?"

प्रश्न के उत्तर में बुद्धेश ने विगत रात्रि स्वयं के साथ घटित घटना को विस्तारपूर्वक कह सुनाया था। उसे सुन सभी महा की देह को इस आश्चर्य के साथ देख रहे थे कि स्वयं गुरु ने स्वप्न में आकर किसी को इस देह की अंतिम क्रिया समझाई थी।

स्वयं के स्वप्न के पश्चात् बुद्धेश को यह ज्ञान अवश्य हो गया था कि जीवन की दौड़ में माता, पिता, भाई, बंधु साथ दें न दें, परंतु गुरु-शिष्य का साथ जन्म-जन्मांतर का होता है। तभी तो समाधि लेने के पश्चात् भी महाश्मशानाचारी 'तैलंग', स्वयं के इस शिष्य महा के अंतिम संस्कार की विधि उसे स्वप्न में बता गए थे।

इस वृत्तांत को सुनने के पश्चात् वहाँ उपस्थित सभी ब्राह्मण जैसे स्वयं की जाति को बिसारकर इस चांडाल-योगी के अंतिम संस्कार की क्रिया में व्यस्त हो गए थे। भव उद्धार के इस महिमागान में सभी ब्राह्मणों ने सर्वप्रथम महा की देह को शुद्ध गंगाजल से स्नान कराया। इसके पश्चात् पुष्प आदि से देह का पूजन-अर्चन किया गया। इस घड़ी संपूर्ण वातावरण में श्री रुद्र संबंधी चमकाध्याय एवं नमकाध्याय के पाठ के स्वर गुंजारित हो रहे थे। अब वातावरण रुद्रसूक्त के उच्चारण से गुंजायमान होने लगा था। तत्पश्चात् देह के समक्ष शंख की स्थापना कर शंखस्थ जल द्वारा महा की देह का जलाभिषेक किया गया।

अब महा के शीश पर पुष्प रख प्रणव द्वारा मार्जन करने के पश्चात् उसे

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

नवीन श्वेत धोती धारण कराई गई थी। इस घड़ी वहाँ स्थित संपूर्ण जनसमुदाय के नेत्रों से अश्रुधार बह रही थी। अब महा की काया रूपी दुलहन, दुलहन भी वह जो परम की चौंसठ कलाओं से परिपूर्ण हो और परमात्मा रूपी सोलह शृंगार कर के बैठी हो, उस पर भस्म मल उसे और अधिक सौंदर्यमयी बनाया गया। निकट खड़े बुद्धेश, भूतनाथ एवं इस्माइल के नेत्रों से निरंतर अश्रुधार बह रही थी।

अब महा के ललाट पर भस्म त्रिपुंड खींच, चंदन का तिलक किया गया। इसके पश्चात् देह को पुष्पमालाओं से अलंकृत कर, छाती, कंठ, मस्तक, बाँह, कलाई एवं कर्णों में क्रमश: मंत्रोच्चारण द्वारा रुद्राक्ष माला के आभूषणों को धारण करवाया गया। अंत में महा की देह के समक्ष धूप देकर उसे उठा एक सुसज्जित पालकी में बैठाया गया। नृत्य, वाद्य एवं ब्राह्मणों द्वारा वेदमंत्रोच्चारण की ध्वनि के मध्य महा की पालकी को उठाया गया था। पालकी को काँधा देते समय अचानक भूतनाथ फूट-फूट कर रो पड़ा था और बड़बड़ाने लगा-

"नहीं होना मुक्त मुझे, मुझे ऐसी मुक्ति नहीं चाहिए। यह मेरा प्रायश्चित्त नहीं हो सक्रता। मैंने तो तुझे उसी दिवस कहा था कि तू मेरा पुत्र नहीं है, तो फिर दुनिया के सबसे बड़े बोझ को उठाना भी मुझे स्वीकार नहीं। जा, मैं तुझे काँधा नहीं देता।"

कहते हुए भूतनाथ ने पालकी के डंडे को इस्माइल चाचा के काँधों पर रख दिया। अब पालकी को पुष्पों से सजी एक नाव पर रख दिया गया था। पृथ्वी की सीमा को त्याग, अनंत की उज्ज्वलता लिए इस देह को पालकी के संग नाव द्वारा अब मणिकर्णिका घाट से अस्सी घाट की ओर ले जाया जा रहा था। समस्त जन अब अन्य नावों पर सवार हो इस नाव के पीछे चल रहे थे। समस्त घाट भी जन समुदाय से पटे थे। तीर्थमाता गंगा पर अब 'हर-हर महादेव' का घोष गुंजायमान हो रहा था। प्रत्येक नाव पर सवार जन समुदाय यह घोष उठाता, विषाद से भर उठा था।

अब अस्सी घाट से नाव को घुमा पुन: पंचगंगा घाट की ओर लाया जा रहा था। अस्सी घाट से दशाश्वमेध घाट की ओर प्रशस्त होते नाव को कुछ घड़ी तुलसीघाट एवं हरिश्चंद्र घाट पर लगा, रोका गया था। हरिश्चंद्र घाट की

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

ओर दृष्टि डाल जैसे ही बुद्धेश ने महा की समाधिस्थ काया पर दृष्टि डाली, तो महा का संपूर्ण जीवन, चित्रों के रूप में बुद्धेश की दृष्टि के समक्ष घूम गया। इस घड़ी बुद्धेश की दृष्टि महा के दाहिने पग अंगुष्ठ पर चली गई। अब उस पर लगा दाग़ बुद्धेश के लिए वह पहेली बन चुका था, जिसे वह कभी नहीं सुलझा पाएगा। महा ने सदैव इस दाग़ से संबंधित उसके प्रश्नों को टाल दिया था।

अब नाव को पंचगंगा घाट के निकट दत्तात्रेय मंदिर के समक्ष गंगा के मध्य लाया गया। पालकी के साथ ही पुष्प की दो टोकरियाँ रखी गई थीं। जब उन पुष्पों को उस स्थान पर गंगा में प्रवाहित किया जा रहा था तो बुद्धेश, भूतनाथ के कंधे पर स्वयं का शीश टिकाकर रो पड़ा था। उसे प्रतीत हो रहा था जैसे अनेक आवरणों के भीतर चमकती महा की आत्मा स्वयं इन पुष्पों को अपने गुरु तैलंग के चरण-कमलों में समर्पित कर रही है।

अब नाव को वरणा एवं गंगा के संगम पर सामने के किनारे पर लगा दिया गया। दूसरी नावें भी किनारे पर आ लगी थीं। अब महा की पालकी को नाव से उतार दिया गया था। पूर्व दिशा में उसी स्थान पर संन्यासी के दंड के बराबर एक गड्ढा खोदा गया, जहाँ गुरु तैलंग ने बुद्धेश को ऐसा करने का आदेश दिया था। जनसमुदाय अब भी अश्रु बहाता, संपूर्ण वातावरण को 'हर हर महादेव' के घोष से गुंजायमान कर रहा था।

संन्यासी के दंड के बराबर इस गड्ढे में मंत्रोच्चारण के साथ पुष्प और बिल्व पत्रों को बिछा उस पर कुश से योगासन निर्मित किया गया था। तत्पश्चात् महा की देह को पालकी से निकालकर मृग चर्म पर विराजित किया गया एवं प्रणव के उच्चारण के साथ पुनः शंखस्थ जल से अभिषेक कर, उसके शीश पर पुष्प रख दिया गया था।

जनसमुदाय इस घड़ी काशी विश्वनाथ के चिंतन में लीन था। अब 'ॐ'कार का उच्चारण कर, स्वस्तिवाचन का पाठ करते हुए महा की देह को उठाकर कुश से बने योगासन पर प्रतिष्ठित कर दिया गया। महा का मुख पूर्व दिशा की ओर था। इसके पश्चात् चंदन एवं पुष्प से उसे अलंकृत कर, धूप और गुग्गुल की सुगंध दी गई एवं भ्रूमध्य पर स्पर्श कर रुद्रसूक्त का जाप किया गया।

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मंत्रोच्चारण के मध्य ही बुद्धेश एक नारियल लेकर आगे बढ़ा एवं अब उसने महा के मस्तक का भेदन कर दिया था। ऐसा करने की घड़ी जैसे वह स्वयं के क़ाबू में न था और किसी विक्षिप्त मानव की तरह रो रहा था। अब सभी ने मिट्टी डालकर उस गड्ढे को पाट दिया था एवं एक पुष्प की माला उस पर सर्मपित कर, सभी अपनी नावों की ओर लौटने लगे।

भूतनाथ ने महा की समाधि पर नतमस्तक होते, स्वयं की जेब से हरा वस्त्र निकालकर उसे समाधि पर चादर की भाँति ओढ़ा दिया था। इस घड़ी वह स्वयं को अनाथ मान, फूट-फूट कर रो रहा था।

अब सभी लोग अपने पग नावों की ओर वापस बढ़ा रहे थे कि 'हर हर महादेव' के घोष के मध्य शहनाई से उठती एक सुमधुर स्वरलहरी वातावरण में गूँज उठी। सभी ने घूमकर देखा तो वृद्धावस्था को प्राप्त अश्रु बहाता इस्माइल, महा की समाधि के समक्ष बैठा शहनाई वादन में लीन था। सभी के हृदय एक भावात्मक राग से रँग गए थे।

काशी के घाटों का कोहरा जैसे छँट गया था। एक अपूर्व जागरण आज घट गया था और जीवन की अमरता उसका खिलौना बन, सभी को महा का परिचय दे ग़ई थी। आज महा की ईश्वरीय चेतना परम की रहस्यता को उघाड़कर वह प्रतीक बन गई थी, जिसे देखते ही ज्ञात होता था कि पंचक्रोशी काशी शिव के ओज से ही निर्मित है।

सारी नावें अब दशाश्वमेध घाट की ओर लौट रही थीं। गंगा पर सर्वत्र फैली शांति में इस्माइल की शहनाई से उठती स्वरलहरी अब भी गुंजायमान थी। महा की समाधि बुद्धेश के नेत्रों से शनैः-शनैः लुप्त हो रही थी। भूतनाथ देख रहा था कि समीर के बहने से वह हरा वस्त्र उड़कर गंगा में आ गिरा था एवं गंगा में बहते हुए वह भी गंगासागर की ओर प्रयाण कर रहा था।

सारी नावें जब दशाश्वमेध घाट पर लग रही थीं, तब एक छोटी सी नाव उस किनारे आ लगी थी जहाँ महा, समाधि की चिरनिद्रा में लीन था। सिर को साड़ी के पल्लू से ढँक एक सुंदर स्त्री अब नाव से उतरती महा की समाधि की ओर पग बढ़ा रही थी। समाधि पर आते ही नतमस्तक हो उस स्त्री ने यह कहते

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हुए महा की समाधि पर एक पुष्प अर्पित किया-

"आज से यह पुष्प काशी विश्वनाथ के ज्योतिर्लिंग पर नहीं, अपितु नित्य आपकी समाधि पर अर्पित करूँगी।"

अब उस स्त्री के नेत्रों से छलके दो अश्रु बिंदुओं से महा की समाधि की मिट्टी भीग गई थी एवं वह स्त्री पुन: लौट गई थी।

पूर्वाभिमुख बैठे महा की समाधि के समक्ष काशी विश्वनाथ स्थिर हो स्निग्ध स्मित फैला रहे थे। श्री विष्णु के अंश रामानंद के शिष्य कबीर के सदृश, आज शिव के अंश तैलंग के इस चेले महा ने भी स्वयं की चदरिया ज्यों की त्यों धर दी थी। संपूर्ण जीवन काशीपति काशी विश्वनाथ ने उसे स्वयं के सान्निध्य में रख, यही तो ध्यान रखा था कि उस पर कोई दाग़ न लगे।

देह का आकाश अब महाकाश में जा समाया था। वायु रूपी प्राण, परम प्राण के आलिंगन में बद्ध हो चले थे। देह की अग्नि अब संकल्प का रूप ले काशीपति विश्वनाथ के महासंकल्प में लीन हो गई थी। जल रूपी जीवन ब्रह्मांड के सृजनकर्ता नीलकंठ शिव के महाजीवन के चरणों में समर्पित हो चला था एवं जगत् को धारण करने वाली धरा, अखिल ब्रह्मांड को धारण करने वाले काशीपति शिव का अंश बन मुस्कराने लगी थी।

अब स्वयं के सूर्य आदि ज्योतियों के प्रकाशक, सर्वोत्तम महाज्योति स्वरूप में काशी विश्वनाथ दूर खड़े स्निग्ध स्मित फैलाते अमर अनाहत नाद निनादित कर रहे हैं-

"यति, ब्राह्मण, योगी तो क्या! जो मेरा भक्त है वह चांडाल भी है, तो मुझे प्रिय है। उससे तो आज मैं स्वयं शिव भी प्रसाद ग्रहण करने के लिए यहाँ आ स्थित हूँ। यह चांडाल भी मेरे ही सदृश पूजनीय है। न मैं कभी इसके लिए अदृश्य होता हूँ और न ही यह मेरी भी दृष्टि से कभी ओझल होता है। जब मैं और यह, दोनों एक ही हैं तो फिर भला क्या गुरु, क्या शिष्य और जब सब कुछ अद्वैत है, तो फिर क्या फ़र्क़ पड़ता है कि मैं कहीं न कहीं, कभी न कभी यह सुनता रहा-

'पर याद रख मैं तेरा गुरु नहीं।' "

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

परिशिष्ट

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

शुभ संदेश

"**काशी मरणान्मुक्ति**" काशी की पृष्ठभूमि पर लिखा गया हिन्दी का एक ऐसा अद्‌भुत उपन्यास है, जिसमें एक चांडाल पुरुष को मानवीयता के उच्चतम शिखर पर प्रतिष्ठित किया गया है।

कथा के नाभि-कुंडल में गौरवशाली बीभत्स की स्थापना की गई है। संयोगों, नीयतियों, दैव वाणियों के सहारे कथा इस प्रकार थिरकती चलती है कि समाज के ओछे जन उदात्त, नगण्य गण्यमान्य और घृणित पूजनीय हो उठे हैं। एक अदना सा इंसान कथा का नायक बन जाता है और तथागत की महिमा धारण कर महानायक हो जाता है। उछाल, उड़ान, उन्नयन और आरोहण से भरे पड़े हैं कथा-यात्रा के पड़ाव एवं कूच-विहार।

विध्वंस की टेकरी फोड़कर प्रकट होता हुआ वैनतेय देखकर कौन नहीं पुलकित होता? महानायक की देह में करुणा का उत्पात देखकर कालवैशाखी की उत्तेजना क्यों नहीं स्तब्ध हो जाएगी? भारत भूमि के तीर्थस्थल जो सदियों से, कालगति के कारण, निस्पंद, उन्हें मानवीय स्पर्श द्वारा चैतन्य एवं पुनर्नवा किया गया है। तीर्थों की अतीर्थताएँ दोने में दीप बनाकर तीर्थजल में प्रवाहित कर दी गई हैं। कथा में छोटे-छोटे आदमियों की ज़िंदगी के हाहाकार एवं आर्तनाद गूँजने लगे हैं।

अत्तदीपा, भिक्खवे, विहरथ, भिक्षुओ, आत्मद्वीप होकर विचरण करो। अर्थात जैसे सिंधु- गजनिओं के बीच द्वीप अचल, अडिग और निर्भीक बना रहता है, उसी प्रकार पंचेंद्रियों के प्रवाहों के मध्य शांत एवं अनुद्विग्न रहो षदरिपुओ तथा सारगणों से आक्रांत मार्ग पर 'बिदेसिया' गाते हुए चलते रहो उपन्यास में चरितार्थ हुई है यह वाणी। सारे उपन्यास की कथा कबीर की इस साखी से उपन्यस्त है :

मन मथुरा दिल द्वारिका काया काशी जानि ।
दसवाँ द्वारा देहुरा, तामैं जोति पिछानि ।।

श्रीकांत उपाध्याय
वरिष्ठ साहित्यकार
पुणे

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मंगला शंसन

"**काशी मरणान्मुक्ति**" का प्रथम संस्करण पढ़ने का सुयोग मिला अत्यधिक आनंद की प्राप्ति हुई एवं लेखक को एक पत्र लिखने की तीव्र इच्छा जाग्रत हुई। किसी कारणवश मैं पत्र नहीं लिख पाया परन्तु अब जैसे ही तीसरे संस्करण के समाचार प्राप्त हुए मैं स्वयं को रोक नहीं पाया और यह पत्र लिखा।

श्री मनोजजी ने इस पुस्तक में जिस प्रकार अध्यात्म की विवेचना की, उनकी जितनी भी प्रशंसा की जाए कम होगी। जिस प्रकार भगवान वेद व्यास ने बदरिकाश्रम में समाधिस्थ होकर श्रीमद् भागवत् महापुराण के माध्यम से "कृष्णतत्त्व" की सूक्ष्म विवेचना की है, लगता है मनोजजी काशी में रहकर भूतभावन विश्वनाथ के अनुग्रह से ही इस प्रकार के सूक्ष्म भावों को पुस्तक के रूप में उतारने में सफल हुए हैं। "**काशी मरणान्मुक्ति**" भी समाधि की ही भाषा हैं, ऐसा लगता है।

नाकुलीस दर्शन एवं पाशुपत मत जो पुराणों के अवलोकन से नहीं समझा जा सकता है, इस ग्रंथ के अध्ययन से शिव तत्त्व की रहस्यमयी प्रस्तुति स्वतः प्रस्फुटित होती है। जीव जो अज्ञान भाव के कारण 'पशु' कहा गया है उस पर शिव सदृच्छया किस प्रकार अनुग्रह करते हैं, यह ग्रंथ उसी अनुग्रह की परिणति है।

मृत्युरूपी शाश्वत सत्य सभी को भयभीत किए हैं, इस भय की निवृत्ति बिना ज्ञान के संभव नहीं। जीव अनंत जन्म लेकर मृत्यु रूपी कष्ट की व्यथा से झुलसता आया है, इसी भय के साथ पैदा होता है न आजीवन इसी भय से व्यथित रहता है। जब उस जीव को शिव का अनुग्रह मिलता है और वह काशीवास करता हुआ मृत्यु का स्मरण करता है तो इस जन्म-मरण के प्रपंच से सदा के लिए मुक्त हो जाता है। इस ग्रंथ के भाव वेद सम्मत हैं।

मेरी भावना है कि "**काशी मरणान्मुक्ति**" का अध्ययन एक बार नहीं अनेक बार किया जाए। इस ग्रंथ का हर संदर्भ गीता के रहस्य की भाँति गंभीर व नई विवेचना के लिए मस्तिष्क को विवश करता है। मुझे नीति के यह श्लोक

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

रह-रह कर याद दिला रहे हैं कि-

यावत्स्वस्थमिदं शरीरमरुजं यावज्जरा दूरतो
यावच्चेन्द्रियशक्ति प्रतिहता यावत्क्षयो नायुषः।
आत्मश्रेयसि तावदेव विदुषा कार्यः प्रयत्नो
महान्संदीप्ते भवने तु कूपखननं प्रत्युद्यमः कीदृशः।।

अर्थात् जब तक शरीर स्वस्थ है, बुढ़ापे से दूर है व इन्द्रियाँ अपना ठीक से कार्य कर रही हैं, आयु शेष है, तब तक आत्मकल्याण के प्रयत्न कर लेने चाहिए। घर पर आग लग जाए तब कुआँ खोदना निरर्थक है। ''**काशी मरणान्मुक्ति**'' का अध्ययन निश्चित रूप से आत्मकल्याण चाहने वाले पथिक को मार्गदर्शन देगी, यह मेरी भावना है। बहुत सी शुभकामनाओं के साथ।

जे. पी. सती
धर्माधिकारी
बदरीनाथ धाम, हिमालय

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

शुभा शंसा

जहाँ एक ओर मर्यादा पुरुषोत्तम ब्रह्मांडपति सर्वज्ञ रघुनंदन श्रीराम तथा अनंतकोटी ब्रह्मांडनायक परमानंदकंद श्रीकृष्ण दोनों ही विश्वेश्वर श्री साम्बसदाशिव देवाधिपतिदेव महादेव के ध्यान में सदैव मग्न रहते हैं वहीं दूसरी ओर श्री नागेन्द्रहार, आशुतोष ओढ़रदानी शिव कैलास पर स्थित हो या स्वयं की नगरी काशी में उमा के साथ विचरते महाभार से परिवेष्टित मधुसूदन श्री हरि विष्णु के सहस्रनाम जाप में लीन सदा डोलते रहते हैं। ऐसे ॐकार स्वरूप त्रिगुणात्मक करुणा वरुणालय परिच्छेदविर्निमुक्त श्री सच्चिदानंद सर्वसाई स्वरूप ब्रह्म की अभिव्यक्ति दिव्य, काल, देश और वस्तु के माध्यम से **''काशी मरणान्मुक्ति''** जैसी कृति की सृजनता से ही संभव है।

जिंस प्रकार नाम, रूप, कर्मात्मक जगत के माध्यम से सच्चिदानंद स्वरूप परमात्मा की अभिव्यक्ति अनुभव सिद्ध है इसी प्रकार किसी भी वस्तु के अस्तित्व भान और उसकी प्रियता सच्चिदानंद परमेश्वर की अभिव्यक्ति प्रस्तुत करने में समर्थ हैं।

कर्मेन्द्रिय, ज्ञानेन्द्रिय, प्राण, अंत:करण, कर्म और काम का समवेत स्वरूप सूक्ष्म शरीर है और अविद्यात्मक कारण शरीर है तथा दोनों के योग से ही पर्युष्टक की पुष्टि होती है। सूक्ष्म शरीर द्वारा सूक्ष्म शरीर की तथा सूक्ष्म शरीर द्वारा कारण शरीर की अभिव्यक्ति मान्य है एतत् कारण शरीर के द्वारा जीव की तथा जीव के द्वारा शिव स्वरूप परमात्मा की अभिव्यक्ति भी मान्य है, साथ ही देश विशेष, काल विशेष और वस्तु विशेष के योग से परमात्मा की द्रुत और स्फुट अभिव्यक्ति अनुभव सिद्ध है और ऐसी ही अभिव्यक्ति है **''काशी मरणान्मुक्ति।''**

इस अभिव्यक्ति के सृजनधर्मी लेखकद्वय ने कलम की अद्भुतता में परा भूमि पर अपनी सच्ची आदरांजलि प्रकट की है। जहाँ वे अपनी संपूर्ण मुक्तिसार की इस पुस्तक में व्याप्त शोक को श्लोक में बदलकर मंत्र दृष्टा की भाँति स्वयं इन ऋचाओं के ऋषि हो गए।

इस महामुक्ति काव्य की ओर यदि दृष्टिपात करें तो सचमुच यदि कबीर के अनुयायी महा की महत्ता को नहीं जानोगे तो परमात्मा के रहस्य को नहीं समझ सकंते, क्योंकि कबीर और तुलसी के शब्दों की चाह पर यदि महा की

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मेहंदी की हिना का रंग नहीं चढ़ता तो इस जीव की आत्मा का ब्रह्मरंध्र से निकल मुक्त होना संभव नहीं था।

महाकवि जयशंकर प्रसाद और स्वयं धर्मसम्राट श्री करपात्री हरिहरानंद जी ने बकौल अपनी एक प्रवचन माला में कहा है कि - हिंदी की उत्कृष्टता का मूल्यांकन करते समय यह लगता है कि उसे सरलतम लिखना क्लिष्ट लिखने से अधिक कठिन है। योगशास्त्र में पातबिंदु ही ब्रह्म है। 'उ' बिंदु का वाचक है, 'म' नाद का वाचक है तथा 'अ' अद्वैत सत्ता का वाचक है, इसलिए प्रणव ''ॐ'' के जाप से त्रिगुणातीत माया का संबंध टूट जाता है तो यह साधना ही अजपा जप है जिसकी ओर इंगित करती है **''काशी मरणान्मुक्ति।''**

लेखकद्वय ने अपने 'डिवाईन पावर' से युवा गुरु पु. रविशंकर के 'आर्ट ऑफ लिविंग' और अवधूत शिवानंद के 'आर्ट ऑफ डाईंग' को भी यहाँ चकमा देते हुए उद्धत किया है कि स्वयं जीवन को जीते हुए तो जीना सभी आदत बना लेते हैं, तो कोई दूसरों को सिखाकर नज़ीर बन जाते हैं। कुछ औघड़ (हठी) मृत्यु से मित्रता भी कर बैठते हैं परंतु सच्ची फ़क़ीरी तो साई की है जो मृत्यु ऐसे सीखा दे जैसे जीना!

अनंतोगत्वा अतिप्रिय मनोज से रश्मि तक मेरी हार्दिक शुभकांक्षाएँ प्रस्तुत करता हूँ। आप यशस्वी हों, दीर्घायु हों, आप अपनी इस सारस्वत यात्रा से वांछित गंतव्य स्थान प्राप्त करें। भगवान् नित्यानंद रचित ये पुष्प सौरभ आपको **''काशी मरणान्मुक्ति''** के अविस्मरणीय लेखन पर आदरांजलि सहित भेंट करता हूँ -

''अखंड ब्रह्म है अगम अगोचर सबके आगे सोंई
बाहर भीतर देख चहूँ दिशा और दूजा नहीं कोई
ये कहे निजनित्यानंद जगत में रहे न कोई
आना उसका धन्य गुप्त पद खोजे सोई।।''

अंतिम पद चरण की चाह से राह तक मैं और आप...

आपका शुभेच्छु
डॉ. साकेत व्यास
LLM, PH.D.
विशेष लोक अभियोजन अधिकारी
लोकायुक्त, इन्दौर

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

काशी मरणान्मुक्ति

...Memorial College of Education ... Jammu

[illegible]

[illegible]

[illegible]

...ndation, Chandigarh